र्कण्डेय पुराण

(प्रथम खण्ड)

हिन्दी अनुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण]

सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम जी शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट्दर्शन, २० स्मृतियां, योग वासिष्ठ, १८ पुराणों के भाष्यकार, गायत्री महाविद्या के विशेषज्ञ और बहुसंख्यक हिन्दी ग्रन्थों के रचयिता।

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजाकुतुब, वेदनगर, बरेली-२४३००१ (उ० प्र०)

मास्टर खेलाड़ीलाल एण्ड सन्स
-: संस्कृत बुक डिपो :-
प्रोपाइटर गोपाल जी
कचौड़ीगली, वाराणसी (उ. प्र.)

मार्कण्डेय पुराण

[प्रथम खण्ड]

(सरल हिन्दी अनुवाद सहित जनोपयोगी संस्करण)

सम्पादक :

वेदमूर्ति तपोनिष्ठ

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

चारों वेद, १०८ उपनिषद्, षट् दर्शन, योग वासिष्ठ,

२० स्मृतियाँ और अठारह पुराणों के,

प्रसिद्ध भाष्यकार।

प्रकाशक :

संस्कृति संस्थान

ख्वाजा कुतुब, (वेदनगर), बरेली-२४३००१(उ०प्र०)

प्रकाशक

डा० चमनलाल गौतम
संस्कृति संस्थान
ख्वाजा कुतुब, (वेदनगर)
बरेली-२४३००१ (उ०प्र०)

सम्पादक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

द्वितीय संशोधित संस्करण
सन् १९७८

मुद्रक:
शैलेन्द्र बी. माहेश्वरी
नव ज्योति प्रेस,
भीकचन्द मार्ग, मथुरा

मूल्य :
ग्यारह रुपये मात्र

भूमिका
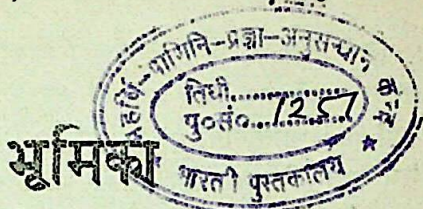
भारतवर्ष के धार्मिक साहित्य में पुराणों का एक विशिष्ट स्थान है। यों तो हिन्दू धर्म में वेदों की प्रतिष्ठा सर्वोपरि है और अध्यात्मकी दृष्टि से उपनिषदों को समस्त संसार में अद्वितीय माना गया है, पर लोक-प्रियता की दृष्टि से पुराणों का दर्जा बढ़ा-चढा है। जिस प्रकार ऊँचे दर्जे का साहित्य थोड़े विद्वानों द्वारा समादृत होता है, पर सामान्य कोटि की मनोरंजक, तथा रुचिकर पुस्तकों का प्रचार अगणित जनता में होता है, उसी प्रकार वेद और उपनिषदों के गूढ़ तत्वों का विवेचन जहाँ गिने चुने विद्वानों तथा अध्ययनशील व्यक्तियों के काम की चीज होती है, वहाँ पुराणों की कथाओं को गाँवों के अपढ़ लोग सुनते और समझते रहते हैं। यद्यपि कुछ कारणों से पठित समुदाय में इनके सम्बन्ध में कई प्रकार की भ्रांतियां फैली हुई हैं और अनेक आधुनिकता का दावा करने वाले सज्जन इनको सर्वथा कल्पित भी कह देते हैं, पर इसका कारण यही है कि उन्होंने कभी पुराणों के अध्ययन का प्रयत्न नहीं किया। पुराणों का उद्देश्य प्राचीन युगों की घटनाओं और परम्परागत ऐतिहासिक कथाओं को सरल तथा मनोरंजक शैली में वर्णन करना है। इनमें से कुछ वास्तविक, कुछ अर्ध-बास्तविक और कुछ धर्म, पुण्य व सच्चरित्रता की प्रेरणा देने के लिये कल्पित भी होती हैं। पुराणों में प्रत्येक विषय को धर्म, सदाचार, नीति का पुट देकर लोक-शिक्षा का माध्यम बनाने की चेष्टा की गई है। इसके लिए पुराण-लेखकों को घटनाओं के वर्णन में संशोधन, परिवर्तन तथा कल्पना का आश्रय अवश्य लेना पड़ा है, पर उनका मूल आधार प्रायः ठीक ही है और यदि हम उनके रूपक, अलंकार, अतिशयोक्ति, अर्थवाद का विश्लेषण करके अन्तराल में झांके तो अनेक बहुमूल्य औरकल्याणकारी मणि-मुक्ताओं की प्राप्ति हो सकती है।

दूसरी बात यह भी है कि सब पुराणकार एक श्रेणी के और समान महत्व तथा दृष्टिकोण रखने वाले भी नहीं हैं। उनमें से कुछ का उद्देश्य पाठकों को अध्यात्मयोग, दर्शन, ज्ञान-विज्ञानकी शिक्षा देनाहै। कुछ किसी विशेष देवता और सम्प्रदाय के महत्व का प्रतिपादन करके अपने अनुयायियोंकी श्रद्धाको दृढ़ करनेके उद्देश्यसे रचे गयेहैं। कई पुराणोंमें सीधी-सादी धार्मिक कथाओं और दृष्टान्तों द्वारा लोगों को उपासना, पूजा, भक्ति, व्रत, जप, तप, सदाचार आदिकी शिक्षायें दीगई हैं,जिसमें सामान्य मनुष्य-अपने जीवन को अधिक शुद्ध, पवित्र बनाकर समाज के लिए हितकारी सिद्ध होसकें फिर पुराणों का प्रचार और प्रभाव देखकर कुछ थोड़ी विद्या बुद्धि के लोगों ने छोटी छोटी धार्मिक पुस्तकें लिखकर उनके नाम में भी 'पुराण' शब्द सम्मिलित कर दिया है। ऐसी स्थितिमें जोलोग केवल दोष-दर्शन अथवा विरोधकी दृष्टिसे ही पुराणों पर विचार करने लगतेहैं उनको अपनी रुचिके अनुकूल विपरीत आलोचना, आक्षेप दोषारोहणका ममाला भी उनमें मिल सकता है, पर हमारी सम्मति में उसकी न तो कोई उपयोगिता है, न प्रशंसा है और न उससे उनकी विद्या और बुद्धि की उत्कृष्टता का ही कोई प्रमाण मिलता है।

यदि पुराणोंका गम्भीरता तथा सहानुभूति पूर्वक अध्ययन किया जाय तो मालूम होताहै कि उनका मुख्य उद्देश्य वेद, उपनिषद्, दर्शन स्मृतियां आदि शास्त्र-ग्रन्थों में वर्णित धर्म, अध्यात्म, सृष्टिरचना, मानव-सभ्यता के विकास सम्बन्धी गूढ़ तथ्यों का इस प्रकार विस्तार और व्याख्या सहित वर्णन करना था जिससे साधारण श्रेणीके जनसाधारण उनको समझ कर लाभ उठासकें। उनका दूसरा उद्देश्य उन्हें कथाके उपयोगी रूपमें बनाना भी था जिससे अनपढ़ लोगों, स्त्रियों और बालकों के सामने उनको बाँच कर उपदेश दे सकना संभव हो। इसीलिए पुराणों को प्रायः आख्यान, उपाख्यान, दृष्टान्त, रूपक, कहानी आदि ऐसी सुगम और सरल शैली में लिखा गया है जिससे सब प्रकार के व्यक्ति उनको प्रेम से सुन सकें और उनसे अपनी बुद्धि तथा स्थिति के अनुकूल लाभ उठा सकें।

पौराणिक साहित्य का एक लक्षण सर्ग (सृष्टि रचना) और प्रतिसर्ग

(सृष्टि का लय तथा विलीनता) के विषयमें विचार करनाहै। यद्यपि यह एक बहुत जटिल तथा विवादग्रस्त विषयहै, जिसके सम्बन्धमें संसारके बडेसेबड़े विद्वान् और वैज्ञानिक तरह-तरहके मतभेद प्रकट करते रहतेहैं, पर पुराणोंमें इसे देवासुर संग्रामके रूपमें ऐसा मनोरंजक बनादिया है कि पाठक कहानीके द्वारा ही सृष्टि-विज्ञान के मोटे तथ्योंको जानलेताहै। इसीतरह प्राचीन राजवंशोंका वर्णनभी पुराणकारोंने परोपकार, उदारता, त्याग, तपस्या के उदाहरण दिखानेके ढंगसे किया है। यह आवश्यक नहींकि राजवंशों की ऐसी नामावलियोंमें प्रत्येक राजाके नाम आही जायें, पर उनमेंसे ऐसे राजाओंको छांटकर उनका विशेषरूपसे वर्णन किया गया है जिनके चरित्रऔर कार्योंसे हमकिसी प्रकार की सत्‌शिक्षा प्राप्तकरके अपने जीवनको ऊँचा उठा सकतेहैं।

इस दृष्टि से यदि हम कहें कि पुराण-ग्रन्थ भारतकी प्राचीन संस्कृति, सभ्यता इतिहासके भंडारहैं तो इसमें कोई अनुचित बात नहींहै। एकविद्वान् के कथनानुसार 'पुराणोंमें भारतकी सत्य और शाश्वत आत्मा निहितहैं, इन्हें पढ़े बिना भारतका यथार्थचित्र सामने नहीं आसकता, भारतीय-जीवन का दृष्टिकोण स्पष्ट नहीं होसकता। इनमें आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक सभी विद्याओंका विशद वर्णन है। लोक-जीवन के सभी पक्ष इनमें अच्छे प्रकार प्रतिपादितहैं। ऐसा कोईज्ञान-विज्ञान नहीं, मानव मस्तिष्क की ऐसी कोई कल्पना या योजना नहीं, मनुष्य जीवनका ऐसा कोई अंगनहीं, जिसका निरूपण पुराणोंमें न हुआहो। जिन विषयों को अन्य माध्यमोंसे समझनेमें बहुत कठिनाई होतीहै, वे बड़े रोचक ढङ्गसे, सरल भाषोंमें, आख्यान आदि के रूपमें इनमें वर्णित हुए हैं।' एक अन्य लेखक ने कहा है कि "भारतीय धर्म, दर्शन और संस्कृति सदाचार एवं सामाजिक तथा राजनीतिक जीवन से सम्बन्धित अनेक विषय पुराणों में आये हैं। वस्तुतः पुराणों की वर्णन समृद्धि से स्तब्ध हो जाना पड़ता है। किन्तु इनमें सबसे महत्वपूर्ण अंश वेदों की अध्यात्म ब्रह्मविद्या या सृष्टि विद्या है, जिसे पुराणों ने खुलकर स्वीकार किया है। 'इतिहास पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।' यह सूत्र ही मानों पुराण का रचना बीज बन गया था। इस दृष्टि से वेद-विद्या का ही लोक सुलभ अवान्तर रूप पुराण विद्या है।"

मार्कण्डेयपुराण की विशेषता

महापुराणों के पांच मुख्य लक्षण बताये गये हैं सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश, मन्वतर और वंशनुचरित। यद्यपि ये लक्षण थोड़े बहुत अन्तर के साथ सभी प्रसिद्ध पुराणों में पाये जाते हैं तो भी जिन पुराणों का उद्देश्य किसी विशेष देवता या सम्प्रदाय की पुष्टि करना हैं उनका विशेष ध्यान उसी तरफ लग जाता है और इन मूल विषयों के वर्णन को भी उसी रंग में रंग दिया जाता है। पर 'मार्कण्डेय पुराण' इस बात से अधिकांश में बचा हुआ है और उसमें मुख्य रूप से धर्म, नीति. सदाचार के प्रतिपादन को ही अपना लक्ष्य बनाया है। उसमें ब्रह्मा, विष्णु. शिव में से किसी देवता की बढ़ाने के लिए दूसरे की हीनता नहीं दिखाई गई है। इसी प्रकार अग्नि, सरस्वती, सूर्य आदि का भी समानभाव से स्तवन किया गया है। इस निष्पक्षता की भावना के फलस्वरूप इम पुराण में विभिन्न विषयों का यथार्थ रूप में वर्णन करने की तरफ ध्यान दिया गया हैं, जिससे उसकी उपयोगिता बढ़ गई हैं। इस दृष्टि से यह पुराग हिन्दू-धर्म की समन्वयवादी विचारधारा की एक बहुत उत्तम कृ'त है जिसने पृथक्-पृथक् सम्प्रदायों के भेदभाव मिटाने का प्रयत्न करते हुए सब देवों की एकता पर जोर दिया है। इसका विचार क्षेत्र इतना उदार है कि केवल हिन्दू सम्प्रदायी को ही नहीं वरन् बौद्ध और जैन जैसे सर्वथा भिन्न समझे जाने वाले मतों के प्रति भी पृथकत्व की भावना नहीं रखी है। भगवान् भास्कर की स्तुति करते हुए कहा है—

> विस्पष्टा परमा विद्या ज्योतिर्भा शाश्वती स्फुटा।
> कैवल्यं ज्ञानमाविर्भूः प्राकाम्य संविदेव च ॥
> बोधश्चावगतिश्चैव, स्मृतिर्विज्ञानमेव च।
> इत्येतानीह रूपाणि तस्य रूपस्य भास्वतः ॥

अर्थात् 'वैदिकों की पराविद्या,ब्रह्मवादियों की शाश्वत ज्योति जैनोंका कैवल्यं,बौद्धोंकी बोधावगति,सांख्योंका ज्ञान योगियोंका प्रकाम्य, वेदान्तियों

का संवित्, धर्मशास्त्रियों की स्मृति योगाचार का विज्ञान – ये सब रूप एक ही महाज्योतिष्मान् सूर्य के विभिन्न दर्शन हैं।'

इसकी दूसरी विशेषता 'कर्म' को प्रधानता देना है। अन्य अनेक लेखकों ने जहाँ-यज्ञ-हवन आदि को ही धर्म का साधन माना है अथवा गृह त्याग करके तपस्वी या संन्यासी बन जाने को आत्म-कल्याण का मार्ग बतलाया है, वहाँ 'मार्कण्डेय पुराण' में 'देवतत्व' इन्द्रत्व' और ब्रह्मत्व तक को कर्मों का परिणाम बतलाया है। यहाँ कर्म का तात्पर्य पूजा, पाठ, जप-तप से नहीं वरन् परोपकार और दुःखी प्राणियों के कष्ट निवारण से ग्रहण किया गया है। ऐसे कर्म की प्रशंसा करते हुए पुराणकार कहते हैं—

"मनुष्य का जो कर्म करुणा से प्रेरित होता है और जिसमें किसी प्रकार के कपट का भाव नहीं होता, उससे मनुष्य को किसी प्रकार का बन्धन नहीं होता और उसकी आत्मा शुद्ध हो जाती है।"

बोध और जैन धर्म के प्रभाव से देश में जब भिक्षु, मुनि, श्रमण आदि की संख्या बहुत अधिक बढ गई थी और गृहस्थ धर्म का उत्तर–दायित्व पूरा किये बिना ही निर्वाण' और 'मोक्ष' के नाम पर कार्यक्षम व्यक्ति निकम्मा जीवन व्यतीत करने लगे थे तब मार्कण्डेय ने गृहस्थ — आश्रम की श्रेष्ठता प्रतिपादित की और स्पष्ट शब्दों में कहा कि 'जो गृहस्थ धर्म का पालन करके पूर्वजों तथा समाज के प्रति अपने कर्तव्य का पालन नहीं करता वह गृह त्याग करके भी किसी प्रकार की सुगति किस प्रकार प्राप्त कर सकता है, इस पर जब विपक्षी यह आक्षेप करते थे कि वेद और उपनिषदों में कर्म-मार्ग को अविद्या कहा हैं तो फिर उसका अनुसरण क्यों करना चाहिये, तो मार्कण्डेय का उत्तर था कि 'वेदों का यह कथन असत्य नहीं है कि कर्म अविद्या' है पर साथ ही यह भी कह दिया है कि विद्या तक पहुंचने का मार्ग अविद्या ही है। कर्तव्य-कर्म का पालन न करके जो 'संयम' का ढोंग करता है वह उत्थानके बजाय आवागमन के गढे में गिरता है।' इस सिद्धान्त का बहुत स्पष्ट समर्थन 'ईशोपनिषद्,में किया गया है जिसमें विद्या और अविद्या का समन्वय करते हुए कहा है–

विद्यां चाविद्यां च यस्तद् वेदोभयं सह।
अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृतमश्नुते ।।

अर्थात् 'मनुष्य के लिए विद्या रूप ज्ञान तत्व और अविद्या रूप कर्म तत्व दोनों का जानना ही आवश्यक है। वह कर्मों के अनुष्ठान से मृत्युको पारकर ज्ञान के अनुष्ठान से अमृतत्व का उपभोग करता है।' सांसारिक जीवन में सफलता प्राप्त करने के लिए कर्मों में कुशल होने की आवश्य-कता है और पारलौकिक जीवन में सर्वश्रेष्ठ स्थिति तक पहुँचने के लिए ज्ञान का होना अनिवार्य है। साथ ही यह भी निश्चित है कि कर्म की कुशलता प्राप्त किये बिना ज्ञान और मोक्ष का दावा करना एक प्रकार की मूढता है। गीता में भी 'योगः कर्मसु कौशलम्' कहकर इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। शुकदेव और दत्तात्रेय जैसे पूर्व जन्म के सिद्ध योगियों का उदाहरण तो अपवाद स्वरूप है सामान्य मनुष्यों के लिये जीवन को सार्थक बनाने का कर्म के अतिरिक्त अन्य कोई मार्ग नहीं है।

गृहस्थ धर्म के प्रतिपादन के साथ मार्कण्डेय ने नारी के महत्व को भी बतलाया है और सामाजिक जीवन में उसे उचित स्थान दिये जाने का समर्थन कियाहै। यद्यपि बौद्ध-युगमें स्त्रियोंको भी भिक्षुणी बननेका विधान था, पर गृहस्थीके रूपमें उनके दर्जेको बहुत घटा दिया था। उनके कथना नुसार नारी मोक्ष प्राप्ति में एक बड़ी बाधा हैं इसलिए उसका त्याग और उपेक्षा ही मोक्षाभिलाषी के लिए आवश्यक है। स्वयं बुद्ध भी अपनी स्त्री यशोधरा को आकस्मिक रूप से छोड़कर चले आये थे इससे इस भावना को और भी अधिक बल मिला था। 'मार्कण्डेय पुराण' की इस धारणा को सर्वथा अग्राह्य बतलाकर स्त्रियों के ऐसे उपाख्यान उपस्थित किये जिनमें उनको धर्म, अर्थ काम मोक्ष की पूर्ण रूप से सहायिका माना गया। मदालसा उपाख्यान (१९ ६६, ७०) में कहा गया है—

"पति को भार्य्या की सदा रक्षा और पालना करनी चाहिए। भार्य्या भर्ता की सहायिका होने पर सम्यक प्रकार धर्म, अर्थ काम की सिद्धि का

निमित्त होती है। भार्या और भर्ता दोनों ही जब परस्पर में अनुकूल होते हैं तभी धर्म की प्राप्ति होती है। धर्मादि त्रिवर्ग में समाहित होने के कारण पुरुष जिस प्रकार भार्या के बिना कभी धर्म अर्थ का लाभ करने में समर्थ नहीं होता उसी प्रकार भार्या भी स्वामी के बिना धर्म--साधक से आश्रित रहते हैं। उदाहरण के लिए देवता, पितृ, भृत्य और अतिथियों का सत्कार न होने,से धर्माचरण की पूर्ति नहीं होती। यदि पुरुष पर्याप्त धन कमा कर ले आवे पर घर में भार्या न हो अथवा वह कुभार्या हो तो वह सब धन बिना कुछ लाभ पहूँचाये क्षय को ही प्राप्त होता है। इसलिए पुरुष और स्त्री जब समान रूप से धर्म का पालन करते हैं तभी त्रयी धर्म लाभ करने में समर्थ होते हैं।"

मार्कण्डेय पुराण के पांच विभाग:—

यद्यपि यह पुराण मार्कण्डेय ऋषि के नाम से प्रसिद्ध है, पर इसमें वर्णित कथा प्रसङ्गों के आधार पर ही यह प्रकट होता है कि यह कई वक्ताओं के मुख से निकल कर पूर्ण हुआ है। हम निम्न रीति से इसे ५ भागों में विभाजित कर सकते हैं।

(१) अध्याय १ से ६ तक जैमिनि ने मार्कण्डेय से महाभारत सम्बन्धी शङ्काओं के चार प्रश्न पूछे हैं। पर मार्कण्डेय ने समयाभाव से उनका उत्तर स्वयं न देकर जैमिनि को विन्ध्याचल पर्वत में रहने वाले धर्म-पक्षियों के पास भेज दिया, जिन्होंने उनकी शङ्काओं का पूर्ण रूप से समाधान किया।

(२) अध्याय १० से ४४ तक प्राणियों के जन्म, मरण, विकास आविर्भाव, तिरोभाव आदि के विषय में प्रश्न किया गया। इसका उत्तर वैसे धर्म पक्षियों ने दिया, पर इनका वास्तविक वक्ता जड़ सुमति है, जिसने किसी समय अपने पिता को यही कथा सुनाई थी।

(३) अध्याय ४५ से ८० तक मार्कण्डेय ने अपने शिष्य क्रोष्टुकि के प्रति इस पुराण के मूल विषय का वर्णन किया है।

(४) अध्याय ८१ से ९२ तक देवी की कथा है, जिसे मेधा ऋषि ने कहा है। यह कथा देवी भागवत से मिलती हुई है था अन्य पुराणों में भी यह विस्तार के साथ पाई जाती है।

(५) अध्याय ९३ से अंतिम अध्याय तक कुछ विशेष राजाओं का वर्णन किया गया है।

इस पुराण में वर्णित आख्यानों की विविधता और कई वक्ताओं के मुखमें इसका कथन देखते हुए स्वाभावतः यह अनुमान होता है कि मूल पुराण में कुछ उपयोगी अश बादमें संग्रह करके सम्मिलित किये गये हैं। तो भी देशी और विदेशी विद्वान् आलोचकों की सम्मति के अनुसार यह अब से सोलह-सत्रह सौ वर्ष पूर्व वतमान रूप में आ चुका था।

मार्कण्डेय पुराण के मुख्य विषय--

इस पुराण का आरम्भ जैमिनि और मार्कण्डेय के सम्वाद से में होताहै। जैमिनि व्यासजीके शिष्य थे और उनकी जगत् प्रसिद्ध रचना महाभारत के बहुत बडे प्रशंसक थे तो भी स्वतन्त्र चिन्तक होने के कारण उन्हें उसकी कुछ घटनाओ में सन्देह हुआ और मार्कण्डेयजी से उन्होंने उनका समाधान करने की प्राथना की उनके चार प्रश्न इस प्रकारथे -(१)जगत् की सृष्टि स्थिति सहार करने वाले वासुदेव निर्गुण होकर भी किस कारण मनुष्यत्व कृष्णावतार को प्राप्त हुए?(२)अकेली द्रौपदी किस प्रकार पाँचों पाण्डवोंकी महिषी हुई? (३) महाबलशाली बलरामजीने किस प्रकार तीर्थ-यात्रा करके ब्रह्महत्या का प्रायश्चित्त किया? (४ महातेजस्वी पाण्डवों द्वारा द्रौपदीमें उत्पन्न पाँचों पुत्र जोकि कारण अविवाहित अवस्थामेंही मारेगये? इन प्रश्नों पर विचार किया जाय तो प्रथम प्रश्न ही महत्व का है,जिसका निर्णय करनेका प्रयत्न अति प्राचीनकालसे आज तक होता आताहै। जबकि परमात्मा पूर्णतया अज्ञेय और निराकारहैतो वह किस प्रकार सगुण बनाकर संसार की रचनाकी व्यवस्था ही नहीं करता वरन् मनुष्योंके रूपमें अवतार लेकर दुष्टोंसे इसकी रक्षाभी करताहै,यह प्रश्न सदैव दार्शनिकों तथा विचार

शील लोगों के मध्य विवाद का विषय बना करता है। अन्य धर्म वालों ने भी अपने बुद्ध, तीर्थङ्कर, ईश्वर-पुत्र आदि को विशेष आत्मा के रूप में बतलाया है पर पौराणिक सिद्धान्त के अनुसार साक्षात् पर ब्रह्म का इस पृथ्वी पर अवतीर्ण होना एक ऐसी घटना है जिसका समाधान सहज में नहीं किया जा सकता ? इसलिए जैमिनि ने उस युग के श्रेष्ठ ज्ञानी समझे जाने वाले मार्कण्डेय के सामने सर्वप्रथम प्रश्न यही रखा कि वे ,निर्गुण या सगुण की समस्या का ठीक ढङ्ग से निर्णय करें ।'

अगले अध्यायमें उन चार धर्म-पक्षियों की कथा का वर्णन किया गया है जिनके मुख से मार्कण्डेय पुराण कहलवाया गया है यद्यपि यह कथा मुख्यतः अभिमान से हानि और अतिथि सत्कार की पराकाष्ठा दिखाने के उद्देश्य ही लिखी गई है पर उसमें स्थान-स्थान पर महत्व--पूर्ण दिशाओं को सन्निवेशित किया गया है । जैसी जीवन की अस्थिरता का वर्णन करके मनुष्य को प्रत्येक अवसर पर निर्भय रहकर कठिनाईयों का सामना करने के सम्बन्ध में कहा गया है—

"युद्ध से भागने वालों तथा युद्ध में लड़ने वालों का जीवन उतना ही होता है जितना विधाता द्वारा स्थिर किया रहता है। किसी का भी जीवन उसकी इच्छाके अनुसार नहीं होता । कोई अपने घरमें रहनेपर भी मरता है,कोई भागकर भी मरता है,कोई खाते,सोते ही मर जाता है । कोई स्वस्थ शरीर से विलास करता हुआ शस्त्रादि से बचकर भी काल के कराल गाल में जा पड़ता है, कोई तपस्या में निरत और कोई योगाभ्यास करते यमालय गया है, किन्तु अमर कोई नहीं हुआ । इसलिए कायरता पूर्वक युद्ध से विमुख होना मनुष्य के लिए सर्वथा अशोभनीय है ।

धर्म-पक्षियों का उपाख्यान—

तीसरे अध्यायमें एक सत्यनिष्ठ सुकृत नामक मुनि का उपाख्यान है । इनकी परीक्षा लेने के लिए इन्द्र बुड्ढे गिद्धका रूप धारण करके आया और उनसे अपने आहारके लिए मनुष्यका मांस मांगा। सुकृषने पहले अपने चारों पुत्रों को बुलाकर गिद्ध का आहार बनने के लिए कहा पर वे भयवश

इसके लिये तैयार न हो सके। तब पिता ने उनको पक्षी की योनि में उत्पन्न होने का शाप दिया। और स्वयं गिद्ध का आहार बनने के लिये देह त्याग करने लगा। इस पर इन्द्र ने प्रकट होकर उसकी बड़ी प्रशंसा की और इच्छानुसार वरदान दिया। इस प्रसंग में चारों पुत्रों ने मानव-शरीर की वास्तविकता का जो वर्णन किया है वह बड़ा भावपूर्ण और साथ ही मार्मिकत्वमय हैं। उन्होंने कहा—

"यह मानव-देह एक नगर के समान है जो प्रज्ञा रूपी चहार दीवारी से घिरा हुआ हैं। हड्डियाँ इसके खम्भे हैं, इसकी दीवारें चमड़े से बनी हैं और रक्त, मांस, चर्बी आदि से लिपी हैं। नसों का जाल इसे चारों ओर से घेरे हुए हैं। इस पुरी के बहुत बडे नौ दरवाजे हैं जिसके भीतर चैतन्य रूपी पुरुष राज्य करता है। मन और बुद्धि राजा के दो मन्त्री हैं, पर आपस में विरोध रहने के कारण वे एक दूसरे का प्रतिरोध करने के लिये प्रयत्नशील रहते हैं। काम, क्रोध, लोभ और मोह नामक राजा के चार शत्रु हैं वह सदा राजा के नाश की चेष्टा करते रहते हैं।"

वह राजा जिस समय नौ द्वारों को रोक कर भीतर अवस्था करता है तब उसकी शक्ति सुरक्षित रहती है और वह निर्भय होकर रहता है। उस समय शत्रुओं का उप पर कुछ भी वश नहीं चलता पर। जब वह सब द्वारों को खोलकर रहता है तब 'अनुराग' नामक शत्रु नेत्रादि से आक्रमण करता हैं। यहशत्रु सर्वव्यापी और अत्यन्त प्रबल है। उसी समय लोभ, मोह और क्रोध रूपी तीनों शत्रु उसके पीछे पीछे दौड़ते है। वह राग रूपी शत्रु इन्द्रिय रूपी दर्वाजों द्वारा पुरीमें घुसकर मन और बुद्धिके संग सयुक्त होनेकी अभिलाषा करता है। यह दुर्द्धर्ष राग समस्त इन्द्रियों और मनको वशीभूत करके प्रज्ञा रूपी परकोटा को भग्न करता है। बुद्धि भी मनको रागके वशीभूत देखकर तत्काल नष्टहो जाती है। तब अमात्य-हीन तथा प्रजा द्वारा त्यागा हुआ राजा अकेला रह जाताहै और शत्रुगण उसके छिद्रों (निर्बल स्थानों) को जानकर उसे नष्ट कर डालते है। काम, क्रोध, मोह, लोभ रूपी चारों शत्रु स्मृति-शक्ति का नाश कर देते हैं।

रा: से क्रोध होता है, क्रोध लोभ उत्पन्न होता है, लोभ से मोह की उत्पत्ति और उससे स्मृति नाश होता है। स्मृति नाश से बुद्धि नाश और बुद्धि का नाश होने से सर्वनाश होता है।

निर्गुण और सगुण ब्रह्म तथा अवतार–

जैमिनि ने प्रथम प्रश्न के उत्तम में कि निर्गुण ब्रह्म सगुण रूप क्यों और कैसे धारण करते हैं पक्षियोंने एक 'चतुर्व्यूहात्मक' सिद्धान्त का वर्णन किया। उन्होंने कहाकि 'तत्वदर्शी मुनियों के मतानुसार 'नार' जलको कहते हैं। वह नार'ही एकमात्र जिसका अयन'अर्थात् घर था उसको 'नारायण' कहा जाताहै। वही अनन्तलीला निधान भगवान् विभु नारायण, सगुणऔर निर्गुणात्मक द्विविध रूपसे चार मूर्तियोंमें अवस्थितहैं। उनकीएक मूर्तिजो अनिर्देश्य अर्थात् वाणीसे अतीत है, पंडित लोग जिसको शुक्लवर्ग कहते हैं, जोनित्य रूपिणी मूर्ति तीनों गुणोंको अतिक्रम करके दूर और निकटस्थित रहती है, उस प्रधान स्वरूप पहिली मूर्तिका नाम 'वासुदेव' मूर्तिहै। इसमें ममता का लेशमात्र भी नहीं है। उसका रूपवर्ण, नाम जो कुछ कहाजाता है वहसब कल्पनामयहै, क्योंकि योगीभी उसका वास्तविक अनुभव नहीं कर सकते वह मूर्ति सब्रकाल विराजमान परम पवित्र तथा सदा एक रूप है।

दूसरी मूर्ति 'शेष' या 'सकर्षण' के नामसे पाताल में निवास करतीहै और इस पृथ्वीको मस्तक पर धारण किये हुएहै। इस मूर्तिने तामसी होने से तिर्यगयोनि अवलम्बनकीहै। तीसरीमूर्ति जिसके कारण सम्पूर्ण कर्मसम्लक् प्रकार साधित होतेहैं, जिसकेद्वारा प्रजा पालनादि सबकार्य सम्पादित होतेहैं, उस सत्वगुणमयी मूर्तिका नाम 'प्रद्युम्न' मूर्तिहै। चौथीमूर्ति पन्नग शैयापर जलमें शयन करके वास करतीहै, वह रजोगुण युक्त है। उसके द्वाराही सदा सृष्टिकाय सम्पन्न होताहैं, इस मूर्तिका नाम 'अनिरुद्ध मूर्ति है। भगवान्की प्रजापालन कारिणी जो तीसरी प्रद्युम्न मूर्तिहै, उसीके द्वारा पृथ्वीमें सदा धर्म-संस्थान होता है। धर्मका विनाश करने वाले उद्धत असुरगणउसी के द्वारा मरते हैं और उनके द्वारा ही धर्म रक्षापरायण प्राणी रक्षित होतेहैं।

मार्कण्डेय पुराणके मतानुसार उस सृष्टिकर्ता परमेश्वरमें निर्गुण और

सगुण,अमूर्त और मूर्त, पर और अपर इन दोनों का समन्वय पाया जाता है। जो 'अमूर्त' और 'पर' है उसी को 'अरूप' कहा गया है, एवं जो 'मूत' और 'अपर' है वही उस परम आत्मा-नारायण विष्णु का विश्व स्वरूप है। जो लोग समझते हैं कि भगवान् केवल क्षीरसागर में शयन कर रहे हैं अथवा बैकुण्ठ में विराजमान हैं, या गोलोक में लीला कर रहे हैं, वे अभी सत्य से दूर हैं। भगवान् तो एक सर्वव्यापी तत्व हैं और इस विश्व में जहाँ जो कुछ दृष्टि गोचर होता है वह उन्हीं का रूप हैं। इस तथ्य को 'विष्णु पुराण' में भी अत्यन्त स्पष्ट शब्दों में वर्णन किया है—

न तद्‌योग पूजा शक्यं नृप चिन्तयितु यतः।
ततः स्थूल हरेरूपं चिन्तयेद्‌विश्व गोचरम् ।।५५
हिरण्य गर्भो भगवान् वासवोऽथ प्रजापतिः।
मारुतो वसवो रुद्रा भास्करोस्तारका ग्रहाः ।।५६
गन्धर्वंवक्षा दैत्याद्याः सकला देवयोनयः।
मनुष्याः पशव शैलाः समुद्राः सरितः द्रुमाः। ५७
भूतं भूतान्य शेषाणि भूतानां ये च हेतवः।
प्रधानादि विशेयान्तं चेतनान्तकम् ।। ८
एक पादं द्विपादं च बहुपादमपादकम्।
मूर्तमेतत् हरेरूपं भावनात्रियात्मकम् ।। ९
एते सर्वमिदं विश्वं जगदेतच्चाराचरम्।
परब्रह्म स्वरूपस्त विष्णोः शक्तिसमन्वितम् ।।६०

(६—७)

अर्थात् "ये जो विश्वमें सर्वत्र दिखलाई पड़ने वाले पदार्थहैं यही विष्णु का स्थूल रूप है। हिरण्यगर्भ ब्रह्मा, भगवान् वासुदेव, प्रजापति, मरुद्गण, वसु रुद्र, आदित्य,नक्षत्र,ग्रह, गन्धर्व, यक्ष, दैत्य आदि देव-योनियाँ, मनुष्य, पशु पर्वत, समुद्र, नदियाँ, वृक्ष सम्पूर्ण भूत और उन भूतों के जितने कारण

प्रधान (मूल प्रकृति) से लेकर पंच मन्मात्राओं तक हैं और जिसमें चेतन-अचेतन दोनों सम्मलित हैं, एक पाद, द्विपाद, बहुपाद पर बिना पैरों वाले (सरोसृपादि जितने प्राणी हैं वे सब विष्णु के मूर्ति रूप है। इसे ही 'इद सर्वम् या चराचर जगत् कहते हैं। इसकी रचना तीन प्रकारकी भावकाओंसे हुईहै-ब्रह्मभावना कर्मभावना और आध्यात्मिक भावना। इन्हें क्रमशः सत्त्व रज और तम भी समझा जासकताहै। परब्रह्म रूप विष्णु जब अपनी शक्ति से संयुक्त होता है तब इन्हीं तीन भावों में अपने को प्रकट करता है।"

भगवान् के निर्गुण और सगुण रूप का विवेचन करते हुए 'ब्रह्म पुराण' में कहा गयाहैकि 'तत्वदर्शी मुनियोंने जल को 'नार' कहा है। वह नार पूर्व काल में भगवान् का 'अयन' (गृह) हुआ' इसलिए वे 'नारायण कहलाये, वे भगवान् नारायण सबको व्याप्त करके स्थित हैं। वेही निर्गुण सगुण भी कहे जाते हैं। वे दूर भी हैं और समीपभी हैं। जिनसे लघु और जिनसे महान् दूसरा नहीं है जिन अजन्मा प्रभुने सम्पूर्ण जगत् को व्याप्तकर रखा है जो आविर्भाव तिरोभाव, दृष्ट, अदृष्ट से विलक्षण है, सृष्टि और संहार भी जिनका रूप बतलाया जाता है, उन आदि देव परब्रह्म परमात्मा को हम प्रणाम करते हैं। जो एक होते हुये भी अनेक रूप प्रकट होते हैं, स्थूल-सूक्ष्म, व्यक्त-अव्यक्त जिनके स्वरूप हैं, जो जगत् की सृष्टि, पालन और संहार के मूल कारण हैं, उन परमात्मा को नमस्कार है।"

मार्कण्डेय, विष्णु ब्रह्म,आदि सभी पुराण इस विषयमें एकमत हैं कि जो निर्गुण-निराकार ब्रह्म अनादि और अरूप कहा जाता है वहीं सगुण और साकार होकर इस चराचर विश्व को प्रकट करता है। उसको सब से पृथक किसी अगम्य स्थान में विराजमान मानना निरर्थक है वरन् वह विश्व के प्रत्येक छोटे से छोटे और बड़े से बड़े पदार्थ में व्याप्त है और जिसे इस सर्वव्यापी ब्रह्म की अनुभुति प्राप्त हो गई है वह प्रत्येक स्थान और प्रत्येक पदार्थ में उसके से दर्शन कर सकता है। इसी रहस्य को 'रामायण' में शिवजी ने अत्यन्त संक्षेप में कह दिया है—

हरि व्यापक सर्वत्र समाना ।
प्रेम ते प्रकट होंहि मैं जाना ।।

द्रौपदी के पाँच पति और पंचेन्द्र उपाख्यान—

जैमिन के दूसरे प्रश्न का उत्तर देते हुए पक्षियोंने कहा कि द्रौपदी कोई सामान्य नारी न थी वरन् वह अग्नि से प्रकटहुई साक्षात् शची थी जो द्रुपद की कन्या के रूप में अवतीर्ण हुई थी। इसी प्रकार पाँचों पाण्डव भी पाँच रूपोंमें इन्द्रके ही अवतारथे। इन्द्रको समझौते के विरुद्ध त्रिशिरा तथा वृत्रोंके वध तथा अहिल्या का सतीत्व भंग करनेके अपराधमें अपनी समस्त शक्तियों धर्म,तेज,बल और रूपसे वंचित होजाना पड़ाथा। वे ही शक्तियाँ धर्मराज वायु, स्वयं इन्द्र और अश्विनीकुमारोंके द्वारा कुन्ती तथा माद्री के गर्भ से उत्पन्न हुई थीं। इस प्रकार द्रौपदी वास्तव में पाँच रूपों को प्राप्त एक मात्र इन्द्र की ही पत्नी थी।

माहाभारतमें भी पाँचों पाण्डवों को पाँच इन्द्रोंका अवतार बतलाया है और कहा है कि 'किसी समय वैवस्वत यम ने नमिषारण्यमें होने वाले एक दीर्घकाल व्यापी यज्ञमें दीक्षाली और उस समय प्रजाओंको मारनेका काम बन्दकर दिया। इससे मनुष्योंकी संख्या बहुत बढगई और इससे देवताओंको डरपैदा होगया। तब इन्द्रऔर अन्य देवता ब्रह्माजीके पास पहुंचेऔर उनसे रक्षा करने की प्रार्थना की। ब्रह्माजीने उनको वास्तविक कारण बतलाकर नैमिषारण्य जानेको कहा। वहाँ पहुंचने पर उन्होंने गंगाजी में एक स्त्री को रोते देखा जिसके आंसू जलमें गिरकर सोने के फूल बनते जाते हैं। इन्द्र ने उससे रोनेका कारण पूछा। वह उनको हिमालय पर लेगई जहाँ एक तरुण तथा तरुणी बैठेहुए पासा खेल रहेथे। इन्द्रने उनको न पहिचान कर कहा-'मैंइन्द्र हूँ सब भुवन मेरे वशमें हैं।'इस पर शिवाजीने क्रुद्ध होकर उसेएक अंधेरी गुफामें भेज दिया जहाँ वैसे ही चार इन्द्र पहलेसे बन्दथे। जब उन सबने अपने छुटकारे की प्रार्थना की तो भगवान् शिवने कहा कि तुम्हारा छुटकारातभीहोगा जबतुम पृथ्वीपर मनुष्य-जन्मलेकर पराक्रमके कार्यकरके

दिखलाओगे। उस स्त्री से भी शिवजी ने इनके साथ पृथ्वी पर जन्म लेकर इनकी पत्नी बनने को कहा।"

एक और उपाख्यान भी महाभारत के आदि पर्व में इस सम्बन्ध में पाया जाता है, जिसमें कहा है कि एक ऋषि कन्या ने पति की प्राप्तिके लिए शिवजीकी आराधना करके कठिन तप किया था और जब वे वर-दान देनेको उपस्थित हुए तो उसने 'पति देहि' शब्द पाँच बार कहा। शिवजी ने कहाकि तुमने पाँच बार पतिके लिए कहा है इससे तुम्हारे पाँच पति होंगे।

वास्तविक बात यह है कि बहु-पतित्व की प्रथा जो पंजाबके पहाड़ी प्रदेश कुल्लूमें अभीतक चली आती है, भारतके शेष भागमें अनैतिकमानी जातीहै। इसलिये महाभारतमें दोपद्रीके पाँच पतियोंका उल्लेख करनेके पश्चात् उसे धर्म तथा नितियुक्त सिद्ध करनेके लिए आख्यानों के रूप में उसका कारण समझना पड़ा। आध्यात्मिके दृष्टिवाले विद्वानोंने इसका स्पष्टीकरण वैदिक साहित्यमें वर्णित 'पचेन्द्र' कल्पनाके आधारपर किया है। उनका कथन हैकि मानव शरीरमें स्थित पाँचों इन्द्रियोंका संचालन पाँच प्राणों द्वारा होता है। प्रत्येक 'प्राण' को इन्द्र कहाजाता है और उसीके कारण 'इन्द्रिय' नाम पड़ गया है। इन पाँचोंके पीछे एक मध्य-प्राण है जो इन पाँचोंको प्रदीप्त रखता है। इनको महेन्द्र कहा गया है। इस प्रकार एक मुख्य प्राण शक्ति पाँच इन्द्रियों के साथ सहयोग करती है। पुराणोंमे वैदिक तत्वों की उपाख्यानों के रूप में ढाल कर समझाने की शैली अपनाई गई है उसका परिणाम यह पाँच इन्द्रों द्वारा पाण्डवों की उत्पत्ति का कथानक है।

द्रौपदी के पांच पतियों के इस उपाख्यानों से नैतिक शिक्षा यह भी प्राप्त होती है कि सदाचार का त्याग करने से इन्द्र जैसा शक्तिमान् देवराज भी उसके कुपरिणाम से नहीं बच सकता। पर स्त्री गमन और वचन-भंग के दोष से इन्द्र का पतन हो गया और उस को नरलोक से आकर उसका प्रायश्चित करना पड़ा।

हरिश्चन्द का अमर उपाख्यान—

जैमिनी के तीसरे प्रश्न के उत्तर में कि वलराम को ब्रह्महत्या कैसे लगी और किस प्रकार उन्होंने तीर्थ यात्रा करके उससे छुटकारा पाया, पक्षियों ने जो छोटा-सा उपाख्यान वलराम जी के स्वभाव के सम्बन्ध में कहा है उसमें कोई विशेषता नहीं है। पर चौथे प्रश्न "द्रोपदी के पाँचों पुत्र अविवाहित अवस्था में ही अनाथ की तरह क्यों मार डाले गये?" का उत्तर देते हुए पक्षियों ने राजा हरिश्चन्द्र का जो उपाख्यान सुनाया है वह भारतीय धार्मिक-साहित्य की एक अमर कृति है। इसमें दिखलाया है कि मनुष्य सत्य-व्रत का पालन करते हुये कहाँ तक दृढ़ता रख सकता है और फिर उसी के आधार पर कैसे उच्च से उच्च स्थिति प्राप्त कर सकता है।

राजा हरिश्चन्द्र की इस उपाख्यान में जैसी घोर दुर्दशा दिखलाई है और विश्वामित्र को जैसे नृशंस रूप में चित्रित किया है उससे इसमें कुछ अस्वाभाविकता आ गई है और इसकी वास्तविकता में सन्देह होने लगता है, पर लेखक ने इसमें करुण भाव का इतना अधिक समावेश कर दिया है कि उससे श्रोताओं की आत्मा विह्वल हो जाती हैं और उन्हें विचार करने की सुधि नहीं रहती कि इसमें कहाँ तक वास्तविकता है और कितना अंश कहानी का है। आज तक करोड़ों व्यक्ति 'सत्य हरिश्चन्द्र' के दृष्टांत से सत्य की महिमा को स्वीकार कर चुके हैं। वर्तमान युगके महामानव महात्मागाँधीने भी अपनी 'आत्म कथा'मेंकहाहै कि सबसे पहले हरिश्चन्द्र का नाटक देखने से ही उनकी हृदय भूमि में सत्य-प्रेम का पौधा वोया गया था जो समय और परिस्थितियों से वृद्धि को प्राप्त होता हुआ अन्त में समस्त भारतीय समाज को अपनी प्राण-दायक छाया में लाने में समर्थ हुआ।

नरकों का स्वरूप और विवरण—

दसवें से पन्द्रहवें अध्याय तक भार्गवके पुत्र सुमति के मुखसे पुर्नजन्म तथा नरकोंका वर्णन कराया गया है। सुमति वाल्यावस्थासे ही अत्यन्त शांत

स्वभाव और सब प्रकार की सुख-सामग्री की तरफसे उदासीन रहने वाला था, जब उसका उपायन होने का अवसर आया और पिताने उसे चारों आश्रमोंके कर्तव्योंका उपदेश दिया तो उसने हँसकर कहा कि 'हे पिता! आपने इस समय मुझे जो उपदेश दियाहै मैंने अनेकबार उसको सुना तथा उसका अभ्यास कियाहै। अनेक शास्त्रों तथा बहुत प्रकार शिल्पोंका भी मैंने अभ्यास किया है मैंने अनेकवार दुःख पाया, अनेक बार सुख प्राप्त किया, अनेकवार उच्च दशाका और फिर हीन अवस्थाका अनुभव किया। मुझे इन सब बातोंका ज्ञानहै तो अब वेदाभ्यासका क्या प्रयोजन है? मेरा अनेकवार शत्रु-मित्र और सम्बन्धियोंसे मिलाप और वियोग हुआ है अनेक माता तथा अनेक पिता देखेहैं. हजारों सुख-दुःख सहन किये हैं। मलमूत्र से भरे स्त्री के जठर में अनेक वार वास किया है, सहस्र सहस्र रोगोंकी दारुण यंत्रणा भोगी है। मैंने कितनीवार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पशु, कीट, मृग और पक्षी की योनिमें जन्म ग्रहण कियाहै। जिस प्रकार इस समय आपके घरमें उत्पन्न हुआहूं ऐसे अनेक बार राजसेवकों और अनेकवार योद्धाओंके घर में उत्पन्न हुआहूं। स अनेकवार मनुष्योंका भृत्य और दास बनाहूँऔर अनेकबार स्वामी तथा प्रधान भी होचुकाहूँ। मैंने अनेक मनुष्योंको माराहै और अनेकवार अन्य मनुष्यों द्वारा मारा गयाहूँ। मैंने अनेकवार दानकिया है और अनेक कर औरोंसे ग्रहणभी कियाहै। हे तात! इस प्रकार संकटमय संसार चक्र में निरन्तर भ्रमण करते हुए मुझे यह ज्ञान प्राप्त हुआ है कि वेदों के कर्मकाण्डों के मार्ग से में इस दुःखदायी संसार-चक्र से छुटकारा नहीं पा सकता। जबमैं मोक्ष प्राप्तिके वास्तविक मार्ग को जान चुका हूँ तब मुझे वेदाभ्यास को क्या आवश्यकता है?"

इस प्रकार सुमति के पुनर्जन्म के सिद्धान्त का बड़े स्पष्ट रूप से वर्णन कियाहै और साथही सकाम कर्मकाण्ड के मार्गकी अपेक्षा निष्काम भाव से कर्तव्य पालन की श्रेष्ठताभी बतलाई है! साथही उस युगमें बौद्धभिक्षुओं तथाहिन्दु-सन्यासियोंमें संसारके सब बन्धनोंको त्यागकरआत्म साक्षात्कार और ब्रह्म प्राप्तिका जो आदर्श पाया जाताहै उसकाभी प्रतिपादन कियाहै।

पर यह पुराणकार का निजी अभिमत अथवा अंतिम निर्णय नहीं है। आगे चल कर उन्होंने गृहस्थ धर्म का पालन किये बिना कर्म त्याग और सन्यास की भर्त्सना भी की है और कहा है कि जो व्यक्ति "आश्रमों के राज-मार्गको छलाँग मारकर मुक्ति-पद पर पहुंच जाना चाहता है उसे प्राय: नीचे ही गिरना पड़ता है।"

नरकों का वर्णन प्राय: सभी पुराणों में एक-सा पाया जाता है कि-भिन्न प्रकार के पापों के फल से मरणोपरांत भयंकर कष्ट भोगने पड़ते हैं, पापियों को दण्ड प्रहार करते हुए कुश, काँटे, गड्ढ़े, पथरीली भूमि पर खींचकर ले जाया जाता है और बारहवें दिन भयङ्करआकृतिवाले यमराज के सम्मुख खड़ाकिया जाता है। वहाँ 'मिथ्यावादी, मिथ्यासाक्षी देने वाले, मनुष्य और अन्य प्राणियों की हत्या करने वाले, भूमि, सम्पत्ति तथा स्त्रीका हरण करने वाले, अगम्या स्त्रियोंसे दुराचार करने वाले लोगोंको रौरव नरक में डाला जाता है। वह रौरव नरकदोहजार योजन विस्तृत है और उसमें जाँघ की बराबर गहरा गढ़ा है। उस गढ़े में लाल अङ्गारे भरे रहते हैं जिनपर होकर पापी मनुष्य को चलना पड़ता है। उसके पैर पग-पग पर अग्नि से फटते और नष्ट होते हैंजिससे वह दिन रात में एक बार पर रखने और उठाने में समर्थ होता है। इसी प्रकार चरण रखते हुए सहस्र योजन पार कर लेने पर वहाँ से छुटकारा पाता है और पाप शुद्धि के लिए उसी के समान दूसरे नर्क में जाता है और इसी प्रकार सब नरकों को पार करना पड़ता है।'

नरक का यह वर्णन बड़ा विस्तृत है और विभिन्न पुराणों में इस प्रकारके वीभत्स विवरणके अध्यायके अध्याय भरे पड़ेहैं। तामस नरक में कढ़ाकेकी सर्दी पड़ती और सदैव घोर अंधेरा छाया रहताहै। वहाँ सर्दीसे कष्ट पाकर पापी मनुष्य इधरसे उधर दौड़ते रहते हैं और ठंडको मिटानेके लिए परस्पर लिपटतेहैं। ठंडकी अधिकतासे दाँत कड़कड़ाते हैं कि वे टूट कर गिरजाते हैं। भूख प्यासभी वहां बहुत लगती है पर उसकी निवृत्ति का कोई साधन नहीं होता। ओलोंके साथ बहनेवाली भयङ्करहवाशरीर की हड्डियोंको तोड़ देती है और मज्जा तथा रक्त बाहर गिरताहै।वेभूख

प्राणी उसी को खाकर भूखको मिटाते हैं। इस प्रकार अनेक वर्षो वे अन्धकार में पड़े वे कष्ट भोगा करते हैं।

तीसरे 'निकृन्तन' नामक नरकमें बहुतसे चक्र लगाकर घूमते रहते हैं। यमदूत पापी जीवों को उनके ऊपर चढ़ाकर तेजीसे घुमाते हैं और कालसूत्र नामक यन्त्रसे उनके प्रत्येक अङ्गको वार-वार काटते रहते हैं। पर इससे उन पापियोंका प्राण नहीं निकलता. वरन् शरीर के सैंकड़ों टुकड़े होने परभी वे फिर जुड़ जाते हैं और उनको पुनः काटे जाने की महाकष्ट कारक प्रक्रिया सहन करनी पड़ती है। चौथे 'अतिष्ठ' नरकमें भी वैसे ही कुम्हारोंके से चक्र और घटी यन्त्र होते हैं। पापियोंको उन चक्रों पर चढ़ाकर निरन्तर घुमाया जाता है और कभी विश्राम नहीं लेने दिया जाता जिससे उनको अपार कष्ट होता है। इसी प्रकार अन्य पापियों को रहट के समान एक घटीयन्त्र में बाँधकर नीचे ऊपर घुमाया जाता है, जिससे उनके मुख से रक्त, लार गिरती है, आँखों से अश्रु बरसते हैं और वे असह्य कष्ट का अनुभव करते रहते हैं।

पाँचवा 'असिपत्रवन' अत्यन्त भयङ्कर है। जब उसमें पापी मनुष्य गर्मी से व्याकुल होकर हरे-भरे पेड़ों की छाया में भागते हैं तो उनके ऊपर पेड़ोंके पत्ते जो तलवारीकी तरह होते हैं गिर जाते है और उनके अङ्गों को छिन्न-भिन्न कर डालते है। उसी समय कुत्ते रूपी यमदूत वहां आकर टुकड़े-टुकड़े कर डालते हैं। छटवाँ 'तप्त कुम्भ' नरक है जिसमें पापियों को खौलते हुए तेल और लोहे के चूर्ण से भरे घड़ों में डालकर घोर कष्ट पहुँचाया जाता है।

इसमें सन्देह नहीं कि नरकोंका यह वर्णन हृदयको कँपाने वाला है और उसे सुनकर एक बार घोर पापी व्यक्तिभी सहम जाता है। यह कह सकना तो कठिनहैकि इसविश्वके किसी कोनेमें वास्तवमें कोईऐसास्थानहै या नहीं जहाँ उपर्युक्त प्रकारके अनुभव होतेहों, पर यदि हमइस समस्यापर आध्यात्मिक दृष्टिसे विचार करते हैं तो मालूम पड़ताहै कि क्रोध, लोभ अहंकार, मोह कामवासना औरमद जोमनुष्यका पतन करनेवाले षड्रिपुकहे गये है, वे ही नर्करूप हैं और जो व्यक्ति उनके वशीभूत होजाता है वह उप-

युक्त नरकों की सी पीड़ा इसी दुनियामें भोगता रहताहै। क्रोधकी अग्नि रौरव नरकसे कम नहीं होती और कितनेही व्यक्ति उसके पंजेमें पड़कर सारा जीवन घोर अशान्ति और मानसिक जलनमें ही व्यतीत कर देतेहैं। इसी प्रकार जिस व्यक्तिके पीछे लोभ का भूत लग जाताहै वह सदा प्रत्येक पदार्थका अभावही अनुभव करताहै। उसकी तृष्णाकी कभीपूर्ति नहींहोती और इससे उसके उत्साह और आशाओंपर तुषारपात होजाताहै और वह 'तम' नरक के कष्टोंको इस पृथ्वी पर ही सहन करता रहताहै। निकृन्तन' नर्कका वर्णन किसी अहङ्कार ग्रस्त प्राणी के वर्णनसे ही मिलता-जुलता है। अहङ्कारी व्यक्ति अन्य व्यक्तियोंको तुच्छ समझकर बड़े गरूरके साथ अपने बड़प्पनकी तरह-तरहकी कल्पनायें खड़ी करता रहताहै,पर वे सब वास्तविकता के धरातल पर टुकड़े-टुकड़े हो जाती है। इससे उसका हृदय विदीर्ण हो जाता है और वह असह्य पीड़ा अनुभव करता है।

'अप्र तप्ठ' नरक मोह का परिणाम होता हैं। सांसारिक पदार्थों के मोह में फँसकर वह एक बार अपने धन्य और सफल समझने लगता है, पर फिर जब उनका वियोग हो जाता है तो खेद से भरकर आँसू बहाता रहता हैं। जल भरने के रहट की तरह वह बार-बार भरता और खाली होता रहता हैं और इसके परिणाम स्वरूप उसके हृदय में सदैव हलचल मचती रहती है। 'असिपत्र वन' नरक दूषित कामबासना का रूपक है। दुराचार या व्यभिचार की वासना यद्यपि दूर से बड़ी सुन्दर और मनोमोहक जान वड़ती है, पर उसका परिणाम तलवार या छुरी से आलिगन करने के समान ही नाशकारी होता हैं। क्रोधाग्नि के समान कामाग्नि भी बहुत जलाने वाली है। इससे शक्ति का और भी क्षय होता हैं और मनुष्य का जीवन नष्ट प्रायः हो जाता है। छठा नर्क 'तप्त कुम्भ कहा गया है जो 'मद' का परिणाम होता है। उसके कारण मनुष्य अपनी छोटी-मोटी सफलताओं या सामान्य वैभव परबहुत फूलता रहता है, पर जब वह दूसरोंको अपने से बढ़ा-चढ़ा देखताहै तो उसके भीतर ईर्ष्या द्वेष की ऐसी अग्नि प्रज्वलित होती है कि शरीर का समस्त रस-रक्त खौलने लगता है और हृदय में लोहे के हजारों नुकीले टुकड़े चुभने लगते हैं।

मार्कण्डेय पुराण का यह नर्क-वर्णन एक बहुत बड़ा प्रभावशाली रूपक है जिसका आशय यही है कि यदि मनुष्य,को सांसारिक व्यथाओं, पीड़ाओं ज्वालाओं से बचना है तो उसे काम, क्रोध, आदि मानसिक दुष्प्रवृतियों से बचकर सदाचार पूर्ण जीवन व्यतीत करना चाहिए। सदाचार और इन्द्रियों का समय ही स्वर्ग का द्वार है और इसके विपरीत इन्द्रियों का दुरुपयोग, दुराचरण हर प्रकार से कष्टदायक और दुर्गति में ग्रस्त करने वाला है। साथ ही हम यह भी स्वीकार करते हैं कि नर्क-वर्णन में तथ्य का अंश चाहे कितना भी कम ज्यादा हो, पर सामान्य अशिक्षित जनता पर उसका वड़ा प्रभाव पड़ा है और करोड़ों व्यक्ति उससे भयभीत पाप कर्मोंसे न्यूनाधिक परिणाम में बचते रहतेहैं।

महामानव के लक्षण

नरकों के वर्णनके प्रसंगमें विपश्चित नामक एक राजाका भी कथानक आगया है,जो थोड़ी देरकेलिए नरक दर्शनके लिए लाया गयाथा और जिसने उसअवस्थामें भी परोपकार धर्मको नहीं छोड़ा। अगणित नारकीय जीवोंका उसने उसीसमय उद्धारकिया। उसका सम्पर्क प्राप्त होनेसे समस्त नर्कवासी जीवोंको कुछ सुख मिलने लगा,यह देखकर उसने स्वर्ग-सुख को छोड़कर वहीं रहने का आग्रह किया और कहाकि उसने जोकुछ पुण्य किया है उसके बदलेमें इन पापियोंका उद्धार कर दिया जाय।वह वहाँसे तभी हटा जब वहाँ पर उपस्थित नरक निवासियों को छुटकारा मिल गया। राजा की इस महामानवता के फलस्वरूप भगवान् विष्णु का विमान उसे लेने आया और उसे स्वर्ग की सर्वोच्च स्थिति प्राप्त हो गई।

ऐसा पुण्यवान् राजाभी किसकारण नर्क दर्शनके लिये लाया गया इस की कथाभी बड़ी शिक्षाप्रद है। यमदूतने उसे बतायाकि विदर्भ देशकी राजकुमारी आपकी पत्नीथी। जब वह ऋतुमती हुईतो आपउसकी उपेक्षाकरके केकय देशकी रानीके साथ बिहार करते रहे। ऋतुकालके समय तोस्त्री-पुरुषका समागम एक प्राकृतिक नियमहैजिससे प्रजा की उत्पत्ति होतीहैऔर सृष्टि-क्रम स्थिर रहता हैं। इस दृष्टिसे उसे दूषित नही बतलाया गयाहै।

पर अन्य समयमें स्त्री का उपभोग कामसक्तता का लक्षण है । प्राकृतिक नियमका उल्लंघन करके विषयासक्तताका आचरण धर्मकी दृष्टिसे एकपाप कर्म ही है और इसीके फलस्वरूप आपको कुछ क्षणोंके लिए नर्क प्रदेशमें आना पड़ा । शास्त्रमेंभी कहा गयाहैकि जैसे हवनके समय अग्नि घृताहुति की प्रतिक्षा करतीहै इसीप्रकार ऋतुकालमें स्वयं प्रजापति ऋतुआधानकी प्रतीक्षा करताहै। दूसरी शिक्षा इस आख्यानसे यहभी प्राप्त होतीहैकि त्याग सबसे बड़ा पुण्यहैऔर इसके द्वारा सामान्य पुण्यभी अनेक गुणाबढ़ जाताहै।

पातिव्रत धर्म की लोकोत्तर महिमा—

पातिव्रत का आदर्श भारतवर्ष की एक ऐसी विशेषता है जिसका अस्तित्व संसारके अन्य किसी समाजमें नहीं पाया जाता । भारतीयधर्म-कथा लेखकों ने पति-पत्नी के सम्बन्धको अमिट बना दियाहै और उसकी शृखलाको जन्मान्तर तक विस्तृतकर दिया है इस सम्बन्धमें जोआख्यान विभिन्न स्थानोंमें पाये जातेहैं उनमें अतिशयोक्तिसे काम लिया गयाहै,पर उसका उद्देश्य यहीहैकि लोगोंके हृदयमें यहतथ्य भली-भाँति जम जाय । मार्कंण्डेय पुराणके सोलहवें अध्याय में एक पतिव्रता द्वारा सूर्य का उदय होना रोक देने की कथा ऐसी ही है । ब्राह्मणीका पति कोढ़ी होनेपरभी वेश्यागमनकेलिए लालायित हुआ,पर मार्गमेंउसे माण्डव ऋषिद्वारासूर्योदय होतेही मरनेका शाप देदिया गया । इसपर पतिव्रताने कहाकि'अवसूर्यका उदयही नहींहोगा?' ऐसा होनेपर सब प्रकारके यज्ञ, सध्या, श्राद्ध आदि भी रुक गये । तब देवताओं की प्रार्थनापर अत्रि ऋषिकी पतिव्रता पत्नी उस ब्राह्मणीके पास गईऔर उसे राजी करके सूर्योदय करायाऔर उसके पतिकी मृत्यु होजाने पर उसे अपने पतिव्रत के बलसे पुनर्जीवित किया । इस आख्यानका उद्देश्य पतिव्रत धर्मकी अलौकिक शक्ति का प्रभाव सा-मान्यजनों के हृदय में स्थापित करना ही है, जो समाज के हितकी दृष्टि से एक कल्याणकारी प्रवृत्ति ही मानी जायेगी । इस घटना के परिणाम स्वरूप ब्रह्मा, विष्णु और शिव की शक्तियों ने चन्द्रमा, दत्तात्रेय और दुर्वासा के रूप में अनुसूया के पुत्र होकर जन्म लिया ।

मदालसा का उपाख्यान—

मदालसा का उपाख्यान कई दृष्टियोंसे धार्मिक जगतमें प्रसिद्धहैऔर वह भारतीय नारियोंकी आध्यात्मिक ज्ञान-प्रियता तथा वैराग्य-भावना की दृष्टिमे महत्वपूर्ण है। मदालसा राजकुमार ऋतध्वज की पत्नीथीजो उनको पातालकेतु नामक दैत्यका संहार करते हुए मिली थी। कुछसमय पश्चात् पातालकेतु के भाईने ऋतध्वज के साथ छल करके मदालसा को यह असत्य समाचार सुनायाकि'ऋतध्वज तपस्वियोंकी रक्षा करते हुए किसी दुष्ट दैत्यके हाथ से मारे गये ?'इसको सुनकर मदालसा ने शोक मग्न होकर उसी समय प्राण त्याग दिए। ऋतध्वज को वापस आनेपर इस शोकजनक घटना का हाल विदित हुआ और उसने कहा'यहवाला धन्य थी जिसने मेरी मृत्युकी बात सुनते ही प्राण त्याग दिए। मैं बड़ा कठोर प्राणी हूँ जो उसके बिना जीवितहूं। पर यदि मैं जीवन दे डालूँ तो उसका क्या उपकार होगा? इसलिए मैं यह प्रतिज्ञा करता हूँ कि यदि मदालसा ने मेरे लिए प्राण त्याग दिया तो मैं भी जीवनभर अन्य स्त्री को अपनी सहचारिणी नहीं बनाऊँगा और सदैव उसकी स्मृति को ताजा रखकर परोपकारमय कार्यों में ही लगा रहूँगा।"

कुछ समय पश्चात् ऋतध्वज की दो नाग कुमारों से मित्रता होगई ब्राह्मण के वेश में उसके पास आते थे। उन्होंने ऋतध्वज की मनोव्यवस्था को जानकर एक दिन उसका जिक्र अपने पिता अश्वतरसे किया और कहा कि हमको कोई ऐसा उपाय नहीं सूझताकि जिससे उसकाकुछ उपकार किया जा सके। जो मर चुका उसे सिवाय भगवान के और कौन फिर से जीवित कर सकता है। पिता ने कर्म की महिमा बतलाते हुए कहा—द्युतलोक और पृथ्वी में ऐसा कोई असम्भव कार्य नहींहै जिसे मन और इन्द्रियोंके संयम से युक्त मनुष्य सिद्ध न कर सके। कर्म सर्व प्रधान है। चलती हुई चींटी अनेक योजन तक चली जातीहै, पर बिना चले शीघ्रगामी गरुड़ भी जहाँ का तहाँ पड़ा रहता है।"

अपने कथन को सत्य सिद्ध करने के लिए अश्वतर ने शिवजी की तपस्या करके मदालसा को जीवित करादिया और उसे ऋतध्वज को प्रदान करके उसके जीवन को पुन:सरस और सुखी बना दिया। इस प्रकार इन्होंने यह भी दिखला दिया कि मित्रता का अर्थ केवल ऊपरी शिष्टाचार ही नहीं है। वरन् मनुष्य को मित्र का सच्चा हित साधन करने के लिए कठिन से कठिन कार्य को अङ्गीकृत करने में संकोच नहीं करना चाहिए।

जब मदालसाके प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ और राजा ऋतध्वजने उसका विक्रान्त नाम रखा तो वह बहुत हँसने लगी। राजा की कल्पना थी कि मेरा पुत्र समस्त शत्रुओं को नष्ट करने वाला महावीर योद्धा बनेगा और बड़े-बड़े वीरता के काम करके वंश के नाम बढ़ायेगा। पर मदालसा उसको अपना दूध पिलाने के साथ शैशावस्था से ही लोरियों के रूप में अध्यात्म ज्ञान की शिक्षा देने लगी। वह कहती थी –

"हे तात! तू तो शुद्ध आत्मा है। तेरा कोई नाम नहीं है। यह कल्पित नाम तो तुझे अभी मिला है। यह शरीर ही पाँच भूतोंका बना है। न वह तेरा है, न तू इसका है। फिर तू किसलिए रोता है?"

"जैसे इस जगत में अत्यन्त दुर्बल भूत अन्य भूतों के सहयोगसे वृद्धि को प्राप्त होते हैं, उसी प्रकार अन्न और जल आदि भौतिक पदार्थों के पाने से पुरुष के पाँच भौतिक देह की पुष्टि होती है। इससे तुझे शुद्ध आत्मा की न तो वृद्धि होती है और न हानि ही होती है।"

"तू अपनी इस देह रूपी चोले के जीर्ण-शीर्णहोने पर मोह न करना शुभाशुभ कर्मोंके अनुसार यह देह प्राप्त हुआ है। तेरा यह चोला माँस मेद आदि से बंधा हुआ है, पर तू इससे सर्वथा पृथक् है।"

"कोई जीव पिताके रूप में प्रसिद्ध है, कोई पुत्र कहलाता है, किसी को माता पिता और किसीको प्रिय पत्नी कहते हैं। कोई 'यह मेरा है' कहकर अपनाया जाता है और कोई 'यह मेरा नहीं है' इस भाव से पराया माना जाता है। इस प्रकार ये भूत समुदाय के ही नाम रूप हैं ऐसा तुझे मानना चाहिए।"

"यद्यपि समस्त भोग दुःख रूप है तथापि मूढ़चित मानव उन्हें दुःख दूर करने वाला तथा सुख की प्राप्ति कराने वाला समझ लेता हैं । पर जो ज्ञानी हैं और जिनका चित्त मोह से आच्छन्न नहीं हुआ है, वे उन भोगजनित सुखों को भी दुःख ही मानते हैं।"

"स्त्रियों की हँसी क्या है हड्डियों (दाँतों का प्रदर्शन है ।जिसे हम अत्यन्त सुन्दर नेत्र कहते हैं वे मज्जा की कलुषता है। कुछ आदि अङ्ग माँस की ग्रन्थियाँ हैं। इसलिए पुरुष जिस स्त्री पर मोह के भाव से अनुराग रखता है क्या वह एक प्रकारसे हाड़-माँस की ढेरी ही नहींहैं ?

'पृथ्वी पर सवारी चलती है, सवारी पर यह शरीर बैठा रहताहै। और इस शरीर के भीतर भी एक दूसरा पुरुष बैठा हुआ हैं। पर हम सवारी और पृथ्वी पर वैसी ममता नहीं रखते जैसी की अपनी इस देह में रखते हैं। यही मूर्खता है।"

इसी प्रकार के सत् उपदेश देकर मदालसा ने अपने प्रथम तीन पुत्रों को अध्यात्म मार्गका पथिक और साँसारिक प्रपंचसे विरागी बनादिया। तब राजा ने उससे कहाकि अब एक पुत्रको राजधर्म तथा गृहस्थधर्म की शिक्षा देनी चाहिए जिससे वह हमारे उत्तराधिकारीको ग्रहण करकेराज्य संचालन करसके। राजाके आग्रह को स्वीकार करके मदालसा चौथे पुत्र अलर्क को लोरियाँ सुनाते हुए इस प्रकार उपदेश देने लगीं।

"बेटा ! तू धन्य है जो शत्रु रहित होकर चिरकाल तक पृथ्वी का पालन करता रहेगा। पृथ्वी के पालनसे तुझे सुखकी प्राप्तिहो और धर्म के फलस्वरूप तुझे अमरत्व मिले।पर्वों पर सद्ब्राह्मणको भोजनसे तृप्तकरना, बन्धु बांधवोंकी इच्छापूर्ण करना,अपने हृदयमें दूसरोंकी भलाई का ध्यान रखनाऔर पराई स्त्रियोंकी ओर कभी मनको न जाने देना। अपनेमनमें सदा भगवानका चिन्तन करना,उनके ध्यान द्वारा अन्तःकरणके कामक्रोध आदि छहों शत्रुओंको जीतना,ज्ञानके द्वारा मायाका निवारण करना और जगतकी अनित्याका विचार करते रहना। धनकी आय के लियेराजाओं

पर विजय प्राप्त करना, यश के लिए धर्मका सद्व्यय करना, परायीनिन्दा सुननेसे विरत रहना और विपत्तिमे पड़े ए व्यक्तियोंका उद्धार करना।

'बाल्यावस्था'में तू भाई बन्धुओंको आनन्द देना, कुमारावस्थामेंआज्ञा पालनद्वारा गुरुजनोंको सन्तुष्टरखना, युवावस्थामें गृहस्थ, धर्मकापालनकरके कुलको सुशोभित करनेवाली पत्नीको प्रसन्न करनाऔर वृद्धावस्थामें वनके भीतर निवास करकेवहाँ रह वाले त्यागी तपस्वियोंकी सहायता करना।

हे तात! राज्य करते हुए मित्रोंको सुख देना, सज्जनोंकी रक्षा करते हुए लोकोपयोगी यज्ञोंऔर उत्सवों की परम्परा को स्थिर रखना और देश की रक्षा के लिए आवश्यकता हो तो दुष्टों, शत्रुओंका सामना करके प्राण भी निछावर कर देना।"

राजधर्म और राजनीति का आदर्श —

माता द्वारा खेल खेलते हुएही इस प्रकार के जीवनादर्श के उपदेश प्राप्त करता हुआ अलर्क जब कुछ बड़ा हो गया और उसका उपनयन संस्कार हुआतो उसने माताको प्रणामकरके कहाकि "लोक और परलोक के सुख तथा जीवनकी सफलता प्राप्त करनेके लिए क्या करना चाहिए इसका मेरे प्रति उपदेश करिये।

मदालसाने कहा—'पुत्र-राज्यका सर्वप्रथम कर्तव्य धर्मानुकूल आचरण करते हुए प्रजाकी रक्षा और उसे संतुष्ट रखना है राजाको उचितहै कि वह सातों व्यसन-कटुभाषण, कठोर दण्ड, धनका अपव्यय, मदिरापान, कामासक्ति आखेटमें व्यर्थसमय गँवाना और जुआ खेलनासे सदैव बचकर रहे क्योंकिये मूलोच्छेद करने वालेहैं। अपनी गुप्त मंत्रणाको कभी प्रकट नहीं होने देना चाहिये, क्योंकि शत्रु सदैव ऐसे मौकेकी ताकमे रहतेहैंऔर गुप्त भेदोंका पता लगाकर आक्रमण करके राज्यका नाशकरनेको तत्पर हो जाते हैं। राजाको अपना गुप्तचर विभाग बहुत उत्तम रूपसे संगठित करके रखना चाहिए जिससे मालूम पड़ता रहे कि शत्रु उसके राज्य में किस प्रकारकी भेदनीति या तोड़फोड़की योजना कर रहे हैं और अपने साथियों में से कौन सच्चा है और कौन शत्रुके बहकावे में आ गया है।

सबके साथ प्रेम युक्त व्यवहार करते हुए भी राजा को अपने मित्रों तथा सगे सम्बन्धियों पर भी आँख बन्द करके विश्वास नहीं करना चाहिए, पर आवश्यकता पड़ने पर शत्रु पर भी विश्वास कर लेना चाहिए। उसे युद्ध तथा शान्तिके अवसरों का पूरा ज्ञान रखना चाहिए। सन्धि(शत्रु से मेल रखना) विग्रह (युद्ध छोड़ना)यान (आक्रमण करना)आसन (अवसर की प्रतीक्षा में रहना) द्वैधीभाव (दुरंगी नीतिसे काम लेना) समाभाव किसी बलवान् राजा की शरण लेना)—इन छः उपायों का राजा को पूरा ज्ञान होना चाहिए। राजा को पहले अपनी आत्मा को जीतना चाहिए, फिर मंत्रियों को जीते,फिर कुटुम्बीजनों तथा सेवकों के हृदय पर अधिकार करे, फिर समस्त प्रजा को अपना अनुरक्त बनाये और तब शत्रुओं के साथ विरोध करे। जो इन सबको जीते बिना ही शत्रुओं से विरोध कर लेता है वह प्रायः असफलता का ही मुख देखता है और अपनी हानि कर लेता है।

'काम, क्रोध, लोभ, मद,मान,और रूपोंन्मत्तता ये मनुष्यों के लिए पतन कराने वाले दोषहैं। राजातो इनके वशीभूत होकर नष्टही हो जाता है। राजा को कौआ,'कोयल, भौंरा, हिरन, साँप, हंस, मुर्गा और लोहेके व्यवहार से भी शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। जिस प्रकार कौआ सदैव आलस्य रहित रहता है,कोयल दूसरों से अपना काम निकालती है,भौंरा सब से रस लाभ लेता रहता है, हंस नीर क्षार विवेक रखता है, मुर्गा ब्रह्म मुहूर्त में ही जगकर कर्मरत हो जाता है तथा लोहा सबके लिये अभेद्य और तीक्ष्ण रहता है, वैसा ही आचरण राजा को रखना चाहिए। राजा चींटी की तरह उचित समय पर समस्त आवश्यक, पदार्थों का संग्रह करे। उसे जानना चाहिए कि जिस प्रकार एक छोटी सी आग की चिन्गारी बड़े-बड़े वनों को जला डालने की शक्ति रखती है, इसी प्रकार एक छोटा-सा शत्रु अवसर आजाने पर बहुत अधिक हानि कर सकता है, जिस प्रकार सेमल का छोटा-सा बीज धीरे-धीरे एक बहुत विशाल पेड़ के रूपमें परिणत हो जाता है उसी प्रकार कोई सामान्य शत्रु भी बढ़तेन्बढ़ते अत्यन्त प्रबल होसकताहै।इसलिए उसे आरम्भमेंही उखाड़फेंकना चाहिये।

"राजाको सल देवताओं का अंश कहा गया है और उसे इन्द्रवायु सूर्य, चन्न एवं यम इन पाँच देवोंकी तरह पृथ्वीका पालनकरना चाहिए, जैसे इन्द्र चार महीनों तक वर्षा करताहै वैसेही राज्यको दान दक्षिणा, उपहार द्वाराप्रजाको प्रसन्नकरना चाहिए। जैसे सूर्य आठ मासतकसूक्ष्मरूप से जल सोखता रहताहै वैसेही राजाओंको ऐसे ढङ्गसे वसूल करते रहना चाहिए जिससे किसीको कष्टका अनुभव न हो। जिस प्रकार यमराज समयानुसार भले-बुरे सबको अपने नियंत्रणमें रखताहै और सदैव उचित न्यायही करता है वैसेही राजाको सज्जनऔर दुष्ट सबको स्ववशमेंरखना चाहिए'जैसे वायु अनजानमें ही सर्वत्र पहुँचता रहताहै, उसीप्रकार राजा को गुप्तचरोंद्वारामित्र-शत्रु सबका पूराभेद मालूम करते रहनाचाहिएजैसे जैसे पूर्ण चन्द्रमाको देखकर सब मनुष्य प्रसन्न होतेहैं वैसेही राजाकोअपने मधुर व्यवहार द्वारा सबको सुखीऔर प्रसन्न रखनाचाहिए। जो कुमार्ग-गामी और स्वधर्मसे विचलित मनुष्योंको उनके धर्ममें स्थापित कर देता है वही सच्चा राजाहै। सब भूतों प्राणियोंके पालनमें ही राजधर्म की सफलता मानी जाती है।"

गृहस्थ धर्म की विशेषता—

मार्कण्डेय पुराणमें गृहस्थ को बहुत ऊँचा स्थान दिया गया और स्पष्टकहाहै कि पितृगण ऋषिगण, देवगण, भूतगण, नरगण, कृमि, कीट, पतंग-गण, पक्षिगण और असुरगण-ये समस्तही गृहस्थाश्रमका नवलम्बन कर जीवनयात्रा निर्वाह करते हैं। 'गृहस्थ हमको अन्न देगा या नहीं' यह चिन्ता करके उसी के मुखकी तरफ देखते रहते हैं।

आगे चलकर गृहस्थकी उपमा एक गायसे दी है कि 'ऋग्वेदजिसकी पीठ यजुर्वेद मध्य, सामवेद मुख और ग्रीवा, इष्टापूर्त उसका सींग, साधु-सूक्त रोम शान्ति और पुष्टि कर्म उसका मलमूत्र एवं वर्ण और आश्रम ही उस धेनुकर प्रतिष्ठाहै। इस धेनुका कभी क्षय नहीं होता। स्वाहा, स्वधाकार, वषट्कार और हन्तकार इस धेनुके थन है। इनमें से देवगण स्वाहाकर, पितृगण और मनुष्यगण हन्तकार स्तनका पान करते रहतेहैं। जो गृहस्थ इस प्रकार देवता आदि की तृप्ति नहीं करता वह महापापी होता है। इस प्रसङ्गमें एक महत्वपूर्ण श्लोक यह है—

श्रीमतं ज्ञातिमासाद्य यो ज्ञातिरवसीदति ।
सीदतःय तत्कृत तेन तत्पापं स समश्नुते ॥

"किसी निर्धन और असहाय व्यक्ति के क्षुधार्त होकर प्रार्थना करने पर उसकोभी आहार दे । सम्पत्ति होनेपर समर्थ पुरुषको उसे भोजन कराना चाहिए । जो जाति वाला श्रीमान व्यक्तिके समीप होते हुए भी दुखी रहताहै और इस कारण कोई पाप-कर्म करता है तो श्रीमान को भी पाप के अंश का भागी होना पड़ता है ।"

अगर हम वर्तमान समय की विचारधारा और भाषाके अनुसारइस विचारको प्रकट करें तो इसे भारतवर्ष का धार्मिक साम्यवादकह सकते हैं । अपने आस-पास तथा परिचित समाज में कोई व्यक्ति भूखा, नङ्गा, अभाव ग्रस्त न रहे इसका ध्यान रखना सम्पत्तिशाली व्यक्तियों का कर्तव्य है । परिस्थिति वश सम्पत्ति कहीं भी कम या ज्यादा आती, जाती रहे पर वास्तव में वह समस्त समाजकी है और उसका उपयोग उसके हित की दृष्टिसे ही किया जाना चाहिए । जो व्यक्ति किसीउपाय अथवा संयोग से सम्पत्ति को पाकर उसे निजी समझकर ताले में वन्द रखनेकी चेष्टा करताहै, उसके स्वाभाविक प्रवाहको रोकताहै वह वहुत वड़ा सामाजिक पाप करता हैं । इस प्रकार अन्य लोगोंको जीवनसाधनों का अभाव होने से वे जो कुछ चोरी,जमा, ठगी, लूटमार या अन्य पाप कर्म करते हैं उसके उत्तरदायी वास्तव में वे व्यक्ति ही होते हैं जोकिसी प्रकार सम्पत्ति के प्रवाह को अवरुद्ध करते हैं ।

आज हम समाजमें इसी दूषित प्रणालीको जोरों से फैलता देख रहे है । आज चारोंतरफ यही दृश्यदिखलाई पड़ रहाहै कि 'धनी दिनपरदिन अधिक धनवानवनता जाताहै औरगरीव निरन्तर अधिकगरीवहोताजाता है ।'मानव धर्मकी निगाहसे यह प्रवृत्ति अत्यन्त जघन्यऔर कुफल उत्पन्न करने वालीहै । इसीके परिणामस्वरूप समाजमें तरह-तरहके विग्रह,फूट, अनेकता और अनुचित्त विरोधभावों की उत्पत्ति होतीहै और क्लेशतथा अशान्तिकी वृद्धि होतीहै।इसीलिए शास्त्रोमें कदम-कदमपर दानकीप्रेरणा दी है । उसका आशय यहीहै कि मनुष्यकोअपनीआवश्योकतासे अधिकज

कुछ मिल जाय उसे दान, धर्म, यज्ञ अतिथि सत्कार आदि के रूपमें स्वेच्छा से समाज को ही लौटा देना चाहिये। इसी भाव को कई सौ वर्ष पहले महात्मा कबीर ने एक छोटे दोहे में प्रकट किया था।

पानी बाढ्यो नाव में, घर में बाढ्यो दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यही सयानो काम।।

जिस प्रकार नाव के भीतर पानी जमा हो जाने से वह डूबने लगती है उसी प्रकार एक व्यक्ति के पास आवश्यकता से अधिक धनका भंडार जमा हो जाने से अनेक प्रकार के दोष दुर्गुण उत्पन्न होने लगते हैं। उससे एक तरफ व्यक्ति अहंकार, लोभ, निष्ठुरता, दुश्चरित्रता की प्रवृत्तियां उत्पन्न होती हैं और दूसरी तरफ अभाव ग्रस्तता दीनता, हीन आचरण आदि बढ़ने लगते हैं। इस दूषित परिस्थित को रोकने के लिये भारतीय शास्त्रकारों ने स्वेच्छा से त्याग का उपदेश दिया था और जब तक समाज उचित रूपसे उसका पालन करता रहा तब तक यहाँ शान्ति और सामाजिक एकता कायम भी रही। आजअनेक देशों के शासक या सत्ताधारी दल साम्यवाद के नाम से इसी कार्यको करनेकी चेष्टा करते रहे हैं, भारतीय संविधान का अन्तिम लक्ष भी 'समाजवाद'की स्थापना बतलाया गया है, पर व्यक्तियों की स्वार्थ परता और लोभ की भावनाओं के रहते हुए इन प्रयत्नों का परिणाम बहुत कम दिखलाई पड़ रहा है। 'मार्कण्डेय पुराण' के लेखकने इस सत्यको स्पष्ट शब्दोमें प्रकट करके निस्संदेह समाज-निर्माण एक बहुत बड़े समाज निर्माण के सिद्धान्त पर प्रकाश डाला है।

अनासक्त भाव की श्रेष्ठता—

मदालसा उपाख्यान के अन्त में मनुष्योंके व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवनके इनदोषोंको मिटानेका एकसीधा उपाय अनासक्त भावनाको उत्पन्न करना बतायाहै। क्योंकिसब प्रकारके सम्पत्तिऔर चरित्र सम्बन्धीदोषप्रायः तभीबढ़तेहैं जबमनुष्य अपने आत्म-स्वरूपको भूलकर इस पचौतिक जगत् को सत्य और अपना अन्तिम लक्ष्य समझ बैठता है। इस उपदेशको स्पष्ट रूपसे समझानेके लिये पुराणकारने मदालसाके पुत्र अलर्ककी कथाकोआगे

वढ़ाते हुए कहा है कि मदालसा के उपदेशानुसार धर्मराज्य करते हुए भी वह अन्तिम अवस्था में साँसारिक माया मोह में विशेष फँस गया और आत्मोत्थान के वास्तविक लक्ष्य को भूल ही गया। यह देख कर उसके बड़े भाई वनवासी सुवाहु को चिन्ता हुई और उसने एक युक्ति की दृष्टि से काशीराज के पास पहुंच कर उसे अलर्क पर आक्रमण करने की प्रेरणा दी। इस आक्रमण का सामना न कर सकने के कारण अलर्क की मोह निद्रा टूटी उसने माता की अन्तिम चिन्ह स्वरूप अँगूठी के भीतर लिखा हुआ यह उपदेश पढ़ा—

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः स चेत् त्युक्तुं न शक्यते ।
स सद्भिः सह कर्त्तव्यः सतां सङ्गो हि भेषजम् ।।

"मनुष्यों को आसक्ति का पूर्णतया त्याग करना चाहिए, पर यदि वैसा सम्भव न हो तो सत्पुरुषों की संगति ही करनी चाहिए, क्योंकि विषयासक्ति की औषधि सत्सङ्ग ही है।"

इस उपदेश से अलर्क को जो मार्ग दर्शन हुआ तदनुसार वह सत्संग के उद्देश्यसे महात्मा दत्तात्रेयके पास जापहुँचा और उनसे अपनी विपत्ति का पूरा वर्णन सुनाकर दुःख दूर करनेकी प्रार्थनाकी। दत्तात्रेय ने उसकी बुद्धि पर पड़े पर्देको देखलिया और सबसे प्रथम प्रश्न यही किया कि'तुम अपने मनमें अच्छी तरह सोच विचार कर मुझे यह वतलाओ कि तुमको दुःख किस प्रकार का है और वह क्यों उत्पन्न हुआ है? तुम अपने वास्तविक स्वरूप पर विचार करो,साँसारिक वस्तुओंसे उसके सम्वन्धका निर्णय करो और तव वतलाओ कि किस वात ने तुमको क्यों दुःखी किया है?" इन शब्दोंको सुनकर जव अलर्क राज्य पर आक्रमण सम्वन्धी समस्त घटना पर आध्यात्मिक दृष्टि से विचार करने लगे तो उनका संशय बहुत शीघ्र दूर होगया और वे हंसते हुए कहने लगे-मैं वास्तव में बड़े भ्रम में पडा था कि इन पंच तत्वों को ही अपना मुख्य आधार समझ कर उनके लिए शोक कर रहाथा। अगर तात्विक दृष्टिसे विचार कियाजाय तो मैं न तो भूमि हूँ, न जल हूँ, न अग्नि हूँ न वायु हूँ और न आकाश ही हूँ। इन सव

पदार्थों में न्यूनता अथवा अधिकता होने से ही हम शोक और हर्ष करते हैं पर आत्मा की दृष्टिसे यह निरर्थकहैं। यदि सुख दुःख का कारण मन और बुद्धि को मानें तो आत्मा इनसे भी अलग है। इसलिए वातव में मेरा कोई राज्य है, न कोष है, न कोई मेरा शत्रु है। जैसेविभिन्न पात्रोंमें भरे हुए जलमें आकाश का प्रतिविम्ब अलग-अलग जान पड़ता हैं, पर वास्तव में वह एक ही होता है उसी प्रकार मैं गलतीसे काशीराज तथा बड़े भाई सुवाहु को अपने से पृथक् समझ रहाहूँ। ये लोग मेरे दुःख का कारण नहीं, वास्तव में मेरे दुःख का कारण मेरी ममता है। यदि ममता की भावना को त्यागकर विचार करें तो कहीं दुःख नहीं है। जव विल्ली किसी गौरैया या चुहिया को पकड़ने जातीहै तो हमको कुछभी दुःख नहीं होता, औरजव वह घरमें पाले तोता या मुर्गे को खा डालती है तो हम शोक करने लगते हैं। इसलिए आत्मा की दृष्टिसे हमको कोई दुःख या सुख नहीं होता। किसी एक भौतिक पदार्थ द्वारा दूसरे भौतिक पदार्थको उत्पीड़ित देखकर ही हम झूटमूट सुख-दुःख की कल्पना कर सकते हैं।"

दत्तात्रेय जी ने राजा अलर्क की भ्रांति को इस प्रकार दूर करके उसे दुःख से मुक्त होने का मार्ग वलताया कि तुम्हारा सोचना युक्तियुक्त है। वास्तव में सव प्रकार के दुःखों का मूल यह 'मेरा-मेरा' ही है। जब हम इस ममता को त्याग देते हैं तो दुःख की जड़ स्वयं ही कट जाती है। यह संसार कर्मों का एक महावृक्ष है। उसका अंकुल अहंभाव में से फूटता है। ममता ही उसका भारी तना हैं। घर-वार का मोह उसकी शाखायें हैं, स्त्री-पुत्र, धन, सम्पत्ति आदि पत्ते हैं। यह वृक्ष निरन्तर बढ़ता रहता है और तब उस पर पाप-पुण्य के फूल और सुख-दुःख के फल लगतेहैं। अज्ञानी लोग उसे लालसा, कामनाओं द्वारा सींचते रहतेहैं। यह वृक्ष वन्धन-मुक्ति के मार्ग को रोककर खड़ा रहता है। जो लोग संसार रूपी वन में भ्रमण करते हुए उसका अश्रय लेते हैं उन्हें सच्चा सुख कहाँ मिल सकता है? इसलिए आवश्यकता है कि अपने ज्ञान रूपी कुठार को सत्संग रूपी सान धरने के पत्थर पर तेज करके इस ममता रूपी वृक्ष को

काट ड.ला जाय । तभी हम आत्म-ज्ञान या ब्रह्म-ज्ञान के शांतिदायक उद्यान में पहुँन्च सकते हैं जहाँ धूल और काँटों का भय नहीं है।"

इसके पश्चात् दत्तात्रेयने अलक को योग साधनका पूरा विधि-विधान उसके बीचमें आने वाले उपसर्ग और प्रलोभनोंकी चेतावनी दी और योगी के आचार व्यवहार का उपदेश दिया । अन्त में ओंकार की महिमा को समझाते हुए कहा की उसकी 'अ' 'उ' 'म' तीन मात्रायेंसत्त, रज, मत तीनों गुणों अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीन इश्वरीय शक्तियों के प्रतीक हैं और चोथी ऊर्ध्व मात्रा परब्रह्म की ओर संकेत करती है । जो साधक ओंकार के इस स्वरूप को हृदयंगम करके उसका ध्यान करेगा वह केवल इसी साधन से मुक्ति का अधिकारी बन सकता हैं ।

दत्तात्रेय के आत्मोपदेश से अलर्क कृतार्थ हो गया । उसका शोक, मोह सर्वथा लोप होगया और उसने स्वयं काशीराज तथा सुवाहु के पास जाकर प्रसन्नतापर्वक समस्त राज्य अर्पण कर दिया । उसका इस निस्पृहता को देखकर वे भी वड़े प्रभावित हुए और सुवाहुने अपना अभीष्ट लक्ष्य पूरा हुआ देखकर उसका राज्य उसीको लौटा दिया । पर अब अलर्कको सच्चा आत्मज्ञान हो चुका था और वह आत्मा के शाश्वत रूप को अनुभव कर चुका था अतः उसी समय पुत्र को राज्य भार देकर वनवास के लिए चला गया ।

सृष्टि रचना और उसका विकास—

यहाँ तक मदालसा-उपाख्यान के रूप में मानव धर्म तथा अध्यात्म ज्ञान की चर्चा का गई जिसका मनन करने से मनुष्य का लौकिक और पारलौकिक जीवन की सफलता का मार्ग विदित हो जाता है । इसके पश्चात् पुराण का मूल विषय "सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश मन्वन्तर, राज्यवंश" आरम्भ होता हैं । ये विषय थोड़े बहुत अन्तर के साथ प्रत्येक पुराण में पाये जाते हैं और इसे हम पौराणिक 'सृष्टि विद्या' कह सकते हैं । जिस प्रकार वेदोंमें एक अक्षर-तत्व से सत्-रज तम तीनों गुणोंकीउत्पत्तिवतला

कर उतसे समस्त सृष्टि का विकास और विस्तार बतलायाहै, उसीप्रकार पुराणोंमें एक निराकार ब्रह्मसे ब्रह्मा, विष्णु, महेशकी तीन सृजन, पालन तथा संहार करने वाली शक्तियों का उद्भव बतलाकर देव, ऋषि, पितर एवं भूतगणों के वंशों की उत्पत्ति का वर्णन किया है वास्तवमें वेद और पुराणो के वर्णन में कोई सिद्धान्त भेद नहीं है, वरन् पुराणकारों ने वेदों के सूक्ष्म और शुष्क विषय की रूपकों और दृष्टान्तों की शैली में विस्तृत व्याख्या करके उसे साधारण बुद्धि के लोगों के लिए भी बोधगम्य बनाने का प्रयत्न किया है। इस सृष्टि-रचना क्रम का सारांश इन शब्दों में दिया जा सकता है।

इस भौतिक जगत् का जो मूल कारण है उसे 'प्रधान' कहते हैं। उसी को महर्षियोने अव्यक्त, सूक्ष्म, नित्य अथवा सदसत्स्वरूप प्रकृति कहा है। सृष्टिके आदि कालमें केवल एक ब्रह्म ही था जो अजन्मा अविनाशी, अजर, अप्रमेय और आधार निरपेक्ष है। वह गन्ध, रूप, रस, स्पर्श और शब्द से रहित है और अनादि तथा अनन्त है। वही सम्पूर्ण जगत की 'योनि' और तीनों गुणों का कारण है। यह ज्ञान, विज्ञान से अगम्य है। सृष्टि का समय आने पर वही ब्रह्म गुणों की साम्यावस्था रूप प्रकृति को क्षुब्ध करता है जिसके फलस्वरूप महतत्वका प्राकट्य होताहै। महत्तत्वसे वैज्ञानिक, तैजस, भूतादि अर्थात् सात्विक, राजसऔर तामस इसत्रिविध अहंकार का आविर्भाव होता है। तामस अहंकार से शब्द स्पर्श, रूप, रस और गन्धइन पांच तन्मात्राओं का उद्भव होता है और इन तन्मात्राओं से क्रमशः आकाश वायु, तेज जल और पृथ्वी तत्व का आविर्भाव होता है। राजस अहंकार से श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और घ्राणेइन पाँच ज्ञानेन्द्रियोंतथा वाक्, पाणि, पाद, वायु और उपस्थ इन पाँच कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है। सात्विक अहंकार से इन दसों इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवता तथा ग्यारहवें मनकी उत्पत्ति होती है। फिर महत्तत्व से पृथ्वी तत्व पर्यन्त सवतत्व मिलकर पुरुष और प्रकृति के सम्बन्ध से एक अण्ड उत्पन्न करते है। यह अण्ड धीरे-धीरे वढ़ताहै और साथही उसके भीतर प्रतिष्ठित 'ब्रह्मा, नामसे प्रसिद्ध क्षेत्रज्ञ पुरुषभी वृद्धिकों प्राप्त होताहै।

आवश्यक वृद्धि और विकास हो जाने पर प्रथम शरीरी या साकार ब्रह्मा का प्राकट्य होता है और फिर वही ब्रह्मा उस अण्ड में समस्त सचराचर जगत् की रचना करते हैं।" यह बात मार्कण्डेय पुराण में बहुत स्पष्ट शब्दों में कही में कही है।

स वै शरीरी प्रथमः स वै पुरुष उच्यते।
आदि कर्ता च भूतानां ब्रह्माग्रे समवर्तत।
तेन सर्वमिदं व्याप्तं त्रैलोक्यं सचराचरम्।।

पर यह 'ब्रह्मा' कोई वाह्य शक्ति या व्यक्ति नहीं है। संसारमें उस परब्रह्म के अतिरिक्त चैतन्य सत्ता का कोई अन्य स्रोत नहीं है, इसलिए ब्रह्म ही विविध रूपों में प्रकट होकर सृष्टि का विकास करता है। इस तथ्य को 'मनुस्मृति' में बहुत स्पष्टता से कह दिया गया है—

यत्तत्कारणमव्यक्तं नित्यं सदसदात्मकम्।
तद् विसृष्ट स पुरुषो लोके ब्रह्मेति कीर्त्यते।।

अर्थात् जो अव्यक्त, सदसदात्मक नित्य-कारण है वह ब्रह्म है और उसी से विसृष्ट या प्रेरित सृष्टि में जो अनुप्रविष्ट कारण है वह ब्रह्मा कहा जाता है।"

इस सवका तात्पर्य यही है कि पुराणों ने ब्रह्मा, विष्णु, महेश-तीन प्रधान देव और इन्द्र, वरुण, मारुत, यम, कुवेर, गणेश आदि सैकड़ों गौण देवता मानने परभी इसमूल तत्त्वसे इनकार नहीं किया है कि इससमस्त विश्व-प्रपंच का मूल एक ही है जिसे परमात्मा, परब्रह्म, निराकार ईश्वर आदि किसी भी नाम से पुकारा जा सकता है। जिस प्रकार पिता अपनी स्त्रीके गर्भमें स्वयं बीज रूपसे प्रविष्ट होकर पुत्र वनता है या वृक्ष अपना समावेश बीजके भीतर कर देता है उसी प्रकार निराकार ब्रह्म स्वयं ही अण्डे के भीतर प्रविष्ट होकर साकार देवतत्वों का आविर्भाव करते हैं और बाद में वे ही सचराचर जगत् के रूप में अपना विस्तार करते हैं। इसी दृष्टि से वेदान्त में प्रत्येक व्यक्ति को ब्रह्म स्वरूप ही माना है और मुक्त कण्ठ से 'अहं ब्रह्मास्मि' की घोषणा कर दी है।

यद्यपि ऊपर देखने पर अनेक व्यक्तियों को सृष्टि के आदि कारण

का यह विवेचन अनावश्यक अथवा निरर्थक भी मालूम पड़ सकता है। वे कहेंगे कि इतनी दूर जाने की, ऐसे अज्ञेय क्षेत्र में प्रवेश करके महा कठिन कल्पना करने की क्या आवश्यकता है? जो कुछ सामने है उसी को यथार्थ मानकर उपयोग और व्यवहार क्यों न किया?पर यह बहुत संकीर्ण अथवा अदूरदर्शी दृष्टिकोण है। ऐसेही विचारों के कारण आज संसारमें भौतिक वादका बोलवालाहै और अधिकांश मनुष्य किसी प्रकार स्वार्थ साधन को ही सबसे महत्त्वका काम समझ बैठेहैं। इसका परिणाम घोर व्यक्तिगत स्वार्थपरता, पारस्परिक संघर्ष दूसरेका नाशकरकेभी अपनालाभ करने की प्रवृत्तिके रूपमें देखने में आताहै। यही प्रवृत्ति बढ़ते-बढ़ते आज समग्र संसार को एक साथ नष्ट करने के भय के रूप उपस्थित हो गई है।

यह सब नाशकारी परिणाम उन मनुष्योंके जीवनके पीछे किसी तरह की उच्च दार्शनिक पृष्ठभूमि न होने सेही उत्पन्न हुएहैं। परजो मनुष्य यह विश्वास करता हैकि यह समस्त जगत् और तमाम प्राणी एक ही स्रोत से उत्पन्न हुए है और यह एक अविनाशी महाशक्ति का खेलमात्र हैं, जो कुछ समय बाद फिर उसी एक मत्वमें विलीन होजायगा, तो वहमिट्टीसे बने और थोड़े ही समय बाद फिर मिट्टी होजानेवाले पदार्थोंके लिए किसी तरहका हीन, निकृष्ट काम करनेको तैयार न होगा। इस दार्शनिक दृष्टिकोणके कारण ही पूरब और पश्चिम क की मनोवृत्तियों में जमीन आसमान का अन्तर हो गया है जिसका वर्णन एक विनोदी उर्दु कविने इन दो लाइनोंमें कियाहै।

कहा मंसूर ने खुदा हूँ मैं।
डार्विन बोले बूवना हूँ मैं॥

अर्थात्—मंसूर (ईरान के ब्रह्मज्ञानी) ने घोषणा की कि मैं-खुदा हूँ (अहं ब्रह्मास्मि) और योरोप के विज्ञानी पुरुष डार्विन ने कहा—"मैं बन्दर हूँ।"

जिस व्यक्तिकी यह भावना होगीकी मैं इस समस्त संसारके आदि कारण परब्रह्म का अंशहूँ वह सदा अपनी निगाह बहुत ऊपर रखेगा और

सोचतापूर्ण कार्यों से बचता रहेगा। पर जिसकी धारणा यह होगीकि मैं तो मिट्टी, पानी आदि पंचभूतों का पुतला हूँ, जो सौ-पचास वर्ष में फिर उन्हींमें मिल जाऊँगा, उसकी निगाह सोना-चाँदी इकट्ठा करके तरह-२ के भोग अधिक से अधिक मात्रामें प्राप्त कर लेने के अतिरिक्त और कहाँ जा सकती है ? इसलिए भारतीय शास्त्रकारों का सबसे पहिले सृष्टि के मूल कारण पर विचार करना और मनुष्यों को सदैव अपने सच्चे स्वरूप पर विचार करते रहने को प्रेरणा देना निस्सन्देह व्यक्ति औरसमाज के लिए परम कल्याणकारी है।

समाज का निर्माण और विकास—

सृष्टि-विकास के पश्चात् समाज निर्माण पर विचार करना आवश्यक है। पुराणोंमें भौतिक पदार्थों और जीव जगत की उत्पत्ति का जो क्रम बतलाया गया है वह अधिकाँशमें विज्ञान-सम्मत है, उसे सर्वथा काल्पनिक नहीं कहा जा सकता है। पहिले कहा जा चुका है कि महत्वसे सात्विक,राजस और तामस तीन प्रकार का अहङ्कार पैदा होता है। आगे चलकर सर्वप्रथम तामस अहङ्कारसे 'असंज्ञ' (चेतना रहित) पदार्थों की उत्पत्ति होतीहै जैसे मिट्टी,पत्थर,लोहा आदि। फिर राजस अहङ्कारसे 'अन्त: संज्ञ' (सुप्त चैतन्य) पदार्थों की उत्पत्ति होतीहै जैसेघास बेलें, वनस्पति, वृक्ष आदि। इनसे प्राण शक्ति प्रकटहो जातीहै, पर मनकी क्रिया भीतर छिपी रहती है। अन्तमें सात्विक अहङ्कारसे 'ससंज्ञ'(चैतन्य) जीवधारी सृष्टि होतीहैं जैसे कीट,पतङ्ग,पशु-पक्षी,मनुष्य आदि। पंचकर्मेन्द्रियाँ, पंच ज्ञानेन्द्रियाँ और ग्यारहवाँ मन। इस विकार-सर्ग के विकसित होने के कारण ससंज्ञ सृष्टि को 'वैकारिक' भी कहा जाता है।

जीवधारी सृष्टिके सम्बन्धमें बतलाया गयाहै कि ब्रह्मा ने जो प्राणी प्रथम बनायेवह 'सर्दी-गर्मी'सेबहुत कमप्रभावितहोकर नदियों,झीलों,समुद्र और पर्वतोंके निकट विचरण करते रहते थे। वे उपभोगके विषयमें अनायास तृप्ति लाभकर लेतेथे और उनमेंकिसी प्रकार विघ्न द्वेषअथवामत्सर नहीं था। वे घर न बनाकर पर्वत या समुद्र तटपर निवास करतेएवंसदा

निष्कमचारी और प्रसन्नचित्त थे। यह स्पष्टतः उस समय का वर्णन है जिसे हम 'प्रकृति का साम्राज्य' या 'स्टेट आफ नेचर' कहते हैं। उस समय प्राणी अपना निर्वाह घास-पात, फल-फूल से करते हैं और इसलिए उनको किसी प्रकार चिंता या संघर्षकी आवश्यकता नहीं होती है। यही वह युग होता है जिसके लिये कथाओं में कहा जाता है कि पशु और पक्षी भी बातें करते हैं और देवता भी उनकी सहायता को आ जाते हैं। वास्तवमें जिस समय तक भाषाका अविर्भाव नहीं होता तब तक प्रत्येक प्राणी दूसरे प्राणी के भावों को उसकी आकृति और ध्वनि, चीत्कार आदि से पहचान लेता है। उनका प्राकृतिक शक्तियोंके द्वारा ही सञ्चालन होता है और वे प्रकृति के संकेतों का आशय भी भली प्रकार समझते हैं। इस दृष्टि से उस आदिकालीन युग में एक प्रकार से देवता ही पृथ्वी पर विचरण करते हैं।

पर परिवर्तनशील सृष्टि-क्रम में यह अवस्था सदैव स्थिर नहीं रह सकती थी। क्रमशः जीवोंकी अनायास तृप्तिहो जाने की 'सिद्धि' समाप्त होने लगी और आकाश से जल रूपी दूध बरसने लगा और लोगों के निवास स्थानों में कल्पवृक्ष उत्पन्न हो गये जिनसे उनको आवश्यकता की समस्त वस्तुएं प्राप्त हो जाती थीं। तत्पश्चात् जब मनुष्यों में कल्पवृक्षों के प्रति राग उत्पन्न होने लगा तो वे नष्ट होगये और चार शाखा वाले अन्य वृक्ष पैदा हुए जिनके प्रत्येक पुट में बिना मक्खियों के ही मधु उत्पन्न होता था और उसीको पीकर लोग जीवन निर्वाह करते थे। यह स्थिति त्रेतायुगमें थी। क्रमश: मनुष्य अत्यन्त लोभी होने लगे, उन वृक्षों पर अपना अधिकार जमाने लगे और उनकी जड़ों में अपने रहने के घर बना लिये। इससे वे वृक्ष भी कुछ काल में नष्ट होगये।

उस समयमें सब प्राणी भूख-प्यास से व्याकुल होकर अत्यन्त कातर होने लगे। कुछ समय पश्चात् आकाशसे जलकी विशेषरूपसे वर्षा होनेलगी और उसका जल मिट्टीके संयोगसे दोषरहित होकर नदियोंके रूपमें परिणत होगया। नदियोंके प्रभावसे पृथ्वीपर तरह-तरहकी उत्तम 'औषधियाँ' (वनस्पतियाँ) पैदा हुईं, जिनका उपयोग करनेसे लोगोंका सुखपूर्वक निर्वाह

होने लगा। पर जब लोग उन वनस्पतियों को भी अधिक से अधिक परि-माण में इकठ्ठा कर लेने का लालच करने लगे तो वे भी नष्ट हो गई कोई अन्य उपाय न देखकर लोगों ने भगवान् ब्रह्माजी (बुद्धि) की शरण ली तो उन्होंने कुछ वीज उत्पन्न करके लोगों को कृषि-विद्या का उपदेश दिया और सामाजिक सुव्यवस्था की दृष्टि से उनको चार वर्णों में विभा-जित करके प्रत्येक वर्णको एक-एक कार्य का उत्तरदायित्व सौंपा। उन्होंने कर्म परायण ब्राह्मणों के लिए प्राजापत्य स्थान संग्राम करने वाले क्षत्रियों के लिए ऐन्द्रस्थान, स्वधर्म निरत वैश्यों के लिए मारुत-स्थान और सेवा परायण शूद्रों के लिए गान्धर्व-स्थान की कल्पना की।"

इस विवेचनसे आदिम मानव-समाज और उसके क्रमशः विकासपर अच्छा प्रकाश पड़ताहै। वर्तमान युगके अर्थशास्त्रतथा समाज के एक बड़े विवेचक कालमार्क्सने यहमत प्रकटकिया है कि मानव-समाजमें सब तरह की प्रथाओंऔर रीति-रिवाजोंके उत्पन्न और प्रचलित होने का मूलाधार आर्थिक व्यवस्थाही थी। जिसकालमें जीवन-निर्वाहके जैसेसाधन प्राप्त थे वैसेही सामाजिक व्यवस्थाभी उस समय बनगई। उपर्युक्त पौराणिक वर्णन में भी यहीबतलाया गयाहै कि जैसे-जैसे जीवन निर्वाहके साधनबदलते गये उसी प्रकारप्राणियोंऔर उनकी जीवन-निर्वाह विधिमें भी परिवर्तन होता गया। जब तक लोगोंमें स्वार्थ बुद्धिकीवृद्धि नहीं हुई और वे प्रकृत्ति दत्त पदार्थोंमें से आवश्यकतानुसार ही लेकर अपनी भूख मिटा लेते थे तबतक उनकाकाम बिनाकिसी विशेषप्रयत्नके जंगलऔर वनोंकी स्वाभाविकउपज से होतारहा। पर जैसे-जैसे उनमेंसंग्रह और परिग्रहकी भावनाउत्पन्नहोने लगी प्रकृतिभी अपनेदानको संकुचित करनेलगी और लोगोंकोजीवननिर्वाह की परिश्रम और युक्तिसाध्य विधियोंका आश्रय लेना पड़ा।इसी से खेती और पृथक् परिवारकी प्रथाका जन्म हुआ। आगे चलकरविभिन्नप्रकार के सामाजिक कार्योंतथा पेशोंके बढ़ने से जाति-प्रथाकाभी उद्भवहुआ। जितने ही अधिक लोग विभाजितहुएऔर अपने उत्पादनको सुरक्षितरखकरउसका स्वयंही उपभोगकरने लगे वैसे-वैसेही मानव सम्बन्धोंमें जटिलताआती गई

और क्रमश: शासन, राज्य और राष्ट्र का प्रादुर्भाव होकर मानव-समुदाय आधुनिक सभ्यता, संस्कृति तक पहुँच गया।

यह तो भौतिक पदार्थों के विभाजन तथा स्वामित्वके कारणउत्पन्न सामाजिक व्यवस्था की एक मोटी रूप रेखा हुई। जब इसके साथभली-बुरी मनोवृत्तियों, धर्म-अधर्म, कर्तव्य-अकर्तव्य, सत्य-झूठ, प्रेम-घृणा, मित्रता-शत्रुता आदि भावनाओं का योग होता है तो मानव-व्यवहारोंमें ऐसी जटिलता आ आती है कि जिसके निर्णय और कार्य रूपमें परिणत करने में बड़े-बड़े समाज शास्त्री तथा न्यायवेत्ता विद्वानोंकी बुद्धि भी चकरा जातीहै। इसका वर्णन पुराणकार ने अपनी रूपक और अलंकारों की विशिष्ट शैली में इस प्रकार किया है—

"जब ब्रह्मा के मानस पुत्रोंसे सृष्टि का विस्तार न हो सका तो उन्होंने एक पुरुष उत्पन्न करके उसके आधे भागसे एक स्त्रीको भी उत्पन्न किया और उनको पति-पत्नी बनाकर प्रजाकी उत्पत्ति का आदेश दिया। वे ही संसार के प्रथम मानव प्राणो स्वायम्भुव मनु और शतरूपा थे। उनके दो पुत्र हुए, प्रियव्रत और उत्तानपाद। दो कन्याएँ भी हुई प्रसूति और ऋद्धि सृद्धिका विवाह रुचिसे हुआ जिससे यज्ञ और दक्षिणानामक दो सन्तानोंकी उत्पत्ति हुई। दक्ष और प्रसूतिके चौबीस कन्याएँ हुईं उन्हें धर्म ने अपनी पत्नी बनाया। इसके साथ ही अधर्म का परिवारभी बढ़ा। उसकी पत्नी हिंसासे अनृत नामक पुत्र और सृति नामक कन्या उत्पन्न हुई। उनसे नरक और भय नामक पुत्र हुए और माया तथा वेदना दो कन्याएँ हुईं। मायासे मृत्यु और वेदनासे दु:ख नामक पुत्र उत्पन्न हुए। मृत्यु के व्याधि जरा, शोक तृष्णा और क्रोध नामक पुत्र हुए। दु:ख से जो सन्तति हुई वह सब अधर्म का आचरण करने वाली थी। मृत्यु ने अलक्ष्मी नामक एक और स्त्रीसे विवाह किया जिसके चौदह पुत्र हुए जो मनुष्योंके मन तथा इन्द्रियोंमें प्रविष्ट होकर उनको नाश की तरफ ले जाते हैं।

इन पुत्रोंमें से एकका नाम दु:सहहै, जिसको अत्यन्त भयंकर बत-

लाया है कि वह जन्म लेते ही ऐसा भूखा था कि समस्त संसार के उसके द्वारा नष्ट होनेकी सम्भावना जान पड़ी। तब ब्रह्मा ने उसके रहने के स्थान नियत कर दिए कि जहाँ, बुरे लक्षण,आलस्य,प्रमाद, दारिद्रय हो वहाँ पर वह निवास करे। जहाँ देशाचार, जाति धर्म, लोकाचार का ठीक तरह से आचरण किया जाताहै,जप,होम,मंगल,यज्ञ,शौच आदि का विधिवत पालन किया जाता है, उन स्थानोंसे वह दूर रहे। इस दु:सह के 'निमष्टि' नाम पत्नीसे दन्तकृष्टि, तथोक्ति,परिवर्त, अङ्गध्रुक, शकुनि, गंड, प्रान्तरति और गर्भहा नामक आठ पुत्र हुए। नियोजिका विरोधिनी,स्वयंहारकी,भ्रामणी,ऋतुहारिका,स्मृति हरा, बीज हरा और विद्वेषिणी नामक आठ कन्यायें भी हुईं। दुःसहकी इन सोलह सन्तानों ने मनुष्योके जीवन को महाकष्टमय बना दिया और जिस पर उनका वश चलता है उसे वे नष्ट करके ही छोड़ते हैं।"

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि दुःसह और उसकी सन्तानों का आशय तरह-तरहकी दूषित मनोवृतियों,नैतिक,सामाजिक और भौतिक दोषों और भाँति-भांति के रोगोंसे ही है, जो कर्तव्य विमुख औरआलसी व्यक्तियोंपर सवार होकर उन्हें नष्ट किया करतेहैं। पुरा० कारने दुःसह के रहने के जितने स्थान बतलाये हैं वे सब दूषित आचरण वालों के ही लक्षण हैं। सदाचारी और कर्तव्यरत व्यक्तियोंकी तरह वह आँख उठा कर भी नहीं देखता। अड़तालीसवें अध्याय में दुःसह के क्रिया-कलापों का विस्तृत वर्णन निःसन्देह पढ़ने और शिक्षा ग्रहण करने योग्य है।

रुद्र सृष्टि अथवा अग्नि तत्व की व्याख्या—

अगले अध्यायमें कहा गयाहै कि ब्रह्माजीने कल्प के आदि में अपने समान एक पुत्रका ध्यान कियातो एकनील लोहितकुमारउत्पन्नहुआ।वह ब्रह्माजीकी गोदमें रोने लगा। ब्रह्माजी ने पूछा—तू क्यों रोता है? तो उससे कहा 'मेरा नाम रखिये'। उसने उत्पन्न होतेही रुदन किया इससे ब्रह्माने कहा-तुम्हारा नाम 'रुद्र' हुआ। इस पर वह सात बार औररोया। तब ब्रह्माने उसके सात नाम और रखे—भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम

उग्र और महादेव । तब उसके रहने के लिए आठ स्थान नियत किये—सूर्य, जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, आकाश, दीक्षित, ब्राह्मण और सोम । उसकी आठ पत्नियाँ भीबनादीं–सुवर्चला, उमा, विकेशी, स्वधा, स्वाहा, दिक् दीक्षा रोहिणी । शनैश्चर, शुक्र, लोहिताङ्ग, मनोजव, स्कन्द, सर्ग, सन्तान औरबुध को रुद्र के आठ पुत्र बताया गया है ।

यह रुद्रका रूपक वैद्रिक साहित्य में वर्णित प्राण तत्व की कथा के रूपमें व्याख्याहै । 'शतपथब्राह्मण' में कहा गया है 'यो वै रुद्रः सोऽग्नि' अर्थात अग्नि या प्राणतत्व का नाम रुद्रभी है । पुराण में इसका नाम जो 'नीललोहितकुमार कहा गया है उसका आशय यही है कि अग्नि की रश्मियों का अथवा सूर्य-रश्मियों का वर्ण एक छोर पर नीला औरदूसरे पर लोहित (लाल) ही होता है । 'अथर्ववेद' के एक सूक्त में भी रुद्र के नील लोहित धनुष' का उल्लेख मिलता है । अग्नि तत्व जव अपनेकेन्द्रों में जागृत होताहै तो वह 'रुद्ररूप' में होताहै । उसमें वुभुक्षा वृत्तिउत्पन्न होती है अर्थात् वह बाहर से कोई पदार्थ अपने पोषणको चाहता है । जव उसे वह पदार्थ मिल जाता है तो वह रचनात्मक अर्थात् 'शिव'बन जाता है । रुद्र के जो सात नाम और बतलाये गये हैं वे अग्नि तत्व के वे सात रूप हैं जो अव्यक्त पदार्थों को व्यक्त रूपमें लाने के साधन बनते हैं । अग्नि या प्राण तत्व ही समस्त भौतिक पदार्थों को प्राण या गति तत्व के प्रदान करता है अतः वे उसके स्थान हैं । इसी प्रकार स्वधा स्वाहा आदि आहवनीय अग्निसे सम्वन्धित हैं । शनि, शुक्र, बुध आदि सभी ग्रह उपग्रह अग्नि तत्व के ही विभिन्न रूप या उसके परिवार की तरह हैं ।

मन्वन्तर और सप्त द्वीप वर्णन—

इसके पश्चात् स्वायम्भुव व मन्वन्तर और उसमें उत्पन्न राजाओं के शासन-क्षेत्र के रूप में जम्बू, प्लक्ष, शाल्मलि कुश, कौञ्च, शाक और पुष्कर इन सात द्वीपों का वर्णन आया है । इन सातों द्वीपों का विस्तार

सब मिलाकर पचास करोड़ योजन बतलाया गया है, जिसमें सेसम्बूद्वीप की लम्बाई चौड़ाई एक लाख योजनहै और भारतवर्ष इसीका एकभागहै।

स्वायम्भुव मनुके बड़े पुत्र प्रियव्रतकी प्रजावती नामक पुत्रीका विवाह प्रजापति कर्दमके साथ किया गया। उसके सात पुत्र हुए जिनमें से अग्नीध्र को जम्बू का, मेधातिथि को प्लक्ष द्वीपका, व युष्मान को शालालि का, ज्योतिष्मान् को कुशका द्युतिमान् को कौञ्चका, भव्य को शाकद्वीपका और सवन को पुष्कर का अधिपति बनाया गया। फिरइनमें से प्रत्येकके भी प्राय: सात-सात ही पुत्र हुए जिनके लिए उक्त द्वीपों को सात विभागोमें जिनका नाम वर्ष रखा गया है, बाँट दिया गया। इनमें से प्रत्येक द्वीपमें सात पर्वत और सात नदियाँ भी थीं। इन सबकी बड़ी नामावली अनेक पुराणोंमें पाई जाती है, पर वह पाठकोंके लिए रुचि-कर नहीं होसकती। उनका एकाध नाम वर्तमान इतिहास या भूगोल के नामों से मिलताहै, पर उसे अधिक महत्व देना ठीक नहीं। एक विद्वान का इस सम्बन्धमें यह भी मत है कि ये सातों द्वीप एक समय में एक साथ मौजूद नहीं थे, पर पृथ्वी के उलट फेर के फलस्वरूप विभिन्नकालों बने बने और नष्ट हुएहैं। वर्तमान समयमें हम पृथिवीके जिस रूपकोदेख रहे है वह जम्बूद्वीप है और उसी का वर्णन कुछ अंशोंमें हमको प्रत्यक्ष दिखाई देताहै। शेष: छ: द्वीप भूत काल या भविष्यकाल से सम्बन्धित हैं। पर पुराणोंने इस विषय पर एक त्रिकालद्रष्टा की हैसियत से विचार किया है और सृष्टि रचना और इसके विलय के नाटक को इस प्रकार लिख दिया है जैसे वह एक ही समय में उसके नेत्रोंके सम्मुख हो रहा हो।

अधिकाँश विद्वानों के मतानुसार जम्बू द्वीप का जो वर्णन पुराणोंमें किया गया है उससे एशियाके बड़े भागका समावेश हो जाता है। पर चूँकि पुराने समयमें आवागमनके साधन बहुतही सीमितथे इसलिएसभी लेखकोंने जो भौगोलिक वर्णनलिए हैं उनमें वास्तविकता और कल्पना का सम्मिलन है। पुराणोंके वर्णनमें ही नहीं वरन् यूनानी इतिहासकार हेरोडोटस तथा इटैलियन मार्कोहोलोंके वर्णनोंमें भी बहुतसी ऐसी बात

पाई जाती है जो इन्होंने दूसरे लोगों से सुनकर लिख दी थीं और जो अब काल्पनिक सिद्ध हो रहीहै। इसलिए पुराणोंमें पृथ्वी के विभिन्न दीपों समुद्रों,खंडों का जो वर्णन किया गया है वह कथा रूपमें ही ग्रहण किया जाना चाहिये। वास्तवमें पुराणकार भारतवर्षमें ही रहते थे, यहीं के निवासियोंसे उनका परिचय और सम्बन्ध था, इसलिये इन्होंने यहाँ के नगरों,जनपदों,पर्वतों,नदियों के सम्बन्धमें जोकुछ लिखा है वही प्रामाणिक और उपयोगी सिद्धहोताहै। फिर पुराणोंका मुख्य उद्देश्यजन-साधारणको धार्मिक और नैतिक शिक्षा देना था। इसी दृष्टिसे उनकी महत्तापर विचारकरना चाहिये। इस प्रकारके भौगोलिक वर्णनतोइन्होंने कथानकों को प्रभावशाली बनाने के उद्देश्यसे कियेहै और वे सभीपुराणों में प्राय: उसीरूपमें लिख दिए गये हैं जिससेवे परम्परासे चलते आतेथे। आधुनिक वैज्ञानिक खोजों के दृष्टिकोणसे उनकी आलोचना में प्रवृत होना अपनी 'विद्या'के अहङ्कारका निरर्थक प्रदर्शन ही है।

आग्नीध्र को जम्बू द्वीप दिया गया उसके अपने पुत्रोंमें उसने नौ हिस्से कर दिये। इनम हिम नाम दक्षिणवर्ष नाभि राज। को मिला। नाभि से इनका उत्तराधिकार उनके पुत्र ऋषभ को मिला और ऋषभ अपने पुत्रभरतको राज्य देकर तपस्या करने चले गये। इन्हीं भरत के नाम से यह खण्ड भारतवर्षके नामसे प्रसिद्ध हुआ। पुराणोंके मतानुसार शकुन्तला के पुत्र भरतके नामके आधार पर इस देश का नाम भारत-वर्ष होनेकी कल्पना ठीक नहीं है। यह भरतभी महायोगी और तपस्वी थे। वे भी कुछ समय पश्चात् अपने पुत्र सुमतिको गद्दीपर बिठा कर वनको चले गये। इस प्रकार स्वायम्भुव मनुके पुत्र प्रियव्रत का वंश समस्त पृथ्वीपर बहुत समय तक शासन करता रहा।

इसके पश्चात् अन्य पाँच मन्वन्तरों के सम्बन्ध में भी तरह-तरहकी कथायें दी गई हैं जिनके अनेक प्रकारकी शिक्षायें प्राप्त ही सकती हैं। पर ऐतिहासिक या सामाजिक विकासकी दृष्टिसे इनमें विशेष तथ्य दृष्टि गोचर नहीं होता।

सूर्य का तात्विक विवेचन—

सृष्टि-रचना का मुख्य आधार सूर्य है। संसार के प्रत्येक पदार्थ में उसी से उष्णता प्राप्त होती है और वही प्राणी रूप बनकर प्रत्येक जीवित प्राणी में गति उत्पन्न करता है। मनुष्यमें निरोगिता,स्वास्थ्य,शारीरिक बल,उत्साह साहस पराक्रम आदि गु· भी उसी के प्रभाव से उत्पन्न होते है। वही प्रकाश का एकमात्र साधन है। उसके बिना सर्वत्र घोरअन्धकार ही है। प्रकाश के अन्य जितने कृत्रिम साधन मनुष्य ने खोज निकाले हैं वे भी सूर्य की ही देन हैं। सूर्य अग्नि-तत्व का प्रतीक है और उसके बिना संसार जड़ और मृतक ही है।

मार्कण्डेय पुराण में इस प्राकृतिक तत्व को ही सबसे अधिक महत्व दिया गया हैं और उसी की पूजा उपासना के योग्य बतलाया गया है। वैवस्वत मन्वन्तर का आरम्भ सूर्यके पुत्र मनुसे ही मानागया है और उसके वर्णनमें सूर्यकी महिमापर पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। कथामें कहा गया है कि त्वष्टा (विश्वकर्मा) का पुत्री संज्ञाका विवाह सूर्यसे हुआ था जिससे वैवस्वतमनु तथा यम दो पुत्रों तथा एक पुत्री यमुना का जन्म हुआ। उस समय सूर्यका तेज अत्यन्त प्रखर था और संज्ञा उसे सह सकने में असमर्थ थी। इससे वह अपना एक छायामय शरीर बनाकर गुप्त रूप से अपने पिता के घर चली गयी और छायासे कह गई कि तुम इस भेद को कभी प्रकट मत करना। कुछ समय पश्चात् पिता ने संज्ञा को फिर पति गृह जाने की सलाह दी तो वह वहाँसे चली आई और घोड़ी का रूप रख-कर सूर्य के रूप का सुधार होने के उद्देश्य से तप करने लगी।

कुछ समय पश्चात् सूर्य को छाया के रूप में कृत्रिम संज्ञा का भेद मालूम पड़गया और उन्होंने विश्वकर्माके पासजाकर इस सम्बन्ध में पूछा तो मालूम हुआ कि सूर्य के असंहनीय तेजके कारण पिताके यहां चलीआई थी और अब कहीं तप करने चली गई है। यह जानकर सूर्यने विश्वकर्मा से अपने स्वरूपको काटछाँटकर साम्य बना देनेको कहा। उन्होंने सूर्यको

'संवत्सर' रूपी खराद पर चढ़ाकर इस प्रकार छाँट दिया जिससे उनका स्वरूप बहुत दर्शनीय और लोकोपयोगी बन गया। उनके उस स्वरूप के दर्शन करके देवता उनकी इस प्रकार स्तुति करने लगे—

हे देव ! तुम ऋग्वेद स्वरूप हो, तुमको नमस्कार हैं। तुम्हीं यजुः स्वरूपहो, तुमको नमस्कार है। तुम्हीं ज्ञान (प्रकाश) के एक मात्र आधार हो,तुम्हीं तम (अन्धकार के नाशक, शुद्ध ज्योति स्वरूप और निर्मल हो, तुमको नमस्कार है । तुम शङ्ख, चक्र, शार्ङ्ग पद्म धारण करने वाले विष्णु रूप हो, तुम्हें नमस्कार है । तुम्हीं वरिष्ठ वरेण्य पर और परमात्मा हो, तुम ही समस्त जगत्में व्यापक हो,आत्म स्वरूप हो तुम्हें नमस्कार हैं। तुम्हीं ज्ञानी मनुष्योंकी निष्ठा, सर्वभूतोंके कारण स्वरूप हो। तुम्हीं प्रकाश आत्म रूपी भास्कर, दिनकर हो,तुम्हीं रात्रि के कारण स्वरूप हो, तुम्हीं संध्या और ज्योत्स्नाकारी हो। तुम्हीं भगवान हो, तुम्हारे द्वारा ही जगत् जागृत और गतिवान होता है । तुम्हारे प्रभाव से ही यह चराचर युक्त अखिल ब्रह्माण्ड भ्रमण करता है। सम्पूर्ण पदार्थ तुम्हारी किरणोंसे स्पर्श होकर पवित्र होते हैं। तुम्हारी किरणों द्वारा ही जलादि की पवित्रता साधित होती है। हे देव ! जब तक यह जगत् आपकी किरणों के संयोग प्राप्त नहीं होता तब तक होम दानादि कोई उपकारक कर्म भी नहीं हो पाता। आपके अङ्ग से जो किरणें निकलती हैं वे ही ऋक् यजुः साम रूपी त्रयी विद्या हैं। तुम्हीं ब्रह्म रूपी प्रधान और अप्रधान हो। तुम्हीं मूर्तिधारी और अमूर्त हो, स्थूल और सूक्ष्म रूप से तुम्हीं काल रूप हो।"

इस स्तोत्र में सूर्य का जो वर्णन किया है उससे प्रकट होता है कि इन पंक्तियोंका लेखकसूर्यकोहीपरमात्मा कामुख्यस्वरूपमानताहैऔरसंसार से एकमात्र उन्हींको पूजनीय,अर्चनीय,उपासनीय तत्व स्वीकार करताहै। वेद में भी प्रकार और तम दोनोंका कारण सूर्य को ही बतलायागया है और ब्रह्माण्डमेंजो गति और जगतमें प्राण तत्व दिखाई पड़ताहैउसकामूल भी सूर्यके अतिरिक्त कोईनहीं। सूर्यको त्रयी विद्या का भी मूल बतलाया गयाहै। यह 'त्रयीविद्या' वेदोंका एक महत्वपूर्ण विषय है और कुछविचार

करने से प्रतीत होता है कि वही हिन्दू धर्म की सबसे बड़ी मान्यताओं का मूल स्रोत है। इस सम्बन्ध में एक विद्वान ने लिखा है—

"ऋक्-यजः-सामका सम्मिलित रूपसूर्य है। वस्तुतःयह वैदिक तत्व-ज्ञान का मूलभूत दृष्टिकोण था। विश्वकी प्रत्येक रचना सूर्यकी ही शक्ति है। त्रयी विद्याको ही यज्ञ कहते है, इसलिए सूर्य को यज्ञ-नारायण कहा जाता है। त्रयी विद्या 'त्रिक' का ही दूसरा नाम है। भारतीय धर्म, दर्शन, वैदिक और पुराण तत्व सबका मूल त्रयी विद्या या त्रिक है वेदमें अव्यय-पुरुष, अक्षर-पुरुष और क्षर-पुरुष, पुराणों में ब्रह्मा, विष्णु शिव रूपी त्रिदेव एवं दर्शन में सत्व, रजु तम नामक तीन गुण त्रयी विद्या के ही रूप हैं। ये ही भूः-स्वः नामक तीन व्याहृतियाँ हैं। भारतीय साहित्य में 'त्रिकों' की अनेक समानान्तर सूचियाँ हैं। मन-प्राण-वाक् एवं प्राण-अपान व्यान त्रिक के ही रूप हैं। इस प्रकार त्रयी विद्या या 'त्रिक' का अपरिमित विस्तार भारतीय साहित्य में पाया जाता है। सूर्य उसे विद्या का सर्वोत्तम प्रतीक है।"

'मार्कण्डेय पुराण' में इस एकस्थान परही नहीं वरन् अनेक प्रसङ्गों में सूर्यको ही सृष्टिका सबसे महान और रचनात्मक साधन बतलायागया है। अध्याय ६४ में कहा गया है कि ब्रह्मा ने जब चारों वेदों को, प्रकट किया और उनका तब उत्तम तेज एकहोकर'ॐकार'के श्रेय तेजसे संयुक्त हुआ तब सूर्यका सर्वोच्च तेज दृष्टिगोचर होने लगा। यह तेज सृष्टि-रचना में सबसे पहले उत्पन्न हुआ था इसी से'आदित्य' कहा जाता है। पर उस आरम्भिक दशामें यह इतना प्रखर और अनियंत्रित थाकि ब्रह्माजीनेदेखा कि वे जो कुछ सृष्टि रचेंगे वह सब इसकी तीव्रता से नष्ट हो जायगी। इसका उत्ताप जल तत्वको सोख लेगा और पृथ्वी तत्वको भी भस्म रूप कर देगा। इसलिए उन्होंने सूर्य नारायण की स्तुति करते हुए कहा—

"जो सम्पूर्ण विश्वके आत्म स्वरूप हैं, जो इस विश्व रूप में ही वर्तमान हैं, विश्व ही जिनकी मूर्ति हैं, योगीगण जिनकी इन्द्रियों से अग्राह्य परम ज्योतिका ध्यान करते हैं,मैं उनको नमस्कार करता हूं।जो अचिन्त्य

शक्ति ऋग्वेदमय यजुर्वेद का आधार सामवेद की उत्पत्ति का कारण हैं, जो परमब्रह्म स्वरूप और गुणातीत है: सबसे पहले मैं उन्हीं सर्वकार -रूप, परम पूज्य,परमवेद्य,परम ज्योति, देवात्मता हेतु स्थूल रूपी श्रेष्ठ से भी श्रेष्ठतर आदि पुरुष भगवान् को नमस्कार करता हूं। हे देव ! तुम्हारी शक्ति ही 'आधा' है क्योंकि उसी के द्वारा प्रेरित होकर मैं जल पृथिवी, पवन और अग्नि रूपी देवताओं और प्रणवादि की सृष्टि करता हूं। इसी प्रकार स्थिति और प्रलय भी मैं तुम्हारी शक्ति से प्रेरित होकर ही करता हूँ।

हे भगवान् ! तुम्हीं वह्नि रूप हो। जब तुम पृथिवी का जल सोखते हो तब मैं जगत् की रचना और अन्नादि को सम्पन्न करता हूं। तुम्हीं सर्वव्यापी गगन स्वरूप हो और तुम्हीं इस पंच भूतात्मक विश्व की रक्षा करते हो। हे विवस्वन् परमात्म तत्व के ज्ञाता अखिल यज्ञमय विष्णुरूप में यज्ञों द्वारा तुम्हारी ही अर्चना करते है, आत्ममोक्षाभिलाषी जितेन्द्रय यतिगण परम सर्वेश्वर जानकर तुम्हारा ही ध्यान करते हैं। तुम्हीं देवरूप हो, मैं तुमको प्रणाम करता हूं। तुम्हीं योगीजनों द्वारा चिन्तनीय परब्रह्म स्वरूप हो, तुमको प्रणाम करता हूं। हे विभो ! तुम अपने तेज को निवृत्त करो मैं सृष्टि करने को उद्यत हुआ हूँ। तुम्हारा जो प्रखर तेज समूह सृष्टि में विघ्नकारी होता है उसे संयमित करो।"

इसी प्रकार देवमाता अदिति द्वारा और राज्य वर्धन के व्याख्यान में ब्राह्मणों और राजा द्वारा सूर्य के कई स्तोत्र इस पुराण में दिये गये हैं, जिनसे प्रकट होता है कि विष्णु, शिव, राम, कृष्ण आदि पौराणिक प्रतीकों के स्थान पर मार्कण्डेय पुराण के रचयिता ने 'विवस्वान्' (जिनसे आगे चल कर इन्द्र (प्राण) और विष्णु तथा शिव का आविर्भाव होता है) को ही उपासना तथा ध्यान का सर्व श्रेष्ठ और मूल लक्ष्य माना है। पुराण में देवासुर संग्राम की जो कथायें भरी पड़ी हैं; उसका बहुत कुछ सम्बन्ध भी सौर-शक्ति के आविर्भाव से ही है। वेदों में जिस वृत्रासुर का प्रसंग आया है और जिसको नष्ट करके इन्द्र 'देवराज' बने थे वह वास्तवमें सौर-शक्ति के अवरोधक अन्धकार तत्त्व के मिटने का ही वर्णन है।

शक्ति के दो रूप और देवी द्वारा असुरों का पराभव–

७३ से ८५ अध्याय तक देवी के आविर्भाव और उसकी अपार महिमाका वर्णन कियाहै। इसके लिए किसी सुरथ नामक राजाकाउपाख्यान दिया गयाहै कि उसके राज्यको शत्रुओंने षडयन्त्र करके छीन लिया और उसे विवश होकर सबकुछ छोड़कर वनमें चला जाना पड़ा। पर वहाँभी उसका ध्यान अपने महल, कोशागार, नगर, हाथी, घोड़ों में लगा रहा और वह उनके विषयमें चिन्ता करता हुआ दुःखी रहनेलगा। वहीं उसकी भेंट समाधिनामक एक वैश्य से हो गई जिसको उसके स्त्री-पुत्र आदिने समस्त धन अपहरण करके घर से निकाल दिया था और जो अब वनवासियोंके साथ रहकर जीवन-निर्वाह कर रहा था । पर अब भी उसका घर सम्बन्धी मोह छूटा न था और वह घर वालों के हानि-लाभ सुख-दुख की बात सोचते हुए व्यस्त रहा करता था। इन दोनों ने उसी अरण्यमें आश्रम बनाकर रहने वाले मेधा ऋषिसे अपनी दुर्दशा और मनोव्यथा के विषयमें प्रश्न किया। ऋषिने उनको मोहजनित भ्रमका रहस्या समझाया और साथ ही देवीकी महिमा तथाउपासना की कथा भी सुनाई जिसके द्वारा वे अपनी विपत्तिसे छुटकारा पा सकते थे।

देवीका यह उपाख्यान 'दुर्गा सप्तशती' के नाम से प्रसिद्ध हैं और वह कितनेही स्थानोंमें थोड़े बहुत अन्तरके साथ कहा गयाहै। इस महाशक्ति का प्रथम आविर्भाव सृष्टिके आरम्भहोने से भी पूर्व उस समय हुआ जब जगत्कर्ता भगवान विष्णुसो रहे थे और उनकी नाभिसे सृष्टिके रचयिता ब्रह्माजीकी उत्पत्ति हुईथी। उससमय विष्णुके कान के मैल से मधु और कैटभ नामके दो दैत्य उत्पन्नहुए और ब्रह्माजीको मारनेको दोड़े। ब्रह्मा उनका सामनाकरने में असमर्थ थे अतः उन्होंने परब्रह्म की आदि शक्ति महामायाकी स्तुतिकी। इससे सन्तुष्टहोकर देवीप्रकटहुई और उसने विष्णु को जगाकर मधु और कैटभके कुकृत्यका उनको ज्ञान करादिया। विष्णु इन असुरोंसे पाँचहजार वर्षतक बाहु युद्धकरते रहे, पर उनका विनाश न कर सके। तब महामायाने ही उनको मोहितकरके कहलवाया कि 'हे विष्णु

'हम तुम्हारे साथ युद्ध करके सन्तुष्ट हुए हैं, हमसे कोई वर माँगो।' विष्णु ने कहा तुम मेरे वध्य हो, यही वर मैं माँगता हूँ।' वचन बद्ध होनेसे उन्हें वर देना पड़ा और तव विष्णु ने चक्र से उनका मस्तक काट दिया।

जव देवलोकका अधिपति इन्द्रको वनायागया तो महिष नामक असुर ने उनका विरोध किया और अपनी विशाल सेनाके द्वारा उनको हराकर देवलोक पर अधिकार कर लिया। इन्द्र और अन्य देवगण ब्रह्माजी को साथलेकर विष्णुऔर महादेवकी शरणमें गये औरमहिषासुरके अत्याचारों की कथा उनको सुनाई। उसे सुनकर वे वड़े क्रोधितहुए और उनकेमुखोंसे एक महातेज निकला। उसीसमय ब्रह्मा,इन्द्र तथाअन्य देवगणोंकेमुखसेभी तेज प्रकट हुआ। समस्त देवताओंके उस तेजने सम्मिलितहोकर एक देवी का रूपधारण कर लिया। सवदेवताओने उसे अपने-अपने सर्वश्रेष्ठ अलंकार और अस्त्र-शस्त्रदियेऔर उसेत्रैलोक्यमें अजेयएक महाशक्तिवनादिया इस प्रकार वह देवी जवयुद्धके लिए प्रस्तुत होकर गर्जनेलगी तो उस महा शव्दसे तीनोंलोक काँपनेलगे। उसे सुनकर महिषासुरभी अपनी सेना को सजाकर दौड़ाऔर दोनों पक्षोंमें घोरसंग्राम होते लगा। आरम्भमें महिषासुरकेचिक्षुर,चासर,उदग्र,महाहनु,असिलोमा,वाष्कलऔर विडालाक्षसेनापतियोंसे सामनाहुआ और एक-एक करके वे सभमारे गये। फिरदुर्धरऔर दुर्मुख आदि महिषासुरके महापराक्रमी सहयोगी रणभूमिमें उतरे परदेवी के सामनेवे भी अधिक देर तक न ठहरसके और सेना-सहित मारे गये।

अपनी सेना और साथियोंको इसतरह नष्ट होता देखकर महिषासुर अत्यन्तक्रोधित होकर सामने आया और अपने समस्त अद्भुत साधनों में भयंकर संग्राम करने लगा। वह कभी महिष कभी सिंह और कभीहाथी का रूपधारण करके लड़ताथा। कभीभूमिपरऔरकभीआकाश में जाकर शस्त्र वर्षाकरता था। उसके भयंकर संग्रामसे तीनोंलोक क्षुब्ध हो गये। तब देवी अपने सिंहसे उछाटलेकर महिषासुरके ऊपर कूद पड़ी और उसे पैरसे दवाकर तलवारसे उसका मस्तक काटडाला। उसका वधहोते ही

सर्वत्र हर्षकी लहर उठ गई और समस्त देवता देवीकी जय-जयकार करने लगे। इस अवसर पर देवगणोंने देवीकी जो स्तुतिकी वह बड़ी अर्थपूर्ण है। उसमें कहागया हैंकि देवीने अपनी शक्तिका समस्त विश्वमें विस्तार कर रखा है और ब्रह्मा, विष्णु, महेश भी उसके रहस्यको ज्ञात नहींकर सकते। वही जगतका कारण अव्याकृता प्रकृति, देवताओं और पितरोंकी स्वाहा और सुधा तथा मोक्षाभिलाषियोंको मोक्षप्रदान करने वाली परा-विद्याहै। देवीही तीनों वेदोंकी शब्दमयी मूर्ति सम्पूर्ण जगत की रक्षा करने वाली, वार्ता समस्त शास्त्रोंका रहस्य प्रकट करने वाली सरस्वती व सागर से उद्धार करने वाली दुर्गा विष्णुके हृदयमें निवास करनेवाली लक्ष्मी और शिव के सिर पर विराजने वाली गौरी है। उसकी शक्ति और बल अपार है।

तीसरी बार जब शम्भु और निशुम्भ नामक असुरोंने देवताओं को डराकर भगा दिया तो वे फिर देवीकी शरण में पहुँचे। उस समय पार्वतीकी देहसे अम्बिका प्रकट होकर देवताओंकी रक्षा के लिए असुरों से युद्ध करने को अग्रसर हुई। उनकी अनुपम सुन्दरताका वर्णन सुनकर पहले शुम्भ ने अपना दूत भेजकर अपना प्रणय सन्देश कहलवाया। पर देवीने उत्तरदिया कि मैंने यह प्रतिज्ञा कीहै कि "जो मुझे युद्ध में जीत सकेगा वही मेरा भर्ता हो सकेगा।" इस पर शम्भु ने क्रोधित होकर अपने सेनापति धूम्रलोचनको एक बड़ी सेनाके साथ देवीको पकड़ कर ले आने का आदेश दिया। इस असुर सेनाके साथ देवीका विकट संग्राम हुआ, और अन्तमें सब असुर मारे गये। फिर चण्ड-मुण्ड नामक महा-असुर लड़ने को आये पर वे भी काली द्वारा मार डाले गये, जिससे कालीका नाम 'चामुण्डा' पड़ गया।

इसके पश्चात् रक्तबीज नामक असुर रणभूमि में आया। इसमें यह विशेषता थी कि उसके रक्तकी जितनी बूंदें पृथ्वी पर गिरती थी उतने हीनये असुर और पदाहो जातेथे और उनका नाश असम्भवप्रतीत होताथा तब देवीने कालीसे कहाकि जबमैं रक्तबीज पर अस्त्रसे प्रहार करूं तो

तुम उसके रक्तको पी जाओ, एक भी बूंद को भूमि पर मत गिरनेदो। कालीने ऐसाही किया और तब उस महाअसुर का वध किया जा सका।

रक्तबीजके मारे जाने पर स्वयं शंभु और निशुंभ सम्पूर्ण सेना-सहित रणक्षेत्र में उपस्थित हुए। पहिले निशुम्भका देवीके साथ घोर संग्राम हुआ और वह मारा गया फिर शंभु सामने आया और उसने देवीकी सहायक सप्त मातृका शक्तियों ब्रह्माणी, माहेश्वरी, कौमारी, वैष्णवी वाराही, नारसिंही और ऐन्द्री की ओर संकेत करके कहा—"तुम दूसरों का आश्रय लेकर युद्ध करती हो और अपने पराक्रमका झूँठमूँठ अभिमान करती हो।" इस पर देवीने उन सात शक्तियों को अपने अन्दर समेट लिया और कहा कि ये सब मेरी विभिन्न शक्तियां है जो मेरीइच्छा से प्रकट होती रहतीहैं। अब देख मैं अकेलीही तेरा वध करतीहूँ। इसके पश्चात् असुर सेनासे देवीका सबसे बड़ा संग्राम हुआ और शुंभ तथा उसके समस्त सहयोगी असुरोंको पूर्णतया नष्ट कर दिया गया। इसमहान विजयके पश्चात देवताओंने निर्भय और प्रसन्न होकर देवीकी जो स्तुति की उसमें उनकीही सृष्टि का कारण बतलाया है। देवताओं ने कहा—

"महामाया ही विपत्तिमें पड़े जनों का कष्ट दूर करती है। वही जगत्की माता और चराचर विश्व की ईश्वरी है। सम्पूर्ण विद्याएँ और समस्त दैवी शक्तियाँ उन्हीं के रूप हैं। जगत् की उत्पत्ति, स्थिति और संहार उनकी इच्छासे होता है।"

स्तुतिसे प्रसन्न होकर देवी ने देवताओं को वरदान देते हुत आश्वासन दिया कि "पृथ्वी पर जब-जब असुरों का उत्पात बढ़ेगा में विभिन्न रूपोंमें अवतीर्ण होकर उनका नाश और तुम्हारी रक्षा करूँगी।"

"देवी सप्त शती' का यह उपाख्यान 'मार्कण्डेय पुराण' का एक महत्वपूर्ण और प्रसिद्ध अंश हैं और नवरात्रियोंके अवसर पर लाखोंभक्त इसका पाठ करते हुए देवीसे अपने कल्याण की याचना करते हैं। एक धार्मिक कथाके रूपमें निःसन्देह यह रचना बड़ी प्रभावशाली और रोचक

है, पर इसके आध्यात्मिक और आधिदैविक अर्थ इससे भी अधिक शिक्षा-प्रद हैं।

आधिभौतिक रूप में तो इसका स्पष्ट तात्पर्य यही है कि संसार मे दैवी शक्तियों के साथ आसुरी शक्तियों का प्रादुर्भाव तथा संघर्ष सदैव होता है। असुर या दुष्ट स्वभावके व्यक्ति अधिक उग्र, आक्रमणकारी और धूर्त होतेहैं और इस कारण प्रायः आरम्भमें देवशक्तियों या सज्जन व्यक्तियों को दवा लेते हैं, उनको पीड़ित करते हैं। पर जब कष्ट मिलने से देवगण सावधान होत हैं, अपनी शक्तियों को एकत्रितऔर संगठित करतेहैं तब वे असुरोंके लिए अजेय बन जाते हैं। असुरोंका सङ्गठन अहङ्कार, स्वार्थपरता दूसरों के उत्पीड़न की भावना पर आधारित होता है, जब कि देवताओं (सज्जनों के संगठन में त्याग, तपस्या, परोपकार, विश्वकल्याण जैसी उच्च भावनायें भी निहित रहती हैं। इसलिए संघर्ष में असुरगण चाहे जैसी माया, छल वल से काम लें,अन्त में उन्हें परास्त होना ही पड़ता है।

आध्यात्मिक दृष्टि से इस कथा का अर्थ मनुष्य के भीतर उत्पन्नहोने वाली सद् और असद् वृत्तियोंके संघर्ष और मानसिक हलचल से है। भौतिक लाभ और सुखोंको प्रधानता देना और उनके लिए अनुचितढंगों को अपनाना बहुसंख्यक मनुष्यों का स्वभाव होता है। वे इस जीवन का अस्तित्व देह तक ही समझते हैं और उनकी धारणा यही होती है कि हम अपने अन्तःकाल तक जो कुछ ऐश्वर्य, वैभव प्राप्त कर लेंगे और उसके द्वारा जितना विषय-सुख भोग लेंगे, यह सार है, क्योंकि देहत्याग के वाद कोई निश्चय नहीं कि क्या हो। इस प्रकार के निकृष्ट विचार मनुष्य में स्वार्थपरता के भावों को भड़काते हैं जिससे अन्य व्यक्तियोंको किसी भी प्रकार की हानि पहुँचानेमें संकोच नहीं करता।

यह एक प्रकारका तामसी अहभाव होताहै। जिससे मनुष्य के अन्तर के सद्विचार क्षीण होजाते हैं और वह समाज तथा संसारके लिए भ्रष्टाचारी तथा ध्वंसकारी शत्रुका रूप ग्रहण कर लेता है। ऐसे तामसी और स्वार्थान्धता के विचारोंका नाम ही महिषासुरहै जो आत्माकी सद्वृत्तियों

को दबाकर दूषित भावनाओं का राज्य स्थापित कर देता है। इस दूषित अहम्भावसे छुटकारा पानेके लिए मनुष्यको बड़ा प्रयास और तैयारी करनी पड़तीहै। उसके लिए समस्त देव-शक्तियों-श्रेष्ठ मनोवृत्तियों को जागृत करके एक लक्ष्यपर एकत्रित करना पड़ताहै।तब वह शक्तिरूपादेवी एक-एक करक दुर्विचारोंकी सेनाका संहार करती है। अन्तमें दूषितअहं-भाव विभिन्न रूपोंमें उसके सामने आता है पर सद्विचारों की पैनी तलवार से उसको निर्जीव कर दिया जाता है।

आधिदैविक दृष्टिसे 'देवी सरस्वती' की कथा का आशय सृष्टि के विकास पर आरम्भिक परिवर्तनोंसे है। जैसा हमें मालूम है हमारीजानी हुई चराचर सृष्टिका मूल आधार सूर्यहै। उसके प्रकाश और उष्णता के कारण ही इन्द्रिय ज्ञानयुक्त जीवोंकी उत्पत्तिऔर वृद्धि हो सकीहै। पर-सृष्टि के आरम्भमें जब सूर्यका आविर्भावहुआ तब बहुतसमयतक तम का आवरण उसके प्रकाशको रोकेरहा। जो पदार्थ याशक्ति प्रकाश देवभाव के फैलनेमें बाधकहोतीहै उसे सृष्टि विज्ञानके ज्ञाताऋषियोंने 'असुर'के नामसे पुकाराहै।प्रकाशकी तरह प्राण-तत्व या गति तत्वभी देव-भावका सूचक है क्योंकि उसीसे प्राणी जगत का विकास और उत्थान होता है। जब तक सूर्यके तेजका परिपाक नहीं होताऔर उसके द्वारा प्राण-शक्ति कार्यशील नहींहोती तब तककी तमके आवरण-युक्त अवस्थाकोवृत्र अथवा महिषासुर का आधिपत्य कहाजाता है। उस समय तक सूर्यया इन्द्र अपने 'राज्य'से वंचित होताहै। जब सूर्यकी शक्ति का परिपाक होजाताहै और सौर-तेज सर्वत्र व्याप्तहोकर सृष्टि-रचनाके कार्यको अग्रसर करतेहैं तब वहीं वृत्र या महिष का वधहोजाताहै। यह कार्य देव-भावकी शक्तिका संग्रह होनेसे ही होताहै,इसलिएउसे शक्तिया देवीद्वारा सम्पन्न होना कहा जाना ठीकही है। यह सृष्टि-विकास और रचनाके परिवर्तन करोड़ों वर्षों में होते हैं अतएव 'देवासुर संग्राम'उतने समय तकचलता ही रहताहै। यह सब वर्णनवेदोंमें स्थान-स्थान पर पाया जाताहै और पुराणकारोंने भी उसे उपाख्यान का रूपदेकर अपेक्षाकृत सरल भाषामें लिख दियाहै। इस विषय पर प्रकाश

डालते हुए एकविद्वानने देवासुर संग्रामका इस प्रकार स्पष्टीकरण कियाहै—

"देवोंके अधिपति पुरन्दर या इन्द्र का आशय सौर-प्रा। से है। सूर्य मे जागरण भाव ही है। सूर्यके भीतर सोन'(निद्रा) नहीं है। आसुरी-भाव परिधि पर आक्रमण करते हैं, पर सूर्य-मण्डल के भीतर वे प्रवेश नहीं कर पाते। केन्द्र पर देवताओं का ही अधिकार रहता है। असुर केन्द्र तक कभी नहीं पहुँच सके। इसलिए 'शतपथ ब्राह्म.' में इन्द्र के देव सुर संग्राम को वनावटी कहा है—

न त्वां युयुत्से कतमच्चनाहर्न तेऽमित्रोघवन् कश्चनास्ति।
मायेत्सा ते यानि युद्धान्याहुर्नाद्य शत्रु ननु पुरायुयुत्सुः ॥

अर्थात—"हे इन्द्र। तुम कभी लड़े नहीं, न कोई तुम्हारा शत्रु है। तुम्हारे युद्धोंका सब वर्णन माया या वनावटी है। न आज तुम्हारा कोई शत्रु है और न पहिले तुमसे लड़ने वाला कोई था।"

'वेदों में इन्द्र और वृत्र के युद्धों का विशद वर्णन है। वृत्रके मरने से इन्द्र 'असपत्न' (विना शत्रु के होगया वही भाषा मार्कण्डेयपुराणमें महिष सुरके लिए प्रयुक्त की गई है-इन्द्रोऽभून्महिषासुरः' (७५-२) महिषासुरने इन्द्र को स्वर्गके सिंहासनसे पदच्युत करदिया और स्वयं इन्द्र वन वैठा। पुनः इन्द्र (सूर्य मण्ढलका अधिष्ठातृ देवता देव-भावकी वृद्धिसे या देवी की सहायतासे शक्तिशाली हुए और महिषासुर मारागया। जो आवरण करने वाला भाव है जो अपने तमसे सौर तेजको ढक देताहै वही वृक्ष या महिष है। सृष्टिकालके हिसावसे परमेष्ठीको सूर्य-भाव में आने को समय लगा होगा सूर्यके जन्मसे लेकर उनके तेजका पूर्ण परिपाक होने तक महिषासुरही शक्तिशाली रहा होगा अन्तमें जब इन्द्र पुनः प्रबल हुए तव वही महिष वध हुआ।"

देवासुर संग्राम और देवीके युद्धोंकी कथायें वास्तवमें वड़े सुन्दर रूपकहै जिनकेमाध्यमसेपुराणकारोंने आध्यात्मिक और आधिदैविकगहन तत्वोंको सर्वसाधारण बोधगम्य रूपमें वर्णन किया है। उनमें तामसिक शक्तिके ऊपर सात्विक शक्तिकी विजयका भाव दर्शाया गया हैजो मनुष्य

को सतोगुणका अवलम्बन करनेकी प्रेरणा देताहै। उससे प्रकट होताहैकि अन्धकार या तमकी शक्तियाँ चाहे कुछ समयके लियप्रकाश-सत्यकी शक्ति को आच्छादित करलें पर अन्तमें विजय सत्य-सतोगुण की होती है।

चौदह मन्वन्तर–

मन्वन्तरों का वर्णन और विवेचन पुराणोंका एकमुख्य लक्षण माना गया है और मार्कण्डेय पुराणमें भी इस सम्बन्धमें अनेक रोचक कथायें दी गईहैं। उपर्युक्त 'देवी-सप्तशती' जिसका सारांश पिछले पृष्टों में दिया गयाहै, स्वारोचिष मन्वन्तरके कथानकका ही एक अंश है। मन्वन्तरों की संख्या चौदह बतलाईहै जिनमें से स्वायम्भुव, स्वारोचिष, औत्तम, तामस रैवत और चाक्षुष-ये छः वीत चुकेहैं। सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर वर्तमान समय में चल रहाहै। इसके पश्चात सावर्णि, दक्षसावर्णि, ब्रह्मसावर्णि, धर्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि रौच्य और भौत्य नामके सात मन्वन्तर और व्यतीत होंगे। ये चौदह मन्वन्तर ब्रह्मा के एक दिन के अन्तर्गत होते हैं जिनका परिमाण मनुष्यों के ४ अरब ३२ करोड़ वर्षोंका बतलाया गया है। ब्रह्माके इस एक दिन अथवा चौदह मन्वन्तरों की सम्मिलित अवधि को एक 'कल्प' कहा जाता है।

यदि हम मानवीय इतिहास के दृष्टिकोणसे विचार करते हैं तो दस बीस हजार वर्षका इतिहास ही बहुत अस्पष्ट जान पड़ता है जिसका पता लगानेमें बहुत कुछ अनुमान और कल्पनासे काम लेना पड़ता है। ऐसी दशामें पुराणकारोंका चार अरब वर्ष पहिलेका इतिहास नाम-धाम सहित लिखदेना विचित्र हीजान पड़ताहै। पर इसका कारण यहीहै कि पुराणकार सृष्टिके निर्माण और प्रलयको एक सामान्य नियम मानकर उसके मुख्य परिवर्तनों (सर्गोंकी चर्चा करतेहैं। यह ठीकहै कि वर्तमान मानव-सभ्यता का इतिहास आठ-दस हजार वर्षसे अधिकका विदित नहीं होता और वहभी अधूरा और कुछ अंशोंमे अनुमानोंपर ही आधारित है, पर इसमें कोई सन्देह नहीं कि पृथ्वीकी सृष्टि और प्रलय होते रहने से ऐसी सभ्यतायें हजारों बार बन और बिगड़ चुकी हैं और हजारों ही बार बनें और बिगड़ेंगी। जब देश और काल अनन्त और अनादि हैं और निर-

न्तर परिवर्तन विश्व का अटल नियम है तब आजकी दुनिया और मनुष्य जाति को ही सब कुछ समझ लेना या उसके आगे पीछे संसार को शून्य ही मान लेना ज्ञान का बहुत सीमित प्रयोग करना है।

हम जानते हैं कि पुराणों में विभिन्न मन्वन्तरों के राजाओं ऋषियों और व्यक्तियोंकी जो कथायें दी गई हैं वह वर्तमान दुनियाके स्वरूप और नमूनेके अनुसारही लिखीं गई हैं.पर उनमें किसी तरहकी हानि नहींजान पड़ती। इन वर्णनों का मुख्य उद्देश्य पाठकोंको सृष्टिकी विशालता और अनादिकालसे होते चले आने वाले विविध परिवर्तनोंका आभास कराना ही है जिससे वह अपनी वास्तविकताका अनुभवकर सकें और अधर्म तथा अनीति से बचकर अपने धर्म कर्त्तव्योंपर आरूढ़ रहे। व्यक्तियों के नाम और उनके कथोप कथन तो इस उद्देश्यसे लिखे गयेहैं जिससे पाठकोंको वे स्वाभाविक जान पड़ें और वे उनसे शिक्षाऔर प्रेरणा प्राप्त कर सकें। हम तो यह भी निश्चय पूर्वक नहीं कह सकते कि प्रत्येक मन्वन्तरों में मनुष्यों का आकार प्रकार और शरीर रचना वर्तमान तरहकी ही थी और वे इसीप्रकार बोलकर अपना मनोभाव प्रकट करते थे। पर इसमें सन्देह नहीं कि पञ्चभूत, प्राणशक्ति और चेतन-तत्व मिलकर इसी से मिलती-जुलती प्राणियों की रचना और विनाश सदैव करते ही रहते है और विविध प्रकारकी भलीं-बुरी घटनाओं का होते रहना प्रकृति का एक स्वाभाविक और अनिवार्य नियम है। यदि किसी कालके मनुष्य चार हाथ पैरों से गमन करने वाले हों या उड़कर आते जाते हों तो इससे भी भलाई-बुराई, नैतिकता-अनैतिकता, पाप-पुण्य की शिक्षाओं में कोई अन्तर नहीं पड़ता।

पौराणिक कथाओं का मुख्य उदेद्श्य लोगों को सदाचरण की सद्-शिक्षाएं देना ही है। वर्णनोंके नाम, गाँव,संख्या, कथोपकथन के ज्यों का त्यों होने पर बहस करना निरर्थक है। रामायण और महाभारतके नायकों के अथवा बुद्ध ईसा,सिकन्दर,चन्द्रगुप्त, चाणक्य अशोक आदि ऐतिहासिक व्यक्तियोंके जो सम्भाषण उनके जीवन चरित्रोंया ऐतिहासिक कथाओं में दिये गये हैं वहभी उस समय किसी 'शार्ट हैण्ड' लेखकने नहीं लिखेथे।पर घटनाओं को सम्पूर्णता और स्वाभाविकता का रूप देने के खयाल से कथा

लेखक, कविगण या नाटककार उसे ऐसे रूपमें लिखतेही है मानो वे घटनायें उनकी आंखोंके सामने ही हुई हों। पौराणिक कथाओं की रचनाभी इसी प्रकार और ऐसेही शिक्षा देनेके उद्देश्यसे कीगई है। हमतो उन लेखकों के व्यापक दृष्टिकोण की प्रशंसा ही करेंगे जिन्होंने मानव मात्रको ही नहीं प्राणीमात्र में एकही सत्ता का अनुभव करके मनुष्योंके सम्मुख सत्य, न्याय, सहानुभूति, दया, क्षमा के दैवी गुणोंके आदर्श ऐसे रूपमें उपस्थित किएजो किसी सहृदय व्यक्ति के अन्तःकरण को सहज ही प्रभावित कर सकतेहैं।

इस दृष्टि से मार्कण्डेय पुराण का दर्जा वहुत ऊँचा माना जाता है। इसमें मतमतान्तर, सम्प्रदायवाद औरविशेष स्वार्थोंकीभावनासे ऊपर उठ कर आत्मोथान, सच्चरित्रता, परोपकार, दया क्षमा आदि सद्गुणों की ही शिक्षादी है। इन तथ्यों को साधारण बुद्धिके मनुष्यभी हृदयंगम कर सकें सके लिए उपाख्यानों की रोचक शैली का अवलम्बन किया है। इसके 'हरिश्चन्द्र' और 'मदालसा के उपाख्यान धार्मिक-जगत् में अमर वनचुके हैं और देवी 'सप्तशती शाक्त-सम्प्रदायहीं नहीं हिन्दूमात्रका परायण ग्रन्थ बन चुकाहैं। नरक वर्णन, योग निरूपण, सूर्यतत्व विवेचन, पातिव्रत महिमाआदिका इसमेंऐसे प्रभावशाली ढ़ंगसे वर्णनकिया हैंकि प्रत्येकपाठक को उससे कुछ न कुछ सद्प्रेरणा अवश्य प्राप्त होतीहै। सृष्टि-रचना, जड़ और प्राणी जगत्का क्रमविकास, मानव स्वभावके दोष और दुरितोंका कथन, राजवंशोंकी कथायें आदि पौराणिक विषयोंके वर्णनमें भी मार्कण्डेय पुराणने अतिश्योक्तिसे यथासम्भव वचकर शिक्षाऔर उपदेशपर आधिक दृष्टि रखीहै। इन सब विशेषताओं के कारण सामान्य जनता तथा विद्वानोंमें भी मार्कण्डेय पुराणका अपेक्षाकृत अधिक मानहै और हमारा विश्वासहै कि पाठक इसके परायण से पर्याप्त लाभान्वित हो सकते हैं।

मार्कण्डेय पुराणकी श्लोक संख्या अन्य पुराणों के विस्तार को देखते हुए पर्याप्त न्यून है। अतः इसमें कोई खास कभी नहींकी गई है। केवल श्राद्ध सम्वन्धी कुछ विषय जो अप्रासङ्गिक जान पड़ता था छोड़ा गया है। अन्यथा आदिसे अन्त तक सम्पर्ण ग्रन्थ ज्यों का त्यों रखा गया है।

—श्रीराम शर्मा आचार्य

मार्कंडेय पुराण की विषय सूची

—:x:—

॥ ॐ ॥

मार्कण्डेय पुराण

—=

॥ प्रकर्ण-१ महाभारत विषयक चार शंकायें ॥

यद्योगिभिर्भवभयातिविनाशयोग्यमासाद्यवदितमतीवविविक्तचितैः तद्वः पुनातुहरिपादसरोजयुग्ममाविर्भत्क्रमविलघित भूर्भुवःस्वः॥१। पायात्सवः सकलकल्मषभेददक्षः क्षीरोदकुक्षिफणिभोगनिविष्टमूर्तिः। श्वासावधूतसलिलोत्कणिका करालः सिन्धुःप्रनृत्यसिवयस्यकरोति सगात् ॥२॥ नारायणंनमस्कृत्यनरंचैवरोत्तमम् ।ः देवीसरस्वर्ती व्यासंततोजयमुदीरयेत् ॥३॥

तपःस्वाध्याय निरतंमार्कण्डेयमहामुनिम् ॥
व्यास शिष्योमहातेजाजमिनिःयंपृच्छत ॥१॥

संसार के भय और दुख के नाशक, एकान्त चित्त योगियों और सन्यासियों द्वारा ध्यान योग्य तथा वंदनीय, भू. भुव. और स्वर्लोक का वामन रूप से अतिक्रमण करने वाले, नारायणके पद पद्म आपको पवित्र करें ॥१॥ जो शेषशायी, श्वास से जल के कारण कण को कम्पायमान करने वाले, जिससे समुद्र नर्तन करता स। प्रतीत होता है, यह अविनाशी नारायण तुम्हारे रक्षक हों ॥२॥ नर नारायण, नरोत्तम तथा देवी सरस्वती को प्रणाम करके जप कीर्तन एव पुराण आदि का पाठ करें ॥ ॥ एक समय की बात है महर्षि वेदव्यास के शिष्य महा तेजस्वी जैमिनि ने वेदादि के अध्ययन में परायण, महा तपस्वी मार्कण्येयजी से प्रश्न किया ॥१॥

भगवन् भारताख्यानं व्यासेनोक्तं महात्मना ।
पूर्णमस्तमलःशुभ्रैर्नानाशास्त्रसमुच्चयः ॥२
जातिशुद्धसमायुक्तं साधुशब्दोपशोभितम् ।
पूर्वपक्षोक्तिसिद्धान्तपरिनिष्ठासमन्वितम् ॥३
त्रिदशानांयथाविष्णुर्द्विपदांब्राह्मणो यथा ।
भूषणानाँचसर्वेषाँयथाचूडामणिर्वरः ॥४
यथायुधानांकुलिशमिन्द्रियाणांयथामनः ।
तथेहसर्वशास्त्राणाँमहाभारतमुत्तमम् ॥५
अत्रार्थश्चैववधर्मश्चकामोमोक्षश्चवर्ण्यते ।
परस्परानुबन्धाश्चसानुबन्धाश्चतेपृथक् ॥६
धर्मशास्त्रामदश्रेष्ठमर्थशास्त्रमिदपरम् ।
कामशास्त्रमिदंचाग्यं मोक्षशास्त्रंतथोत्तमम् ॥७
चतुराश्रमधर्माणामचारस्थितिसाधनम् ।
प्रोक्तमेतन्महाभागत्रेदव्यासेनधीमता ॥८

हे भगवान् ! महात्मा वेदव्यास जी ने जिन 'भारत' ग्रन्थ को कहा है, वह अनेक शास्त्रों से मर्माथ बोला ॥२॥ पवित्र शब्द से युक्त, छन्दालकारों से सम्पन्न, कानों को सुखप्रद है तथा उससे वर्णित यथार्थ प्रश्नों का उत्तर सन्निविष्ट है ॥३॥ जैसे देवगण में विष्णु, मनुष्य में ब्राह्मण और आभूषणों में चूड़ामणि ॥४॥ अस्त्रों है वज्र तथा इन्द्रियों में मन प्रमुख है वैसे ही सम्पूर्ण शास्त्रों में एक मात्र महाभारतही है ॥५॥ इसमें धर्म, कम, काम मोक्ष का पारस्परिक सम्बन्ध है तथा वे प्रकट और पृथक पृथक कहे गये हैं ॥६॥ इसलिए यही धर्मशास्त्र, अर्थशास्त्र, कामशास्त्र, और मोक्षशास्त्र है ॥७॥ हे महाभाग ! महर्षि वेदव्यास ने इसमें चारों आश्रम, उनका आचार अवस्थान तथा साधन, सभी कुछ विशेष रूप से कहा गया है ॥८॥

तथातातकृतं ह्येतद्व्यासेनोदारकर्मणा ।
यथा व्याप्तं महाशास्त्रं विरोधैर्नाभिभूयते ॥९

व्यासवाक्यजलौघनकुतर्ककरुहारिणा ।
वेदशैलावतीर्णननीरजस्कामहीकृता ॥१०

कलशब्दमहाहंसमहाख्यानपराम्बुजम् ।
कथाविस्तीर्णसलिलंकाष्णवेदमहाह्रदम् ॥११

तदिदं भारताख्यानं बहुश्रुतिविस्तरम् ।
तत्त्वतोज्ञातुकामोहंभगवस्त्वामुपस्थिति ॥१२

कस्मान्मानुषतांप्राप्तोनिर्गुणोऽपिजनार्दनः ।
वासुदेवोजगत्सूतिस्थितिसंयमकाहणम् ॥१३

कस्माच्चपाण्डुपुत्राणामेकासाद्रुपदात्मजा ।
पञ्चानाँमहिषीकृष्णाह्यत्रनःसंशयोमहान् ॥१४

उन उदारकर्मा व्यासजी ने इस महाशास्त्र को इस प्रकार रचा है कि उसके अत्यन्त विस्तृत होने पर भी इसमें कोई स्थल किसी भी स्थल का परस्पर विरोधी नहीं है ॥९॥ वासुदेव की कवच रूप जल राशि वेद रूप पर्वतों से प्रकट हुई और उसने कुतर्क रूप को उखाड़ कर भूमि को रजहीन बना दिया ॥१०॥ यह पंचम वेद रूप जलाशय महाशब्द रूप हंसों और महाख्यान रूप अरविन्दों से सुशोभिततथा विस्तीर्ण कथा नीर के द्वारा परिपूर्ण हुआ है ॥११॥ हे प्रभो ! जो महाभारत शास्त्र वेदार्थ और श्रुतियों से सम्पन्न हैं, उसकायथार्थ जानने केनिमित्त ही आपके निकट उपस्थित हुआ है ॥१२॥ विश्व सृष्टि, स्थिति और संहारकर्ता जनार्दन वासुदेव निर्गुण होते हुए भी मनुष्यत्व को किसलिए प्राप्त हुए । १३॥ द्रुपद सुता द्रोपदी एक ही पाँच पाँडवों की पत्नी कैसे हुई इस विषय में मुझे अत्यन्त शंका है ॥१४॥

भेषजंब्रह्मायहत्याबलनेवीमहाबलः ।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेनकस्माच्चक्रेहलायुधः ॥१५
कथंचद्रौपदेयास्तेऽकृतदारामहारथाः ॥
पाण्डुनाथमहात्मानोवधमापुरनाथवत् ॥१६
एतत्सर्वं विस्तरशाममाख्यातुमिहार्हसि ।
भवन्तोमूढबुद्धीनामवबोधकराःसदा ॥१७
इतितस्यवचःश्रुत्वामार्कण्डेयो महामुनिः ।
दशाष्ठदोषरहितोवक्तुंसमुचक्रमे ॥१८
क्रियाकालोऽयमस्माकंसंप्राप्तो मुनिसत्तम ।
विस्तरेचापि वक्तव्येनेषकालःप्रशस्यते ॥१९
येतु वक्ष्यन्तिवक्ष्येऽग्रतानहंजैमिनेतव ॥
यथाचनष्टसन्देहंत्वांकहिष्यन्तिपक्षिणः ॥२०
पिङ्गाक्षश्चविबोधश्चसुपुत्रःसुमुखस्तथा ।
द्रोणपुत्राःखगश्रेष्ठास्तत्वज्ञाः शास्त्रचिन्तका ॥२१

तथा महावली वल्देवजी ने तीर्थ यात्रा के प्रसंग में कैसे ब्रह्म-हत्या का प्रायश्चित किया ? ॥१५॥ पाण्डवों से रक्षित द्रोपदी के महारथी पुत्रों ने अनाथ के समान ही अविवाहितावस्था में ही कैसे प्राण छोड़ दिये ? ॥१६॥ यह सब मेर प्रति विस्तार सहित कहिये, क्योंकि आप ही अज्ञानियों को ज्ञानोत्पन्न करने में समर्थहैं ॥१७॥ योग शास्त्र में वर्णित अठारह दोषों से बचे हुए महर्षि मार्कण्डेयजी ने मुनि श्रेष्ठ जैमिनी के यह वचन सुनकर कहा ॥१८॥ मार्कण्डेयजी बोले—यह समय मेरे संध्या वन्दनादि का है, विस्तार सहित कुछ कहने का नहीं हैं ॥१९। परन्तु इस विषय को तुम्सारे प्रति जो पक्षी कहेंगे और तुम्हारा संदेह नष्ट करेंगे, उनका वर्णन तुम्हारे प्रति कहता हूँ ॥२०॥ पिंगाक्ष, विबोध, सुपुत्र और सुमुख इत्यादि द्रोण-पुत्र पक्षी श्रेष्ठ, सब शास्त्रों का तत्व जानने वाले हैं ॥२१॥

वेदशास्त्रार्थविज्ञानेयेषामव्याहतामतिः ।
विन्ध्यकन्दरमध्यस्थास्तानुपास्यचपृच्छच ॥२२
एवमुक्तस्तदानेनमार्कण्डेयेनधीमता ।
प्रत्युवाचर्षिशार्दूलोविस्मयोत्फुल्ललोचनः ॥२३
अत्यद्भुतमिदंब्रह्मन्खगवागिवमानुषी ॥
यत्पक्षिथस्तेविज्ञानमापूरत्यन्तदुर्लभम् ॥२४
तिर्यग्योन्यांयदिभवस्तेषाज्ञानंकुतोऽभवत् ॥
कथंचद्रोणतनयाः प्रोच्यन्तेपतत्रिणः ॥२५
कश्चदोणःप्रविख्यातोयस्यपुत्रचतुष्टयम् ॥
जातंगुणवतांतेषांधर्मज्ञानंमहात्मनाम् ॥२६
श्रृणुष्वावहितो भूत्वायद्वृत्तंनन्दनेपुरा ॥
शक्रस्याप्सरसांचैवनारदस्यचसंगमे ॥२७

वे विंध्याचल की कन्दरा में निवास करते हैं, उनकी बुद्धि वेदशास्त्र के अर्थ में कभी अवरुद्ध नहीं होती, उनकी उपासना करके प्रश्न करोगे तो सम्पूर्ण विषयों का ज्ञान तुम्हें हो सकेगा ॥२२॥ मेधावी मार्कण्डेयजी के यह वचन सुनकर उन मुनि शार्दूल जैमिनि ने विस्मय से विस्फारित हुए नेत्रों से प्रश्न किया ॥२३॥ जैमिनि बोले प्रथम तो यही आश्चर्य की है कि पक्षी भी मनुष्यके समान वार्ता कर सकते हैं, फिर अत्यन्त आश्चर्य यह है कि उन्हें अलभ्य शास्त्र ज्ञान प्राप्त हो चुका है ।२४। उनका जन्म यदि तिर्यग्योनि में हुआ है तो ऐसे ज्ञान की उपलब्धि उन्हें कहां से हुई और वे दोणपुत्र किस प्रकार कहे जाते हैं ? ॥२५॥ यह द्रोण कौन है, जिसके पुत्र यह चार पक्षी है तथा इन गुणज्ञ एवं महात्मा पक्षियोंको धर्म-ज्ञान की प्राप्ति किस प्रकार हुई ? ।२६। मार्कण्डेयजी ने कहा—हे जैमिने! प्राचीन काल में इन्द्र, नारद तथा अप्सराओं के नन्दन वन में एकत्र मिलन होने पर जो घटना हुई, उसे एकाग्र मन होकर श्रवण करो ॥२७॥

नारदोनन्दनेऽपश्यत्पुंश्चलीगणमध्यगम् ।
शक्रं सुराधिराजानतन्मुखासक्तलोचनम् ॥२८
सतेनर्षिवरिष्ठेनदृष्टमात्रःशचीपतिः ।
समुत्तस्थौस्वकंचास्मैदावासनमादरात् ॥२९
तंदृष्ट्वावलवृत्रघ्नमुत्थितं त्रदशाङ्गनाः ।
प्रणेमुस्ताश्चदेवर्षिविनियावनताः स्थिताः ॥३०
ताभिरभ्यर्चितःसोऽथ उपवीटेशतक्रतौ ।
यथार्हतसंभाषःकथश्चकेमनोरमा ॥३१
ततः कथान्तरेशक्रस्तमवाचमहामनिम् ।
देह्याज्ञांनृत्यतामासांतवयाभिमतेतिवै ॥३२
रम्भावाकर्कशावथउर्वश्यथ तिलोत्तमा ।
घृताचीमेनकावापियत्रवाभववोरुचिः ॥३३
एतच्छ्रुत्वागिजश्रेष्ठोव चंशक्रस्यनारदः ।
विचिन्त्याप्सरसः प्राहविनयावनताः स्थिताः ॥३४

एक दिन नारदजी ने वहाँ पहुंच कर देखा कि देवराज इन्द्र अनेक वाराङ्गनाओं से घिरे हुए उनके ही मुख को देख रहे हैं ॥२८॥ शचीपति इन्द्र महर्षि श्रेष्ठ नारद को देखते ही उठे और अत्यन्त आदरपूर्वक उनके निमित्त अपना आशन दिया ॥२९॥ इन्द्र को उठता हुआ देखकर उन वीरङ्गनाओं ने भी उठकर महर्षि नारद को प्रणाम किया और विनयपूर्वक नतमस्तक हुई खड़ी रहीं ॥३०॥ उनके द्वारा इस प्रकार पूजित हुए नारदजी इन्द्र के सहित बैठकर परस्पर अनेक प्रकार की बातें करने लगे ॥३१॥ इसी मध्य उन महर्षि से इन्द्र बोले—हे महाभाग ! यदि आपकी इच्छा हो तो नृत्यगान की आज्ञा दीजिये ॥३२॥ रंभा मिश्रकेशी, तिलोत्तमा: उर्वशी, घृताची या मेनका में से जिसे आप चाहें उसी को नृत्य करने का आदेश दे ॥३३॥ द्विजोत्तमनारद जी ने इन्द्र कीयह बात सुनी तो कुछ समय विचार कर उन्होंने विनय से झुकी हुई उन अप्सरारों स कहा ॥३४॥

युष्माकमिहसर्वासां रूपौदार्यगुणाधिकम् ।
आत्मानंमन्यतेयातुसानृत्यतुममाग्रतः ॥३५
गुणरूपविहीनाया सिद्धिर्नाट्यस्यनास्तिवै ।
चावधिष्ठानवन्नृत्यंनृत्यद्विडम्बनम् ॥३६
तद्वाक्यसमकालचएकंकास्तानतास्ततः ।
अहं गुणाधिकानत्वंनत्वंचान्या याब्रवीदिदम् ॥३७
तासांसंभ्रमालोक्य भगवान्पाकशासनः ।
पृच्छयतामुनिरित्याहवक्तायांवोगुणाधिकाम् ॥३८
शक्रच्छन्दानुयाताभिःपृष्टताभिःसनारदः ।
प्रोवाचयत्तदावाक्यजैमिनेतन्निबोधमे ॥३९
तपस्यंतंनगेन्द्रस्थंयावःक्षोभयतेबलात् ।
दुर्वाससमुनिश्रेष्ठं तावोमन्येगुणाधिकाम् ॥४०
तस्ययद्वचनंश्रुत्वासर्वावेपितिकन्धराः ।
अशक्यमतदस्म.कमितिताश्चक्रिरेकथाः ॥४१

देखो, तुम्हारे मध्य जो अधिक रूपवती हो, तथा जो अपने में उदारता आदि गुणों को पाती हो वही मेरे समक्ष नृत्य करे ॥३५॥ क्योंकि नाट्यशास्त्र में रूपवती और गुणवती नारी के अतिरिक्त किसी अन्य की सिद्धि नहीं तथा हाव, भाव कटाक्ष, विक्षेपादि से सम्पन्न नृत्य ही नृत्य कहा जाता है ॥३६॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—नारदजी की यह बात सुनकर अपसराएं परस्पर में विवाद करने लगीं—सब गुणों से विभूषित विशिष्ट में ही हूं, तुम नहीं हो ॥३७॥ उनमें इस प्रकार विवाद होता देख कर इन्द्र बोले-इन मुनि से ही पूछो कि तुम में से गुणवती कौनसी बात है ? इस बात को वही कह सकते हैं ॥३८॥ हे जैमिने ! इन्द्रकी इच्छा हर उद्य. करने वाली अप्सराओं द्वारा पूछने पर उस समय नारद जी ने जो कहा, वह कहता हूँ ॥३९॥ नारदजी ने कहा—पर्वत पर मुनिवर दुर्वासा तप करते हैं तुम में से जो कोई उन्हें मोहित कर सकेगी, वही अधिक गुणवती होगी ॥४०॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—

उनकी बात सुनकर सब अप्सराओं का मस्तक घूम गया और वे बोलीं कि हम इस कार्य में समर्थ नहीं हैं ।।४१।।

तत्राप्सरावपुर्नाममुनिक्षोभणर्गविता ।
प्रत्युवाचानुयास्यामियत्रासौसस्थितोमुनिः ।।४२
अद्यतंदेहयन्तारंप्रयुक्तेन्द्रियवाजिनम् ।
स्मरशस्त्रगलद्रश्मिकरिष्यामिकुसारथिम् ।।४३
ब्रह्माजंनार्दनोवापियदिवानीललोहितः ।
तमप्यद्यकरिष्यामिकामवःणक्षतान्तरम् ।।४४
इत्युक्त्वाप्रजगामाथप्रालेयाद्रिवपुस्तदा ।
मुनेस्तपःप्रभावेणप्रशान्तश्वापदाश्रमम् ।।४५
सापुंस्कोकिलमाधुर्यंयत्रास्तेसमहामुनिः ।।
क्रोशमात्रं स्थितास्मादगायतवराप्सराः ।।४६
तद्गीतध्वनिमाकर्ण्यमुनिर्विस्मितमानसः ।
जगामतत्रयत्रास्तेसाबालरुचिरानना ।।४७
तांदृष्ट्वाचारुसर्वाङ्गींमुनिः संस्तम्यमानसम् ।
क्षोभणायागतांज्ञात्वाकोपामर्षसमन्वितः ।।४८

परन्तु उनमें वपु नाम की एक अप्सरा अनेक मुनियों का तप भंग कर चुकी थीं, इसलिए उसने सगर्व कहा कि आप मुझे आज्ञा करे, दुर्वासाजी जहाँ निवास करते हैं, मैं वहाँ जाने को उद्यत हूँ ।।४२।। मैं उनकी मन रूप लगाम को काम वाण से काट कर इन्द्रिय रूप अश्वों को उल्टी दिशा में फेरकर देह रूप रथको बुद्धि रूप सारथी से विहीन कर डालूँगी ।।४३।। यदि,ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव भी हो, तो भी मैं उनके अन्तर को काम बाणसे अवश्य ही जंजर कर डालूँगी ।४४। यह कहकर वह अप्सरा हिमालय में पहुंची, वहाँ दूर्वासा के तप के प्रभाव से आश्रम के हिंसक जीव भी अत्यन्त शान्त रहते थे ।।५।। जहाँ दुर्वासा रहते थे, वहाँ से एक कोस दूर रह कर वह अप्सरा श्रेष्ठ वपु अपने कोकिल कण्ठ से गायन

करने लगी ।।४६।। जहाँ पर वह कोकिल कंठी गारही थी, वहाँ उस गान को सुनकर आश्चर्यान्वित हुए दुर्वासा पहुँचे।४७। और उन्होंने उस सर्वाङ्गसुन्दरी को देखकर मन को रोकते हुए सोचा कि यह मेरी तपस्या में विघ्न करने को उपस्थित हुई है और क्रोध में भरकर बोले ।।४८।।

उवाचेदन्ततोवाक्यं महर्षिस्तांमहातपाः ।।४९
यस्माद्दुःखार्जितस्येहतपसोविघ्नकारणात् ।।
आगतासिमन्दोन्मत्ते ममदुःखायखेचरि ।।५०
तस्मात्सुपर्णगोत्रेत्वं मत्क्रोधकलुषीकृता ।।
जन्मप्राप्स्यसिदुष्प्रज्ञेयावद्वर्षाणिषोडश ।।५१
निजरूपंपरित्यज्यपक्षिणारूपधारिणी ।।
चत्वारस्तेचतनयाजनिष्यन्तेऽधमाप्सराः ।।५२
अप्राप्यतेषुचप्रीतिंशस्त्रपूतापुनर्दिवि ।
वासमाप्स्यसिवक्तव्यंनोत्तरंतेकथचन ।।५३

इति वचनमसह्यं कोपसंरक्तदृष्टिश्चंलकलवलयांतांमानिनीं श्रावयित्वा । तरलतरतरङ्गांगांपरित्यज्यज्यविप्रः प्रथितगुणगणोघांसं प्रयातः खगङ्गाम् ।।

उन महा तपस्वी महर्षि ने उसके प्रति कहा ।।४९।। अरी मदोन्मत्त खेचरी! कष्टों से उपार्जित मेरे इस तपमें विघ्न करने के लिये ही तू यहाँ आई है ।५०।हेदुर्बुद्धि वाली! तू मेरे क्रोध से कलुषित होकर पक्षी कुलमें जन्म लेकर सोलह वर्ष तक रहेगी ।।५१।। अरी अधम अप्सरे ! तू अपने इस रूप को छोड़कर पक्षी रूप धारण करेगी, उस समय तेरे चार पुत्र होंगे ।५२। तू पुत्रोत्पत्ति की प्रीति से वंचित रहेगी और शस्त्र के आघात से पापों से छूटकर पुनः स्वर्ग को प्राप्त होगी अब इसमें किसी प्रश्नोत्तर की आवश्यकता नहीं है ।५३।विप्र श्रेष्ठ दुर्वासा क्रोधपूर्ण रक्त नयनोंसे मनोरम कंकणको धारण करने वाली मानवती वपुसे इतना कहकर पृथ्वी को त्याग कर प्रसिद्ध गुणों वाली आकाश गंगा को चले गये ।।५४।।

॥प्रकर्ण २--महाभारत संग्राम में पक्षी शावकों का जन्म॥

अरिष्टनेमिपुत्रोऽभूदगरुडोनामपक्षिराट् ॥
गरुडस्याभवत्पुत्रःसम्पातिरितिविश्रुतः ॥१॥
तस्याप्यासीत्सुत.शूरःसुपार्श्वोवायुविक्रमः ॥
सुपार्श्वंत नयः कुन्तिःकुन्तिपुत्रःप्रलोलुपः ॥२॥
तस्यापितनयावास्तांकङ्कःकन्धरएवच ॥३॥
कङ्ककैलासशिखरेविद्युद्रूपेतिविश्रुतम् ॥
ददर्शाम्बुजपत्राक्षाक्षस धनदानुगम् ॥४॥
आपानासक्तममलस्रग्दामाम्बर धारिणाम् ॥
भार्यासहायमासीनशिलापटटेऽमलेशुभे ॥५॥
तद्दृष्टमात्र कङ्कनरक्षःक्रोधसमान्वितम् ॥
प्रो ।चकस्मादायातस्त्वामतोह्यण्डनाधम ॥६॥
स्त्रीसन्निकर्षेतिष्ठन्तकस्मा मान्मामुपसर्पसि ॥
नषधर्मं सुबुद्धिनांमिथोनिष्पाद्यवस्तुषु ॥७॥

मार्कण्डेयजी ने कहा—अरिष्टनेमि के पुत्र पक्षिराज गरुड़ हुए तथा गरुड़ का पुत्र सम्पाति हुआ ।१। उस सम्पाति का अत्यन्त बली एवं वायु के समान विक्रम वाला पु॰ सुपार्श्व हुआ, सुपार्श्व का पुत्र कुन्ति और कुन्ति का पुत्र प्रलोलुप हुआ ।२॥ प्रलोलुप के कंक और कन्धर नाम के दो पुत्र हुए ॥३॥ कंक एक दिन कैलाश पर्वत में गया और वहाँ उसने कमलपत्र के समान विशाल नेत्र वाले कुवेर-किंकर विद्युद्रूप नाम के राक्षस को देखा ।४। वह राक्षस उस समय स्वच्छ माला और श्रेष्ठ वस्त्र धारण किये एक स्वच्छ शिला पर अपनी पत्नी के सहित बैठा हुआ मद्य पी रहा था ॥५॥ कंक को देखते ही वह राक्षस अत्यन्त क्रोधपूर्वक बोला—रे पक्षिय अधम ! तू यहां किसलिए उपस्थित हुआ है ? ॥६॥ मैं इस समय अपनी भार्या के साथ बैठा

हूँ तब तू मेरे पास क्यों आया है ? रहस्य कार्य में बुद्धिमानों को ऐसा आचरण उचित नहीं है ॥७॥

साधारणोऽयंशैलेन्द्रोयथातवतथामम ॥
अन्येषांचैवजन्तुनांमता भवतोऽन्नका ॥८॥
ब्रुवाणमित्थंखड्गेनकङ्कंचिच्छेदराक्षसः ॥
क्षरत्क्षतजवीभत्सविस्फुरन्तथचेतनम् ॥९॥
कङ्कंविनिहतंश्रुत्वाकन्नरःक्रोधमूर्छितः ॥
विद्युद्रूपवधायाशुमनश्चक्रेण्डजेश्वर ॥१०॥
सगत्वाशलशिखरंकङ्कोयत्रहतःस्थितः ॥
तस्य संकलनंचक्रेभ्रातुर्ज्येष्ठस्यखेचरः ॥
कोपामर्षविघृत्ताक्षोनागेन्द्रइवनिःश्वसन् ॥११॥
जगमाथसयत्रास्तेभ्रातृहातस्यराक्षसः ॥
पक्षवातेनमहता चालयन्भूधरान्नरान् ॥१२॥
वेगात्पयोदजालानिविक्षिपन्क्षतजेक्षणः ॥
क्षणात्क्षयितशत्रुःसपक्षाभ्यांक्रांतभूधरः ॥१३॥
पानासक्तमतितत्रतददशनिशाचरम् ॥
आताम्रावक्त्रनयनंहेमपर्यङ्कमाश्रिमम् ॥१४॥

कंक बोला—इस पर्वत पर सभी का समान अधिकार है जैसा तुम्हारा अधिकार है, वैसा ही मेरा तथा अन्य-अन्य जीवों का है, फिर तुम्हें इसके प्रति इतना ममत्व क्यों है ? ॥८॥ मार्कण्डेयजी ने कहा—कंक की यह बात सुनकर अत्यन्त क्रोधित हुए उस राक्षस ने खडग से उसका शीश काट डाला, उस समय अधिक रक्त गिरने से अति भयानक कार्य हुआ और कंक की मृत्यु हो गई ॥९॥ फिर पक्षिय श्रेष्ठ कन्वर ने कंक का मरण सुना तो अत्यन्त क्रोधित होकर उसने विद्युद्रूप राक्षस को मार डालने का विचार किया ॥१०॥ फिर कंक के ज्येष्ठ भ्राता कन्धर ने कैलाश में जहाँ कंज की मृत्यु हुई थी वहाँ पहूँच कर उसकी अन्त्येष्टि की और विस्फारित नेत्रों से सर्प के समान श्वाँस लेने लगा। ॥११॥ और जहाँ कंक का हत्यारा वह विद्युद्रूप राक्षस था,

वहाँ पहुँचा उसके जाते समय उनके अनेक पंखों की हवा के वेग से बड़े पर्वत हिलने लगे।१२।और समुद्र का जल भी इधर उधर फैलने लगा। एकमात्र पंखों के बल से ही कंधर ने पर्वत पर आक्रमण किया ।१४। उसने वहाँ जाकर देखा कि सुवर्णमय शैया पर स्थित वह राक्षण मद्य-पान कर रहा है ।१४।

स्रग्दामापूरितशिखंहरिचन्दनभूषितम् ।
केतकोपत्रगर्भाभैर्दन्तैर्घोरतराननम् ॥१५
वामोरुमाश्रितांचास्यददर्शायतलोचनाम् ॥
पत्नींमदनिकांनामपूंसकोकिलस्वनाम् ॥१६
ततोरोषपरीतात्मकन्धरः कन्दरस्थितम् ।
तमुवाक्सुदुष्टात्मन्नेहियुध्यस्ववैमया ॥१७
यस्माज्ज्येष्ठोममभ्राताविश्रब्धोघातिनस्त्वया ॥
तस्मात्वांमदसंसक्तंनयिष्येयमसादनम् ॥१८
विश्वस्तघातिनांलोकायेचस्त्रीवात्रघातिनाम् ।
यास्यसे निरयान्सर्वास्तांस्त्वद्यमयाहतः ॥१९
इत्येवंपतगेन्द्रेणप्रोक्तंस्त्रीसन्निधोतदा ॥
पक्षक्रोधसमाविष्टंप्रत्यभाषतपक्षिणम् ॥२०

जिसका मुख मण्डल और दोनों नेत्र रक्त वर्ण के हो रहे हैं उसके मस्तक में माला पड़ी है तथा वह सर्वाङ्ग चन्दनसे चर्चित है और उसका मुख मण्डल केतकी पुष्प के गर्भ पत्रके तुल्य श्वेत दन्त पंक्तिपे सुशोभित है ।१५। तथा उसने वह भी देखा कि एक सर्वाङ्ग सुन्दरी, कोकिलकण्ठ वाली नारी उसके समीप बैठी है, उसके दोनों नेत्र विशाल हैं वह उसकी पत्नी है, जिसका नाम मदनिका है ।१६। फिर पक्षिय श्रेष्ठ कन्धर ने पर्वत कादरा में स्थित उस राक्षस को क्रोधपूर्वक बुलाकर कहा—अरे दुष्ट आत्मा वाले ! तू शीघ्र यहाँ आकर मुझसे सग्राम कर ॥१७॥ तू ने मदोन्मत्त होकर मेरे भाई की हत्या की है, इसलिए मैं तुझे अवश्य ही यम सदन को भेज दूंगा ।१८। जिन नरकों का विश्वासघात करने वाले स्त्री और बालकों के हत्यारे प्राप्त होते हैं उन्हीं नरकों में तुझे भी मेरे

हाथ से प्राणत्याग करना पड़ेगा ।१९। मार्कण्डेयजी ने कहा—कंधर के ऐसे वचन सुनकर वह राक्षस अत्यन्त क्रोध पूर्वक उस पक्षिराज से कहने लगा ।।२०।।

यदितेनिहतोभ्रातापौरुषं तद्विदर्शितम् ।।
त्वामप्यद्यहनिष्येहखड्गेनानेनखेचर ।।२१
तिष्ठक्षणनात्रजीवन्पतगाधमयास्यसि ।
इत्युक्त्वाञ्जनपुञ्जाभंविमलखड्गमादेद ।।२२
ततः पतंगराजस्ययक्षाधिपभटस्यच ।
वभूवयुद्धमतुलंयथागरुणशक्रयोः ।२३।
ततःसराक्षसःक्रोधात्खड्गमाविध्यवेगवत् ।
विक्षेपपतगेन्द्रायनिर्वाणाङ्गारवर्चसम् ।।२४
पतगेन्द्रश्चतंखड्गंकिञ्चिदुत्प्लुत्यभूतलात् ।।
वक्रेणजग्राहतदागरुणः पन्नग यथा ।।२५
वक्रपादतलैर्भङ्क्त्वाचक्रेक्षोभमथाण्डजः ।
तस्मिन्भग्नेततः खगेगाहुयुद्धमवर्तत ।।२६

अरे तेरे भाई की मृत्यु से मेरा पौरुष ही प्रकट हुआ है, इसलिए अब इस खड्ग द्वारा तेरा भी वध करूँगा ।२१। अरे अधम! तू क्षण भर ठहर मेरे पास से अब तू जीवित कदापि नहीं जा सकता: यह कर उस राक्षस ने निर्मल खड्ग को हाथ में ग्रहण किया ।२२। जिस प्रकार प्राचीन काल में इन्द्र गरुड़ का तुमुल संग्राम हुआ था, उसी इस राक्षस में और कंधर में युद्ध होने लगा ।२३।। फिर अत्यन्त क्रोध में भर कर उस राक्षस ने अग्नि के समान चमचमाते हुए उस खड्ग को वेग पूर्वक कंधर के ऊपर चलाया ।२४। परन्तु जिस प्रकार गरुड़ सर्पों को चोंच में दबा लेता है, उसी प्रकार कन्धर ने कुछ कूद कर खड्ग को चोंच में दाब लिया ।२५। तथा उस खड्ग को पाँव के प्रहार से तोड़कर अत्यन्त क्रोधित हुआ और अब उन दोनों में बाहु युद्ध होने लगा ।।२६।।

ततःपतंगराजेनवक्षस्याक्रम्यराक्षसः ॥
हस्तपादकरैराशुशिरसाचवियोजितः । २७
तस्मिन्विनिहितेसास्त्रीखगशरणसम्भ्वमत् ॥
किञ्चित्सज्ज तसन्त्रासाप्रहास्त्रभार्याभवामिते ॥२८।
तामादायखगश्रेष्ठःस्वकंगृहमगात्पुनः ॥
गत्वासनिष्कृतिंभ्रातुर्विद्युद्रूपनिपातनात् ॥२९॥
कन्धरस्यचसावेश्मप्राप्येच्छारूपधारिणी ॥
मेनकातनयासुभ्रूःसौपर्णरूपमाददे ॥३०॥
तस्यांसजनयामासताक्षीनामसुतांतदा ॥
मुनीशापाग्निविप्लुष्टांवपुमप्सरसांवराम् ॥
तस्यानामतदाचक्रेताक्षींमिती वहांगमः ॥३१।
मन्दपालसुताश्चत्वारोऽमितबुद्धयः ॥
जरितारिप्रभृतयोद्रोणान्ताद्विजसत्तमाः ॥३२॥
तेषांजघन्योधर्मात्मावेदवेदांगपारगः ॥
उपयेमेसतांताक्षींकन्धरानुमतेशुभाम् ॥३३॥

फिर वह राक्षस कन्धर के द्वारा वक्षस्थल में चोट मारे जाने से जर्जर हो गया और उसकी नाड़ी हाथ, पाँव, मस्तक शरीर से अलग हो गये ॥२७॥ उन राक्षस की मृत्यु होने पर उसकी पत्नी भय से व्याकुल होकर कन्धर की शरण में गई और बोली कि 'मैं आपकी पत्नी होती हूँ' ॥२८॥ पक्षिवर कन्धर राक्षस को मार कर भाई के शोक में निवृत हो गये और मदनिका को साथ लेकर अपने घर पहुंचे ॥२९॥ वह राक्षसी मदनिका इच्छानुसार रूप ग्रहण करने वाली मनका की पुत्री थी, वह कन्धर के घर में पाक्षिय रूप धारण कर रहने लगी ॥३०॥ दुर्वासा की शापाग्नि से पीड़ित वपु नाम की अप्सरा ने इसी के उदर में जन्म पाया और कन्धर ने उसका नाम ताक्षीं रखा ॥३१॥ हे ब्रह्मन्! मन्दपाल नामक एक ब्राह्मण था, उसके चार पुत्र थे, उनमें बड़े नाम जितारि और छोटे पुत्र का नाम द्रोण था,

वे सभी अत्यत मेधावी थे ॥३२॥ वेद वेदान्तों के तत्वज्ञाता द्रोण के साथ पक्षीराज कन्धर को अनुमति से वह सर्वाङ्ग सुन्दरी तार्क्षी विवाही गयी थी ॥३३॥

कस्यचित्त्वथकालस्यतार्क्षीगर्भमवापह ॥
सप्तपक्षाहितेगर्भेकुरुक्षेत्रंजगामसा ॥३४॥
कुरुपाण्डवयोर्युद्धेवर्तमानेसुदारुणे ॥
भावित्वाच्चवकार्यस्यरथमध्येविवेशसा ॥३५॥
तत्रापश्यतयुद्ध.सासर्त्रेषांपृथिवीक्षिताम् ॥
शरशक्त्यृष्टिभिर्भीमंयथादेवासुरंरणम् ॥३६
तत्रापश्यत्तदायुद्धंभगदत्तकिरीटनो: ।:
निरतरंशरैरासीदाकाशशलभेरिव ॥ ३७
पार्थकोदण्डनिर्मुक्तमासन्नमतिवेगवत् ॥
तस्याभल्लमहिश्यामंत्वचिच्छेदजाठराम् ॥३८॥
भिन्नेकोष्ठेशशाङ्कभभूमावण्डचतुष्टयम् ॥
कायुष:सावशेषत्वात्तूलराशाविवापतत् ॥३९॥
तत्पातसमकालंचसुप्रतीकाद्गजोत्तमात् ।
पपातमहतीघण्टाबाणसछिन्नगन्धना ॥४०॥

कुछ समय व्यतीत होने पर तार्क्षी गर्भवती हुई, गर्भ धारण के दिन से सात पखवारे व्यतीत होने पर तार्क्षी कुरुक्षेत्र गई ॥३४॥ उस समय वहाँ कोरव पाण्डवों का भीषण संग्राम चल रहा था, परन्तु भवि-तव्य को कोई नहीं मिटा सकता, इसलिये तार्क्षी उस संग्राम भुमि में पहुंच गई ॥३५॥

वहाँ जाकर उसने देखा कि भगदत्त ओर अर्जुन में घोर युद्ध हो रहा है और उनके द्वारा निरन्तर छोडे जाने वाले वाणों से व्योम टीढो-दल के समान व्याप्त है ॥३६॥३७॥ पार्थ के धनुष से वेग पूर्वक निकले हुए एक बाण ने तार्क्षी के जठर को [illegible] चीर दीं ॥३८॥ उसकी कोष्ठ विदीर्ण होने पर चन्द्रमा के समान शुभ्र चार अण्डे ऊपर से गिर कर भी आयु होने के कारण रुई के समान सुख पूर्वक पृथिवी में आ गिरे ॥३९॥ उसी समय भगदत्त के सुप्रतीक नामक हाथी के कन्ठ का घण्टा बाण से कट कर भूमि पर गिरा ॥४०॥

समसमन्तात्प्राप्तातुर्निर्भिन्नधरणीतला ।
छादयन्तीखमण्डास्थानिपिशितोपरि ॥४१
हतेचतस्मिन्नृपतौभगदत्तेनरेश्वरे ।
बहूहान्यभूद्युद्धं कुरुपाण्डवसैन्योः ॥४२
वृत्तेयुद्धे धर्मपुत्रे गतेशान्तनवान्तिकम् ।
भीष्मस्यगदतोऽशेषान्श्रोतुं धर्मान्तहात्मनः ॥४३
घण्टागतानितिष्ठन्तियत्राण्डानिद्विजोत्तम ।
आजगामतमुद्देशशमीकोलामसयमो ॥४४
सतत्रशब्दमशृणोच्चिचीकुचीतिवाशताम् ।
बाल्यादस्फुटवाक्यानांविज्ञानेऽपि परेसति ॥४५
अथर्षिःशिष्यसहितोघण्टामुत्पाटयविस्मितः ॥
अमातृपितृपक्षाणिशिशुकानिददशह ॥४६

यद्यपि दोनों एक समय ही पृथ्वी पर गिरे थे, परन्तु दैववश मांस पिण्ड के सब अन्डों को चारों ओर ऊपर से ढकता हुआ वह घन्टा ढक्कन के समान हो गया।४१। राजाओं में श्रेष्ठ भगदत्त के वध होने पर भी कोरव पांण्डव सेनाओं में बहुत समय तक युद्ध चलता रहा।४२। जब युद्ध समाप्त हो गया तब धमपुत्र युधिष्ठर अनेक प्रकार के धर्म विषयक उपदेश सुनने के लिए शान्तनु पुत्र भीष्म के पास गये।४३।

फिर सयम चित्तवाले विप्र श्रेष्ठ शुमीक मुनि जहाँ घन्टे से ढंके हुए पक्षी के बालक थे, वहाँ सहसा जा पहुँचे ॥४६॥ और उन्होंने घन्टे के भीतर उन बालकों का चिची कुची शब्द सुना। यद्यपि बालकों को बहुत ज्ञान होगया था, फिर भी वह बाल्यावस्था के कारण समझ में न आने वाले शब्द ही बोल रहे थे ॥४५॥ फिर शिष्यों सहित उन ऋषि ने पक्षि बालकों का शब्द सुनकर आश्चर्य सहित घन्टे को भूमि से उठाया तब उन्हें माता, पिता तथा पंखों से रहित वे बालक दिखाई दिये ॥४६॥ उन शमीक मुनि ने पृथिवी पर उन बालकों का यथावत् देखकर आश्चर्य सहित अपने साथी ब्राह्मणों से

तानितत्रतथाभूमौशमोकोभगवान्मुनिः ।
दृष्ट्वासविस्मयाविष्टः प्रोवाचानुगतान्द्विजान् ।४७
सम्यगुक्तं द्विजाग्र्येण शुक्रेणोशनसास्वयम् ।
पलायनपरं दृष्ट्वादैत्यसैन्यसुरार्दितम् ।४८
नगन्तव्यं निवर्तध्वं कस्माद्व्रजतकातराः ।
उत्सृज्यशौर्ययशसीक्वगतानमरिष्यथ ।४९
नश्यतोयुध्यतोवापिता वदभ्यतिजीवितम् ।
यावद्धातासृजत्पूर्वंनयावन्मनसेप्सितम् ।५०
एकेम्रियन्तेस्वगृहेपलायन्तोऽपरे जनाः ।
भुञ्जन्तोऽन्नतथैवापःपिबन्तोनिधनंगताः ।५१
विलासिनस्तथैवान्येकामयानानिरामयाः ।
अविक्षतांगाः शस्त्रैश्चप्रेतराजवशंगता ।५२
अन्येपस्यभिरतानीता प्रेतनृपानुगैः ।
योगाभ्यासेरताश्चान्येनैवप्रापुरमृत्युताम् ।५३
शम्बरायपुराक्षिप्तं वज्रं कुलिशपाणिना ।
हृदयेऽभिहस्तेनतथापिनमृतोसुरः ।५४
तेनेवखलुवज्रेणतेनैवेन्द्रेणदानवाः ।
प्राप्तेकालेहतादैत्यास्तत्क्षणान्निधनंगताः ।५५
विदित्वैवनसन्त्रास कर्त्तव्योविनिवर्तत ।
ततो निवृत्तास्तेदैत्यास्त्यक्त्वामरणजंभयम् ।५६

कहा ।।४६।। हे ब्राह्मणों ! पुराकाल में देवताओं द्वारा ताड़ित दैत्य सेना के इधर-उधर भागने पर द्विजोत्तम शुक्राचार्यजी ने उससे स्वयं ही कहा था ।४७। हे दैत्यों ! तुम मत भागो, रुको, इस प्रकार कातर होकर क्यों भागते हो ? शौर्य और यश को छोड़कर कहाँ जाओगे ? क्या तुम्हारी मृत्यु कभी नहीं होगी ? इस विधाता ने तुम्हें उत्पन्न किया है उसकी जब तक इच्छा न हो, तब तक मत भागो संग्राम करो इससे तुम किसी भी प्रकार मृत्यु को प्राप्त न होगे ।।४८।। घर रहते हुए भी कोई मर जाता है, कोई भाग कर भी मर जाता है तथा कोई भोजन करते हुए या पान करते हुए ही मृत्यु को प्राप्त हो जाता

है ।५०। कोई काम का अनुगत होकर, कोई स्वस्थ रह कर, कोई दिव्य भोग विलास करता हुआ, कोई शस्त्र आदि से घायल न होने पर भी काल के कराल गाल में जा पड़ता है ।५१। कोई तपस्या मे रत रहता हुआ तथा कोई योगाभ्यास करता हुआ हो यमपुर को प्राप्त हो गया, परन्तु अमर कोई भी नहीं हो सका ।५२। पुराकाल में वज्रपाणि इन्द्र ने शम्बर पर वज्र आघात किया और हृदय विदीर्ण हो जाने पर भी वह असुर नहीं मर सका ।५३। उसी इन्द्र ने उसी वज्र से सब असुरों पर आघात किया और उनका काल था, इसलिए वे सब मृत्यु को प्राप्त हो गए ।५४। इसलिए यह सब जानकर भी तुम त्रास क्यों करते हो ? उस से निवृत्त होओ, तब सुनकर दैत्यों ने मृत्यु भय त्याग दिय और वे भागने से रुक गये ।५५। हे ब्राह्मणों ! पक्षी के इन बालकों ने शुक्राचार्य के वे वचन सत्य कर दिये । अहो' इस अद्भुत युद्ध में भी इनके प्राण नही गये ।५६।

इतिशुक्रवचः सत्यं कृतमेभिःखगोत्तमैः ।
येयुद्धेऽपिनसंप्राप्ताः पञ्चत्वमतिमानुषे ।५७
काण्डानांपतनं विप्राः क्वघण्टापतनं समम् ।
क्वचमांसवसारक्तैर्भूमेरास्तरणक्रिया ।५८
केऽप्येतेसर्वथाविप्रनैतेसामान्यपक्षिणः ।
दैवानुकूलतालोके महाभाग्यप्रदर्शिनी ।५९
एवमुक्त्वासतान्वीक्ष्यपुनर्वचनमब्रवीत् ।
निवर्ततााश्रमंयातगृहीत्वापक्षिबालकान् ।६०
मार्जाराखुभयंयत्रनैषामण्डजजन्मनाम् ।
श्येनतोनकुलाद्वापिस्थाप्यतांतत्र पक्षिणः ।६१
द्विजाःकिंवातियत्नेनमार्यन्तेकर्मभिःस्वकैः ।
रक्ष्यन्तेचाखिलाजीवायथैते पक्षिबालकाः ।६२
तथापियत्नःकर्तव्योनरैः सर्वेषुकर्मसु ।
कुर्वन्पुरुषकारंतुवाच्यतांयातिनोसताम् ।६३
इतिमुनिवरचोदितास्ततस्तेमुनितनयाः परिगृह्यपक्षिण स्तान् ।
तरुविटपसमाश्रितालिसंघंययुरथतापसरम्यमाश्रमं स्वम् ।६४

सचापिवन्यंमनसाभिकामितंप्रगृह्यमूलंकुसुयमैंफलंकुशान् ।
चकारचक्रायुधरुद्रवेधसांसुरेन्द्रवैश्रस्वतजातवेदसाम् ।६५
अपांततेगोंष्पतिवित्तरक्षिणोः समीरणन्यापितथाद्विजोत्तमः ।
धातुर्विधातुस्त्वथवैश्वदेविकाःश्रुतिप्रयुक्ताविविधास्तुसत्क्रियाः।६६

कितने आश्चर्य का विषय है कि कहाँ तो सब अण्डों का पृथ्वी पर गिरना और उसी समय घंटे का गिरना और कहाँ माँस, रक्त, और वसा से पृथिवी का ढका जाना, यह सब परस्पर भिन्न होते हुए भी, एक ही समय में हो गया ।५७। हे ब्राह्मणो ! यह कौन हैं ? प्रतीत होता है कि सामान्य पक्षी तो नहीं है, क्योंकि दैव की अनुकूलता से भाग्य भी अनुकूल होता है ।५८। इतना कहकर महर्षि शमीक उन्हें देखकर पुनः कहने लगे —हे ब्राह्मणो ! निवृत्त होकर पक्षि बालकों को ले लो और आश्रम में जाओ ।५९। जहाँ बिल्ली, नकुल, बाज आदि का भय न हो, इन पक्षि-शावकों को वहीं रखो ।६०। हे ब्राह्मणो ! अधिक यत्न की आवश्यकता नहीं है क्योंकि प्रत्येक जीव अपने कर्म से ही अवध्य और रक्षित होता है, यह बालक यहाँ जिसके द्वारा रक्षित हुए थे ? ।६१। फिर भी सब कार्यों में मनुष्य को मनुष्य को प्रयत्न करना चाहिये, यदि पुरुषार्थ न किया जाय तो साधुजनों के समक्ष निन्दनीय होना होता है।६२। महर्षि के वचन सुनकर मुनि-बालकों ने पक्षि के उन बच्चों को उठा लिया और वे वृक्ष—शाखों में गुंजारते हुए भ्रमरों से युक्त अपने रमणीय आश्रम को गये ।६३। इधर महर्षि शमीक ने उनके फल, मूल, पुष्प और कुश, लेकर ब्रह्मा' विष्णु, शिव, इन्द्र, यत और अग्नि का का पूजन किया। वरुण ब्रहस्पति, कुबेर, पवन, धाता और विधाता का पूजन तथा वेदोक्त विधान से हवन आदि कर्म किए ।६४।

प्रकरण—३ पक्षियों का शाप वृत्तान्त

अहन्यनिविप्रेन्द्रसतेषांमुनिसत्तमः ।
चकाराहारपयसातथागुप्तयाचपोषणम् १
मासमात्रणजग्मुस्तेभानोः स्यन्दनवर्त्मानि ।
कोतूहलविलोलाक्षैर्दृष्टवामुनिकुमारकैः ।२
दृष्ट्वा महीसनगरांसाम्भोनिधिसरिद्वराम् ।

रथचक्रप्रमाणंतेपुनराश्रममागताः ।३
श्रमक्लांतांतरात्मानोमहात्मानोवियानिजाः ।
ज्ञानञ्चप्रकटीभूतं तत्रतेषांप्रभावतः ।४
ऋषेःशिष्यानुकम्पार्थं वदतोधर्मनिश्चयम् ।
कृत्वाप्रदक्षिणंसर्वेंचरणावभ्यवादयन् ।५
ऊचुश्चरणाद्घोरान्मोक्षिताः स्मस्त्वयामुने ।
आवासभक्ष्यपयांस्त्वंनोदातापितागुरुः ।६
गर्भस्थनांमृतामातापित्रानैवापिपालिताः ।
त्वयानोजीवितदत्तं शिशवोरक्षिताः ।७

मार्कण्डेयजी ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! मुनिवर शमीक नित-प्रति उन पक्षि शावकों को आहार देकर रक्षा एवं पोषण करने लगे ।१। मुनि के द्वारा इस प्रकार पोषण को प्राप्त हुए, वे बालक एक मास के भीतर ही आकाश मार्ग में उड़ने लगे और कौतूहल में भर मुनि बालक उनको देखने लगे ।२। वे तिर्यक योनि मे उत्पन्न हुए महात्मा पक्षी नद, नदी सागर, नगर आदि में रथ-चक्र के समान घूमते हुए पृथिवी को देखते और थकने पर आश्रम में लौट आते । तभी मुनि के ज्ञान प्रभाव वश उन्हें क्रमशः ज्ञान प्राप्त हुआ ।३-४। एक समय अपने शिष्यों पर कृपा करके महर्षि शमीक धर्मोपदेश कर रहे थे, तभी उन पक्षियों ने प्रदक्षिणा करके मुनि चरणों में प्रणाम किया ।५। और कहने लगे—हे मुने ! आपने घोर मत्यु के कष्ट से हमारी रक्षा की है, आपने ही हमको निवास आहार, और जल प्रदान किया है, इसलिए आप ही हमारे पिता एव गुरु हैं ।६। हमारी माता की गर्भवास के समय ही देहान्त हो गया और पिता द्वारा भी हमारा पालन नही हो सका, आपने ही हमारी उस समय से अब तक रक्षा की है ।७।

क्षितावक्षततेजास्त्वंक्रमीणामिवशुष्यताम् ।
गजाघण्टांवमुत्पाट्यकृतवान्दुःखरेचनम् ।८
कथंनद्धैं युरबलाःखस्थान्द्रक्ष्याम्यहंकदा ।
कदाभूमेद्रुमंप्राप्तन्द्रक्ष्येबृक्षांतरंगताम् ।९
कदामेसहजाकान्तिः पांसुनानाशमेष्यति ।

एषांपक्षनियोत्थेनमत्समीपविचारिणाम् ।१०
इतिचिन्तयतातातभवताप्रतिपालिताः ।
तेसांप्रतंप्रवृद्धा.स्मः प्रबुद्धाः करवामकिम् ।११
इत्यृषिबचनंतेषांश्रुत्वासंस्कारवत्स्फुटम् ।
शिष्यैः परिवृतः सर्वैः सहपुत्रेणशृङ्गिणा ।१२
कौतूहलपरोभूत्वारोमांचपटसंवृतः ।
उवाचतत्स्वतोब्रूतप्रवृत्तेः कारणंयिर- ।१३
कस्य शापादियप्राप्ता भवदभिर्विक्रियापरा ।
रूपस्यवचसश्चवतन्मेवक्तुमिहाहय ।१४

हे अक्षय तेज वाले मुनिवर ! जब पृथिवी मे पड़े हुए हम कृमि के समान सूख रहे थे, तभी आपने घण्टा उठाकर हमारा संकट दूर कर दिया ।८। यह दुर्बल पक्षि शावक किस प्रकार बुद्धि को प्राप्त हों, कब पृथिवी से वृक्ष पर पहुंचे और एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर जाँये तथा आकाश में उड़ने लगें ।९। तथा मेरे पास विचरण करते हुए कब उड़ेंगे और कब इनके पङ्ख चलाने निकली हुई वायु से उड़ी हुई धूलि द्वारा मेरी सहज कांति नष्ट होगी ।१०। आपने इस प्रकार विचार करते हुए हमारा पालन किया है, अब हम बड़े हो गए और आपकी कृपा से हमें ज्ञान भी प्राप्त हो गया है, अब हम क्या करे, वह आज्ञा करिये ।११। शिष्यों सहित महर्षि शमीक उनके इस प्रकार संस्कारमय वचन सुनकर अपने पुत्र शृङ्गी सहित अत्यन्त आश्चर्यान्वित हुए हैं ।१२। अत्यन्त कुतूहल से पुलकायमान शरीर होकर उन पक्षियों के प्रति बोले ।१३। हमें सत्य बताओ कि तुमने ऐसे स्पष्ट वचनों का उच्चारण किस प्रकार किया है ? किस के शाप से तुम्हारे रूप वाणी की ऐसी प्रिक्रिया हुई है ।१४।

विपुलस्वानितिख्यातः प्रागासीन्मुनिसत्तमः ।
तस्यपत्रद्वयजज्ञं सुकृषस्तुंबुरुस्तथा ।१५
सुकृष स्यवयंपुत्राश्चत्वारः संयतात्मनः ।
तस्यर्षेविनयाचारभक्तिनम्राः सदैवहि ।१६
तपश्चरणशक्तस्यशास्यमानेन्द्रियस्य च ।

यथाभिमतमस्माभिस्तदातस्योपपादितम् ।१७
समित्पुष्पादिकंसर्वंयच्चैवाभ्यवहारिकम् ।
एवतत्राथवसतांतस्यास्माकंचकानने १८
आजगाममहावर्ष्माभग्नपक्षोजरान्वितः ।
आताम्रनेत्रः स्रस्तात्तापक्षीभूत्वासुरेश्वरः ।१९
सत्यशौचक्षमाचारमतीवोदारमानसम् ।
जिज्ञासुस्तमृषिश्रेष्ठमस्मच्छापभयायच ।२०
द्विजेन्द्रमांक्षुधाविष्टं परित्रातुमिहार्हसि ।
भक्षणार्थीमहाभागगतिर्मेवममातुला ।२१

पक्षियों ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ ! पुराकाल में विपुलस्वान नामक एक मुनि थे उनके सुकृष्ट और तुम्बरु नामक दो पुत्र हुए ।१५। उन जितेन्द्रिय महात्मा रुकृष के हम पुत्र हैं, सदा विनय, आचार, भक्ति और नम्रता पूर्वक ही उनके पास रहते थे ।१ । जब वे संयतचित्त से तपस्या में लगे रहते, तब हम उनकी स्वेच्छा के अनुसार वस्तु ला देते थे ।१ । हम ही उनके समिधा, पुष्प तथा भोजन की सम्पूर्ण सामग्री ले आते थे. इस प्रकार वह हमारे साथ वनमें रहते थे ।१८। एक दिन देवराज इन्द्र एक विशालकाय पक्षी के रूप में हमारे पास आये उनके सभी पङ्ख टूटे हुए तथा नेत्र ताम्रवर्ण के हो रहे थे और उनका आत्मा शिथिल हो रहा था ।१९। वह उन सत्य, शौच, क्षमा और आचार युक्त मुनि से कोई बात पूछने लगे, हम समझते हैं कि वे हमारे प्रति पितृ-शाप होने के कारण ही वहाँ उनका आगमन हुआ था ।२०। पक्षी ने कहा—हे द्विजेन्द्र ! मैं क्षुधा से अत्यन्त आतुर एव नितान्त भक्षणार्थी हूँ, आप ही मेरी गति हैं अतः मेरी रक्षा कीजिए ।२१।

विन्ध्यस्यशिखरेतिष्ठन्पत्रिपत्रैरितेनवै ।
पतितोऽस्मिमहाभागश्वसनेनातिरंहसा ।२२
सोहंमोहसमाविष्टोभूमौसप्ताहतस्मृतिः ।
स्थितस्तत्राष्टमेन ह्याचेतनांप्राप्तवाहनम् ।२३
प्राप्तचेताः क्षुधाविष्टोभवतंशरणगतः ।
भक्ष्यार्थीविगतानंदो द्यमानेनचतसा ।२४

तत्तुरुष्वामलतेमत्त्राणायाचलां भतिम् ।
प्रयच्छभक्ष्यं विप्रर्षेप्राणयात्रामंमम ।२५
यएवमुक्तः प्रोवाचतमिन्द्रं पक्षिरूपिणम् ।
प्राणसन्धारणार्थायदास्येभक्ष्यं तवेप्सितम् ।२६
इत्युक्त्वापुनरप्येनयपृच्छत्सद्विजोत्तमः ।
आहारः कस्तवार्थायउपकल्प्योभवेन्मया ।
ऽवाहनरमासेनतृप्तिर्भवतिमेपरा ।२७

हे महाभाग ! मैं विन्ध्याचल के शिखर चूड़ा में रहता हूँ और पक्षि-राज गरुड़ के पङ्खों की वायु के वेग से यहाँ गिर कर मूच्छित हो गया था ।२०। उसी अवस्था में पड़े हुए मुझे एक सप्ताह हो गया और आठवें दिन मूर्छा नष्ट होकर चैतन्यता प्राप्त हुई ।२३। कुछ देर में जब स्वस्थ हुआ, तब भूख से आतुर होकर आपकी शरण में आ गया । मेरा हृदय भूख से अत्यन्त कातर होने के कारण सम्पूर्ण आनन्द का हरण किये लेता है ।२४। हे ब्रह्मर्षे ! मेरी रक्षा का प्रयत्न करिये, जिससे मेरी भूख मिट सके, ऐसा भोजन मुझे दीजिए ।२५। पक्षी रूप धारी इन्द्र की ऐसी बात सुनकर उन महर्षि ने उनसे कहा—हे खग ! तुम अपने प्राण-धारण के लिए उपयोगी किस आहार को चाहते हो मैं तुम्हारे भोजनार्थ किस द्रव्य को उपस्थित करू ? ।२६। हे ब्रह्मन् ! इतना कहकर मुनि ने पुनः कहा—कहो, क्या भोजन करोगे ? तुम्हारे लिए आहार को लाऊँ इस पर उसने उत्तर दिया कि मेरी परम तृप्ति मनुष्य को माँस खाने से ही होगी ।२७।

कौमारतेव्यतिक्रांतमतीतंयौनं चते ।
वयसःपरिणामस्तेवर्त्ततेनूनमंडज ।२८
यस्मिन्नराणांसर्वेषामशेषेच्छानिवर्त्तते ।
सकस्माद्वृद्धभावेऽपिसुनृशसात्मकोभवान् ।२९
क्वमानुषस्यपिशितंक्ववयश्चरमंतव ।
सर्वथादुष्टभावानां प्रथमोनोपपद्यते ।३०
अथवाकिमयंतेनप्रोक्तोनास्तिप्रयोजनम् ।
प्रतिश्रुत्यसदादेयमितिनोभावितंमनः ।३१

इत्युक्त्वातंसविप्रेन्द्रस्तथेतिकृतनिश्चयः ।
शीघ्रमस्मान्समाहूयगुणतोऽनुप्रशस्यच ।३२
उवाचक्षुब्धहृदयोमुनिर्वाक्यंसुनिष्ठुरम् ।
विनयावनतान्सर्वान्भक्तिकृतांजलीन् ।३३
कृतात्मानोद्विजश्रेष्ठऋणैर्युक्तामयासह ।
जातंश्रेष्ठमपत्य वोयूय ममयथाद्विजाः ।३४
गुरुः पूज्योऽदिमतोभवतांपरमः पिता ।
ततः कुरुतमेवाक्यान्निर्व्यलाकेनचेतसा ।३५

ऋषि ने कहा तुम्हारी कौमारावस्था जाकर युवावस्था आई और वह भी व्यतीत होकर वृद्धावस्था आ गई है ।२८। जिससे सभी वासनाऐं अशेष हो जाती है, फिर भी तुम वृद्धावस्था को प्राप्त होकर इतने नृशस क्यों हो ? ।२९। मनुष्य माँस के भक्षण और वृद्धावस्था दोनों में अन्तर है, तो भी दुष्ट जीवों की दुराशा नहीं मिट पाती ।३०। परन्तु मुझे इस सब की आलोचना क्यों करनी चाहिए ? अङ्गीकृत विषय का दान करना चाहिए ऐसा सोचना ही ठीक है ।३१। उस पक्षी से इतना कहकर निश्चय को कार्य रूप देने वाले मुनि ने तुरन्त हमें बुलाकर हमारे गुणों की प्रशंसा की ।३२। तथा हमारे विनय और भक्ति पूर्वक हाथ जोड़ खड़े होने पर अत्यन्त क्षोभ सहित हमारे पिता ने यह निष्ठर वचन कहे । ।३३। तुम सब विद्वान हो, ब्राह्मणों तथा सन्तानोत्पत्ति द्वारा मेरे समान ही ऋण-मुक्त हो चुके हो जैसे श्रेष्ठ तुम मेरे पुत्र हो, वैसे ही श्रेष्ठ पुत्र तुम्हारे हो चुके हैं ।३४। मैं तुम्हारा पिता हूँ, तुम यदि मुझे बड़ा और पूज्य मानते हो तो कपट रहित हृदय से मेरे वचनों का पालन करो ।३५।

तद्वाक्यसमकालन्प्रोक्तमस्माभिरादृतैः ।
यद्वक्ष्यतिभवांस्तद्वै कृतमेवावधार्यताम ।३६
मामेषशरणप्राप्तोविहंगः क्षत्तृषान्वितः ।
युष्मन्मांसेनयेनास्यक्षणतृप्तिर्भवेतवैं ।३७
तृष्णाक्षयश्चरक्तेनतथाशीघ्रं विधीयताम् ।
ततोवयंप्रव्यथिताः प्रकम्पोदभूतसाध्वसाः ।

कष्टं कष्टमितिप्रोच्यनैतत्कर्तेनिचाब्रुवन् ।३८

कथमपशरीरस्यहेतोर्देहं स्वकंबुधः ।
विनाशयेद्घातयेद्वायथाह्यात्मातथासुतः ।३९

पितृदेवमनुष्याणांयान्युक्तानिऋणानिवै ।
तान्यपाकुरुतेपुत्रोनशरीरप्रदः सुतः ।४०

तस्मान्नैतत्करिष्यामोनोचीर्णंयत्पुरातनैः ।
जीवन्भद्राण्यवाप्नोतिजीवन्पुण्यं करोतिच ४१

मृतस्यदेहनाशश्चधर्माद्युपरतिस्तथा ।
आत्मानं सर्वतोरक्ष्यमाहुर्धर्मविदोजनाः ।४२

यह सुनकर हमने भी आदर सहित कहा—आपकी जो आज्ञा होगी उसका संपादन हमारे द्वारा हुआ ही समझिए ।३३। तब उन्होंने कहा—पुत्रो ! यह पक्षी भूख-प्यास से आतुर होकर यहाँ आया है, इस समय तुम्हारे माँस का आहार करके इसकी क्षुधा । ७। तथा रक्त पान द्वारा प्यास की निवृत्ति होगी, इसलिए शीघ्र ही ऐसा करो, यह सुनकर हम भय से काँप उठे और बोले कि यह अत्यन्त कष्टप्रद कार्य हमसे होता संभव नहीं है ।३८। कौन सा मनुष्य विद्वान होकर पराये शरीर की पुष्टि के लिए अपने जीवन का नाश करेगा ? क्योंकि आत्मा की भी सन्तान के समान रक्षा करनी उचित है । । शास्त्र में जिस पितृ ऋण, देव ऋण और मनुष्य ऋण का आदेश है. उसी को सन्तान चुकाती है, परन्तु शरीर-दान नहीं किया जा सकता ।४०। इसलिए यह कार्य हमारे द्वारा संभव नहीं है, पहिले भी कभी किसी के द्वारा ऐसा आचरण नहीं मिलता, जीवन है तो पुण्यादि के आचरण द्वारा मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है ।४१। मर जाने पर शरीर नष्ट हो जाने से धर्माचरण आदि नष्ट हो जाते हैं, इसीलिए धर्मज्ञाता पंडितों ने आत्मा की सदा रक्षा करने का उपदेश दिया है ।४२।

इत्थंश्रुत्वावचोऽस्माकंमुनिः क्रोधादिवज्वलन् ।
प्रोवाचपुनरप्यस्मान्निदहन्निवलोचनैः ।४३

प्रतिज्ञातंवचोमह्यंयस्मान्नैतत्करिष्यथ ।
तस्मान्मच्छापनिर्दग्धास्तिर्यग्योनौप्रयास्यथ ।४४

एवमुक्त्वातदासोस्मांस्तं विहंगममब्रवीत ।
अन्त्येष्टिमात्मनः कृत्वाशास्त्रतश्चौध्र्वदैहिकम् ।४५
भक्षयस्वसुविश्रब्धोमामत्रद्विजसत्तम ।
आहारीकृतमेतन्मयादेहमिहात्मनः ।४६
एतावदेवविप्रस्यब्राह्मणत्वं प्रचक्षयते ।
यावत्पक्षजात्यग्र यस्वसत्यपरिपालम ।४७
नयज्ञैर्दक्षिणावद्भिस्तत्पुण्यं प्राप्यते महत् ।
कर्मणान्येनवाविप्रैर्यत्सत्यपरिपालनात् ।४८

हमारे इन वचनों को सुनकर मुनि श्रेष्ठ क्रोधानल से दग्ध होने लगे और क्रोध से हुए लाल नेत्रों से जैसे हमको भस्म करना चाहते हों, देखते हुए पुनः कहने लगे ।४३। अरे दुर्वृत्तो ! मैंने इससे प्रतिज्ञा की है, और तुम मेरा वचन पालन नहीं कर रहे हो, इसलिए मेरे शाप से भस्प होकर तिर्यंग योनि को प्राप्ति हो जाओगे ।४४। हे द्विजोत्तम ! इतना कहकर ही उन्होंने शास्त्र विधि से अपनी ऊर्ध्वदैहिक अन्त्येष्टि क्रिया का सम्प्रादन किया और पक्षी से बोले ।४५। हे पक्षो ! तुम विश्वस्त चित्त से मेरा भक्षण करो, मैंने अपना ही शरीर तुम्हारे आहार के निमित्त दिया ।४६। हे खग श्रेष्ठ ! जब तक ब्राह्मण अपने सत्य के पालन में दृढ है, तभी तक वह ब्राह्मण कहलाता है ।४७। जितना पुण्य सत्य के प्रतिपालन में होता है, उतना दक्षिणा वाले यज्ञ के अनुष्ठान से अथवा किसी अन्य कर्म के द्वारा भी नहीं होता ।४८।

इत्यृषेर्वचनं श्रुत्वासोऽन्तर्विस्मयनिर्भरः ।
प्रत्युवाचमुनिशक्रःपक्षिरूपधरस्तदा ।४९
योगमास्थायविप्रेन्द्रत्यजेदस्वंकलेवरम् ।
जीवज्जंतु हिविप्रेन्द्रनभक्षामिकदाचन ।५०
तस्यतद्वचनं श्रुत्वायोगयुक्तोऽभवन्मुनिः ।
तंतस्यनिश्चयंज्ञात्वाशक्रोऽप्याहस्वदेहभृत ।५१
भोभोविप्रेन्द्रयुध्यस्वबुद्ध्याबोध्यं बुधात्मक ।
जिज्ञासार्थं मयाऽयंते अपराधः कृतोऽनघ ।५२
तत्क्षमस्वामलमते काचेच्छाक्रियतांतव ।

पालनात्सत्यवाक्यप्रीतिर्मेपरमात्वयि ।५३
अद्यप्रभृतितेज्ञानमैन्द्रं प्रादुर्भविष्यति ।
तपस्यथतथाधर्मेनतेविघ्नोभविष्यति ।५४
इत्युक्त्वातुगतेशक्रे पिताक्रोधसमन्वितः ।
प्रणम्यशिरसास्ताभिरिदक्तोमहामुनिः ।५५

ऋषिवर के यह वचन सुनकर उस खग रूपी ने अत्यन्त आश्चर्य चकित होकर उनसे कहा ।४९। हे ब्रह्मन् ! आप पहिले योग के अवलम्बन से अपने शरीर का त्याग कर दें, तब मैं आपके मांस को खाऊंगा क्योंकि जीवित प्राणी के मांस का मैंने कभी आहार नहीं किया ।५०। पक्षी की यह बात सुनकर मुनि ने योग का अभिलम्बन किया और उन को अपने संकल्प मे दृढ़ देखकर इन्द्र ने अपना देह धारण करके कहा । ।५१। हे पंडितों में अग्रणी ब्रह्मर्षे ! ज्ञातव्य विषय को बुद्धि से जानिए, हे पाप रहित ! आपको भले प्रकार जानने के लिए ही मैंने आपके प्रति यह अपराध किया है ।५२। हे स्वच्छचित्त ! मुझे क्षमा कीजिए, आपकी जो अभिलाषा हो वह मेरे प्रति कहिए, सत्य वचन के प्रतिपालनार्थ के आपके प्रति मुझको अत्यन्त प्रीति हुई ।५३। अब आप को इन्द्रज्ञान की उत्पत्ति होगी और तपस्या के आचरण में कभी भी विघ्न उपस्थित न होगा ।५४। देवराज इन्द्र के इस प्रकार कहकर वहाँ से चले जाने पर हमने उन क्रोधयुक्त महामुनि, अपने पिता-श्री के चरणों में प्रणाम करके कहा ।५५।

बिभ्यतांमरणात्तातव्यमस्माकंमहामते ।
क्षन्तुमर्हसिदीनानांजीवितप्रियताहिनः ।५६
त्वगस्थिमांससंघातेपूयशोणितपूरिते ।
कर्त्तव्यानरतिर्यत्रतात्रास्माकमियंरतिः ।५७
श्रूयतांचमहाभागयथालोकोविमुह्यति ।
कामक्रोधादिभिर्दोषैरवशः प्रबलारिभिः ।५८
प्रज्ञाप्राकारसंयुक्तमस्थिरस्थूणंपरं महत् ।
चर्मभितिमहारोधंमांसशोणितरंजनम् ।५९
नवद्वारं महायाससर्वतः स्नायुवेष्टितम् ।

नृपश्चतुरुषस्तत्रचेतनावानवस्थित: ।६०
मन्त्रिणौतस्यबुद्धिश्चमनश्चवविरोधिनौ ।
यतेतेवैरनाशयत बुभावितरेतरम् ।६१
नृपस्यतस्यचत्वारोननाशमिच्छति विद्वष: ।
काम: क्रोधस्तथालोभोमोहश्चान्यस्तथारिपु: ।६२
यदातुतन्नृपस्त निद्वाराण्यावृत्यतिष्ठति ।
सदातुस्थबलश्चंवनिरातंकश्चजायते ।६३

हे पिता, हे महामते ! मृत्यु के भय अत्यन्त डर कर हमने अपने जीवन के प्रति मोह करके ऐसा कहा था, इसलिए हमको क्षमा कर दीजिए ।४६। यह शरीर, हड्डी, माँस, त्वचा, रक्त आदि से भरा हुआ है. इसके प्रति किञ्चित भी मोह न करे, परन्तु उसी शरीर के प्रति हमारा बढ़ा हुआ है ।५७। हे महाभाग ! प्रबल शत्रु रूप काम क्रोधादि दोषों के द्वारा हो सब ठग मोहित हुए सुने जाते है ।५८। हे पिता ! प्रज्ञा रूप प्राचीरों वाली इस देह नगरी का अस्थि ही स्तम्भ है, जो चर्म रूप भित्ति से रुद्ध और रक्त माँस रूप कीचड़ से लिप रही है ।५०। उसे नस चारो ओर से घेरे हुए हैं, उसके नौ बड़े द्वार है और चैतन्य रूपी पुरुष उसमें राज्य करता है ।६०। उस राजा के दो मन्त्री मन बुद्धि रूपी हैं, परन्तु वे परस्पर विरोधी होने के कारण एक दूसरे के विनाश के लिए सदा प्रयत्नशील रहते हैं ।६१। काम, क्रोध, लोभ, मोह नामक चार शत्रु उस राजा को नष्ट करने की चेष्टा में लगे रहते है ।६२। जब वह राजा नौ द्वारों को रोककर स्थित होता है, तब वह अत्यन्त स्वस्थ और आतङ्क रहित होता है ।६३।

आतानुरागोभवितशत्रुभिर्नाभिभूयते ।६४
यदातुसर्वद्वाराणिविवृतानिसमुंचति ।
रागोनामतदाशत्रुर्नेत्रादिद्वारमृच्छति ।६५
सर्वव्यापीमहायाम: पञ्चाद्वारप्रवेशना ।
तस्यानुमार्गविशतिद्व घोररिपुत्रयम । ६
प्रविश्याथसर्वैतत्रद्वारैरिन्द्रियसज्ञकै: ।
राग: संश्लेषमायातिसनसाचसहेतरै: ।६७

इन्द्रियाणिमनश्चैवत्रवशेकृत्वातुरासदः ।
द्वाराणिचवशेकृत्वाप्राकारंनाशयत्यथ ।६८
मनस्तस्याश्रितदृष्ट्वाबुद्धिर्नश्यतितत्क्षणात् ।
अमात्यरहितस्तत्रपौरवर्गोज्झितस्तथा ।६९
रिपुभिर्लब्धविवरः सनृपोनाशमृच्छति ।
एवरागस्तथामोहोलोभः क्रोधस्तथैवच ।७०
प्रवर्ततेदुरात्मानोमनुष्यस्मृतिनाशकाः ।
रागात्क्रोधः प्रभवतिक्रोधाल्लोभोऽभिजायते ।७१

तथा उस समय उसके प्रीतिमान् होने के कारण उसके शत्रु उसे अभिभूत करने में समर्थ नहीं होते ।६४। वह जब सभी द्वारों को खोल कर अवस्थान करता है, तब नेत्रादि सब द्वारों पर अनुराग नामक शत्रु आक्रमण कर देता है ।६५। यह अत्यन्त बलवान् शत्रु सर्वत्र व्यापी है, जब यह अनुराग रूप शत्रु चक्षु आदि द्वारों में प्रविष्ट होता है, तब उसके पीछे-पीछे लोभ, मोह और क्रोध रूप तीनों शत्रु दौड़ पड़ते हैं ।६६। अनुराग रूप वह शत्रु इन्द्रियादि सब द्वारों से पुरी में प्रवेश करके मन और बुद्धि से संगति करने की इच्छा करता है ।६ । वह इन्द्रियों को और मन को अपने वश में करके बुद्धि रूपी परकोटे को तोड़ डालता है ।६८। मन को उसके आश्रित हुआ देखकर बुद्धि भी तत्काल नाश को प्राप्त होती है, इस प्रकार मंत्रियों और प्रजावर्ग से हीन हुआ ।६९। वह राजा शत्रुओं के आक्रमण से विवर होने के कारण नष्ट हो जाता है, तब काम, क्रोध, लोभ, मोह रूप ।७०। दुरात्मा उस पुरी में वास करने लगते हैं । उस समय मनुष्य की स्मरण शक्ति नष्ट हो जाती है, अनुराग से क्रोध और क्रोध से लोभ की उत्पत्ति होती हैं ।७१।

लोभाद्भवतिसम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद्बुद्धिनाशोबुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।७२
एवंप्रणष्टबुद्धीनांरागलोभानुवर्तिनाम् ।
जीवितेचसलोभानांप्रसादकुरुसत्तम ।७३
योऽयशापोभगवताश्त्तः सनभवेत्तथा ।
नतामसींगतिकष्टांव्रजेत्समुनिसत्तम ।७४

यन्मयोक्तं नतन्मिथ्याभविष्यतिकदाचन ।
नमावागनृतं प्राहयावद्येतिपुत्रका: ।७५
दैवमात्रपरं मन्येधिक्पौरुषमनर्थकम् ।
अकार्यं कारितोयेनबलादहमचिन्तितम् ।७६
यस्माच्चयुष्माभिरहं प्रणिपत्यप्रसादित: ।
तस्मात्तिर्य्यक्त्वमान्ना: परं ज्ञानमवाप्स्यथ ।७७
ज्ञानदर्शितमार्गाश्चनिर्धूतक्लेशकल्मषा: ।
मत्प्रसादादसन्दिग्धा: परांसिद्धिमवाप्स्यथा ।७८

लोभ से मोह उत्पन्न होता और मोह स्मृति को नष्ट कर देता है, स्मृति के नष्ट होने से बुद्धि नष्ट होती और बुद्धि नष्ट हो जाती है तो मृत्यु हो जाती है ।७२। राग और लोभ के वश में पड़ कर ही हमारी बुद्धि नष्ट हो गयी, इसलिए जीवन के प्रति इतना मोह हममें हैं, अत: प्रसन्न हो ।७३। आपका दिया हुआ शाप हम पर फलित न हो, हम पर प्रसन्न होकर ऐसा ही करे, जिससे हमको यह कष्ट देने वाली गति न मिलेगी ।७४। ऋषि ने कहा हे पुत्रो ! मेरा कथन कभी मिथ्या नहीं होगा, मेरे मुख से कभी भी कोई मिथ्या वचन नहीं निकला ।७५। अनर्थक पौरुष को धिक्कार है, मैं समझता हूँ कि दैव बलवान् है, उसी ने मुझे इस प्रकार के अकार्य में प्रवृत्त किया है, ।७६। तुमने जिस प्रकार प्रणामादि से मुझे प्रसन्न किया है, उससे तिर्यक योनि में उत्पन्न होकर भी अत्यन्त ज्ञानी होंगे ।७७। मेरे अनुग्रह से ज्ञान के द्वारा तुम सन्मार्ग को देखते हुए अपने पापों को नष्ट करते हुए असंदिग्ध चित्त के द्वारा प्रधान सिद्धि को पा सकोगे ।७८।

एवंशप्ता:स्मभगवन्पित्रादैगवशात्पुरा ।
तत:कालेनमहतायोन्यन्तरमुपागता: ।७९
जाताश्चरणमध्येवंभवतापरिपालिता: ।
वयमित्थंद्विजश्रेष्ठखगत्वसमुपागता: ।८०
नास्त्यसाविहसंसारेयोनदिष्टेनबाध्यते ।
सर्वेषामेवजन्तूनांदैवाधीनंहिचेष्टितम् ।८१
इतितेषावच:श्रुत्वाशमीकोभगान्मुनि: ।

प्रत्युवाचमहाभागः समीपस्थायिनोद्विजान् ।८२
पूर्वमेवमयाप्रोक्तं भवतांसन्निधाविदम् ।
सामान्यपक्षिणोनैते केऽप्येते दिजसत्तमाः ।
येयुद्धेऽपिनसंप्राप्ताः पचत्वमतिमानुषे ।८३
ततःप्रीतिकृतातेऽनुज्ञातामहात्मना ।
जग्मुःशिखरिणांश्रेष्ठविंध्यंद्रुमलतायुतम् ।८४
यावदद्यास्थितास्तस्मिन्नचलेधर्मपक्षिणः ।
तपः स्वाध्यायजिरता समाधौकृतनिश्चयाः ।८५
इतिमुनिवरलब्धसत्क्रियास्तेमुनितनयाविहगत्वमभ्युपेताः ।
गिरिवरगहनेऽतिपुण्यतोयेयतमअसोनिवसन्तिविन्ध्यपृष्ठे ।८६

हे भगवन ! पुराकाल में दैववश हमारे पिता ने हमको इस प्रकार शाप दिया था तथा कुछ समय व्यतीत होने पर हमने पक्षि-योनि में जन्म लि.ा । ९। हे द्विजोत्तम ! हमारा जन्म रणभूमि में हुआ, आपने यहाँ लाकर हमारा पालन किया और अब हम आकाश मार्ग में विचरण करने योग्य हो गए हैं ।८०। हे मुने ! विश्व में ऐसा जीव कोई भी नहीं है, जो प्रारब्ध के वश में न हो, प्राणियों की जितनी भी चेष्टाएं है, वह सब दैवाधीन ही है ।८१। मार्कंडेय ने कहा—पक्षियों को यह बात सुन षडगुण सम्पन्न महर्षि वर शमीक ने अपने पास बैठे हुए ब्राह्मणो से कहा ।८२। हे ब्राह्मण ! मैं पहिले ही कह चुका हूँ कि जब यह युद्ध भूमि में भी मृत्यु मुख में नही जा सके, तो यह सामान्य पक्षी नहीं नहीं, अवश्य ही कोई ब्राह्मण पुत्र है ।८३। फिर वह पक्षी प्रसन्न हुए महर्षि शमीक की आज्ञा पाकर वृक्ष लता आदि से परिपूर्ण विन्ध्याचल पर्वत को चले गये ।८४। वह धर्मखग उसे पर्वत मे रहते हुए निरत रहकर समाधि में रहने के लिए तत्पर हुए ।८५। शमीक मुनि ने समस्त क्रिया का उपदेश ग्रहण करके, उनकी आज्ञा से वह रूपी मुनि कुमार उस अत्यन्त स्वच्छ जल से परिपूर्ण गिरि-शिखर पर आनन्द सहित रहने लगे ।।८६।।

प्रकरण ४-भगवान का चतुर्व्यूहावतार

एवंतेद्रोणतनयाः पक्षिणोज्ञानिनोऽभवन ।
वसन्तिह्यचलेविन्ध्येतानुपास्वचपृच्छच ।१

इत्युक्तेवचनं श्रुत्वा मार्कण्डेयस्य जैमिनिः ।
जगाम विन्ध्यशिखरं यत्र ते धर्मपक्षिणः ।२
तन्नगान्तिकभूतश्च शुश्राव पठतां ध्वनिम् ।
श्रुत्वा च विस्मयाविष्टश्चिन्तयामास जैमिनिः ।३
स्थानसौष्ठवसम्पन्नं जितश्वासमविश्रमम् ।
विस्पष्टमपदोषं च पठचते द्विजसत्तमैः ।४
वियोनिमापसम्प्राप्तानेतान्मुनिकुमारकान् ।
चित्रमेतदहं मन्ये न जहाति सरस्वती ।५
बन्धुवर्गस्तथा मित्रं यच्चेष्टमपरं गृहे ।
त्यक्त्वा गच्छति तत्सर्वं न जहाति सरस्वती ।६
इति सञ्चिन्तयन्नेव विवेश गिरिकन्दरम् ।
प्रविश्य च ददर्शासौ शिलापट्टगतान्द्विजान् ।७

मार्कण्डेयजी ने कहा हे जैमिने ! वह सब ज्ञानवान् पक्षी इस प्रकार द्रोणपुत्र हुये और अब वह विन्ध्याचल में निवास करते है, तुम उनकी उपासना करके प्रसन्न करो । मुनिवर मार्कण्डेय के वचन सुन कर महर्षि जैमिनि उन धर्मपक्षियों के निवास स्थान विन्ध्य पर्वत को चले ।२। विन्ध्य पर्वत के समीप पहुंचते ही उन पक्षियों द्वारा वेदपाठ करने का शब्द सुनाई पड़ा, तब वे अत्यन्त आश्चर्य पूर्वक विचार करने लगे ।३। अहो, कैसा आश्चर्य है कि विप्रगण पक्षी होकर भी स्थान की श्रेष्ठता से श्वांस को जीत कर शेष रहित, विश्राम रहित एवं स्पष्ट रूप वेद-पाठ करते है ।४। इन बालकों को तिर्यक योनि प्राप्ति होने पर सरस्वती ने उनको नहीं छोड़ा, यह आश्चर्य की बात है ।५। इससे प्रतीत होता है कि बन्धु, मित्र या घर की सभी इच्छित वस्तुएं त्याग कर चली जाती हैं, परन्तु सरस्वती कभी त्याग नही करती ।६। ऐसा विचार करते करते मुनिवर जैमिनी पर्वत की कन्दरा में घुसे और वहां देखा कि वे ब्राह्मण पाषाण-शिला पर विराजमान है ।७।

पठतस्तान्समालोक्य मुखदोषविवर्जितान् ।
सोऽथ शोकेन हर्षेण सर्वानेवाभ्यभाषत ।८
स्वस्त्यस्तु वो द्विजश्रेष्ठा जैमिनिं मां निबोधत ।

व्यासशिष्यमनुप्राप्तंभवतांदर्शनोत्सुकम् ॥९
मन्युर्नखलुकर्तव्योयत्पित्रातीवमन्युना ।
श८.ाःखगत्वमापन्नाःसर्वथादिष्टमेवतत् ॥१०
स्फीतद्रव्येकुलेकेचिज्जाताःकिलमनस्विनः ।
द्रव्यनाशेद्विजेन्द्रास्तेशवरेणसुसान्त्विताः ॥११
दत्वायाचन्तिपुरुषाहत्वावध्यन्तिचापरे ।
पातयित्वाचपास्यन्तेतएवतपसःक्षयात् ॥१२
एतद्दृष्टंसुवहुशोविपरीतंतथामया ।
भावाभावसमुच्छेदैरजस्त्रं व्याकुलजगत् ॥१३
इतिसचिन्त्यमनसानशोकं कर्तुमर्हथ ।
ज्ञानस्यफलमेतावच्छोकहर्षैरधृष्यता ॥१४

उन सब दोषों से रहित पक्षियों का वेदपाठ करते देख कर हर्ष शोक मिश्रित कहा ॥८॥ हे श्रेष्ट द्विजो ! तुम्हारा कल्याण हो, मैं व्यास शिष्य जैमिनी तुम्हारे दर्शन की इच्छा से इस स्थान में उपस्थित हुआ हूँ ॥९॥ तुम्हें अत्यन्त कुपित पिता के शाप वश पक्षि रूप ग्रहण करना पड़ा परन्तु इसके प्रति शोक न करना चाहिए क्योंकि यह सब प्रारब्ध का ही परिणाम है ॥ १॥ धन, सम्मान आदि युक्त ऐश्वर्य सम्पन्न उत्तम वंश में कोई महात्मा जन्म लेता है, और द्रव्यादि के नष्ट होने पर भीलों के द्वारा उसी को सान्त्वना प्राप्त होती है ॥११॥ कोई दानी भी भिखारी हो जाता है, कोई हत्या करके भी अवध्य रहता है, कोई दूसरे की मृत्यु से रक्षा करके भी दूसरों के द्वारा मारा जाता है, तप के क्षीण होने पर ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं ॥१२॥ मैं अनेक बार ऐसी घटनाएँ देख चुका हूँ, इस प्रकार भाव और अभाव की परम्परा से सपूर्ण विश्व व्याकुल है निरन्तर ॥१३॥ ऐसा विचार कर शोक मत करो, क्योंकि हर्ष या शोक से अभिभूत नहोना ही तप का फल है ॥१४॥

ततस्तेजैमिनिसर्वैपाद्यार्घ्याभ्यामपूजयन् ।
अनामयंचपप्रच्छु प्रणिपत्यमहामुनिम् ॥१५
अथोचुःखगमाःसर्वंव्यासशिष्यंतपोनिधिम् ।
सुखोपविष्टं विश्रान्तं ... ॥१६

अद्यनःसफलजन्मजीवितंचसुजीवितम् ।
यत्प यामःसुरैर्न्द्यतवपादाम्बुजद्वयम् । ।७
पितृकोपाग्निरुद्धूतोयोनोदेहेषुवर्त्तते: ।
सोद्यशान्तिंगतोविप्रयुष्मद्दर्शनवारिणा ।।१८
कच्चित्ते कुशलंब्रह्मन्नाश्रमेमृगपक्षिषु ।
वृक्षेष्वथलतागुल्मत्वक्सारतृणजातिषु ।।१९
अथवानैतदुक्तं हिसम्यगस्माभिरादृतैः ।
भवतासंगमोयेषांतेषामकुशलंकुतः ।।२०
प्रसादंचकुरुष्वात्रब्रूह्यागमनकारणम् ।
देवानामिवससर्गोभवतोऽभ्युदयोमहान् ।
केनास्मद्भाग्यगुरुणाआनीतोदृष्टिगोचरम ।।२१
श्रूयतांद्विजशार्दूला कारणयेनकन्दरम् ।
विन्ध्यस्येहागतोरम्यंरेवावारिकणोक्षितम् ।
सन्देहान्भारतेशास्त्रेतान्प्रष्टुंगतवानहम् ।।२२
मार्कण्डेयमहात्मानं पूर्वंभृगुकुलोद्वहम् ।

इसके पश्चात् उन धर्मपक्षियों ने पाद्यार्घ्य आदि से महामुनि का पूजन किया तथा प्रणाम के पश्चात् कुशल-प्रश्न किया ।। ५।। उनके पङ्खों की हवा से व्याप्त शिष्य जैमिनि का श्रम दूर हुआ और वे सुख पूर्वक बैठे, तब वे पक्षिगण उनसे बोले ।।१८।। पक्षियों ने कहा —हे महाभाग ! हमारा जन्म और जीवन अब सफल हो गया क्योंकि देवताओं द्वारा पूजित आपके चरणारविन्दों का हमें दर्शन प्राप्त हुआ है ।।१७।। हे ब्रह्मन् ! हमारे पिता की जो क्रोधाग्नि हमारे शरीर में अत्यन्त प्रबल रूप में रहती है, वह आपके दर्शन रूप जल से शान्त हो गई है।।१८।। हे विप्र ! आपके आश्रम के मृग, पक्षिवृन्द, लतादि सब कुशल पूर्वक तो हैं ।।१९।। अथवा हमारा यह प्रश्न ही उचित नहीं है, क्योंकि आपके समीप निवास करने वालों के लिए अमङ्गल ही कैसा ? ।।२०।। अब आप यहाँ किस लिये पधारे हैं, यह हमको कृपा पूर्वक बताईये, आपका आगमन और देवताओं का संसर्ग यह समान ही हैं, यह समझ में नहीं आता कि भाग्य कि किस प्रबलता से आपका दर्शन प्राप्त हो सका है।२१।

तमहपृष्टवान्प्राप्यसन्देहान्भारतप्रति ॥२३
सचपृष्टोमयाप्राहभन्तिविन्ध्येमहाचले ।
द्रोणपुत्रामहात्मानस्तेवक्ष्यन्त्यर्थंविस्तरम् ॥ ४
तद्वाक्यचोदितश्चेममागतोऽहंमहागिरम् ।
तच्छणुत्वमशेषेणश्रुत्वाव्याख्यातुमहथ ॥२५
विषयसतिवक्ष्यामीनिर्विशङ्कःशृणुष्वतत् ।
कथतन्नवदिष्यामोयदस्मद्बुद्धिगोचरम् ।.२६
चतुष्वपिहिवेदेषुधर्मशास्त्रेषुचंवहि ।
समस्तेषुतथाङ्गेषुयच्चान्यद्वेदसंमितम् ॥ ७
एतेषुगोचरोऽस्माकंबुद्धेब्राह्मणसत्तम ।
प्रतिज्ञांतुसमावोढुंतथापिनहिशक्नुमः ॥२८

जैमिनी ने कहा रेवा नदी जलकणों द्वारा सीचे हुए इस विंध्य पर्वत की मनोहर कन्दरा में, मैं जिस लिए उपस्थिति हुआ हूँ वह सुनो । हे विप्रगण ! महाभारत शास्त्र है अनेक संदेह होने के कारण उनके समाधानार्थं ।। २।। मैं महात्मा मार्कण्डेयजी के पास गया था और उनसे महाभारत के प्रति संदेह-प्रश्न किये थे ।।२ ।। उन्होंने कहा कि विन्ध्य पर्वत में महात्मा द्रोण के पुत्र रहते हैं,वहाँ जाकर उनसे ही यह बात पूछो इन प्रश्नों का सविस्तार वर्णन वही करेंगे ।।.४।। उन्हीं के आदेश से मैं इस महापर्वत में उपस्थित हुआ हूं मेरे उन प्रश्नों को भले प्रकार सुनकर उनकी व्याख्या करदो ।।२५।। पक्षी बोले यदि कहने योग्य होगा तो अवश्य कहेंगे आप शंका रहित चित्त से कहें जो हमारी बुद्धि में आयेगा उसे क्यों न बतायेंगे ? ।।२३।। चारो वेद, सभी धर्मशास्त्र, वेदांग अथवा अन्य कोई भी वेद सम्मत शास्त्र ।।२ ।। यद्यपि हमारी बुद्धि के लिए गोचर हैं, फिर भी हम इसकी प्रतिज्ञा नहीं करेंगे ।.२८।।

तस्माद्वदस्वविश्रब्धनन्दिग्धंयद्धिभारते ।
वक्ष्यामस्तवधर्मज्ञनचेन्मोहोभविष्यति ॥२९
सन्दिग्धानीहवस्तूनिभारतप्रतियानिमे ।
शृणध्वममलास्तानिश्रुत्वाव्याख्यातुमर्हथ ॥३०
कस्मान्मानुषतां ... ।

वासुदेवोऽखिलाधारःसर्वंकारणकारणम् ॥३१
कस्माच्चपाण्डुपुत्राणामेका साद्रुपदात्मजा ।
पञ्चानांमहि षीकृष्णासुमहानत्रसंशयः ॥३२
भेषजंब्रह्महत्यायाबलदेवोमहाबलः ।
तीर्थयात्राप्रसङ्गेनकस्माच्चकेहलायुधः ॥३३
कथंचद्रौपदेयास्तेऽकृतदारामहारथाः ।
पाण्डुनाथामहात्मानोबधमापुरनाथवत् ॥३४
एतत्सर्वंकथ्यतांमेसन्दिग्धंभारतंप्रति ।
कृतार्थोऽहंसुखयेनगच्छेयनिजमाश्रमम् ॥३५

इसलिए आपको महाभारत के प्रति जो शङ्का है, उसे व्यक्त कीजिए, हे धर्मज्ञ ! यदि मोह न हुआ तो उसे आपके प्रति अवश्य ही कहेंगे ॥२९॥ जैमिनि ने कहा—स्वच्छ चित्त खगगण ! महाभारत के जिन स्थलों में मुझे संदेह है, उन्हें सुनो और व्याख्या करो ।३०। मेरी शंका है कि सम्पूर्ण कारणों के कारण और समस्त ब्रह्माण्ड के आधार जनार्दन वासुदेव गुण-रहित होकर भी मनुष्य किस कारण हुए ॥६१॥ तथा द्रुपद की एक ही कन्या पाँच पाँडवों की महिषी किस प्रकार हुई, यह अत्यन्त संशय है ॥६२॥ महाबली बलरामजी तीर्थयात्रा के प्रसंग में ब्रह्महत्या के पाप से किस प्रकार मुक्त हुऐ थे ? ॥३३॥ तथा युधिष्ठिर आदि पाँचों पाँडवों द्वारा रक्षित द्रौपदी के अविवाहित पुत्र अनाथ के समान मृत्यु को किस प्रकार प्राप्त हुए थे ॥६४॥ इन सब विषयों के प्रति मुझे अत्यन्त संन्देह है, इन सदेहों का अपने उत्तर से समाधान करके मुझे कृतार्थ करो तो मैं सुख पूर्वक अपने आश्रम को लौट सकूँगा ॥३५॥

नमस्कृत्यसुरेशायविष्णवेप्रभविष्णवे ।
पुरुषायाप्रमेयायशाश्वतायाव्ययायच ॥३६
चतुर्व्यूहात्मनेतस्मैत्रिगुणायागुणायच ।
वरिष्ठायगरिष्ठायवरेण्यायामृतायच ॥३७
यस्मादणतरंनास्तियस्मान्नास्तिबृहत्तरम् ।
येनविश्वमिदंव्याप्तमजेनजगदादिना ॥३८

आविर्भावतिरोभावद्दष्टादृष्टविलक्षणम् ।
वदन्तियत्सृष्टमिदन्तथैवान्तेचसहृतम् ।।३९
ब्रह्मणेचादिदेवायनमस्कृत्यसमाधिना ।
ऋग्यजुःसामान्युद्गिरन्वक्त्रैर्यःपुनातिजगत्त्रयम् । ४०
प्रणिपत्यंतथैशानमेकबाणविनिर्जितैः ।
यस्यासुरगणैर्यज्ञाविलुप्यन्तेनयज्विनाम् ।।४१
प्रवक्ष्यामोमतंकृत्स्नंव्यासस्याद्भुतकर्मणः ।
येनभारतमुद्दिश्यधर्माद्याःप्रकटीकृताः ।।४२

पक्षियों ने कहा—जो देवताओं के अधीश्वर, सर्वव्यापी, अत्यन्त प्रभावशाली, आत्मा, अप्रमेय शाश्वत एवं अव्यय स्वरूप हैं ।। ६।। तथा जो वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध रूप हैं, जो त्रिगुण अथवा निर्गुण हैं, जो उरुतम, गरिष्ठ, वरेण्य एवं अमृत हैं ।।३७।। जो यज्ञाङ्ग तथा चराचर विश्वात्मक हैं, वेदान्त शास्त्र में जिनके स्वरूप का संक्षिप्त वर्णन हुआ है, सम्पूर्ण संसार में जिनके समान सूक्ष्मतर या बृहत्तर नहीं है, सम्पूर्ण जगत् जिससे व्याप्त है जो जगत् के आदि तथा अजन्म हैं ।।३८।। जिन भगवान् विष्णु के द्वारा अविर्भाव, तिरोभाव, दर्शन, अदर्शन आदि सभी कार्य सम्पन्न होते हैं. और जो उनसे अतीत, सृष्टिकर्त्ता और संहारकर्त्ता कहलाते हैं ।।३९।। जो आदिदेव हैं तथा अपने चारों मुखों मे चारों वेद प्रकट करके त्रैलोक्य को पवित्र करते हैं उन ब्रह्माजी को ध्यान पूर्वक नमस्कार है ।।४०।। जिनके एक वाण से ही सम्पूर्ण असुर परास्त होकर याज्ञिकों के यज्ञ को नष्ट करने में असमर्थ होते हैं, उन देवाधिदेव महादेव के चरणारविन्दों में प्रणाम करके ।।४१।। अद्भुत कर्म युक्त महर्षि बादरायण द्वारा महाभारत रूप से प्रकट हुए धर्मादि को महर्षि व्यास के मतानुसार सम्पूर्ण विषय आपको कहेंगे ।।४२।।

आपोनाराइतिप्रोक्तामुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
अयनंयस्यताःपूर्वंतेनारायणःस्मृतः ।।४३
सदेवोभगवान्सर्वंव्याप्यनारायणोविभुः ।
चतुर्धासस्थितोब्रह्मन्सगुणोनिर्गुणस्तथा ।।४४
एकामूर्तिरनिर्देश्याशुक्लांपश्यन्तितांबुधाः ।

ज्वालामालोपरुद्धांगीनिष्ठासायोगिनांपरा ॥४५
दुरस्थाचान्तिकस्थाचविज्ञयासागुणातिगा ।
वासुदेवाभिधानोऽसौनिर्ममत्वेतदृश्यते ॥४६
रूपवर्णादयस्तस्यानभावाः कल्पमामयः ।
अस्त्येवसादाशुद्धासुप्रतिष्ठकरूपिणी ॥४७
द्वितीयापृथिवीमुर्ध्नाँशेषाख्याधारयत्यधः ।
तामसीसाख्यातातियक्त्वसमुदाश्रिता ॥४८
तृतीयाकर्मंकुरुतेप्रजपालनतत्परा ।
सत्वोद्रिक्तातुसाज्ञयामेंसंस्थानकारिणी ॥४९
चतुर्थीजलमध्यस्थाशेतेपन्नागतल्पगा ।
रजस्तस्यागुणः सर्गंसाकरोतिसदैवहि ॥५०

तत्त्वदर्शी मुनियों ने कहा—'नार' का अर्थ जल है, वह जल ही जिसका अत्यन्त एक मात्र 'अयन' अर्थात गृह है इसलिए वे नारायण कहे हैं ॥४६॥ हे भगवन् ! अनन्त लीलामय भगवान् नारायण सगुण तथा निर्गुण दोनों प्रकार से चार मूर्ति से अवस्थित हैं ॥४ ॥ उनको जो एक मूर्ति वाणी से परे हैं उसे ज्ञनीजन शुक्लवर्ण कहते हैं जो योगियों को एक मात्र आश्रम है मथा चन्द्र सूर्य आदि सम्पूर्ण तेजोमय पदार्थ स्वरूप ज्वालमाल से जिनके सब अङ्ग आच्छादित है ।४५॥ जो नित्य मूर्ति तीनों गुणों का अतिक्रम करके दूर तथा समीप स्थित रहतीहैं उस प्रधान मूर्ति का नाम वासुदेव है इसमें ममता किंचित भी नहीं है ॥४३॥ उसके रूप, वर्ण आदि कल्पनात्मक है वह सर्वकाल में विराजमान, एक रूप तथा परम पवित्र हे ॥४७॥ जो मूर्ति पाताल में निवास करके पृथ्वी को अपने मस्तक पर धारण करती है, । उसदसरी मूर्ति को संकरण कहते है, तामसी होने के कारण यह मूर्ति तियग योनि वाली है ॥४८॥ नारायण के जिस मूर्ति से सभों कर्म भले प्रकार से साध्य होते हैं और प्रजापालन आदि सब कार्य सम्पादन होते हैं तथा जो धर्म की रक्षा करने वाली सतोगुणी मुर्ति हैं, उसे प्रद्युम्न कहते हैं ॥४९॥ चौथी मूर्ति जल में पन्नगशय्या पर शयन करती है. वह रजोगुणी है. उसी के द्वारा सृष्टिकार्य सम्पन्न होता है, उसका नाम अनिरुद्ध है ॥५०॥

य तृतायहरेमूर्तिः प्रजापालनतत्परा ।
साधुधमव्यवस्थानकरोतिनियतम्भुवि ।।५१
प्रोद्धूतानसुरान्हन्तिधर्मविच्छित्तिकारिणः ।
पातिदेवान्सतश्चान्यान्धर्मरक्षापरायणान् ।।५२
यदायदाहिधर्मस्यग्लानिर्भवतिजैमिने ।
अभ्युत्थानमधर्मस्यतदात्मानंसृजत्यसौ ।।५३
भूत्वापुरावराहेणतुण्डेनापोनिरस्यच ।
एकयादंष्ट्रयोत्खातानलिनीववसुंधरा ।।५४
कृत्वानृसिंहरूपंचहिरण्यकशिपुर्हतः ।
विप्रचित्तिमुखाश्चान्येदानवाविनिपातिताः ।।५५
वामनादींस्तथैवान्यान्नसंख्यातुमिहोत्सहे ।
अवतारांश्चतस्येहमाथुरःसांप्रतंत्वयम् ।।५६
इतिसासात्विकीमूर्तिरवतारान्करोतिवै ।
प्रद्युम्नेतिचसा ख्याता रक्षाकर्मण्यवस्थिता ।।५७
देवत्वेऽथमनुष्यत्वेतिर्यग्योनौचसंस्थता ।
गृह्णातितत्स्वभावचवासुदेवेच्चयासदा ।।५८
इत्येतत्ते समाख्यातंकृत्योऽपियत्प्रभुः ।
मानुषत्वगतोविष्णुः शृणुष्वास्योत्तरंपुनः ।।५९

प्रजा का पालन का करने वाली तीसरी मूर्ति के द्वारा ही पृथ्वी में सदैव धर्म संस्थापन कार्य होता है ।।५१।। धर्म को नष्ट करने वाले असुरगण उसी मूर्ति द्वारा नाश को प्राप्त होते हैं तथा उसी के द्वारा धर्म रत साधुओं की रक्षा होती ।।५२।। हे जैमिने ! जब-जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है, तब-तब यह मूर्ति धर्म के अभ्युत्थानार्थ प्रकट होती है ।।५३। प्राचीन समय में इसी मूर्ति ने वराहों रूप धारण करके दाँतों के अग्र भाग से जल को हटा कर केवल दाढ़ से पृथ्वी को निकाला और पहिले के समान स्थिर किया ।।५४।। उसी ने नृसिंह रूप धारण कर हिरण्यकशिपु का संहार किया और उसी ने विप्रचित्ति इत्यादि दैत्यों को तारा ।।५५।। इसके वामनादि अन्यान्य बहुत से अवतार हुए जिनकी गणना नहीं कर सकते, इसी समय वह

मूर्ति श्री कृष्ण के रूप में उत्पन्न हुई है ॥४९॥ इस प्रकार उस सतोगुणी मूर्तिके उद्भुत होंने पर उसकी रक्षा प्रद्युम्न मूर्ति करती है ॥५०॥ वह देवत्व तनुष्यत्व अथवा तिर्यक् आदि योनियों में अवस्थान कर वासुदेव की इच्छानुसार उनके स्वभाव का अवलम्बन करती है ॥५८॥ आपके प्रति हमने यह सब कहा अब भगवान् विष्णु ने मनुष्य शरीर जिस लिए धारण किया, उसे कहते है ॥५९॥

॥ इति ॥

५–द्रौपदी के पाँच पति

त्वष्ट्वपुत्रेहतेपूर्वंब्रह्मन्निन्द्रस्यतेजसः ।
ब्रह्महत्याभिभूतस्यपराहानिरजायत ॥१
तद्धर्मंप्रविवेशाथशाक्रतेजोऽनचारतः ।
निस्तेजाश्चाभवच्चक्रोधमंतेजसिनिर्गते ॥२
ततःपुत्रं हतश्रुत्वत्वष्टाक्रुद्धप्रजापतिः ।
अवलुंच्यजटामेकामिदंवचनमब्रवीत ॥३
अद्यपश्यन्तुमेवीर्यंत्रयोलोकाःसदेवताः ।
सत्रपश्यतुदुर्बुद्धिर्ब्रह्मापाकशासनः ॥४
स्वकर्मभिरतोयेनमत्सुतोविनिपातितः ।
इत्युक्त्वाकोपरक्ताक्षोजटामग्नौजुहावतम् ॥५
ततावृत्तःसमुत्तस्थौज्वालामालीमहासुरः ।
महाकायोमहादंष्ट्रोभिन्नाञ्जनचयप्रभः ॥६
इन्द्रशत्रुरमेयात्मात्वष्ट्वतेजोपवृंहितः ।
अहन्यहनिसोऽवर्द्धदिषुपातमहावलः ॥७

पक्षियों ने कहा—हेब्रह्मन् ! प्रजापति त्वष्टा का पुत्र त्रिशिरा अधोमुख होकर तप कर रहा था, उसके तप से डर कर इन्द्र ने उसे मार डाला. उसके मारने से ब्रह्महत्या से उत्पन्न पातक से इन्द्र का तेज नष्ट हो गया ॥१॥ अधर्म का आचरण करने से इन्द्र के तेज ने धर्म में प्रवेश किया और इस कारण इन्द्र निस्तेज हो गये ॥२॥ त्रिशिरा की मृत्यु वृतान्त सुनकर त्वष्टा अत्यन्त

क्रोधित हुए और उन्होंने अपने मस्तक की एक जटा उखाड़ कर कहा

॥३॥ देवगण सहित स्वर्ग और पाताल में निवास करने वाले सभी लोग इस समय मेरे तेज को देखे तथा मेरे पुत्र का हत्यारा दुर्बुद्धि वाला इन्द्र भी मेरे विक्रम को देखे ॥४॥ जिसने अपने कर्म में लगे हुए मेरे पुत्र का बध किया है, यह कह कर उन्होंने रक्त नेत्र किये हुए क्रोध पूर्वक उस जटा को अग्नि मे होम दिया ॥५॥ तब तत्काल ज्वालमालायुक्त विशाल काय, विशाल दंष्ट्राओं से युक्त, अंजनपिण्ड जैसा रूप धारण किये वृत्र नामकएक घोर असुर अग्नि से प्रकट हुआ ॥६॥ त्वष्टा के तेज से उत्पन्न हुआ वह शुत्रारि वृत्र धनुष से छुटे हुए बाण की ऊंचाई के समान नित्य वृद्धि को प्राप्त होने लगा ॥

वधायचात्मनोदृष्ट्वावृत्रंशक्रोमहासुरम् ।
प्रेषयामाससप्तर्षीन्सन्धिमिच्छन्भयातुरः ॥८
सख्यचक्रुस्ततस्यवृत्रेणसमयांस्तथा ।
ऋषयःप्रीतमनसःसर्वभूतहितेरता ॥९
समयस्थितिमुल्लघ्ययदाशक्रेणघातितः ।
वृत्रोहत्याभिभूतस्यतदाबलमशीर्यत ॥१०
तच्छक्रदेहविभ्रष्टंबलमारुतमाविशत् ।
सर्वव्यापिनमव्यक्तंबलस्यैवाधिदैवतम् ॥११
अहल्यांचयदाशक्रोगौतमंरूप्रमास्थितः ।
धर्षयामासदेवेन्द्रस्तदारूपहीयत ॥१२
शङ्गप्रत्यङ्गलावण्ययदतीवमनोरमम् ।
विहायदुष्टंदेवेन्द्रंनासत्यावगततः ॥१३
धर्मेणतेजसात्यक्तंबलहीनमरूपिणम् ।
ज्ञात्वासुरेशदेतेयास्तज्जयेचक्रुरुद्यमम् ॥१४

अपने बध के लिए उस घोर असुरवृत्र का उत्पन्न हुआदेखकर इन्द्र भयसे अत्यन्त आतुरहुऐ और इन्होंने उससे संधि करनेके उद्देश्यसे मरीच्यादि से सप्त ऋषियों के पास भेजा ॥८॥ सब जीवों की कल्याण-कामना वाले सप्तऋषियोंने इन्द्र और वृत्रासुर के मध्य परस्पर प्रतिज्ञाकरा के मित्रता करायी ।९। प्रतिज्ञा की मर्यादा का उल्लंघन करके जब इन्द्र ने

इन्द्र के द्वारा वध को प्राप्त हुआ तब उसी ब्रह्महत्या से उत्पन्न पाप के कारण इन्द्र का बल नष्ट हो गया ॥१०॥ यह बल इन्द्र के देह से निकल कर बल के मात्र अधिदेव सर्वव्यापी एवं अव्यक्त पवन देवता में प्रविष्ठ हो गया ॥११॥ और जब इन्द्र ने गौतम का रूप धारण कर अहिल्या से संगति की तब भी उसका स्वरूप श्री हीन होगया ॥१२॥ उस समय उस दुरात्मा इन्द्र अङ्ग प्रत्यङ्ग का सम्पूर्ण लावण्य उसका त्याग करके दोनों अश्विनी कुमारों में प्रवेश कर गया ॥१३॥ उस समय इन्द्र को धर्म और तेज के द्वारा त्याग हुआ तथा बल और रूप से भी हीन समझकर दैत्यों ने उन पर विजय प्राप्त करने का प्रयत्न किया १४।

राज्ञामुद्रिक्तवीर्याणांदेवेन्द्रविजिगीषवः ।
कुलेष्वतिबलादैत्या अजायन्तमहामुने ॥१५
कस्यचित्त्वथकालस्यधरणीभारपीडिता ।
जगाममेरुशिखरंसदोयत्रदिवौकसाम् ॥१६
तेषांसाकथयामासभूरिभारावपीडिता ।
तनुजात्मजदैत्योत्थखेदकारणमात्मनः ॥१७
एतेभवद्भिरसुरानिहताः पृथुलोजसः ।
तेसर्वेमानुषेलोकेजातागेहेषुभूभृताम् ॥१८
अक्षौहिण्योहिवहुलास्तद्भारात्तांव्रजाम्यधः ।
तथाकुरुध्वंत्रिदशायथाशांतिर्भवेन्मम ॥१९
तेजोभागैस्ततोदेवाअवतेरुर्दिवोमहीम् ।
प्रजानामुपकारार्थं भूभारहरणायच ॥२

हे महामुने ! महान् बल वाले दैत्यों ने इन्द्र पर विजय प्राप्त करने की अभिलाषा से बल, वीर्य और मद युक्त राजाओं के वंश में जन्म लिया ॥१५॥ फिर कुछ समय व्यतीत होने पर दैत्यों के भार से पृथिवी बोझिल हो गई और वह सुमेरु पर्वत में देवताओं की सभा में पहुँची ॥१६॥ और वह अत्यन्त बोझकी पीड़ा वाली देवी वसुन्धरा दैत्य-दानवों के कारण होने वाले अपने दुःख का सम्पूर्ण कारण वहाँकहने लगी । १७। हे देवगण ! तुमने अत्यन्त बली असुरों का संहार किया था, उन्होंने

अब मृत्यं लोक के राजवंश में जन्म धारण किया है ॥१८॥ वे दैत्य असंख्य अक्षौहिणी संख्यक है, इसलिए उनके भार से अत्यन्त पीड़ित हुई में नीचे की ओर झुकी जा रही हूँ, देवगण ! ! मुझे जिस प्रकार शान्ति मिल सके, वही करो । १६॥पक्षियों ने कहा—हे मुनिवर ! इसके पश्चात् प्रजा के उपकार और पृथिवी के भार हरणार्थ देवताओं ने अपने-अपने तेजांश से भू मंडलड पर जन्म लिया ॥२०॥

यदिन्द्रदेहजन्नेजस्तन्मुमोचस्वयं वृषः ।
कुन्त्यांजातोमहातेजास्ततोराजायुधिष्ठिरः ॥२१
बलंमुमोचपवनस्ततोभीमोऽप्रजायत ।
शक्रवीर्याधतश्चवजज्ञे पार्थोधनंजय ॥२२
उत्पन्नौयमलौमाद्रयांशक्ररूपौमहाद्युती ।
पञ्चधाभगवानित्यमवतीर्णःशतक्रतुः ॥२
तस्योत्पन्नामहाभागापत्नीकृष्णाहुताशनान् ॥२४
शक्रस्यैकस्यसापत्नीकृष्णानान्यस्यगस्यचित् ।
योगीश्वराः शरीराणिकुर्वंतिबहूलन्यपि ॥२५
पचानामेकपत्नीत्वमित्येतत्कथितंतव ।
श्रूयतांबलदेवोऽपियथायातःसरस्वतीम् ॥२८

तब इन्द्र के शरीर से उत्पन्न उस तेज को स्वयं धर्म ने कुन्ती के गर्भ में स्थापित किया, उसी से अत्यन्त तेजस्वी राजायुधिष्टर की उत्पत्ति हुई ॥२१॥ और देवताओं में श्रेष्ठ वायु । ने इन्द्र के जिस तेज को कुन्ती के गर्भ में स्थापित किया उससे भीमसेन और इन्द्र के आधे बल से कुन्ती के गर्भ से ही अर्जुन उत्पन्न हुए ॥२२॥ इन्द्र के आधे बल को धारण करने वाले दोनों अश्वनी कुमारों ने माद्री में गर्भ धारण कर दो (यमल) कुमारों को उत्पन्न किया, इस प्रकार इन्द्र ही इन पांच रूपो में प्रकट हुए ॥२६॥ तथा उन्हीं इन्द्र की भार्या शची यज्ञभाग एवं याज्ञसेना रूप से अग्नि के द्वारा उत्पन्न हुऐ ॥२४॥इससेनिश्चय हुआ कि द्रोपदी केवल एक इन्द्र की ही महिषीं थी क्योंकि महात्मा एवं योगीश्वर अपने देह के अनेक विभाग करने में समर्थ हैं । २५॥ जैसे वह द्रोपदी पाँच व्यक्तियों की एक ही पत्नी हुई वह कारण बता दिया, अब बलदेवजी जिस प्रकार सरस्वती में पहुँचे, वह श्रवण करो ॥२३॥

८—बलदेव द्वारा ब्रह्महत्या

रामःपार्थेपरांप्रीतिंज्ञात्वाकृष्णस्यलाङ्गली ।
चिन्तयामासबहुधाकिंकृतंभवेत् ॥१
कृष्णेनहिविनाहंयास्येदुर्योधनान्तिकम् ।
पाण्डवान्वासमाश्रित्यकथंदुर्योधनंनृपम् ॥२
जामातरंतथाशिष्यंघातयिष्येनरेश्वरम् ।
तस्मान्नपार्थंयास्यामिनापिदुर्योधनंनृपम् ॥३
तीर्थेष्वाप्लावयिष्यामितावदात्मानमात्मना ।
कुरूणांपाण्डवानांचयावदन्तायकल्पते ॥४
इत्यामन्त्र्यहृषीकेशंपार्थंदुर्योधनावपि ।
जगामद्वारकांशौरिःस्वसैन्यपरिवारितः ॥५
गत्वाद्वारवतींरामोहृष्टपुष्टजनाकुलाम् ।
इवागन्तव्येषुतीर्थेषुपपौपानंहलायुधः ॥६
पीतपानोजगामाथरेवतोद्यानमृद्धिमत् ।
हस्तेगृहीत्वासमदांरेवतीमप्सरोपमाम् ॥७

पक्षियों ने कहा-अर्जुन के प्रति श्रीकृष्ण की अत्यन्त प्रीति देखकर बलरामजी क्या करने से मंगल होगा, इस विषय पर अनेक प्रकार विचार करने लगे ॥१॥ श्रीकृष्ण को साथ लिए विना ही मैं एकाकी दुर्योधन के पास कहीं जाऊंगा इन पाण्डवों का पक्ष लेकर ॥२॥ अपने ही जमाता और शिष्य राजा दुर्योधन का किस प्रकार वध करूं ? अतएव मैं राजा दुर्योधन और अर्जुन दोनों में से किसी के पास नहीं जाऊंगा ॥३॥ इस-लिए कौरव-पांडवों का जब तक नाश न हो जाय तब तक इकला ही तीर्थ-यात्रा करता हुआ अपने आत्मा को पवित्र करूं ॥४॥ ऐसा निश्चय करके बलरामजी ने हृषीकेश, अर्जुन और दुर्योधन को आमन्त्रण करते हुए अपनी सेना से घिरे हुए द्वारका को प्रस्थान किया ॥५॥ जब वे हृष्ट-पुष्ट मनुष्यों वाली द्वारका नगरी में पहुंचे तब तीर्थ यात्रा का विचार करते हुए उन्होंने ताड़ी का रस पान किया ॥६॥ रस पीने के उपरान्त अप्सरा के समान गर्वित रेवतीजी का कर ग्रहण

करते हुए अनेक वैभवों से युक्त रैवत उद्यान में पहुँचे ॥७॥

स्त्रीकदम्बकमध्यस्थोययौमत्तःपदास्खलन् ।
ददर्श वनवीरारमणीयमनुत्तमम् ॥८
सर्वर्तुफलपुष्पाढ्यं शाखामृगगणाकुलम् ।
पुण्यंपद्मवनोपेतंसल्वलमहावनः ॥९
सशृश्वन्प्रीतिजननान्वहून्मदकलाञ्शुभान् ।
श्रोत्ररम्यान्सुमधुरान्शब्दान्खगमुखेरितान् ॥१०
सर्वर्तुफलभाराढ्यान्सर्वर्तुकुसुमोज्ज्वलान् ।
अपश्यत्पादपांस्तत्रविहगैरनुनादितान् ॥११
आम्रानाम्रातकान्भव्यान्नारिकेलान्सतिन्दुकान् ।
आविल्वकांस्तथाजीरान्दाडिमान्वींजपूरकान् ॥१२
पनसाल्लकुचान्मोचान्नीपांश्चातिमनोहरान् ।
पारावतांश्चकङ्कोलान्नलिनानम्लवेतसान् ॥१३
भल्लातकानामलकांस्तिन्दुकांश्चमहाफलान् ।
इंगुदान्करमर्दांश्चहरीतकविभीतकान् ॥१४
एतानन्यांश्चसत्तरून्ददशयदुनन्दनः ।
तथैवाशोकपुन्नागकेतकीबकुलानथ ॥१५

मद्यपान से उन्मत्त होने के कारण स्त्रियों से घिरे रहकर क्रीडा रत होने पर उनके पांव डगमगाने लगे फिर स्वस्थ होकर उन्होंने फिर अत्यन्त रमणीय रैवत वन देखा ॥८॥ वह समस्त ऋतुओं में उत्पन्न होने वाले फलों, पुष्पों से सुशोभित, बन्दरोंसे व्याप्त, कमलवन से सम्पन्न तथा छोटे सरोवर और महावन से सम्पन्न था ॥ ॥ रेवतीजी के साथ उस वन में प्रविष्ट होकर बलरामजी आह्लाद उत्पन्न करने वाले तथा कानों कोसुख देने वाले विभिन्न प्रकार के पशु-पक्षी का मधुर कूजन सुनने लगे ॥१०॥ वहाँ वृक्षों में सब ऋतुओं के फल लगे है, उन वृक्षों पर प्रसन्न पक्षी चहचहा रहे हैं तथा सभी ऋतुओं के पुष्प प्रफुल्लित हो रहे हैं और सभी रङ्गों के फल शोभा दे रहे हैं ॥११॥ आम, अम्रातक, नारियल, तिन्दु, बेल अंजीर, अनार, निम्बु ॥१२॥ कटहल, बड़हल, मोचरस कदम्ब, पारावत, कोल, नलिनी अम्ल,

वेत ॥१३॥ भिलावा, तिल, तैंदू, हिंगोट, करौंदा, हरड़, बहेड़ा ॥१४॥ वहां इन सब वृक्षों का बलरामजी ने देखा तथा अशोक, पुन्नाग, केतकी, मौलश्री ॥१५॥

चम्पकान्सप्तपर्णाश्चकर्णिकारान्समालतीन् ।
पारिजातान्कोविदारान्दाश्च बदरांस्तथा ॥१६
पाटलान्पुष्पितान्रम्यान्देवदारुद्रुमांस्तथा ।
सालांस्तालांस्तमालांश्चकिंशुकान्वंजुलान्वरान् ॥१७
चकोरैःपातपत्रैश्चभृंगराजैस्तथाशुकैः ।
कोकिलैः कलविंकैश्चहारीतैर्जीवजीवकैः ॥१८
प्रियपुत्रैश्चातकैश्चतथान्यैर्विविधैःखगैः ।
श्रोत्ररम्यंसुमधुरंकूजद्भिश्चाप्यधिष्ठितम् ॥१९
स्मरांसिचमनोज्ञानिप्रसन्नसलिलानिच ।
कुमुदैःपुण्डरीकैश्चतथानीलोत्पलैःशुभैः ॥२०
कह्लारैःकमलैश्चापिआचितानिसमंततः ।
कादम्बैश्चक्रवाकैश्चतथैवजलकुक्कुटैः ॥२१
कारण्डवैःप्लवहंसैःकूर्मैर्मद्गुभिरेवच ।
एभिश्चान्यैश्चकीर्णानिसमग्ताञ्जलचारिभिः ॥२२

चम्पा, कनेर, सप्तवर्ण, पारिजात, मालती, कोविदार, मन्दार, बेर ॥१६॥ पाटल, देवदार, सुखुआ, ताल, तमाल, पलाश और वंजुल आदि उतमोत्तम फल-पुष्पो से सम्पन्न वृक्षों वह वन सुशोभित है।१७। इन वृक्षों पर चकोर जातपत्र, भृङ्गराज, शुक, सारिका, कोकिला हरैल जीवजीवक ॥१८॥ प्रियपुत्र तथा चातक आदि विभिन्न प्रकार के पक्षी सुनने में मनोहर शब्द करते हुए, इन सब वृक्षों की शाखाओं के आश्रय में निवास करते है ॥१९॥ उस रैवतक वन में स्वच्छ जल वाले सरोवर सुशोभित हैं, जिन्हें देखते ही चित्त प्रसन्न होता है कुमुद, पुण्डरीक,नील-पद्मा ।२०। कह्लार और कमल आदि पुष्पों से सर्वत्र शोभायमान तथा कलहंस, चकवा और जल कुक्कुट ॥२१॥ प्लव, कूर्म तथा कारण्डव आदि जलचर आदि के सहित अत्यन्त सुशोभित है ॥२२॥

क्रमेणेत्थवनन शौरिर्वीक्ष्यमाणोमनोरमम्
जगामानुगत.स्त्रीभिलतागृहमनुत्तमम् ॥२३
सददर्शद्विजांस्तत्रवेदांगपा गान् ।
कौशिकान्भार्गवांश्चैवबरद्वाजान्सगौतमान् ॥२४
विविधेषु चसंभुतान्वशेषु द्विजमत्तमान् ।
कथाश्रवणबद्धात्कानुपविष्टान्महत्सुख ॥२५
कृष्णाजिनोशरीयेषु कुशेचुपुचबृसीषु च ।
सूतंचतेषामध्यस्थंकथयानंकथाःशु भाः ॥२६
पौराणिकीःसुरर्षीणामाद्यानांचरिताश्रयाः ।
दृष्ट्वाराम द्विजाःसर्वंमधुपानारुणेक्षणम् ॥२७
मत्तोऽयमितिमन्यानाःसमुत्तस्थुस्त्वरान्विताः ।
पूजयन्तोहलधरमृतेततंसूतवंशजम ॥२८

उस वन को देखते हुए बलरामजी स्त्रियों के सहित एक अत्यन्त श्रेष्ठ लतागृह में पहुंचे ॥२३॥ वहाँ उन्होंने देखा कि अनेकों वेदवेदांग ज्ञाता ब्राह्मण, कृशिक वंशी भृगुवंशी, तथा भारद्वाज और गौतम के वंशधर ॥२४॥ तथा अन्यान्य वंशों के पवित्र ब्राह्मण और श्रेष्ठ मनुष्य कुशाओं पर और कोई घास पर ही बैठे हैं तथा उनके मध्य में पुराण की कथा कहने वाले सूतजी कल्याणमयी कथा कर रहे हैं ॥२६॥ उस कथा में देवताओं और ऋषियों का वर्णन था । उसी समय उन ब्राह्मणों ने मदिरा के मद से लाल हुए नेत्रों वाले बलरामजी को देखा । २७। सब मुनियों उन्हें मदोन्मत्त देख उस समय सूतजी के अतिरिक्त अन्य सभी ने उठकर अत्यन्त आदर पूर्वक बलराम जी का पूजन किया ॥२८॥

ततःक्रोधसमाविष्टोहलीसुतं महाबलः ॥
निजघानवृवित्ताक्षःक्षोभिताशेषदानवः ॥२९
अध्यास्मतिपदंब्राह्मं तस्मिन्सूतेनिपातिते ।
निष्क्रान्तास्ते द्विजाःसर्वेवनात्कृष्णाजिनाम्बरः ॥३०
अवधूतंतथा त्मानंमन्यमानोहलायुधः ॥

चिन्तयामाससुमहन्भगा ापमिदंकृतम् ॥३१

ब्राह्मं स्थानं गतोह्येषयत्सूतोविनिपातितः ॥

तथाहिमेद्विजाःसर्वेमामवेक्ष्यविनिर्गताः ॥३२

शरीरस्यचमेगन्धोलोहस्येवासुखावहः ॥

आत्मानं चावगच्छामिब्रह्मघ्नमिवकुत्सितम् ॥३३

धिगमर्षं तथामह्यमतिमानमभीरुताम् ॥

यैराविष्टेनसुकृहन्मयापापमिदकृमम् ॥३४

तत्क्षयाथचरिष्यामिव्रतंद्वादशवार्षिकम् ।

स्वकर्मख्यापनं कुर्वन्प्रायश्चित्तमनुत्तमम् ॥३५

अथयेयंममारब्धातीर्थयात्रामयाधुना ।

एतामेवप्रयास्यामिप्रतिलोमांसरस्वतीम् ॥३६

अतोजगामरामोसौप्रतिलोमांसरस्वतीम् ।

ततःपरं श्रृणुष्वेमंपाण्डवेयकथाश्रयम् ॥३७

फिर दानवों के हन्ता महान् पराक्रमी बलरामजी ने सूतजी के द्वारा अपना तिरस्कार समझकर अत्यन्त क्रोध से लाल नेत्र कर सूतजी को मार डाला ।।२९।। पुराणवेत्ता सूतजी के मर-कर स्वर्ग में पहुँचने पर मृगछालाओं पर बैठे हुए सभी ब्राह्मण वहाँ से उठकर चले गए ।।३०।। तब जिन बलरामजी की देह पर पद प्रतीत हो रहा था, वह चिन्ता और पश्चात्ताप करने लगे कि मैं ऐसा घोर पाप क्या कर बैठा ? ।।३१।। मैंने जिन सूतजी को मार, वह ब्रह्मस्थान को प्राप्त हुए और सभी ब्राह्मण मुझे देखते ही चले जाते हैं ।।३२।। मेरे देह से असुरत्व प्रदर्शित करने वाली लौह तुल्य गंध निकल रही है और आत्मा भी ब्रह्महत्या से उत्पन्न पाप से कलुषित प्रतीत होती है ।।३३।। अरे अमर्ष ! तुझे धिक्कार है, अरे मद्य तुझे भी धिक्कार है, अत्यन्त सम्मान और साहस को भी धिक्कार है क्योंकि इन्हीं के वशीभूत होकर मैं ऐसा घोर पातक कर बैठा ।। ३४ ।। अब इस ब्रह्महत्या से उत्पन्न महा पातक को दूर करने के लिए बारह वर्ष तक व्रत करता हुआ अपने पाप को सर्वत्र विख्यात करके इसका प्रायश्चित्त करूँगा ।। ३५।। अथवा जिस तीर्थ यात्रा का जो उद्यम मैं कर रहा हूं उसी यात्रा में प्रतिलोमा सरस्वती

में जाऊंगा।३८। हे मनु ! ऐसा कहकर यदुकुल धुरंधर बलरामजी प्रतिलोम सरस्वती को जाकर प्राप्त हुए, अब तुम्हारे प्रति पाण्डव पुत्रों का वृत्तान्त कहते हैं, उसे श्रवण करो।३९।

७ द्रौपदी के पांच पुत्रों की मृत्यु

हरिश्चन्द्रेतिराजर्षिरासीत्त्रेतायुगेपुरा ।
धर्मात्मापृथिवीपालः प्रोल्लसत्कीर्तिरुत्तमः ।१
नदुर्भिक्षनचव्याधिर्नाकालमरणनृणाम् ।
नाधर्मरुचयः पौरास्तस्मिन्शासतिपार्थिवे ।२
बभूवुर्नतथोन्मत्ताधनवीर्यतपोमदैः ।
नाजायन्तस्त्रियश्चैवकाश्चिदप्राप्तयौवनाः ।३
सकदाचिन्महाबाहुररण्येऽनुसरन्मृगम् ।
शुश्रावशब्दमसकृत्त्रायस्वेतिचयाषिताम् ।४
सविहायमृगंराजामाभैषीरित्यभाषत ।
मयिशासतिदुर्मेधाः कोऽयमन्याययवृत्तिमान् ।५
तत्क्रान्दतानुसारिचसर्वारम्भविघातकृत ।
एतस्मिन्नन्तरेरौद्रो विघ्नराट्समचिन्तयत् ।६
विश्वामित्रोऽयमतुलंतपआस्थायवीर्यवान्
प्रागसिद्धाभवादीनांविद्याःसाधयतिव्रती ।७

धर्मात्मा पक्षियों ने कहा—हे जैमिनी ! पुराकाल में त्रेता में हरिश्चन्द्र नाम के एक धार्मिक नरेश हुए, वह अत्यन्त कीर्ति से युक्त पृथिवी का पालन करने वाले श्रेष्ठ पुरुष थे।१। उनके शासन-काल में दुर्भिक्ष नहीं पड़ा और प्रजा को रोग, अकाल मृत्यु का फल तथा अधर्म फल नहीं भोगना पड़ता था।२। उनकी प्रजा भी धन, बल या धर्म के मद से उन्मत्त नहीं होतीं थीं, स्त्रियाँ भी यौवनावस्था प्राप्त किये बिना सन्तानवती नहीं होती थी।३। एक समय की बात है वह आखेट के लिए वन में गये, उसी समय उन्होंने अनेक स्त्रियों के कंठ में 'रक्षा करो, रक्षा करो' का शब्द सुना।४। तब राजा मृगया छोड़ कर, 'डरो मत' कहते हुए बोले कि मेरे शासनकाल में कौन दुर्बुद्धि अन्याय का आचरण करता है ? ।५। यह कह कर उन्होंने

उस करुण स्वर का अनुसरण किया, उसी समय सब कार्यों को नष्ट करने वाला भयंकर विघ्नराज सोचने लगा।६। इस वन में जिन साधनों को पहिले कोई नहीं साध सका उन्हें भव दि सम्पूर्ण विद्याओं का साधन प्रतालम्बन एवं घोर तप द्वारा महामुनि विश्वामित्रजी कह रहे हैं।७।

साध्यमानाः क्षमामौनचित्तसंयमिनाऽमुना।
तावैभयार्त्ताः क्रन्दन्तिकथंकार्यमिदंमया।८
तेजस्वीकौशिकश्रेष्ठोवयमस्यसुदुर्बलाः।
क्रोशन्त्येतास्तथाभीतादुष्पारंप्रतिभातिमे।९
अथवायंनृप प्राप्तोमाभैरितिवदन्मुहुः।
इममेवप्रविश्यशुसाथयिष्येयथेप्सितम्।१०
इतिसंचिन्त्यरौद्रेणविघ्नराजेननवैततः।
तेनाविष्ठानृपः कोपादिदंवचनमब्रवीत्।११
कोऽयंब्रघ्नातिवस्त्रान्तेपावकंपापकृन्नरः।
बलोष्णतेजसादीप्तेमयिपत्यःवुपस्थिते।१२
सोऽद्यमत्कामुकाक्षपविदिपितदिगन्तरैः।
शरैविभिन्नसर्वांगोदीर्घनिद्रांप्रवेक्ष्यति।१३
विश्वामित्रस्ततः क्रुद्धाश्रुत्वातन्नृपपतेर्वचः।
क्रुद्धेचर्षिवरेतस्मिन्नेशुर्विद्याः क्षणेनताः।१४

क्षमा, मौन और चित्त के संयम द्वारा वे मुनिवर जिन विद्याओं के साधन में अहनिश श्रद्धा से रत है,वे विद्याएं अत्यन्त भयभीतहो नारीरूप में 'रक्षा करो' कहती हुई रोती हैं, अब मुझे क्या कर्त्तव्य है?।८।क्योंकि विश्वामित्रजी अत्यन्त तेजस्वी हैं और इनके समक्ष अत्यन्त दुर्बल हूं और यह विद्याएं भी भय से रुदन कर रही हैं, इस प्रकार अत्यन्त कठिन वार्ता उपस्थित है।६। अथवा मुझे किसी प्रकार चिन्तित नहीं होना चाहिए, क्योंकि राजा हरिश्चन्द्र 'डरो मत' कहता हुआ आ पहुँचा है,इस लिए इस राजा के देह में घुसकर ही अपनी इच्छा पूर्ण करता हूं।१०उस समय भयकर विघ्नराज ने इस प्रकार विचारकर राजा के देह में प्रवेश किया, तब राजा ने और भी क्रोध पूर्वक कहा।११। यह कौन पापी,

वस्त्र में अग्नि को बांध रहा हूँ ? जब मैं साक्षात् बल रूप अत्यन्त तेजस्वी भूपति हरिश्चन्द्र यहाँ आ गया हैं।१२। इस समय कौन मूर्ख से धनुष से छूट कर दिशाओं में प्रकाश करने वाले मेरे बाणों से छिद्र कर योग निद्रा को प्राप्त होगा।१३। तब राजा हरिश्चन्द्र के यह अहंकारमय वचन सुनकर मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी क्रोधित हो उठे और उनके क्रोध करते ही सब विद्या नष्ट हो गईं।१४।

सचापिराजातं दृष्ट्वा विश्वामित्रं तपोनिधिम्।
भीतः प्रावेपतात्यर्थंसहसाश्वत्थपर्णवत्।१५
सदुरात्मन्नितियदामुनिस्तिष्ठेतिचाब्रवीत्।
ततः सराजाविनयात्प्रणिपत्याभ्यभाषत।१६
भगवन्नेषधर्म्मोमेनापराधोममप्रभो।
नक्रोद्धुमर्हसिमुनेनिजधर्मरतस्यमे।१७
दातव्यक्षतव्यचधर्मज्ञेनमहीक्षिता।
चापंचोद्यम्पयोद्धव्य धर्मशास्त्रानुसारतः।१८
दातव्यकस्यकेरक्ष्याः कैर्योद्धव्यंचतेनृपः।
क्षिप्रमेतत्समाचक्ष्वयद्यधर्माभयंतव।१९
दातव्यविप्रमुख्येभ्योयेचान्येचान्येकृशवृत्तयः।
रक्ष्याभीताः सदायुद्धं कर्त्तव्यं परिपन्थिभिः।२०
यदिराजाभवान्सम्यग्राजधर्ममवेक्षते।
निर्वेष्टुकामोविप्रोऽहंदीययामिष्टदक्षिणा।२१

सहसा तपोनिधि विश्वामित्रजी को देखकर राजा हरिश्चन्द्र अत्यन्त भयभीत होकर पीपल-पत्र के समान काँपने लगे।१५।उसी समय मुनिवर विश्वामित्र ने कहा 'दुरात्मन् ! ठहर' यह सुनकर राजा ने उनको प्रणाम किया और विनय पूर्वक बोले।१६। हे भगवन् ! मेरा धर्म यही है, आप मेरे अपराध को न मानिए, मैंने अपने धर्म का त्याग नहीं किया है, इस लिए मेरे प्रति क्रोध न करिये।१७। धर्मज्ञ नरेशों का कर्त्तव्य ही धर्मानुसार दान, रक्षा और धनुष धारण करके युद्ध करना है।१८। विश्वामित्र बोले—राजन् यदि तुम्हें अधम से भय है तो यह बताओ कि

दान किसको करना चाहिए, किसकी रक्षा और किस के साथ युद्ध करना उचित है ? ।१९। हरिश्चन्द्र बोले—जो सदैव व्रत अनुष्ठान में तत्पर और ब्राह्मण श्रेष्ठ है, उसी के लिए दान करे, भयभीत की रक्षा करे और शत्रुओं के साथ युद्ध करे ।२०। विश्वामित्र ने कहा कि राजन् ! यदि तुम्हें सम्पूर्ण राजधर्म का ज्ञान है तो मैं मुमुक्षु ब्राह्मण हूँ, मुझे इच्छित दक्षिणा प्रदान करो ।२१।

एतद्राजावचःश्रुत्वाप्रहृष्टेनातरात्मना ।
पुनर्जातमिवात्मानंमेनेप्राह चकौशिकम् ।२२
उच्यताभगवन्तेदातव्यमविशङ्कितम् ।
दत्तमित्येवतद्विद्धियद्यपिस्यात्सुदुलभम् ।२३
हिरण्यंवासुवर्णंवापुत्रंस्त्रियंकलत्रम् ।
प्राणराज्यंपुरंलक्ष्मीर्यदभिप्रेतमात्मनः ।२४
राजन्यतिगृहीतोऽयंयस्तेदत्तः प्रतिग्रहः ।
प्रयच्छप्रथमंतावद्दक्षिणांराजसूयिकीम् ।२५
ब्रह्मंस्तामपिदास्यामिदक्षिणांभवतोह्यहम् ।
व्रियतांद्विजशार्दूलयस्तवेष्टः प्रतिग्रहः ।२६
संसाररांघराभेतांसभूभृद्ग्रामपत्तनाम् ।
राज्यंचसकवंवीररथाश्वगजसंकुलम् २७
कोष्ठागारंचकोषंचयच्चान्यद्विद्यतेतव ।
विनाभार्यांचपुत्रंचशरीरंचतवानघ ।२८
धर्मंचसवधर्मज्ञयोयान्तमनुगच्छति ।
बहुनावाकिमुक्तेनसर्वमेतत्प्रदीयताम् ।२९

पक्षियों ने कहा हे जैमिने । राजा हरिश्चन्द्र ने यह बात सुनकर आह्लाद और प्रफुल्लता युक्त होकर अपना नया जन्म समझते हुए मुनि से कहा ।२२। हे भगवन् ! आप अपनी अभिलाषा कहें, मैं उसे देने के लिए तत्पर हूँ तथा प्रतिज्ञा करता हूँ कि कठिन से कठिन बात को भी पूरी करूंगा ।२३। आपको स्वर्ण, रत्न, पुत्र, स्त्री, देह प्राण, राज्य, ग्राम, धन जिस वस्तु की इच्छा हो ... ।२४। विश्वामित्र ने कहा—आप

जो देंगे, वही मैंने ग्रहण कर लिया समझो, परन्तु अब प्रथम राजसूय यज्ञ की दक्षिणा मुझे दो।२५। राजा बोले—ब्रह्मन् ! देने को मैं तत्पर हूँ, राजसूय यज्ञ की दक्षिणा के रूप में आपकी जो इच्छा हो सो आज्ञा करें।२६। विश्वामित्र ने कहा समस्त नगर, ग्राम पर्वत, सागर आदि से युक्त पृथिवी एवं रथ, अश्व, हाथी सहित सम्पूर्ण राज्य।२७। अन्तः-गृह, राजकोश आदि तुम्हारी वस्तुएं बिना भार्या, पुत्र तथा अपने शरीर के।२८। तथा धर्मशास्त्र के अनुसार तुम्हारे पास जो कुछ है, सब कुछ मुझे दे दो।२९।

प्रहृष्टेनैवमनसासोऽविकारमुखोनृपः।
तस्यर्षेर्वचनंश्रुत्वातथेत्याहकृताञ्जलिः।३०
सर्वस्वयदिमेदत्तं राज्यमुर्वीबलंधनम्।
प्रभुत्वकस्यराजर्षेराज्यस्थेतापसेमयि।३१
यास्मिन्नपियाकालेब्रह्मन्दत्तावसुन्धरा :
तस्मिन्नपिभवान्स्वामीकिमुताद्यमहीपतिः।३२
यदिराजंस्त्वया दत्ता मयोर्वी वसुन्धरा।
यत्रमेविषयेस्वाम्यंतस्मान्निष्क्रान्तुमर्हसि।३३
तरुवल्कलमाबध्यसहपत्न्यासुतेन च।३४
तथेतिचोक्त्वाचराजा गन्तुं प्रचक्रमे।
स्वपत्न्याशैव्ययासार्धंबालकेनात्मजेनच।३५

पक्षियों ने कहा— मुनि के वचन सुनकर राजा ने प्रसन्नता पूर्वक हाथ जोड़कर 'जो आज्ञा. ऐसा ही होगा' मुख से कहा।३०। विश्वामित्र ने कहा-तुमने पृथिवी, बल, धन इत्यादि सर्वस्व ही मुझे अर्पण कर दिया है, तब तपस्वी होकर राज्य करने से किसका प्रभुत्व रहेगा? ३१। हरिश्चन्द्र बोले ब्रह्मन्! जब से मैंने यह वसुन्धरा आपको दे दी, तभी से आप इसके स्वामी है, फिर आप प्रभुत्व का प्रश्न क्यों करते है।३२। विश्वामित्र ने कहा—राजन्! तुमने जब यह वसुन्धरा मुझे दे दी और मेरा स्वामित्व हो गया तो तुम इस राज्य से चले जाओ।३३। कटि-

भूषण आदि तुम्हारी भार्या और पुत्र के देह में है, उन सबको उतारकर वृक्षों की छाल धारणकरके पत्नीपुत्रसहित मेरे राज्यसे निकल जाओ।३४। पक्षियों ने कहा-राजा हरिश्चन्द्र ने मुनि विश्वामित्र की आज्ञा के अनुसार देशके कार्य किए और अपनी भार्या शैव्याऔरपुत्रके सहित जाने लगे।३५

व्रजतः सततोरुद्धापन्थानं प्राहतंनृपम् ।
क्वयास्यसीत्यदत्वामेदक्षिणांराजसूयिकीम् ।३६
भगवन्सराज्यमे तत्तोदत्त निसतकण्टकम् ।
अवशिष्टमिदंह्यान्नद्यदेहत्रयंमम ।३७
तथापिखलुदातव्यात्वयामेयज्ञदक्षिणा ।
विशेषतो ब्राह्मणःनांहन्त्यदत्तंप्रतिश्रुतम् ।३८
यावत्तोषोराजसूयेब्राह्मणानांभवेन्नृप ।
तावदेवतुदातव्य।दक्षिणाराजसूयिकी ।३९
प्रतिश्रुत्यचदातव्यंयोद्धव्यं चाततायिभिः ।
रक्षितव्यास्तयाचार्त्ता सत्वयवप्राक्प्रतिश्रुतम् ।४०
भगवन्साम्प्रतंनास्तिदास्येकाद्यक्रमणे ।
प्रसादकुरु।प्रर्षसद्भावमनुचिन्त्यच ।४१
किंप्रमाणोमयाकालः प्रतीक्ष्यस्तेजनाधिप ।
शीघ्रमाचक्ष्वशापाग्नि रन्यथात्वांप्रधक्ष्यति ।४२

तभी विश्वामित्र ने उनका मार्ग रोका और कहने लगे हे राजन् ? राजसूय यज्ञ की दक्षिणा दिये बिना कहाँ जा रहे हो ? ।३६। हरिश्चन्द्र ने कहा—हे भगवन् ! मैंने आपको अपना सम्पूर्ण राज्य निष्कंटक रूप से आपको दे दिया है, अब तीन प्राणियों के शरीर के अतिरिक्त मेरे पास कुछ भी नहीं है ।३७। विश्वामित्र बोले—यदि इन तीनों शरीर के अतिरिक्त कुछ और नहीं है तो भी यज्ञ की दक्षिणा तोरदेनी ही होगी, क्योंकि ब्राह्मण से कही हुई वस्तु न देने से सब कुछ नष्ट हो जाता है ।३८। हे नरेश ! राजसूय यज्ञ में ब्राह्मण जिस वस्तु से सन्तुष्ट हो वही उसको यज्ञ दक्षिणा है ।३९। तुम्हारी तो प्रतिज्ञा हैं कि अंगीकृत दान, आततायी से युद्ध और आर्त्त पुरुष की भले प्रकार रक्षा करनी चाहिए।४०।हरिश्चन्द्र

बोले—हे ब्रह्मर्षे ! आप साधुत्व का अवलम्बन करके प्रसन्न हों, इस समय पास कुछ नहीं है, काल क्रम से आपको दुंगा ।४१। विश्वामित्र ने कहा--हे राजन ! मैं कब तक प्रतीक्षा करूं ? मुझे शीघ्र बताओ नहीं तो शापानल में भस्म हो जाओगे ।४२।

मासेन तव विप्रर्षेप्रदास्येदक्षिणाधनम् ।
साम्प्रतंनास्तिमेवित मनुज्ञांदातुमर्हसि ।४३
गच्छगच्छ नृपश्रेष्ठस्वधर्ममनुपालय ।
शिवश्चतेऽस्त्वाभवतुमासन्तुपरिपन्थिनः ।४४
अनुज्ञातः सगच्छेति जगामवसुधाधिपः ।
पद्भयामनुचितागन्तुमन्वगच्छच्चतं प्रिया ।४५
तंसभार्यंनृपश्रेष्ठंनिर्यान्तंससुतंपुनात् ।
दृष्ट्वाप्रचुक्रुशुः पौराराज्ञश्चवानुयायिनः ।४६
हानाथि महास्यस्मान्नित्यार्त्तिपरिपीडितान् ।
त्वथमभत्परोराजन्पौरानुग्रहकृत्तया ।४७
नयास्मानपिरोराजर्षे यदिधर्ममवेक्षसे ।
मुहूर्त तिष्ठराजेन्द्रभवतामुखपङ्कजम् ।४८
पिवामोनेत्रभ्रमरैः कदाद्रक्ष्यामहेपुनः ।
यस्य प्रयातस्यपुरोयान्ति पृष्ठे च पार्थिवाः ।४९
तस्यानुयातिभार्येयं गृहीत्वाबालकंसुतम् ।
यस्यभृत्याः प्रयातस्ययान्त्यग्रे कुञ्जरस्थिताः ।५०
सएषपदभ्यांराजेन्द्रोहरिश्चन्द्रोद्यगच्छति ।
हाराजन्सुकुमारंतेसुभ्रु सुत्वचमुन्नसम् ।५१

हरिश्चन्द्र ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मेरे पास कुछ भी नहीं है, एक मास में आपकी दक्षिणा उपस्थित कर दूंगा, इसलिए आज्ञा दीजिए ।४३। विश्वामित्र ने कहा-हे भूपश्रेष्ठ ! जाओ, अपने धर्म के पालनार्थ गमन करो तुम्हारे विघ्न दूर हों और तुम्हारा कल्याण हो ।४४। पक्षियों ने कहा--हे मुनिश्रेष्ठ जैमिने! फिर वह राजर्षि हरिश्चन्द्र मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्र द्वारा जाने का अनुमोदन प्राप्त कर चल दिये, रानी शैब्या भी उनके पीछे-पीछे

ह जायेंगे, जहाँ आपको सुख है, वही हमको भी होगा, जहाँ आप रहेंगे, वही हमारा नगर है, जहाँ राजा का निवास हो वहीं स्वर्ग है ।५५ प्रजा के इस प्रकार वचन सुनकर राजा हरिश्चन्द्र शोक मग्न हो गए और उनकी दशा को देखकर कुछ समय मार्ग में खड़े रहे ।५६।

विश्वामित्रोऽपितं दृष्ट्वापौरवाक्याकुलीकृतम् ।
रोषामर्षवित्ताक्षः समागम्यवचोऽब्रवीन् ।५७
धिक्त्वांदुष्टसमाचारमनृतं जिह्मभाषिणीम् ।
ममराज्यंचदत्त्वायः पुनः प्राक्रष्टुमिच्छसि ।५८
इत्युक्तः पुरुषं तेनगच्छामीतिसवेपथुः ।
ब्रुवन्नेवययौशीघ्रमाकर्षन्दयितांकरे ।५९
कर्षतस्तांततो भार्यासुकुमारीश्रमातुराम् ।
सहसादण्डकाष्ठेनताडयामासकौशिकः ।६०
तांतथाताडितांदृष्ट्वाहरिश्चन्द्रोमहीपतिः ।
गच्छामीत्याहदुःखार्तो नान्यत्किञ्चिदुदाहरत् ।६१
अथविश्वेतदादेवाः पंचप्राहुः कृपालवः ।
विश्वामित्रः सुपापोऽयं लोकान्कान्समवाप्स्यति ।६२
येनायं यज्वांश्रेष्ठः स्वराज्यादवरोपितः ।
कस्यवाश्रद्धयापूतसुतं सोमंमसाध्वरे ।
पीत्वावयंप्रयास्यामो मुदमंमन्त्रपुरःसरम् ।६३

तभी प्रजा के वचनों से राजा को आकुल हुआ देखकर विश्वामित्र आ पहुँचे और रोष पूर्वक घूरते हुए कहने लगे ।५७। हुए! मिथ्यावादिन ! इस सम्पूर्ण राजस्व को अब पुनः मुझसे ले लेना चाहता है, तुझे धिक्कार है।५८। इस प्रकार विश्वामित्र के वचन सुनकर जाता हूँ, कहते हुए राजा हरिश्चन्द्र कम्पित गात से चलने को उद्यत हुए और उन्होंने शैव्या का हाथ खींचा ।५९। कोमलांगी शैव्या अत्यन्त थक गई थी, राजा उसे चलने को खींच रहे थे फिर भी विश्वामित्र अपने डन्डे से रानी की पीठ में आघात करने लगे ।६०। पृथिवीपति हरिश्चन्द्र शैव्या को इस प्रकार ताडित होते देखकर अत्यन्त दुःखी हुए फिर भी इतना ही बोले कि भगवान मैं जा रहा हूँ

।६१। यह देखकर पाँच जन लोकपाल, विश्वेदेवा देवताओं ने दया पूर्वक कहा—इस पापात्मा विश्वामित्र ने श्रेष्ठ राजा हरिश्चन्द्र को राज से भ्रष्ट कर दिया, इसकी कौन-सी गति होगी ? अब हम किसके यज्ञ में सोम पान करके आनन्द को प्राप्त होंगे ? ६२-६३।

इतितेषांवचश्रुत्वाकौशिकोऽतिरुषान्वितः ।
शशापतान्मनुष्यत्वंसर्वेयूयमवाप्स्यथ ।६४
प्रसादितश्चतैः प्राहपुनरेवमहामुनिः ।
मानुषत्वेऽपिभवतांभवित्रीनैवसन्ततिः ।६५
नदारसंग्रहश्चैवभवितानचमत्सरः ।
कामक्रोधविनिर्मुक्ताभविष्यथसुराः पुनः ।६६
ततोऽवतेरुरंशैःस्वैदेवास्तेकुरुवेश्मनि ।
द्रौपदीगर्भसम्भूता पंचवपाण्डुनन्दनाः ।६७
एतस्मात्कारणात्पंचपाण्डवेयामहारथाः ।
नदारसंग्रहं प्राप्ताः शापात्तस्यमहामुनेः ।६८
एतत्तेसर्वमाख्यातं पाण्डवेयकथाश्रयम् ।
प्रश्नचतुष्टयंगीतंकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ।६९

पक्षियों ने कहा कि उन पाँचों विश्वदेवों को वचन से रुष्ट होकर विश्वामित्र ने शाप दिया कि अरे परमात्माओ ! तुम सब मनुष्य योनि ग्रहण करोगे ।६४। इस पर विश्वदेवों के प्रार्थना करने पर विश्वामित्र ने प्रसन्न होकर कहा कि तुम यद्यपि मनुष्य तो होंगे परन्तु स्त्री-सम्पर्क और सन्तानोत्पत्ति से दूर रहोगे ।६४। तुम मात्सर्य से बचे रहोगे और काम क्रोधादि से परे रहोगे ।६६। फिर वही विश्वेदेवा द्रौपदी के गर्भ से पाण्डवों की सन्तान रूप में उत्पन्न हुए ।६७। हे महामुने ! विश्वामित्र के शापवश ही उन पाँचों महारथी द्रौपदी-पुत्रों का विवाह नहीं हुआ ।६८। पाण्डवों की कथा के आश्रय से तुम्हारे चारों प्रश्नों का उत्तर दिया जा चुका अब और क्या सुनना चाहते हो, सो कहिए ।६९।

इति श्री मार्कण्डेय पुराणे द्रौपदेयोत्पत्ति कथनं ।

८-राजा हरिश्चन्द्र की कथा

भवदिभरिदमाख्यातं यथाप्रश्नमनुक्रमात् ।
महत्कौतूहलमेऽस्तिहरिश्चन्द्र कथांप्रति ।१
अहोमहात्मनातेनप्राप्तं कृच्छमनुतमम् ।
कच्चित्सुखमनप्राप्तंताहृगेवद्विजात्तमाः २
विश्वामित्रवश श्रुत्वासराजाप्रययौशनं ।
शव्ययानूगतोदूःखीभार्ययावालपुत्रया ।३
सगत्वावसुधापालोदिव्यांवाराणसींपुरीम् ।
नैंषामनुष्यमोग्याहिशूलपाणेः परिग्रहः ।४
जगामपदमचांदुःखार्त्तं सहपत्यानुकूलथा ।
पुरीप्रविश्यददर्शविश्वामित्रमुपस्थितम् ।५
तदृष्ट्वासमनुप्राप्तं विनतावनतोऽभवत् ।
प्राहचवाञ्जलिकृत्वाहरिश्चन्द्रोमहामुनिम् ।६
इमंप्राणाः सुतश्चायमियपत्नीनुनेमम् ।
येनतेकृत्यमस्त्य शुतदग्रहाणाध्यंमुत्तमम् ।७
यद्वान्यत्कार्यमस्माभिस्तदनुज्ञातुमर्हसि ।८

जैमिनी बोले-हे द्विजश्रेष्ठ ! मेरे प्रश्नों का आपने क्रमानुसार समाधान कर दिया । अब मुझे हरिश्चन्द्र की कथा में अत्यन्त कुतूहल है ।१। उन महात्मा ने कितना कष्ट पाया ?क्या उन्हें वैसे ही सुख की प्राप्ति भी हुई ? ।२। पक्षियों ने कहा–विश्वामित्र के वचन सुनकर राजा दुःखी हृदय से धीरे-धीरे चल पड़े तथा बालक पुत्र लिए हुए उनकी रानी के साथ ही चली ।३। वह वहाँ से चलकरवाराणसी पहुंचे, क्योंकिशूलपाणि शंकर द्वारा निर्मित वह नगरी मनुष्यों के भोग के लिऐ नहीं है।४।दुःखित चित्त से चिन्ता करते हुए राजा पत्नी के सहितपैंदलही वाराणसी में गए और उन्होंने वहाँ सामने ही मुनिवर विश्वामित्र को खड़े देखा ।५।राजा हरिश्चन्द्र ने उन महामुनि को वहाँ आया देखकर हाथ जोड़े और विनय पूर्वक कहा ।६। हे प्रभो ! अब तो मेरा प्राण, पत्नी और पुत्र यही शेष

है। इनमें से जिसे आप स्वीकार करना चाहें वही आपको अर्घ्य स्वरूप दिया जाय।७। इसके अतिरिक्त आप जैसी आज्ञा दें वैसे मैं करूं।८।

पूर्णः समासोराजर्षेदीयतांममदक्षिणा।
राजसूयनिमित्तंहिस्मयंतेस्ववचोयदि।९
ब्रह्मन्नद्यैवसंपूर्णोमासोऽम्लानतपोधन।
तिष्ठत्येतद्दिनार्धंयत्तत्प्रतीक्षस्वमाचिरम्।१०
एवमस्तुमहाराज आगमिष्याम्यहंपुनः।
शापंतवप्रदास्यामिनचेदद्यप्रदास्यसि।११
इत्युक्त्वाप्रययौविप्रोराजाचाचिंतयत्तदा।
कथमस्मैप्रदास्यामिदक्षिणायाप्रतिश्रुता।१२
कुतः पुष्टानिमित्राणिकुतोऽर्थः सांप्रतंमम।
प्रतिग्रहः प्रदुष्टोमेनाहंयायामधः कथम्।१३
किमुप्राणान्विमुञ्चामियांदिशयाम्यकिञ्चनः।
यदिनाशंगमिष्यामिअप्रदायप्रतिश्रुतम्।१४
ब्रह्मस्वहृत्कृमिः पापोभविष्याम्यधमाधमः।
अथवाप्रेष्यतांयास्येवरमेवात्मविक्रयः।१५

इस पर विश्वामित्र ने कहा—आपने राजसूय यज्ञ के उपलक्ष्य में जो दक्षिणा एक मास बाद देने को कहा था उसका समय पूरा हो चुका अब उसे तत्काल दो।९। हरिश्चन्द्र ने निवेदन किया हे ब्रह्मन्! एक मास आज संध्या तक पूरा होगा- अभी आधा दिन शेष है, आप उतनी देर और प्रतीक्षा कीजिए, उसी समय मैं चुका दूंगा।१०। विश्वामित्रजी बोले—हे राजा यही हो महाराज! मैं संध्या के समय जाऊंगा। यदि उस समय दक्षिणा नहीं दोगे तो तुम्हें शापग्रस्त होना पड़ेगा।११। पक्षियों ने कहा कि इस प्रकार कहकर विश्वामित्र तो चले गये और राजा यह चिंता करने लगे कि इनको वह दक्षिणा किस प्रकार दी जा सकती है। इस समय न तो मेरा कोई अर्थ-सम्पन्न बान्धव यहां है और न सम्पदा में से कुछ शेष रहा है। ऐसी दशा में क्या मुझे दान न चुकाने के लिए पतित होना पड़ेगा।१२-१३। अब तो मेरे पास कुछ भी नहीं रहा। मैं कहाँ जाऊ? अगर अंगीकार की हुई

वस्तु को दिए बिना मैं प्राण भी त्याग दूं तो वह भी एक पपक्रम होगा और ब्रह्मअंश को हरण करने के पाप से यो तो मैं कृमयोनि में जाऊंगा अथवा आत्मा को बेचकर संन्यासी होना पड़ेगा ।५।

राजानंव्याकुलंदीनंचिन्तयानमधोमुखम् ।
प्रत्युवाचतदापत्नीवाष्पदग्दया गिरा ।१६
त्यजचिन्तांमहाराजस्वसत्यमनुपालय ।
श्मशानवद्वर्जनीयोरः सत्यवहिष्कृतः १७
नातः परतरं धर्मंवदन्तिपुरुषस्यतु ।
यादृशपुरुषव्याघ्रस्वसत्यपरिपालनम् ।१८
अग्निहोत्रमधीतंवादानाद्याश्चाखिलाः क्रियाः ।
भजन्तेतस्यवैफल्यंयस्यवाक्यमकारणम् ।१
सत्यमत्यन्तमुदितंधमशास्त्रेषुधीमताम् ।
तारणाय नृनंतद्वत्पातनायाकृतात्मनाम् ।२०
सप्ताश्वमेधानाहृत्यराजसूयंचपार्थिवः ।
कृतिनमिमच्युतः स्वर्गादसत्यवचनात्कृत् ।२१
राज्जातमपत्यं भोइयुक्त्वाप्ररुरोदह ।
वाष्पराम्बुप्लुतनेत्रांतामुवाचेदं महीपतिः । २

पक्षियों ने कहा हे मुन ! इस प्रकार राजा को नीचा मुख किये घोर चिन्ता देखकर ग्रस्तरानी शय्या ने आंसू बहाते हुए कण्ठ से कहा— हे महाराज ! चिन्ता मत कीजिये और वचन दिया है उसका पालन कीजिए क्योंकि असत्य व्यवहार करने वाला व्यक्ति श्मशान के समान त्याज्य है ।१६-१७। वचन के असत्य होने पर अग्निहोत्र, फल, वेद-पठन और दाने आदि सभी सत्कर्म व्यर्थ हो जाते हैं, हे महावीर ! विद्वानों का कथन है कि सत्य-पालन का कितना महान् धर्म होता है, वैसा किसी अन्य प्रकार नहीं होता है ।१८। धर्म-शास्त्रों का यही मत है कि सत्य वचन मनुष्य को तारने वाला और असत्य नीचे गिराने वाला है ।१९-२०। हे पृथिवी नाथ ! आपने सात अश्वमेघ करके राजसूय यज्ञ किया है। इस समय पर क्या एक छोटी-सी बात के लिए स्वर्ग से वंचित होंगे ।२१। हे

महाराज ! मेरे सन्तान हो चुकी है" इतना कहकर वह रोने लगी। तब राजा उस अ वर्षा करती हुई रानी से कहने लगे।२२

विमुञ्चभद्रे संतापमयं तिष्ठति बालकः।
उच्यतांवक्तुकामासियद्वात्वगजगामिनी।२३
राजञ्जातमपत्यंमेसतांपुत्रफलाः स्त्रियः
समांप्रदायवित्तेनदेहिविप्रायदक्षिणाम्।२४
एतद्वाक्यमुपश्रुत्ययथौमोहमहीपतिः।
प्रतिलभ्यचसंज्ञासविललापातिदुःखितः।२५
महद्दुःखमिदंभद्रेयत्वमेवंब्रवीषिमाम्।
किंतवस्मितसंल्लापाममपापस्यविस्मृताः।२६
हाहाकथंत्वयाशक्यं वक्तुमेतच्छुचिस्मिते।
दुर्वाच्यमेतद्वचनं कर्त्तुं शक्नोम्यहं कथम्।२७
इत्युक्त्वासनश्रेष्ठोधिग्धिगित्यसकृदब्रुवन्।
निपपातमहीपृष्ठे मूर्च्छाभिपरिप्लुत।२८

राजा हरिश्चन्द्र ने रानीं से कहा--शोक को त्याग कर जो कहने की इच्छा हो कहो। तुम्हारी सन्तान तो यह मौजूद ही है।२३। रानी बोली --हे महाराज! मेरे सन्तान हो गई है इसी उद्देश्य से साधु पुरुषों से पत्नी की आवश्यकता होती है। इससे अब आप मुझे बेचकर ऋषि की दक्षिणा चुका दें।२४। पक्षियो ने कहा—राजा हरिश्चन्द्र अपनी भार्या का ऐसा वचन सुनकर शोक से मूर्च्छित से हो गये। फिर चैतन्य होकर दुःख प्रकट करते हुए कहने लगे हे प्रिये जो कुछ कहा वह अत्यन्त कष्टदायक है यह पापी हरिश्चन्द्र क्या स्मितपूर्वक भाषण करना भूल गया।२५-२६। नहीं तो तुम्हारे मुख से ऐसी अशुभ बात क्यों निकलती और मैं भी ऐसे वचन सुनकर किस प्रकार सहन करता।२७। राजा हरिश्चन्द्र इस प्रकार कहकर अपने को धिक्कारते हुए पृथ्वी पर गिरकर बेसुध हो गए।२८।

शयानंभूवितंदृष्ट्वाहरिश्चन्द्र महापतिम्।
उवाचेदकरुणंराजपत्नीसुदुःखिता।२९
हामहाराजकस्येदमपध्यानमुपस्थितम्।

यत्रं निषतितोभूमौराङ्कवास्तरणोचितः ।३०
येनकोटयग्रशोविप्राणामपवर्जितम् ।
सएषपृथिवीनाथोभूमोस्वपितिमोपतिः ।३१
हा।हकष्टंकितवानेनकृतदेवमहीक्षिता ।
यदिद्रोपेंद्रतुल्तोऽयंनोतः पापानिमांदशाम् ।३२
इत्युक्त्वासारिसुश्रोणीमूर्च्छितानिपपातह ।
भर्तृदुःखमहाभारेणासह्येननिपीडिता ।३३
तौतथापाततौभूमावनाथौपितरौशिशुः ।
दृष्ट्वात्यंतसुधाविष्टः प्राहवाक्यसुदुःखित ।३४
तातताताददस्वान्नमम्बाम्बभोजनदद ।
क्षुन्मेत्रलीजाताजिह्वाग्रं शुष्यतेतथा ।३५

महाराज हरिश्चन्द्र को इस प्रकार पृथ्वी पर लोटते देख महारानी शैंय्या अत्यन्त दुःखी हुईं और करुण स्वर से कहने लगी कि आज कैसे कष्ट का दृश्य देख रही हूँ कि जो महाराज मृग चम की कोमल शैंय्या पर शयन करते थे वे आज इस प्रकार कठोर भूमि पर पड़े हैं ।२९-३०। जिन्होंने करोड़ों गौऐं ब्राह्मणों को दान दीं वही पृथ्वीनाथ हरिश्चन्द्र भूमि पर पड़े हैं ।३१। हा दैव ! इन्होंने कौन सा ऐसा अपराध किया है, जिससे एक उपेन्द्र की ममता वाले पुरुष की पापियों की-सी दुर्दशा हो रही है ।३२। इस प्रकार महारानी शैंय्या शोक सन्तप्त होती हुई अचेत होकर मूर्च्छित हो गई। जब राजपुत्र ने माता और पिता को इस प्रकार बेसुध पड़े देखा और उसे भूख भी लगी तो रोकर कहने लगा—हे तात ! हे मात ! मुझको बड़ी भूख लगी है, भोजन दो। मेरी जीभ सूख रही है ।३३-३४-३५।

एतस्मिन्नन्तरेप्राप्तोविश्वामित्रोमहातपाः ।
कालकल्पइ क्रूद्धोधनंसंमार्गितुंतदा ।
दृष्ट्वातु हरिश्चन्द्रापतितोभुविमूर्च्छितः ।३६
सवारिणासमभ्युक्ष्यराजानमिदब्रवीत् ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठराजेन्द्रतांददस्वेष्टदक्षिणाम् ।
ऋणंधारयतोदुःखमहन्यहनिवर्द्धते ।

आप्लाव्यमानः सततहिमशीतेनवारिणा ।३८
अवाप्यचेतनांराजाविश्वामित्रमवेक्ष्यच ।
पुनर्मोहं समापेदेसचक्रोधं ययौमुनिः ।३९
समाश्वास्यराजानवाक्यमाहद्विजोत्तमः ।
दीयतांदक्षिणासामेयदिधर्ममवेक्षसे ।४०
सत्येनार्कः प्रतपमिसत्येतिष्ठतिमेदिनी ।
सत्यं चोक्तं परोधर्मः स्वर्गः सत्येप्रतिष्ठितः ।४१
अश्वमेधसहस्राद्धिसत्यं चतुलयाधृतम् ।
अश्वमेधसहस्राद्धिसत्यमेवविशिष्यते ।४२

पक्षियों ने कहा— कि उसी महात्मा विश्वामित्र अत्यन्त क्रोध प्रकट करते हुए वहां आ पहुँचे । उन्होंने जब राजा को मूर्च्छित अवस्था में पृथ्वी पर पड़े देखा तो जल के छींटे देकर उसे चैतन्य किया और कहा —राजन ! उठकर मेरी दक्षिणा दो, क्योंकि जब तुम पर यह ऋण बना रहेगा तब तक दुःख इसी प्रकार बढ़ता रहेगा । शीतल जल के स्पर्श से राजा हरिश्चन्द्र चैतन्य हुए, पर सामने ही विश्वामित्र को खड़ा देख कर फिर मूर्च्छित हो गए तब विश्वामित्रजी ने कहा—हे राजा यदि तुम धर्म की रक्षा करना चाहते हो तो मेरी दक्षिणा देने में विलम्ब न करो । ६ से ४० । सूर्य सत्य के बल से ही तपते हैं, पृथ्वी सत्य की महिमा से ही टिकी है सत्य ही सबसे बड़ा धर्म है और स्वर्ग भी एक मात्र सत्य के ऊपर ही स्थित है ।४१। अगर एक तराजू के पलड़े पर सत्य को रखा जाय और दूसरे पर हजार अश्वमेध यज्ञों के फल को तो सत्य का पलड़ा ही भारी रहेगा ।४२

अथवा किममैतेनसाम्नाप्रोक्तेनकारणाम् ।
अनार्ये पापसङ्कल्पेक्रूरेचानृतवादिनि ।४३
त्वयिराज्ञिप्रभवतिसद्भावः श्रूयतामतम् ।
अद्यमेदक्षिणांराजन्नदास्यसिभवान्यदि ।४४
अस्ताचलप्रयातेऽर्केशप्स्यामित्वाततोध्रुवम् ।
इत्युक्त्वासययौविप्रोराजाचासीद्भयातुरः ।४५
क निरभतोऽधनो नृशंसधनिनार्दितः

भार्यास्यभयःप्राहेदंक्रियतांवचनंमम ।।४६
माशापानलर्निदंग्धःपचत्त्वमुपयास्यसि ।
सतयाचोद्यमानस्तुराजापत्न्यापुनःपुनः ।।४७
प्राहभद्रेंकरोम्येषविक्रयंतत्वनिर्धृणः ।
नृशंसैरपियस्कर्तुं नशक्यंतत्करोम्यहम् ।।४८
यदिमेशक्यतेवाणीवक्तुमोहक्सुदुर्वचः ।
एवमुक्त्वाततोभार्यंगित्वानगरमातुरः ।
वाष्पाहितकण्ठाक्षस्ततोवचनमब्रवात् ।।४६

पर जाने दो, मुझे अनार्य, पापी, क्रूर, मिथ्यावादी राजा को समझाने वुझाने की आवश्यकता ही क्या है ।४३। मैं स्पष्ट रूप से कहे देता हूँ कि यदि तुम आज मेरी दक्षिणा नहीं दोगे, तो सूर्य के अस्ताचल गामी होते ही मैं निश्चय रूप से शाप दे दूँगा? विश्वामित्र ऐसा कहकर वहाँ से चले गये, और ब्रह्म शाप की आशका से अत्यन्त घबराने लगेकि अब दक्षिणा कहाँ से और कैसे चुकाऊँ । मैं तो इस समय पूर्णत निर्धन हूँ और धन वाले बड़े कठोर हैं । अब किस प्रकार करने से ठीक होगा? हम कहाँ जायें ? यह देख कर रानी शैव्या ने कहा कि महाराज मैंन आपसे कहा है वही कीजिये ।४४-४५-४६। जब यह उपाय मौजूद है तो ऋषि के शाप में ग्रस्त होकर नाश को प्राप्त होने की क्या आवश्यकता हैं । इस प्रकार पत्नि के बार-बार आग्रह करन पर हरिशचन्द्र ने कहा—अच्छा मैं इस घृणित कार्य को भी करूँगा, यद्यपि यह मेरी सामर्थ्य के बाहर है तो भी यही करूँगा ।४७-४८। देखता हूँ कि मैं ऐसे कठोर वचन कह भी सकता हूँ या नहीं ? तब नगर में गये और आँसुओं को जबर्दस्ती रोक कर कहने लगे ।४६।

भोभोनागरिकाःसर्वंश्रृणुध्वंवचनमम ।
किंमापृच्छथकस्त्वभोतृशसोऽहंममानुष ।।५०
राक्षसोवातिकठिनस्ततःप पतरोऽपिदा ।
विक्रेतुं दयितांप्राप्तोयोनप्रथांस्त्यजम्यहम् ।।५१
यादिवःकस्यचित्कार्यंदास्याप्राणोष्ठयामम ।
सब्रवीतुत्वरायुक्तोयावत्सन्धारयःभ्यहम् ।।५२

अथवृद्धोद्विजःकश्चिदागत्याहनराधिपम् ।
समर्पयस्वमेदासीमहंक्रेताधनप्रदः ॥५३॥
अस्तिमेवित्तमस्तोकंसुकुमारीजमेप्रिया ।
गृहकर्मनशक्तोमिकर्त्त मस्मात्प्रयच्छमे ॥५४
कर्मण्यतावयोरूपशीलानांतवयोषितः ।
अनुरूपामिदंवित्तं गृहाणार्पयमेऽबलाम् ॥५५
एवमुक्तस्यविप्रेणहरिश्चन्द्रस्यभूपतेः ।
व्यदीर्य्यतमनोदुःखान्नचैनंकिञ्चिदब्रवीत् ॥५६

राजा कहने लगे—यदि आप जानना चाहते हैं कि मैं कौन हूँ, तो मैं बतलाऊँगा कि मैं एक नृशंश अत्याचारी हूँ, मनुष्य नहीं हूँ। मैं राक्षस हूँ या उससे भी अधिक निर्दयी हूं, पापात्मा हूँ। क्योंकि प्राणप्यारी पत्नी को वेचने के लिए तैयार होने पर भी मेरा प्राण नहीं निकला ।५०–५१। अस्तु जब तक संध्या न हो, और मेरा प्राण देह के भीतर रहे तब तक इस मेरी प्राणों से प्यारी दासी को यदि खरीदना चाहो तो कहो ।५२। पक्षी बोले—उसी अवसर पर एक बूढ़े ब्राह्मण ने वहां आकर कहा—मुझ दासी की आवश्यकता है मैं उनका मूल्य देने को तैयार हूँ। मेरे पास पर्याप्त धन-सम्पत्ति हैं और मेरी स्त्री बड़ी कोमल है जिससे घर का काम नहीं कर सकती अतएव वह दासी मुझे दे दो ।५३-५४। तुम इस अपनी स्त्री को कार्य दक्षता, अवस्था, रूप और स्वभाव के अनुपम यह अर्थ राशि लेकर इसे मुझे दो ।५५। ब्राह्मण के वचनों को सुनकर शोक से राजा का हृदय फटने लगा और उससे कुछ उत्तर नहीं दियाजा सका ।५६।

ततः सविप्रोनृपतेर्वल्कलान्तेदृढ़बन्धनम् ।
बद्ध्वाकेशेष्वथादायनृपपत्नीमकर्षयत् ॥५७
रुरोदरोहिताश्वोऽपिदृष्ट्वाकृष्टांतुमातरम् ।
हस्तेनवस्त्रमाकर्षन्काकपक्षधरःशिशुः ॥५८
मुंचार्यमुंचताबन्मांयावत्पश्याम्हंशिशुम् ।
दुर्लभंदर्शनंतातपुनरस्यभविष्यति ॥५९
पश्येहवत्समामेवमातरंदास्यतांमताम् ।

मां नास्प्राक्षीराजपुत्रअस्पृश्याहंतवाधुना ॥६०
ततःसबालःसहसादृष्ट्वाकृष्टांतुमातरम् ।
सनम्रआवदम्बेतिरुन्नस्राविलेक्षणः ॥६१
तमागतंद्विजःक्रोधाद्बालमभ्याहनत्पदा ।
वदंस्तथापिसोऽम्बेतिनैवामुंचतमातरम् ॥६२
प्रसादंकुरुमेनाथक्रीणोष्वेमंचवालकम् ।
क्रीतापि नाहंभवतोविनैनंकार्य्यसाधिका ॥६३
इत्थंममाल्पभाग्यायाःप्रसादसुमुखोभव ।
मांसंयोजयबालेनवत्सेनेवपयस्विनीम् ॥६४

तब उस ब्राह्मण ने दासी के मुल्य स्वरूप वह धनराशि राजा के वस्त्र से बांध दी और रानी को वे पकड़ कर ले जाने लगा ।५७। यह देख कर उसका पुत्र रोहिताश्व उसका आँचल खींचता रोने लगा ।५८। रानी ने ब्राह्मण से कहा—हे आर्य ! मुझे जरा देर के लिए अपने पुत्र को प्यार कर लेने दो, फिर मैं इसे कहाँ देख सकूँगी ? हे पुत्र ! अब मैं तुम्हारी माता दासी हुई हूँ, इससे अब मुझे मत छूना, मैं अब इस योग्य नहीं रही ।५९-६०। इसके पश्चात् बालक माता को खिचती हुई जाती देखकर रोते-रोते "माँ-माँ" कहता हुआ उसके पीछे दौडा ।६१। वृद्ध ब्राह्मण ने गुस्सा होकर उसे जोर से एक लात मारी पर वह बालक "माँ-माँ" रहकर दौड़ता ही रहा और उसने किसी प्रकार माता को न छोड़ा ।६२। रानी ने ब्राह्मण से कहा—हे स्वामी ! कृपा करके इस बालक को भी खरीद लीजिये, क्योंकि यद्यपि मैं बिक चुकी, पर इस बालक के बिना मुझसे काम नहीं किया जायगा । इसलिये आप मुझ अभागिनी पर दया कीजिये कि जिस प्रकार दूध देने वाली गाय को बछड़े के संग ही लाया जाता हैं उसी प्रकार इस बालक को भी मेरे साथ ही रहने दीजिये ।६३-६४।

गृह्यताँवित्तमेतत्ते दीयतांबालकोमम ।
स्त्रीपुंसोर्धमशास्त्रज्ञैःकृतमेवहिवेतनम् ।
शतंसहस्त्रंलक्षंचकोटिमूल्यंतथापरे ॥६५
तथैवान्यस्यतद्वित्तं बद्धोत्तरपटेनतः ।

प्रगृह्यवालकमात्रासहैकस्थमबन्धयत् ।।६६
नीयमानौतुतौदृष्ट्वाभार्य्यापुत्रौसपार्थिवः ।
विललापसुदुःखार्त्तोनिःश्वस्योष्णपुनःपुनः ।।६७
यानवायुर्नचोदित्यौनेन्दुर्नचपृथग्जनः ।
दृष्टवंतःपुरापत्नीयेयदासीत्वमागता ।।६८
सूर्यवंशप्रसुतोऽयंसुकुमारकरांगुलिः ।
संप्राप्तोविक्रयंबालोधिङ्मामस्तुसुदुर्मतिम् ।६९
हाप्रियेहाशिशोवत्समम्मानार्यस्यदुर्नयैः ।
दैवाधीनांदशांप्राप्तोनमृतोऽस्मितथापिधिक् ।।७०

ब्राह्मण ने कहा—अच्छा, वालक को भी मुझे दो और उसके वदले में यह धन ग्रहण करो। धर्म शास्त्रों में स्त्री पुरुष दोनों का ही मूल्य शत, सहस्र, लक्ष व करोड़ मुद्रा वतलाया है।६५। पक्षियों ने कहा—हे जैमिने! यह कह कर उस ब्राह्मण ने वह धन भी राजा के वस्त्रों में वाँध दिया और रानी तथा उसके पुत्र दोनों को वाँध कर ले गया।५६। राजा हरिश्चन्द्र पत्नी और पुत्र इस प्रकार विलग होता हुआ देख कर लम्बी साँस लेकर अत्यन्त शोक करने लगे कि जिसको अभी वायु, सूर्य, चन्द्र व वाहरी व्यक्ति भी अभी तक नहीं देख पाते थे उसको आज इस प्रकार दासी वनना पड़ा।६७-६८। जिस छोटे वालक ने सूर्य वंश में जन्म लिया और जो अभी अत्यन्त कोमल है उसको भी बिकना पड़ा, यह मेरी दुर्बुद्धि है जिसके लिए मैं निन्दा का पात्र हूँ।६९। मेरे अन्याय युक्त आचरण के कारण ही इन निर्दोषों की ऐसी गति हुई, पर खेद है अब भी मेरे प्राण नहीं निकलते।७०।

एवंविलपतोराज्ञःसविप्रोऽन्तरधीयत ।
वृक्षगेहादिभिस्तूर्गैस्तावादायत्वरान्वितः ।।७१
विश्वामित्रस्ततःप्राप्तोनृपंवित्तमयाचत ।
तस्मैसमर्पयामासहरिश्चन्द्रोऽपितद्धनम् ।।७२
तद्वित्तंस्तोकमालोक्यदारविक्रयसंभवम् ।
शोकाभिभूतंराजानंकुपितःकौशिकोऽब्रवीत् ।।७३
क्षणबंधोममैमाँत्वसदृशीयज्ञदक्षिणाम् ।

मन्यसेयदितत्क्षिप्रपश्यत्वंमेबलंपरम् ।।७४
तपसऽत्रसुतप्तस्यब्राह्मण्यस्यामलस्यच ।
मत्प्रभावस्यचोग्रस्यशुद्धस्याध्ययनस्यच ।।७५
आन्यांदस्यामिभगवन्कालःकश्चित्प्रतीक्ष्यताम् ।
अनृतंनास्तिविक्रीतापत्नीपुत्रश्चबालकः ।।७६
चतुर्भागःस्थितोयोऽयंदिवसस्यनराधिप ।
एषएवप्रतीक्ष्योमेवक्तव्यंनोत्तरंत्वया ।।७७

पक्षियों ने फिर कहा—राजा हरिश्चन्द्र तो इस प्रकार विलाप करते रहे और उधर वह ब्राह्मण रानी और कुमार को वृक्षों और महलों की ओट में चला गया ।।७१। उस समय विश्वामित्र मुनि ने आकर राजा दक्षिणा का धन देने को कहा तो जितनी मुद्रायें उसकेपास थी वे उन्होंने अर्पित कर दीं । विश्वामित्र उतने धन को वहुत थोड़ा देखकर बड़े क्रोध से कहने लगे कि हे? यदि तू ऐसा विचारता हैं तो मैं तुझे अपनी तपस्या की शक्ति दिखलाता हूँ । तुझे मालूम हो जायेगा कि मेरे ब्रह्मतेज और अध्ययन का कितना प्रभ व है ।।७२-७५।। राजा ने विनय पूर्वक कहा—महर्षे ! दक्षिणा के लिए मैंने पत्नी और पुत्र को भी वेच दिया और उससे जो धन मिला वह यही है । अव आप थोड़ी देर ठहरें तो मैं शेष दक्षिणा भी देने की व्यवस्था करता हूँ । विश्वामित्र ने कहा कि अव दिन का केवल चौथा भाग शेष है, इतनी ही देर मैं प्रतीक्षा करूँगा । इसके पश्चात् मैं तुम्हारी कोई बात नही सुनूँगा । ।।७६-७८ ।।

तमेवमुक्त्वाराजेन्द्रंनिष्ठुरंनघृणंवचः ।
तदादायधनंतूर्णंकुपितःकौशिकोययौ ।।७८
विश्वामित्रेगतेराजाभयशोकादिमध्यगः ।
स्वविक्रयंविनिश्चित्यप्रोवाचोच्चैरधोमुखः ।।७९
वित्तक्रीतेनयोह्यर्थीमयाप्रेष्येणमानवः ।
सब्रवीतुत्वरायुक्तोयावत्तपतिभास्करः ।।८०
अथाजगामत्वरितोधर्मश्चाण्डालरूपधृक् ।
दुर्गन्धोविकृतोरूक्षःश्वश्रुलोदन्तुरोघृणी ।।८१

कृष्णोलम्बोदरःपिङ्गरूक्षाक्षःपुरुषाक्षरः ।
गृहीतपक्षिपुंजश्चशवमाल्यैरलंकृतः ॥८२
कपालहस्तोदीर्घास्योभैरवोऽतिवदन्मुहुः ।
श्वगणाभिवृतोधेरोयष्टिहस्तीनिराकृतिः ॥८३
अहमर्थीत्वयाशीघ्रंकथयस्वात्मवेतननम् ।
स्तोकेनवहुनावापियेनवैलभ्यतेभवात् ॥८४

पक्षियों ने कहा —विश्वामित्र मुनि राजा ने ऐसे कठोर और क्रोध युक्त वचन कह कर उस धन को लेकर चले गये । तत्पश्चात राजा हरिश्चन्द्र भय और शोक से अभिभूत होकर और अन्तिम निश्चय करके उच्च स्वर से कहने लगे कि यदि किसी को सेवक खरीदने की इच्छा हो तो यह मुझे सूर्यास्त से पहले ही क्रय करले ॥ ७८–७६–८०॥ उस समय चाण्डाल के रूप में धर्म वहां उपस्थत हुआ । उसके शरीर से बुरी गन्ध आती थी, आकृति वड़ी रुखी, डाढ़ी मूँछों से युक्त थी स्वभाव बड़ा भयंकर दाँत ऊँचे और रूप घ्रणा उत्पन्न करने वाला था । काले रङ्ग का, लम्वे पेट का, पिंगल, रुखे नेत्र वाला कर्कश था । उसके हाथ में कितने ही पक्षी थे, गले में मुंडों की माला, एक हाथ में नरक पालऔर दूसरे में लाये हुए मृग शरीर बड़ा दुबला-पतला, वहुत से कुत्तों को साथ लिये और ऊँट-पटांग वकता था ॥८१-८२-८३। वह धर्मराज इस प्रकार चाण्डाल के वेश में आकर राजा से कहने लगे—मैं तुमको खरीदना चाहता हूँ । तुम्हारा जोकुछ कम या अधिक मूल्य हो यह वतलाओ?८४

ततांदृशमथालक्ष्यक्रूरदृष्टिसुनिष्ठुरम् ।
वदन्तमतिदुःशीलंकस्त्वमित्याहपार्थिवः ॥८५
चण्डालोऽहमिहरख्यातःप्रवीरेतिपुरोत्तमे ।
विख्यातोवध्यवधकोमृतकम्वलहारकः ॥८६
नाहचंडालदासत्वमिच्छेयंसुविगर्हितम् ।
वरंशापाग्निनादग्धोनचण्डालवशंगतः ॥८७
तस्यैवंवदतःप्राप्तोविश्वामित्रस्तपोनिधिः ।
कोपामर्षविवृत्ताक्षःप्राहचेचंनराधिपम् ॥८८

चण्डालोऽयमनल्पंतेदातुंवित्तमुपस्थितः ।
कस्मान्नदीयतेमह्यमशेषायज्ञदक्षिणा ॥८९
भगवन्सूर्यवंशोत्थमात्मानंवेद्मिकौशिक ।
कथंचण्डालदासत्वंगमिष्येवित्तकामुकः ॥९०
यदिचण्डालवित्तंत्वमात्मविक्रयजंमम ।
नप्रदास्यसिकालेनशप्स्यामत्व मसंशयम् ॥९१

पक्षियों ने कहा-बहुत कठोर बोलने वाले, क्रूर दृष्टि और कर्कश व्यवहार वाले उस चाण्डाल को देखकर कर राजाने जिज्ञासाकी कि तुम कौन हो? ।८५। उसने उत्तर दिया—मैं चाण्डाल हूँ और इस महानगरीमें मेरा निवास स्थान है। मेरा नाम प्रवीर है और पेशा वध करने योग्य पुरुषों को मारने का है। मैं मरे हुए पुरुषों का कम्बल (कफन) भी लेता हूँ ।८६। राजा ने कहा—चाण्डाल के यहां दास कार्य करना तो बहुतही बुरा है, इस कारण मैं इसे स्वीकार नहीं कर सकता। मेरे खपरसे पहले ही शाप रूपी कोप पड़ा हुआ है, पर यह चाण्डाल का दासत्व तो और भी नीच है ।८७। पक्षियों ने कहा—राजा ने इतना कहा ही था, तभी विश्वामित्र वहाँ आ गये और क्रोधपूर्वक लाल नेत्र करके बोले ।८८। विश्वामित्र ने कहा—राजन् यह चान्डाल तुम्हें बहुत सा धन देरहा है, तो तुम मेरी दक्षिणा क्यों नहीं देते ? ।८९। राजा ने कहा—हे भगवन् ! मैं अपने को सूर्यवंशी मानता हूं, इसलिये धन के लोभ से चाण्डाल का दासत्व कैसे स्वीकार करूँ ।९०। विश्वामित्र बोले—यदि तुम अपने को इस चाण्डाल के हाथ बेचकर मुझे समय के भीतर धन नहीं दोगे तो मैं तुम्हें अवश्य ही शाप दूँगा ।९१।

हरिश्चन्द्रस्ततोराजाचिन्तावस्थितजीवितः ।
प्रसीदेतिवदन्पादावृषेर्जग्राहविह्वलः ॥९२
दासोस्म्यार्त्तोऽस्मिभीतोऽस्मित्वद्भक्तश्चविशेषतः ।
कुरुप्रसादंविप्रर्षेकष्टश्चण्डालसङ्करः ॥९३
भवेयंवित्तशेषेणसर्वकर्मकरोवशः ।
तवैवमुनिशार्दूलप्रेष्यश्चित्तानुवर्त्तकः ॥९४
यदिप्रेष्योममभवांश्चण्डालायततोमया ।

दासभाव मनुप्राप्तोदत्तोवित्तार्बु देनवै ॥९५
यद्यसौशक्यतेविप्रकौशिकःपरितोषितुम ।
ततोगृहाणमामद्यदासत्वंतेकरोम्यहम् ॥९६॥
शनयोजनविस्तीर्णानानाग्रामैरलंकृताम् ।
भूमिरक्षामयींकृत्वादास्येहंकौशिकप्रति ॥९७

पक्षियों ने कहा – फिर राजा हरिश्चन्द्र ने व्याकुल मन से 'भगवन् ! प्रसन्न हो कहते हुए विश्वामित्र के दोनों चरण पकड़ लिए ।९२। मैं आपका दास इस समय अत्यन्त भयभीत एवं व्याकुल हूँ, मैं आपकाही भक्त हूं, ब्रह्मर्षे ! कृपा करिये चाण्डाल का दास होना अत्यन्त ही कष्टदायक होगा ।९३। हे प्रभो मेरे पास धन नहीं है, फिर भी मैं आपका दास होकर रहूँगा, आप जो आज्ञा देंगे वही करूँगा तथा सदा आपके चित्त के अनुसार ही कार्य करूँगा ।९४। विश्वामित्र ने कहा—राजन्! यदि तम मेरे अधीन होते हो तो मैंने तुम्हें इस चाण्डाल को एक अर्बुद मद्रा में वेच दिया है, अव तुम इसके ही दास वनो ।९५। हरिश्चन्द्र वोले—जिभसे यह विश्वामित्रजी संतुष्ट हों वही करो, मैं तुम्हारा दास होकर मेरा कार्य करूँगा ।९६। चाण्डाल वोला—सौ योजन विस्तार वाली भूमि, जो अनेकों ग्रामों से युक्त है, उसे मैं विश्वामित्र जी को दे रहा हूँ ।९७।

एवमूक्ते तदातेनश्वपत्कोहृष्टमानसः ।
विश्वामित्रायतद्द्रव्यंदत्त्वाबद्ध्वानरेश्चरम् ॥९८
दण्डप्रहारसंभ्रान्तमतीवव्याकुलेन्द्रियम् ।
इष्टवन्धुवियोगार्तमनयन्निजपक्कणम् ॥९९
हरिश्चन्द्रस्ततोराजावसंश्चाण्डालपक्कणे ।
प्रातर्मध्याह्नसमयेसायंचैतदगायत ॥१००
वालांदीनमुखीदृष्ट्वावालंदीनमुखपुरः ।
मांस्मरत्यसुखाविष्टामोचयिष्यतिनौनृपः ॥१०१
उपात्तवित्तोविप्रायदत्वावित्तमतोऽधिकश्च ।
नसामांमृगशावक्षीवेत्तिपापतरंकृतम् ॥१०२
राज्यनाशःसुहृत्यागोभार्यातनयविक्रयः ॥

प्राप्ताचण्डालताचेयमहोदुःखपरम्परा ।।१०३
एवसिनिवसन्नित्यंसस्मारदयितसुतम् ।
भार्याचात्मस्माविष्टाहृतसर्वस्वआतुरः ।।१०४
कस्यचित्त्वथकालस्यमृतचैलापहारकः ।
हरिश्चन्द्रोऽभवद्राजाश्मशानेतद्वशानुगः ।।१०५

पक्षियों ने कहा—फिर राजा के मुख से जो आज्ञा' शब्द निकलते ही चाणक्य रूपी धर्म ने विश्वामित्र को वह धन देकर राजा को बाँध लिया और अपने निवास को गया ।।९८।। राजा हरिश्चन्द्र भार्या तथा पुत्र के वियोग से पहिले ही अत्यन्त कातर थे, फिर चाण्डाल द्वारा डंडे मारने से वे और भी व्याकुल हो गये ।।९९।। फिर चाण्डाल के यहां रहते हुए वे प्रातः मध्याह्न, साँयकाल आदि सब समय इसी प्रकार कहते रहते थे ।१००। वह दीन मुख वाली रानी, अपने दीनमुख बालकों को देखकर दुःखी चित्त से सोचती होगी कि धनोपार्पन कर राजा इस ब्राह्मण को अधिक धन देकर हमें छुड़ा लेंगे, परन्तु उसे यह क्या मालुम होग' कि मैं चाण्डाल के दासत्व रूपी पाप की दशा में गिर गया हूँ ।।१०१–१०२।। राज्य का नाश, सुहृदों से विछोह, पत्नी पुत्र का विक्रय और अन्त में चाण्डालत्व की प्राप्ति अहो, दुःख पर दुःख मिल रहा है ।।१०३।। सर्वस्व से भ्रष्ट वह राजा चाण्डाल के घर रहता हुआ दुःखित चित्त से प्रिय पुत्र भार्या का स्मरण करने लगा ।।१०४।। फिर कुछ समय व्यतीत होने पर चाण्डाल के दास राजा हरिश्चन्द्र को शमशान में मृतकों से वस्त्र लेने के कार्य पर नियुक्त किया गया ।।१०५।।

चण्डालेनानुशिष्टश्चमृतचैलःपहारिणा ।
शवागमनेमन्विच्छन्निद्दतिष्ठन्दिवानिशम् ।।१०६
इदंराज्ञेऽपिदेयञ्चषड्भागन्तुशर्वप्रति ।
त्रयस्तुममभागास्युद्वौभागौतववेतनम् ।।१०७
इतिप्रतिसमादिष्टोजगामशवमंदिरम् ।
दिशंतुदक्षिणांयत्रवारायस्यांस्थितंतदा ।।१०८
श्मशानंघोरसंनादंशिवाशतसमाकुलम् ।
शवमौलिसमाकीर्णदुर्गन्धबहुधमकम् ।।१०९

पिशाचभूतवेतालडाकिनीयक्षसंकुलम् ।
महागणमहाभूतरवकोलाहलायुतम् ॥११०

गृध्रगोमायुसंकीर्णश्ववृन्दपरिवारितम् ।
अस्थिसंघातसंकीर्णमहादुर्गन्धसंकुलम् ॥१११

नानामृतसुहृन्नादरौद्रकोलाहलायुतम् ।
हापुत्रमित्रहाबन्धोभ्रातर्वत्सप्रियाद्यमे ॥ ११२

हापतेभगिनिमातर्हामातुलपितामह ।
मातामहपितः पौत्रक्वगतोऽस्येहिवान्भवः ॥११३

मृतकों के वस्त्र का अपहरण करने वाले चाण्डाल ने आदेश दिया कि दिनरात श्मशान में रहकर कौन मुर्दा आता है, यह देखो तथा ।१०६। प्रत्येक मृतक से जो धन प्राप्त हो, उसका छटा भाग राजा को, तीन भाग मेरे लिए और दो भाग अपने वेतन में लो ॥१०७॥ इस प्रकार चाण्डाल की आज्ञा प्राप्त कर राजा हरिश्चन्द्र दक्षिण दिशा में स्थित श्मशान में गये ॥१०८॥ उसकी चारों दिशाएं घोर शब्द प्रतिध्वनित हो रही थीं, गीदड़ियों से युक्त मृत मस्तकों से व्याप्त तथा दुर्गन्धित धूम्र से आच्छन्न ॥१०६॥ भूत, पिशाच, डाकनी, यक्ष ग्रध्र आदि से युक्त और उनके शब्दों से निनादित था तथा इधर-उधर अनेक श्वान घूम रहे थे, वह स्थान अस्थियों और महा दुर्गन्ध से भर रहा था ॥११०-१११॥ मृतक सम्बन्धियों के आर्त्तनाद के कारण अत्यन्त कोलाहलमय था, वहां हा मित्र, हा पुत्र, हा वत्स, हा बन्धो, हा प्रिये ॥ हा नाथ ! हा बहिन हा माता, हा मामा, हा पिता, हा पितामह, हा मातामह हा पौत्र आज किधर गये, एक बार तो आओ ॥११३॥

इत्येवंवदतांयत्रध्वनिः संश्रूयतेमहान् ।
यत्रनेत्रैरनिमिषैशवाभयमिवाविशन् ॥११४

निमिलितैश्चनयनैर्वधुंचितापऊस्थितः ।
ज्वलन्मांसवसामेदश्छमच्छमितसंकुलम् ॥११५

अर्द्धदग्धाःशवाःश्यामाविकसद्दन्तपंक्तयः ।
हसंत्येवाग्निमध्यस्थाःकायस्येयदशात्विति ॥११६

अग्नेश्चचटस्शब्दोत्रससामस्थिपंक्तिषु ।

वान्धवाक्रन्दशब्दश्चपुल्कसपूप्रहर्षजः ।।११७

गायतांभूतवेतालपिशाचगणरक्षासाम् ।
श्रूयतेसुमहान्धोरःकल्पान्तइवनिःस्वप्नः ।।११८

महामहिषकारीषगोशकृद्राशिसंकुलम् ।
तदुत्थभस्मकूटंश्चवृतंसास्थिभिरुग्रतैः ।।११९

इस भाँति अनेक प्रकार के विलाप युक्त आर्त्त स्वर वहाँ सुनाई पड़ते थे, तथा मृतक विना पलक मारे देखते हुए लगते थे उनसे भी भय प्रतीत होता था ।११४। कोई नेत्र खोले हुए वन्धु-चिन्तन में था, माँस मज्जा मेद के दग्ध होने पर छन छन शब्द निकलता था उसमें चारों दिशाए व्याप्त होती थीं ।११५। कोई शव अग्नि में पड़कर अधजला होने पर काला होगया, दन्तपंक्ति निकल गई उसे देखने से लगता 'उस देहकी यह दशा ?' जैसे विचार उसकी हंसी उड़ा रहे हों ।११६। हड्डियों पर बैठे हुये कौओं के विभिन्न प्रकार के शब्द हो रहे थे, मृतकों के बाँधव आर्त्त नाद कर रहे थे अग्नि के चट चट और चाण्डालों के आनन्द सूचक शब्दों से श्मशान भर रहा था। ११ । कहीं भूत पिशाच वैताल और राक्षसों के नृत्य गान के स्वर उठ रहे थे, जिससे वह स्थान भयंकर प्रलयात्मक प्रतीत होता था ।११८। कहीं कहीं भस्न के और गोवर के ढेर दिखाई देरहे थे वे भस्म कण कभी उड़ उड़ कर अस्थियों पर गिरती हुई पर्वत जैसी सुन्दर दिखाती थी ।।११९।।

नानोपहारस्रग्दीपकाकविक्षेपसकुलम् ।
अनेकशव्दवहुलंश्मशानंनरकायते ।।१२०

सवह्निगर्भैरशिवैः शिवारुतैर्निनादितभीषणरावगह्वरम् ।
भयंभयस्याप्युपसंजनैर्भृशंश्मशानमाक्रन्दविरावदारुणम् ।।१२१

सरावातत्रसंप्राप्तोदुःखितःशोचनोद्यतः ।
हाभृत्यामंत्रिणोविप्राक्वतद्राज्यविधेगतम् ।।१२२

हाशब्येपुत्रहावालमांत्यक्त्वामन्दभाग्यकम् ।
श्वामित्रस्यदोषेणगताःकुत्रपिपेमम ।।१२३

इत्येवचिन्तयंस्तत्र चण्डालोक्तपुनःपुनः ।

मलिनोरूक्षसर्वांग:केशवान्गन्धवान्ध्वजी ।।२४
लगुडीकालकल्पश्चधावंश्चापिततस्ततः ।
अस्मिञ्शबइदंमूल्यंप्राप्तंप्राप्स्यामिचाय्युत ।१२५
इदंममइदंराज्ञे मुख्यचण्डालकेत्विदम् ।
इतिधावन्दिशोराजाजीवन्योन्यन्तरंगतः ।१२६

कहीं काकवली की माला और दीपक पड़े थे, कहीं सियार अमंगल सूचक शब्द बोल रहे थे, इस कारण वह स्थान नरक तुल्य प्रतीत हो रहा था ।१२०। कहीं सियारों का भयंकर शब्द, मनुष्यों की क्रंदन ध्वनि सुनाई पड़ रही थीं, जिससे भय की अत्यन्त भीत हो रहाहों।१२१। राजा हरिश्चन्द्र उस घोर श्मशान में जाकर सोचने लगे वह सेवक गण मन्त्रिगण, विप्रगज और वह राज्य कहाँ गया ? ।१२२। हा शैव्या ! हा पुत्र ! तुम इस अभागे को त्याग कर कहाँ गये ? देखो ! अकेले विश्वामित्र के क्रोध से ही मेरा सर्वस्व छिन गया ।१२३। इस प्रकार चिन्ता करते हुए भी चाण्डाल के वचन की चिन्ता अधिक थी । उनका मलिन वेश,रूखा शरीर सब देह में बाल और दुर्गंध तथा ध्वजा ।१२४। और लाठी लेकर यमराज के समान चलना तथा इस पर विचार करना कि इस मृतक का इतना मूल्य हुआ, इसमें इतना मिल गया और इतना अभी लेना है ।१२५। यह मेरा, यह राजा का और यह उसी चाण्डाल का, ऐसी चिन्ता करते हुए इधर-उधर घूमते तब प्रतीत होता कि जीवित ही प्रेत हो गए हैं ।१२६।

जीर्णकर्पटसुग्रन्थिकृतकन्थापरिग्रहः ।
चिताभस्मरजोलिप्तमुखबाहूदरांघ्रिकः ।१२७
नानामेदोवसामज्जलिप्तपाण्यगुलि:श्वसन्: ।
नान:शवौदनकृताहारस्तृप्तिपरायणः ।१२८
नदीयमाल्यसंश्लेषकृतमस्तकमण्डनः ।
नरात्रौनन्दिवाशेतेहाहेतिप्रवदन्मुहुः ।१२९
एवंद्वादशमासास्तुनीताःशतसमीपमाः ।
सकदाचिन्तृपश्रेष्ठश्रान्तोबन्धुवियोगवान् ।१३०
निद्राभिभूतोरूक्षाङ्गोनिश्चेष्टःसुप्तएवच ।

तत्रापिशयनीयेसद्दृष्टवानद्भुतंमहत् ।१३१
श्मशानाभ्याशयोगेनदेवस्यवलवत्तया ।
अन्यदेहेनदत्वातुसुखेनगुरुदक्षिशाम् ।१३२
तदाद्वामशवर्षाथिदुःखदानात्तनिष्कृतिः ।
आत्मानंसददर्शाथपुल्कसीगर्भसंभवम् ।१३३
तत्रस्थश्चाप्यसौराजासोऽचिन्तयदिदंतदा ।
इतोनिष्क्रान्तमात्रोहिदानधर्मंकरोम्यहम् ।१३४

फटे हुए वस्त्र में गाँठ लगाकर कन्था धारण किये हुये तथा मुख, भुजा, उदर और पाँवों में चिता भस्म लगाये हुए ।१२७। हाथ की अंगुलियों में मेद, वसा और मज्जा लगी रहती थी और मृत पिण्डों से शेष भात का आहार करके रहते थे ।१२८। मृतक की उतारी हुई माला को धारण कर 'हा, हा, शब्द कहते हुए दिन या रात्रि कभी भी नहीं सोते थे ।१२९। इस प्रकार श्मशान में रहते हुए उनका एक वर्ष सौ वर्षों के समान व्यतीत हुआ फिर किसी दिन वे वंधु वियोग से श्रान्त होकर ।१३०। रूखे शरीर से निचेष्ट सो गए, तव स्वप्न में उन्हें एक अत्यन्त अद्भुत बात दिखाइ पड़ी ।१३१। श्मशान के अभ्यास या दैवेच्छा से उन्होंने देखा कि अन्य देह धारण करके गुरु को दक्षिणा देकर ।१३२। वारह वर्ष दुःख भोग लेने पर मुझे मुक्ति मिलेगी, फिर उन्होंने देखा कि मैं डोमनी के गर्भ में स्थित हूँ ।१३३। उस डोमनी के गर्भ में पड़े हुए ही वे सोचने लगे कि इस गर्भ से निकलते ही दान धर्म का आचरण करूँगा ।१३४।

अनन्तरं सजातस्तुतदापूल्कसवालकः ।
श्मशानमृतसंस्कारकरणेषु सदोद्यतः ।१३५
प्राप्तेतुसप्तमेवर्षेश्मशानेऽथमृतोद्विजः ।
आनीतोवन्धुभिर्दृष्टस्तेनतत्राधनोगुणी ।१३६
मूल्यार्थिनातुतेनापिपरिभूतास्तुब्राह्मणः ।
ऊचुस्तेब्राह्मणास्तत्रविश्वामित्रस्यचेष्टितम् ।१३७
पापिष्टमशुभंकर्मंकुरुत्वंगाप्रकारक ।
हरिश्चन्द्रःपराराजाद्विश्वामित्रेणपुल्कसः ।१३८

कृत:पुण्यविनाशेनब्राह्मणस्वापनाशनात् ।
यदानक्षमतेतेषांतै:सशप्तोरुषातदा ।१३६

तभी पुन: दिखाई दिया कि उसी गर्भ से उत्पन्न होकर उसी जाति कर्म में उद्यत हूँ ।१३५। जब चाण्डाल के बालक रूप में सात वर्ष की आयु हुई तब किसी गुणज्ञ एवं अनाथ ब्राह्मण के शव को लोग श्मशान में लाये ।१३६। उस समय दाह करने का मूल्य देने में असमर्थ ब्राह्मण उनसे अत्यन्त तिरस्कृत होते हुए बोले कि विश्वामित्र का कौनसा पापमय कार्य था ? अरे, पापकर्मा ! तू ऐसे ही अशुभ कर्म करता रहता है, पूर्व जन्म में तू राजा हरिश्चन्द्र था, तुझे विश्वामित्र ने चाण्डाल बना दिया है ।१३७।१३८। तूने ब्रह्मस्व न देकर पुण्य नष्ट किया, इससे विश्वामित्र के द्वारा तुझे चाण्डाल-योनि में आना पड़ा ? जब वे ब्राह्मण शवदाह का मूल्य न देने के कारण दाह न कर सके, तब उन्होंने अत्यन्त क्रोध पूर्वक राजा को शाप दिया ।१३९।

गच्छत्वंनरकंघोरमधुनैवनराधम् ।
इत्युक्तमात्रेवचणेस्वप्नस्थ:सनृपस्तदा ।१४०
अपश्यद्यमदूतान्वैपाशहस्तान्भयावहान् ।
तै संगृहीतमात्मानंनाययानानंतदाबलात् ।१४१
पश्यतिस्मभशंखिन्नोहामातः पितरश्चमे ।
एवंवादीसनरकेतैलद्रोण्यांनिपातितः ।१४२
क्रकचै:पाटचमानस्तुक्षुरधाराभिरप्यधः ।
अन्धेतमसिदु:खार्त्त:पूयशोणितभोजनः ।१४३
सप्तवर्षमृतात्म नपुल्कसत्वेददर्शह ।
दिनंदिनंतुनरकेदह्यतेहुच्यतेऽन्यतः ।१४४
खिद्यतेक्षोभ्यतेऽन्यत्रमार्यतेपाटचतेऽन्यतः ।
क्षार्यतेदीप्यतेऽन्यत्र शीतवाताहतोऽन्यतः ।१४५
एकंदिनंवर्षशतप्रमाणंनरकेऽभवत् ।
तथावर्षशतंतत्रश्रावितनरकेभटैः ।१४६
ततोनिपातितभूमौश्वाशीश्वाप्यजायत ।
दतग्धश्चमासमात्राश्रान्ताशाशमृतोऽपिसः ।१४७

अरे नराधम ! तू अभी घोर नरक को प्राप्त हो, ब्राह्मणों की बात सुन कर स्वप्न देखते हुए उस राजा ने ।१४०। देखा कि भयङ्कर यमदूत अपने हाथों में पाश लिए हुए चले आते है और बलपूर्वक मेरी आत्मा को बाँध ले चले ।१४१। तब वे खेद पूर्वक 'हा माता' हा पिता आज मेरी ऐसी दशा हो गई इस प्रकार विलाप करने लगे, तभी यमदूतों ने उन्हें नरक में ले जाकर तैल-द्रोणी में डालकर ।१४२। तीक्ष्ण धार वाले आरो से चीर कर अन्तधम नरक में गिराकर पीव और रक्त का आहार किया ।१४३। इस प्रकार वह आत्मा सात वर्ष तक नरक में पड़ी हुई दिखाई देने लगी, कभी जलता हूँ, कभी कोल्हू में पिलता हूँ ।१४४। कभी खिन्न और कभी क्षुब्ध होता हूँ, कभी चीरा जाता, कभी खाईं में फैंका जाता और कभी शीत वायु से आहत होता । १४५। उनका एक-एक दिन सौ-सौ वर्ष के समान व्यतीत हो रहा था, इस प्रकार दुःख भोग करते करते एक दिन नरक रक्षकों से सुना कि सौ वर्ष पूरे हो गये हैं ।१४६। तब उन्हें यमदूतों ने पृथिवी में गिराया और उन्होंने विष्ठा खाने वाले श्वान की योनि में जन्म लिया और एक दिन भयङ्कर शीत से व्याकुल होकर एक मास में ही मर गये ।१४७।

अथापश्यत्खरं देहं हस्तिनं वानरं पशुन् ।
छागं विडालकङ्कञ्च गामर्विपक्षिणकृमिभू ।१४८
मत्स्यकूर्मं वराहंच्श्वाविधकुक्कुटशुकम् ।
शारिकांस्थावरांश्चैत्रसर्पमन्याश्चदेहिनः ।१४९
दिवसेदिवसेजन्मप्राणिनःप्राणिनस्तदा ।
अपश्यन्दुःखसन्तप्तोदिवर्षशतंतथा ।१५०
एवंवर्षशतंपूर्णगतंतत्रकुयोनिषु ।
अपश्यच्चकदाचित्सराजातत्स्वकुलोद्भवम् ।१५१
तत्रस्थितस्थतस्यापि राज्यंद्यूतेनहारितः ।
भार्य्याहृताचपुत्रश्चसचैकाकीवनंगतः ।१५२
तत्रापश्यत्ससिंहंवैव्यादितास्यंभयानकम् ।
विभक्षयिषुमायांतंशरभेणसमन्वितम् ।१५३

पुनश्चभक्षित:सोऽपिभार्याशोचितुमुद्यतः ।
हाशैव्येक्वगतास्यद्यमामिहापास्यदुःखितम् ।१५४
नपश्यत्पुनरेवापिभार्यास्वाहतपुत्रकाम् ।
त्रायस्वत्वंहश्चिंद्रकिंद्य तेनतवप्रभो ।१५५
पुत्रस्तशोच्यतांप्राप्तोभार्य्ययाशैव्ययासह ।
सनापश्यप्पुनरपिधावमानः पुनः पुनः ।१५६

फिर गधे की योनि में, फिर हाथी, बन्दर, छाग, बिलाव, कौआ, गौ, मैंढ़ा, पक्षी और कृमि ।१४८। फिर मछली, कछुआ, शूकर मृग, मुरगा, तोता, मैंना, ऋक्ष, अजगर आदि विभिन्न योनियों में ।१४९। तथा अन्य कुयोनियों में जन्म लेकर दुख भोगते हुए सौ वर्ष व्यतीत हो गय ।१५०। फिर देखा कि वह पुनः अपने ही कुल में उत्पन्न होकर राजा बने हैं ।१५१। वहां कभी जुआ खेल कर राज्य, स्त्री और पुत्रादि को हार गये और एकाकी वन में गये ।१५२। वहां देखा कि एक भयानक सिंह मुख फैलाये हुए उनका भक्षण करने के निमित्त उनकी ओर आ रहा है।१५३। फिर उसके द्वारा खाये जाते हुए 'हा शैव्ये ! इस दुःखी हृदय का त्याग कर तुम कहां जाती हो, इस प्रकार जैसे ही शोक विह्वल हुये ।१५४। वैंसे ही देखा कि रानी शैव्या पुत्र सहित वहाँ आकर 'हा राजन् ! हमारी रक्षा करो, जुआ खेलने से आपका क्या कार्य है ।१५५। देखिये आपकी पत्नी शैव्या अपने पुत्र के सहित किस शोचनीय दशा में पड़ गयी है, इस प्रकार विलाप कर रहीं हैं, व बार-बार उसे देखने के लिए इधर उधर जाते हैं, परन्तु उसे देख नहीं पाते ।१५६ ।

अथापश्यत्पुनरपिस्वर्गस्थ:सनराधिपः ।
नीयतेमुक्तकेशीसादीनाविवसनावलात् ।१५७
हाहावाक्यं प्रमुंचन्तीत्रायस्वेत्यसकृत्स्वना ।
अथापश्यत्पुनस्तत्रवर्मराजस्यसनात् ।१५८
आक्रन्दन्त्यन्तरिक्षस्थाआगच्छेहनराधिप ।
विश्वामित्रेणविज्ञप्तोयमोराजंस्तवार्थंतः ।१५९
इत्युक्त्वासर्पपाशैस्तुनीनफवलवद्भिः ।

श्राद्धदेवेनकथितंविश्वामित्रायचेष्टितम् ।।१६०
तत्र.पितस्यधिक्कृतिर्नाधर्मोत्थाव्यवर्द्धत ।
एताःसर्वादशास्तस्ययाःस्वप्नेसम्प्रदर्शिताः ।।१६१
सर्वास्तास्तेनसम्भुक्तायावद्वर्षाणिद्वादश ।
अतीतेद्वादशेवर्षेनीयमानोभटैर्बलात् ।।१६२

फिर राजा हरिश्चन्द्र ने अपने को स्वर्ग में वास करते हुए देखा तथा दीन, वस्त्र विहीन और खुले केश वाली रानी शैव्या को किसी पुरुष द्वारा बल पूर्वक हरण करते हुए देखा ।१५७। वह 'महाराज रक्षा करो, रक्षा करो कहती हुई बारंबार चिल्ला रही है, फिर देखा कि यमराज के शासन में स्थित यमदूत ।१५७। आकाश में कह रहे हैं कि राजन् ! विश्वामित्र जी ने यमराज को आपके विषय में सूचना दी है, अतः आप यहाँ आयें, ऐसा कह कर घोर शब्द करते हैं ।१५९। फिर देखा कि इतना कहने के पश्चात् यमदूत मुझे नागपाश में दृढ़ता से बांध कर ले चले और यमराज तथा विश्वामित्र के चरित्र को कहते हैं।१६०। यद्यपि राजा हरिश्चन्द्र विभिन्न प्रकार के यत्रग भोग रहे थे, फिरभी उनके चित्तमें कोई अधार्मिक विकार नहीं आया । इस भाँति जो जो दशा उन्होंने स्वप्न में देखी ।१६१। वह सब उन्होंने इस बारह वर्ष के समय में निरन्तर भोगी थीं, बारह वर्ष व्यतीत होने पर यमदूतों के द्वारा बल पूर्वक ले जाये गये ।१६२।

यमंसोऽपश्यदाकारादुवाचचनराधिपम् ।
विश्वामित्रस्यकोपोऽयंदुर्निवार्य्योमहात्मनः ।।१६३
पुत्रस्यतेमृत्युमपिप्रदास्यतिसकौशिकः ।
गच्छत्वंमानुषंलोकंदुःखशेषंचभुंक्ष्वै ।
गतस्यतराजेन्द्रश्रेयस्तावभविष्यति ।।१६४
व्यतीतेद्वादशेवर्षदुःखस्यान्तेनराधिपः ।
अन्तरिक्षाच्चपतितोयमदूतैःप्रणादितः ।।१६५
पतितोयमलोकाच्चविबद्धोभयसंभ्रमात् ।
अहोकष्टमितिध्यात्वाक्षतेक्षारावसेचनम् ।।१६६
स्वप्नेदुःखमहत्दृष्टं देयस्यान्तोपलभ्यते ।

स्वप्नेदृष्टंमयायत्तु किन्तुमेद्वादशीःसमाः ॥१६७
गतेत्यपृच्छत्रस्थान्पुल्कसांस्तुससंभ्रमात् ।
नेत्यूचुःकेचित्तत्रस्थाएवमेवापरेऽब्रुवन् ॥१६८

वहाँ उन्होंने यमराज का दर्शन किया तब यमराज बोले- राजन् ! यह महात्मा विश्वामित्रजी के क्रोधका दुर्निवार्य फल है ॥१६३॥ वे विश्वामित्रजी आपके पुत्र की मृत्यु करायेंगे, इसलिए आप मर्त्यलोक में जाकर शेष दुःखों को भोगिये, वहाँ जाने पर तुम्हारा कल्याण होगा ॥१६४॥ वहाँ बारह वर्ष व्यतीत होने पर दुःखों का अन्त हो जायगा, यमराज के ऐसा कहने पर यमदूतों ने उन्हें आकाश में फेंक दिया ।१६५। यमलोक से गिरते ही भय और भ्रम से वे सहसा जाग पड़े और सोचने लगे कि घाव में नमक लगाने के समान अब यह क्या हुआ? ।१६६। जैसे स्वप्न में घोर दुःख दिखाई दिये हैं, वे तो असोमित ही हैं मैंने स्वप्न में जो देखा क्या वे बारह वर्ष व्यतीत हो चुके ।१६७। यह कह कर उन्होंने अपने पास के चाण्डालों से पूछा तो उनमें से किसी ने कहा कि अभी बारह वर्ष व्यतीत नहीं हुए और किसी ने कहा बीत भी सकते हैं।१६८।

श्रुत्वादुःखीदाराजादेवान्शरणमीयिवान् ।
स्वस्तिकुर्वन्तुशेदेवःशैव्यायाबालकस्यच ॥१६९
नमोधर्मायमहतेनमःकृष्णायवेधसे ।
परावरायशुद्धामपुराणायाव्ययायच् ॥१७०
नमोबृहस्पतेतुभ्यंनमस्तेवासवायच ।
एवमुक्त्वासराजातुयुक्तःपुल्ककर्मणि ॥१७१
शवानांमूल्यकरणेपुनर्नष्टस्मृतिर्यथा ।
मलिनोजटिलःकृष्णोलगुडीविह्वलोनृपः ॥१७२
नैवपुत्रोनभार्य्यातुतस्यऽस्मृतिगोचरे ।
नष्टोत्साहोराज्यनाशाच्छमशानेनिवसंस्तदा ॥१७३
अथाजगामस्वसुनमृतमादायलापिनी ।
भार्यातस्यनरेन्द्रस्यसर्पदष्टंहिबालकम् ॥१७४
हावत्सहापुत्रशिशोइत्थंवैवदतीमुहुः ।

कृशाविवर्णाविमनाःपांसुध्वस्तशिरोरुहा ।।१७५

यह सुनकर राजा हरिश्चन्द्रने देवताओंकी शरण लेते हुए कहा- हे देवगण ! आप मेरा रानी शैव्या और पुत्र का मंगल करें ।१६९ सर्व प्रधान धर्म को नमसाकर है, विधाता रूप कृष्ण को नमस्कार है, सर्व श्रेष्ठ अव्यय एवं पुरुष को नमस्कार है ।।१७०।। हे वृहस्पते ! आपको नमस्कार है, हे वासब! आपको नमस्कार है, ऐसा कहकर राजा हरिश्चन्द्र पुनः चाण्डाल रूप कार्य ।१७१। मृतक का मूल्य निर्धारण करने में लगे और उसी प्रकार मलिनवेष, जठा धारण किये हुए लकुटिधरी-कृष्णवर्ण युक्त स्मृति को भुलाये हुए विह्वल हो उठे ।१२७। उन समय उनकी स्मृति में भार्या या पुत्र कोई भी नहीं आया, क्योंकि राज्यसे भ्रष्ट होकर श्मशान में उत्साहहीन रहते थे ।१७३। तभी उनका जो पुत्र सर्पदंश से मृत्यु को प्राप्त होगया था, उसे लेकर उनकी पत्नी रोती हुई श्मशान में आयी ।।१७४।। वह अत्यन्त कृश देह दु:खी हृदय वाली: शिर में घूलि धूसरित थी, वह बारम्बार, हा पुत्र पुकारती हुई रुदन कर रही थी ।१७५।

हाराजन्नद्यबालंत्वंपश्यसीममहीतले ।
रममाणंपुराहृष्टंपुष्टाहिनामृतम् ।। ७६
तस्याविलापशब्दमाकर्ण्यसनराधिपः ।
जगामत्वरितोऽत्रेतिभवितामृतकम्बलः ।।१७७
सतांरोरूयतीभार्यानाभ्यजानात्तुपार्थिवः ।
चिरप्रवाससन्तप्तांपुनर्जातामिवावलाम् ।।१७८
सापितचारुकेशान्तंपुरादृष्ट्वाजटालकम् ।
नाभ्यजानान्नृपसुताशुष्कवृक्षोपमंनृपम् ।।१७९
सोऽपिकृष्णपटेवालंदृष्ट्वाशीविषपीडितम् ।
नरेन्द्रलक्षणोपेतंचिन्तामापनरेश्वर ।।१८०

रानी कहने लगी राजन्! जिस चन्द्रमा के समान बालक को आप खिलाते थे, उसने आज सर्प दशसे प्राण छोड़ दिया है उसे एकबार तोदेखो ।१८०। उस विलापको सुनकर मृतक- वस्त्र प्राप्त होगा' ऐसाविचार करते हुए राजा हरिश्चन्द्र शीघ्रता पूर्वक वहाँ पहुँचे ।१८१। वे प्रवास के

सन्ताप से और पुत्र शोक से दुःखित हुई अबला पत्नी को न पहिचान सके ।।१७८।। रानी शैव्या ने भी राजा को मनोहर केश युक्त देखा था और अब वे जटिल तथा शुष्क वृक्ष के समान हो रहे थे, इसलिए वह उन्हें न पहिचान सकी ।।१७६।। उस समय सर्प दंश से मृत उस बालक को काले वस्त्र में लपेटा हुआ, परन्तु राजचिह्नों से युक्त देखकर राजा विचार करने लगे ।।१८०।।

तस्यास्यंचंद्रबिंबाभंसुभ्रु रम्यंसमुन्नसम् ।
नालाःकेशाःकुंचिताश्चसमादोर्घास्तरंगिताः ।।१८१
राजीवनेत्रयुगुलोर्विवोष्ठपुटसंवृतः ।
चतुर्दंष्ट्रश्चतुःकिष्कुर्दीघायोदीर्घबाहुकः ।।१८२
चतुर्लेखःकरौमत्स्ययवयुक्चैकपर्वतः ।
शिरालुपादोगंभीरःसूक्ष्मत्वक्त्रिवलीधरः ।।१८३
अहोकष्टंनरेन्द्रस्यकस्याप्येषकुलेशिशुः ।
जातोनीतःकृतान्तेनकामप्याशादुरात्मना ।।१८४
एवंदृष्ट्वाहितबालमातुरुत्सङ्गशायिनम् ।
स्मृतिमभ्यागतोबालोरोहिताश्चोब्जलोचनः ।।१८५
सोऽप्येतामेवमेवत्सोवयोऽवस्थामुपागतः ।
नीतोयदिनघोरेणकृतान्तेनात्मनोवशम् ।।१८६
हावत्सकस्यपापस्यअशंध्यानादिदंमहत् ।
दुःखमापतितंघोररंयस्यान्तोनोपलभ्यते ।।१८७
हीनाथराजन्भवतामामाश्चस्युस्यृदुःखिताम् ।
क्वापिसन्तिष्ठतास्थानेविप्रब्धंस्थीयतेकथम् ।।१८८
राज्यनाशःसुहृत्यागोभार्यातनयविक्रयः ।
हरिश्चन्द्रस्यराजर्षेःकिंविधेनकृतंत्वया ।।१८९

जिसका चन्द्र के समान मुख, सुन्दर भौं उच्च नासिका, घुँघराले केश समान दीर्घ तरङ्ग युक्त ।।१८१।। पद्म जैसे दोनों ओष्ठ, चार दाढ़ें, सुशोभित मुख और विशाल भुजाएँ ।।१८२।। हाथ में मत्स्य 'जौ युक्त तथा पर्वत रेखा कंठ के पीछे की नाड़ी और पैर गंभीर, पतली.

त्वचा एवं उदर कंठ में त्रिवली रेखा का दिखाई देना ।१८३। इससे इसने किसी राजकुल में जन्म लिया प्रतीत होता है, अहो, काल ने इसकी क्या दशा कर दी है ।१८४। फिर माताकी गोद में पड़े हुए उस बालक को भले प्रकार देखने पर उन्हें रोहिताश्व की याद आ गई ।१८५ उन्होंने सोचा कि यदि दुरात्मा काल के वशीभूत न हुआ हो तो मेरा रोहिताश्व भी इतनी ही अवस्था का हो गया होगा ।१८६। इधर रानी बोली–हा पुत्र ! किस पाप के कारण इस असीम घोर दु:ख की प्राप्ति हुई है ।१८७। हे नाथ ! हे राजन् ! तुम इस संतप्ता को त्याग कर निष्ठुर चित्त से कहाँ किस प्रकार रहते हो ।१८८। एक राज्य का छिनना, उस पर भी बंधुओं से वियोग, फिर पत्नी पुत्र का विक्रय, हा विधाता ! क्या तूने राजर्षि हरिश्चन्द्र का सर्वनाश ही नहीं कर डाला? ।।१८९।।

इतितस्यावचःश्रुत्वाराजास्वस्थानतश्च्युतः ।
प्रत्यभिज्ञायदयितांपुत्रं चनिनंगतम् ।।१९०
कैपानामगृहेयुक्तामममयोपद्विराभवेत् ।
वालश्चसमृतःकस्यादितिराजाविचारयन् ।।१९१
कष्टंशैव्येयमेषाहिसवालोऽयमितीरयन् ।
रुरोददुःखसन्तप्तोमूर्च्छामभिजगामच ।।१९२
साचतंप्रत्यभिज्ञायतामवस्थामुपागतम् ।
मूर्च्छितानिपमार्ता नकेष्टाधरणोतले ।।१९३
चेतःसंप्राप्यराजेन्द्रोराजपत्नीचतौसमम् ।
विलेपतुःसुसन्तप्तौशोकभारातिपीडितौ ।।१९४
हावत्ससुकुमारंतेस्वक्षिभ्रूनासिकालकम् ।
पश्यतोमेमुखंदोनंहृदयंकिंनदीर्यते ।।१९५
तातताते तिमधुरंब्रुवार्णस्वयमागतम् ।
उपगुह्यवदिष्येकंवत्सवत्सेतिसौहृदात् ।।१९६

उसके वचन सुनकर राजा ने अपने पुत्र और स्त्री को पहिचानलिया तथा अपने स्थान से गिर पड़े ।१९०। यह स्त्री कौन है, क्या मेरीपत्नी है? यह मृत बालक कौन है ? इस प्रकार विचार करते हुए राजा हरिश्चन्द्र

व्याकुल हो उठे ।।१६१।।हा कैसा दुःख है ? यही वह शैव्या है और यहाँ वह बालक है ऐसा कहते हुए अत्यंत संताप से रोने लगे और मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़े ।१६२। रानी भी राजा को पहिचान कर मर्च्छा को प्राप्त होकर पृथिवी में गिर पड़ीं ।१६३। फिर दोनों ही चैतन्य होकर शोक से तप्त संहोकर अत्यन्त विलाप करने लगे ।।१६४।। राजा ने कहा— हे वत्स! तुम्हारे सुन्दर नेत्रादि से युक्त सुकोमल वदन को इस प्रकार मलीन देखकर हृदय फट क्यों नहीं जाता ? ।१६५। मीठे स्वरों से तात, तात, कहता हुआ अब मेरे कौन पास आयेगा? अब मैं किसे स्नेह पूर्वक गोदी में लेकर वत्स करूँगा ।।१६६।।

कस्यजानुप्रणीतेनापिङ्गनक्षितिरेणुना ।
ममोत्तरीयमुत्सङ्गं तथाङ्गं मलशेष्यति ।।१६७
अङ्गप्रत्यङ्गसम्भूतोमनोहृदयनन्दनः ।
मयाकुपित्राहावत्सविक्रातोयेनवस्तुवत् ।।१६८
हृत्वाराज्यमशेषमेसबांधवधनमहत् ।
देवाहिनानृशसेनदष्टोमेननयस्ततः ।।१६९
अहंदैवाहिदष्टस्यपुत्रस्याननपङ्कजम् ।
निरोक्षन्नपिघोरेणविषेणान्धीकृतोऽधुन ।।२००
एवमुक्त्वातमादायबालकंवाष्पगदगदः ।
परिष्वज्यचनिश्चेष्टोमूर्च्छयानिपपातह ।।१
अयसपुरुषव्याघ्रःस्वरेणौवोपलक्ष्यते ।
विद्वज्जनमश्चन्द्रोहरिश्चन्द्रोनसंशयः ।।२
तथास्तनासिकातुंगअग्रतोऽधोमुखंगता ।
दन्ताश्चमुकुलप्रख्याःख्यातकीर्त्तेर्महात्मनः ।३
श्मशानमागतःकस्मादद्यै पसनश्वरः ।
अपहायपुत्रशोकसापश्यत्पतितंपतिम् ।।४

अब किसी की जाँघ में लगी धूल से मेरा उत्तरीय और शरीर मैला होगा? ।१६७। हा तुम मेरे अंग-प्रत्यंग उत्पन्न होकर मन और हृदय के लिए आनद देनेवाले थे, तोभी मैंने तुम्हें सामान्यवस्तुके समान बेचदिया

।।१९८।। हा दैव रूपी दुष्ट नाग ने मेरा राज्य, साधन तथा सर्वस्वहरण करके अन्त में तुम्हें भी डस लिया ।१९९। दैव रूपी सर्प द्वारा इस पुत्र का मुखारविंद देखते हुए मैं भी उसके भीषण विष से अँधा हो रहा हूँ ।२००। राजा ने गद्‌गद् कंठ से इस प्रकार विलाप करते हुए बालक को अपने गोद में उठाया और तुरन्त मूर्च्छित होकर गिर गये ।२०१।रानी बोली–स्वर से प्रतीत होता है कि यही पुरुष सिंह महाराज हरिश्चन्द्रहैं, इसमें संशय नहीं ।२०२। इसकी ऊँची नासिका अग्रभाग में उन्हीं के समान अधोमुख हुई है,इनकी दंत पंक्ति भी उन्हीं के समान कली जैसी है ।२०३। परन्तु वह राजा हरिश्चन्द्र आज श्मशान में क्यों हैं, यह कहती हुये रानी मुर्च्छित पड़े हुए अपने स्वामी को देखने लगी ।२०४।

प्रहृष्टाविस्मितादीनाभर्तृपुत्राधिपीडिता ।
वीक्षन्तीसा तडोपश्यद्भर्तृदण्डंजुगुप्सितम् ।।५
श्वापाकार्हमनोमोहंजगामायतलोचना ।
प्राप्यचेतश्चशनकैःसगदगदमभाषत ।।६
धिक्त्वांदेवाव्यकरुणंमिर्मयादंजुगुप्तिम् ।
येनायनमरप्रख्योनीतोराजाश्वपाकताम् ।।७
राज्यनामसुहृत्यागंभार्यातनयविक्रयम् ।
प्रापयित्त्वापिनोमुक्तश्चण्डालोऽयंकृतोनृपः ।।८
हाराजञ्जातसन्तापाभित्थंमांधरणीतलात् ।
उत्थाप्यनाद्यपर्यङ्कारोहतिकिमुच्यते ।।९
नाद्यपश्यामितेच्छत्रंशृंगारमथवापुनः ।
चामरंव्यजनंचापिकोऽयंविविधिपर्ययः ।।२१०

उस दुर्बलाङ्गी शैव्या ने विस्मय पूर्वक पीड़ा से इधर उधर देखते राजा के उस चाण्डाल दंड को देखा ।२०५। मैं चाण्डाल की पत्नी हूँऐ कहती हुई रानीमोहित होकर गद्गद कंठ से बोली ।२०६। अरे, मर्यादा हीन,निन्दित,नृशंश दैव तुझे धिक्कार है,जो तूने मेरे देव-तुल्य स्वामी चाण्डाल बनाया है ।२०७। तू राज्य से भ्रष्ट करके,बंधुओं से वियोग कर तथा पत्नी-पुत्र को बिकवाकर भी शान्त न हुआ और अब चांडा

प्राप्त करा दिया ।२०८। हे राजन् ! इस प्रकार संताप ग्रस्त हुई इस पृथ्वी पर पड़ी हूँ, आज आप वहां से उठाकर पलङ्ग बैठने को क्योंनहीं कहते ।।२०९।। आज आपका छत्र और शृङ्गार दिखाई क्यों नहीं देता? वह चमर, वह पंखा कहाँ है ? देव की कैसी विडम्बना है ।।२१०।।

यस्याग्रे व्रजत:पूर्वं राजानोभृत्यतांगता: ।
स्वोत्तरीयैकुर्वन्तनीरजस्कमहीतलम् ।।११
सोयकपालसंलग्नघटीघटनिरन्तरे ।
मृतनिर्माल्यसूत्रान्तर्गूढकेशेदःरुणे ।।१२
वसानिष्यन्दसंशुष्यमहीपुटकमण्डिते ।
भस्तमाङ्गारार्द्धदग्धास्थिमज्जासंघट्टभीषणे ।।१३
गृध्रगोमायुनार्त्तनष्टक्षुद्रविहंगमे ।
चिताधूमायतिरुचानीलीकृतदिगन्तरे ।।१४
कुणपास्वादनमुदासंप्रहृष्टनिशाचरे ।
चरत्यमेध्येराजेन्द्रःश्मशानेदुःखपीड़ितः ।।१५
एवमुक्त्वासमाश्लिष्यकण्ठराज्ञोनृपात्मजा ।
कष्टशोकशताधारांविललापार्त्तयागिरा ।।१६

जिन राजा हरिश्चन्द्र के चलते समय राजा लोग मार्ग की धूल अपने दुपट्टे से झाड़ते थे, वही आज असह्य दुःख से दुःखित हुए इस अपवित्र श्मशान में एकाकी घूमते हैं ।।२११।। जहाँ मृतकों के कपालों साथ घड़े चारों दिशाओं में पड़े हैं तथा मृतकों के निर्माल्य सूत्र में बहुत से बाल लगे रहने के कारण जो घोर दिखाई दे रहा है ।।२१२। मृत-देह से टपकती वसा और शुष्क काष्ट से चारों दिशाऐं भर रहीं हैं और जो भस्म, अङ्गार और अधजली हड्डी और मज्जा के कारण अत्यन्त भयंकर हो गया है ।।२१३।। गृध्र तथा गोमायु के शब्द से छोटे-छोटे पक्षी जहाँ से भागते हैं तथा जहाँ चिता के धूम्र से दिशा-विदिशा नील वर्ण की हो गई हैं ।।२१४।। और माँ भ्रमण से प्रसन्न हुए राक्षस इधर-उधर घूमते हैं, उसी स्थान में यह महाराज संतप्त हुए एकाकी फिरते हैं ।२१५। इस प्रकार कहती हुई रानी शैव्या राजा के कंठ से लिपटकर विलाप करने लगी ।।२१६।।

राजन्स्वप्नोऽथतथ्यंवायदेतन्मन्यतेभवान् ।
तत्कथ्यतांमहाभागमनोवैमुह्यतेमम् । १७
यद्येतदेवंधर्मंज्ञानास्तिधर्मेसहायता ।
तथैवविप्रदेवादिपूजनेपालनेभुवः ॥१८
नास्तिधर्मःकुतःसत्यमार्जवचानृशंसत्ता ।
यत्रत्वंधर्मपरमःस्वराज्यादवरोपितः ॥१९
इतितस्यावचःश्रुत्वानिश्वस्योष्णंसचदग्दम् ।
कथयामासतन्वंग्यायथाप्राप्ताश्चपाकता ॥२०
रुदित्वासापिसुचिरंनिःश्वस्योष्णंचदुखिता ।
स्वपुत्रमरणंभीरुथथावृत्तंन्यवेदयत् ॥२१
श्रुत्वाराजातदावाक्यंनिपपातमहीतले ।
मृतस्यपुत्रस्यतद्राजिह्वलालेलिहन्मुखम् ॥२२
यमस्यभिक्षांयाचावःकृपणौपुत्रगर्द्धिनौ ।
तस्माच्छीघ्रंव्रजावोद्यपुत्रोयत्रप्रियोगतः ॥२३
प्रियेनरोच्चयेदीर्घंकालक्लेशंशुपासितुम ।
नात्मायत्तश्चतन्वङ्गिपश्यशेमन्दभाग्यताम् ।२४

रानी बोली—हे राजन् ! मैं जो देखा रही हैं वह स्वप्न है अथवा सत्य ? आपको जो ज्ञात हो वह बताइये, क्योंकि मैं तो मोहवश विचार शक्ति को खो चुकी हूँ ॥२१७॥ यदि यह सत्य है तो धर्म सहायक नहीं हुआ तथा देवताओं और ब्राह्मणों का पूजा भी निष्फल हुआ तथापृथिवी का पालन भी व्यर्थ ही रहा ॥२१८॥ इसलिए धर्म नहीं, सत्य नहीं, सरलता और सदयता भी नहीं, आपका तो धर्म ही परम बल है, फिर भी राज्य से भ्रष्ट होगये ॥२१९॥ रानी शैब्या की वात सुनकर उष्ण श्वास छोड़ते हुए राजा ने चाण्डालत्व प्राप्ति का यथावत वर्णन किया ॥२२०॥ उसका वृत्तान्त सुनकर रानी भी बहुत समय तक रोती रही और उसने मृत्यु का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा ॥२२१॥ रानी की बात सुन राजा पृथिवी पर गिर पड़े और अपने मृतक पुत्र के मुख को चाटने लगे ॥२२२॥ राजा ने कहा—हम उस पुत्र लोभी यमराज से भिक्षा, माँगे, हमारा पुत्र जहाँ गया है, हम भी अब वहीं

चल ।२२३। हे प्रिये ! मैं अब अधिक क्लेश नहीं सहना चाहता, परन्तु मैं कैसा मन्द भाग्य हूँ कि मेरी आत्मा भी मेरे वश में नहीं है ।२२४।

चण्डालेनाननुज्ञातःप्रवेक्ष्येज्ज्वलनंयदि ।
चाण्डालदासतांयास्येपुनरप्यन्यजन्मनि ।।२५
नरकेचपतिष्यामिकीटकःकृमिभोजनः ।
वैतरण्यांमहापूयवसासृक्स्नायुपिच्छिले ।।२६
असिपत्रवनेप्राप्यछेदंप्राप्स्यामिदारुणम् ।
तापंप्राप्स्यामिवाप्राप्य महारौरवरौरवौ ।।२७
मग्नस्यदुःखजलधौपारःप्राणवियोजनम् ।
एकोऽपिबालकोयोयमासीद्वंशकरःसुतः ।।२८
ममदैवाम्बुवेगेनमग्नःसोऽपिबलीयसा ।
कथंप्राणान्विमुंचामिपरायत्तोऽस्मिदुर्गतः ।।२९
अथवानार्दिनाकि ...टेनरःपापमवेक्षते ।
तिर्यक्त्वेनास्यितद्दुःखंनासिपत्रवनेतथा ।।२३०
वैतरण्यांकुतस्तोद्दृग्यादृशंपुत्रविप्लवे ।
सोऽहंसुतशरीरेणदीप्यमानेहुताशने ।।२३१
निपतिष्यामितन्वंगिक्षन्तव्यंकुकृतंमम ।
अनुज्ञाताचगच्छत्वविप्रवेश्मशुचिस्मिते ।।२३२

यदि मैं चाण्डाल की आज्ञा के बिना अग्नि प्रवेश करूँगा तो मुझे पुत्रजन्म में भी चाण्डाल का ही दास होना होगा ।२२५। अथवा कृमि भक्षक कीट होकर नरक में पड़ना होगा अथवा वैतरणी, पवि, वसा, रुधिर आदि से युक्त नरक की यंत्रणा भोगनी होगी ।२२६। अथवा असि-पत्र वन को प्राप्त होकर दारुण छेदन यंत्रण भोगूँगा या रौरव अथवा महारौरव में दुःसह ताप में पड़ूँगा ।२२७। दुःख रूपी सागर में डूबने वाले के लिए पार भूमि प्राण त्याग ही हैं अहो, मेरा जो एक बालक वंश की वृद्धि वाला था ।२२८। वह भी दैव रूपी जल में डूब गया, इस असीम दुर्गति रूप भोग के होते हुए भी पराधीन होने के कारण प्राण भी कैसे त्याग सकता हूँ ।।२२९।। अथवा आर्त्त पुरुष को पाप का क्या देखना ? जो असह्य दुःख पुत्र में है, वैसा तिर्यग् योनि, असि-

पत्र वन ।२३०। अथवा वैतरणी में भी नहीं है, इसलिए पुत्रदेह के सा‍थ मैं भी प्रज्जवलित अग्नि में जल जाऊँगा, हे तन्वङ्गी ! मेरे द्वारा हुए अन्याय आचरण को क्षमा करो और मेरी आज्ञा से उसी ब्राह्मण के गृह जाओ ।।२३१-२३२।

ममवाक्यंचतन्वंगिनिबोधाहृतमानसा ।
वदिदत्तांर्यदिहुतंगुरवोयदितोषिताः ।।२३३
परत्रसंगमोभूयात्पत्रेणसहचत्वया ।
इहलोकेकुतस्त्वेतद्भविष्यतिममेङ्गिमम् ।।२३४
त्वयासहममश्रे योगमनपुत्रमार्गणे ।
यन्मयाहसताकिंचिद्रहस्येवाशुचिस्मिते ।।२३५
अश्लीलमुक्तं तत्सर्वंक्षन्तव्यंममयाचतः ।
राजपत्नीतिगर्वेणनावज्ञेयःसतेद्वितः ।।
सर्वंयत्नेनतेतोष्यःस्वामीदैवतवच्छुभे ।।२३६
अहमण्यत्रराजर्षेदीप्यमानेहुताशने ।
दुःखभारासहाद्यैवसहयास्यामिवैत्वया ।।२३७
सहस्वर्गंचनरकंपहैवावांहिभुंक्ष्वहे ।
श्रुत्वाराजातदोवाचएवमस्तुपतिव्रते ।।२३८

मेरे कथन को आदर पूर्वक सुनो यदि मैंने दान,हवन अथव गुरुजनों की संतुष्टि की है ।२३३। तो मैं इस पुत्र और तुम्हारे साथ पुनर्जन्म में भेंट करूँगा,अव इस लोक में मेरा यह अभिप्राय सिद्ध होना संभव नहीं हैं ।२३४। अथवा तुम्हें भी मेरे साथ पुत्रके मार्ग का अनुसरण करना चाहिए, यदि हास्य के रूपमें इस निर्जन स्थान में ।२३५। कुछ अनुचित बात निकल गई हो तो उसे क्षमाकरना,उस ब्राह्मण का राजपत्नीहोने के अहं में निरादर मत करना उसको स्वामी अथवा देवता के समान संतुष्ट रखना।२३५। रानी बोली-हे राजर्षे ! में भी अब इस दुःख भारको सहन करनेमें समर्थ नहींहूं,इसलिए इस प्रज्जवलित अग्निमें आपके साथ ही प्रवेश करूँगी ।२३७। वहाँ मैं,पुत्र और आप हम तीनों ही एक स्थान में रह कर स्वर्ग या नरक का भोग करेंगे, रानी की वात सुनकर राजा ने कहा

के पतिव्रते ! ऐसा ही करना ।।२३८।।

ततःकृत्वाचितांराजाआरोप्यतनयंस्वकम् ।
भार्ययासहितश्चासौबद्धांजलिपुटस्तदा ।।२ ९
चिन्तयन्परमात्मानमीशंनारयणहरिम् ।
हृत्कोटरगुहासीनंवासुदेवश्वरम् ।
अनादिनिधनंब्रह्मकृष्णंपीताम्वरंशुभम् ।।२४०
तस्यचिन्तयमानस्यसर्वेदेवाःसवासवा ।
धर्मप्रमुखतःकृत्वासमाजग्मुस्त्वरान्विताः ।।२४१ ।
आगत्यसर्वेप्रोचुस्तेभोभोराजञ्शृणुप्रभो ।
अयंपितामहःसाक्षाद्धर्मश्चभगान्स्वयम् ।।२४२
साध्याश्चविश्नेमरुतोलोकपालाःसचारणाः ।
नागाःसिद्धाःसगन्धर्वारुद्राश्चैवतथाश्विनौ ।।२४३
एतेचान्येचवहवोविश्वामित्रस्तथैवच ।
विश्वत्रयेणयोमित्रंकर्त्तुंवैनाशकत्पुरा ।।२४४
विश्वामित्रस्तुतेमैत्रीमिष्टंचाहर्तुमिच्छति ।
आरुरोहततःप्राप्तोधर्म शक्रोऽथगाधिजः ।।२४५

पक्षियों ने कहा—राजा हरिश्चन्द्र ने चिता वनाकर अपने पुत्र को उस पर रखा और पत्नी के सहित हाथ जोड़ कर जैसे ही ।।२३९।।परमात्मा, ईस, वासुदेव, सुरेश्वर, परब्रह्म,कृष्ण,पीताम्वरधारी,शुभदायक, हृदय में वास करने वाले, अनादि निधन, नारायण, हरि का चिन्तन किया ।। ४०।। वैसे ही धर्म को आगे करके इन्द्रादि देवगण शीघ्रता पूर्वक वहाँ पहुँचे ।।२४१।। वे सभी देवता कहने लगे—हे राजन् ! यह साक्षात् ब्रह्मा हैं, यह साक्षात् धर्म हैं ।।२४२।। यह साध्यगण, मरुद्गण, विश्वेदेवा, सब लोकपाल नागगण, सिद्धगण, गंधर्वों सहित रुद्रगण तथा दोनों अश्विनीकुमार ।२४३। अथवा अन्याय सभी देवता अपने-अपनेवाहन सहित उपस्थित हैं और जो त्रैलोक्य के साथ मित्रता नहीं कर समते वह विश्वामित्र भी आयेहैं ।२४४। यह सभी आपके साथ मित्रता करनेकोआये हैं, धर्म, इन्द्र और विश्वामित्र यह तीनों राजा के पास आये ।।२४५।।

मा राजन्साहसंकार्षोधर्मोऽहवामुपागतः ।
तितिक्षादमसत्याद्यैः स्वगुणैःपरितोषितः ॥२४६
हरिश्चन्द्रमहाभागप्राप्तंशक्रोस्मितेऽन्तिकम् ।
त्वयासभार्यापुत्रेणजितालोकाःसनातनाः ॥२४७
आरोहत्रिदिवंराजन्भार्यापुत्रसमन्वितः ।
सुदुष्प्रापंनरैरन्यैर्जितमात्मीयकर्मभिः ॥२४८
ततोऽमृतमयंवर्षमपमृत्युविनाशनम् ।
इन्द्रःप्रासृजदाकाशाच्चितास्थानगतःप्रभुः ॥२४९
पुष्पवर्षंचसुमहद्देवदुन्दुभिनिःस्वनम् ।
ततस्ततोवर्तमानेसमाजेदेवसंकुले ॥२५०
समुत्तास्थौततपुत्रोराज्ञस्तस्यमहात्मनः ।
सुकुमारतनुःसुस्थःप्रसन्नेन्द्रियमानसः ॥२५१
ततोराजाहरिश्चन्द्रःपरिष्वज्यसुतंक्षणात् ।
सभार्य्यःसुश्रियायुक्तोदिव्यमाल्याम्बरान्वितः ॥२५२

धर्म बोला— राजन् ! अब इस साहसिक कार्य से निवृत्त होइये मैं धर्म हूँ मुझे आपने तितिक्षा, दम, सत्य इत्यादि गुणों से सन्तुष्ट किया है इसलिए स्वयं यहाँ उपस्थित हूँ ॥२४६॥ इन्द्र बोले— हे महाभाग ! मैं इन्द्र हूँ आपने पत्नी पुत्र के सहित सभी सनातन लोकों को जीता है ॥२४ ॥ इसलिए आप अन्य मनुष्यों को दुर्लभ स्वर्ग में पत्नी और पुत्र के सहित चलो ॥२४८॥ पक्षियों ने कहा इसके पश्चात् इन्द्र चिता स्थान में गये और वहाँ उन्होने अपमृत्य का क्षय करने वाले अमृत की वर्षा की ॥२४९॥ तथा उस सभा में देवताओं नेपुष्प वृष्टि की और दुदुभी बजने लगीं ॥२५०॥ फिर उस महात्मा राजा का कोमल अंग वाला पुत्र रोहिताश्व भी स्वस्थ होकर प्रसन्न मन से उठ बैठा ॥२५१॥ उस समय राजा ने क्षणभर को पुत्र का आलिंगन किया तथा दिव्य वस्त्र और माला धारण कर पत्नी सहित सुशोभित हुए २५२ ॥

स्वस्थःसम्पूर्णहृदयोमुदापरमयायुतः ।
बभूवतत्क्षणादिन्द्रोभूयश्चैनमभाषत ॥ ५३

सभार्यस्त्वंसपुत्रश्चप्राप्स्यसेसद्गतिपराम् ।
समारोहमहाभायनिजार्नाकर्मणांभलैः ।।२५४
देवराजाननुज्ञातःस्वामिनाश्वपचेनवै ।
अगत्वानिष्कृतितस्यनारोक्ष्येऽहंसुरालयम् ।।२५५
तवैनंभाविनंक्लेशमवगम्यात्ममायया ।
आत्माश्वपाकतांनीतोदर्शितंतच्चचापलम् ।।२५६
प्रार्थ्यंतेयत्परंस्थानंसमतैर्मनुजैर्भुवि ।
तदारोहहरिश्चन्द्रस्थानंपुण्यकृतनिणाम् ।।२५७
देवराजनमस्तुभ्यंवाक्यंचैतन्निबोधमे ।
प्रसादसुमुखंयत्त्वांब्रवीमिप्रश्रयान्वितः ।।२५८
सच्छोकमग्नमनसःकोसलानगरेजनाः ।
तिष्ठन्तितानपोह्याद्यकथंयास्याम्यहदिवम् ।।२५९

तथा भले प्रकार स्वस्थ्य और आनन्दित हुए, तब इन्द्र ने उससे कहा ।२५३। हे महाभाग ! आप पत्नी पुत्र सहित परम सद्गति पायेंगे इसलिए अपने कर्मफल के द्वारा स्वर्ग में निवास कीजिए ।२५४। हरिश्चन्द्र ने कहा मैं अपने स्वामी चाण्डाल की अनुमति के बिना स्वर्ग में नहीं जा सकता ।२५५। धर्म ने कहा—राजन् ! तुम्हारे भावी क्लेश को जानकर मैंने ही चाण्णाल का रूप धारण किया था ।२५६। इन्द्रने कहा —जिस परम स्थान में पहुंचने के लिए पृथिवी के सब मनुष्य प्रार्थना करते हैं, तुम उस स्थान को गमन करो ।२५७। हरिश्चन्द्र ने कहा—हे सुरपते ! आपको नमस्कार हैं, में आपसे विनम्र निवेदन करता हूँ, उसे सुनिये ।२५८। नगर के सभी मनुष्य मेरे शोक में पड़े है, मैं उन्हें छोड़ कर स्वर्ग में कैसे जाऊँ ।२५९।

ब्रह्महत्यागुरोर्घातोगोवधःस्त्रावधस्तथा ।
तुल्यमेभिर्मदापापंभक्तत्यागेऽप्युदाहृतम् ।।२६०
भजन्तंभक्तमत्याज्यमदुष्टंत्यजतःसुखम् ।
नेहनामुत्रपश्यामितस्माच्छक्रदिवंव्रज ।।२६१
यदितेसहिताःस्वर्गंयास्यान्तिसुरेश्वर ।

ततोऽहमपियास्यामिनरकंवापितःसह ॥२६२
बहूनि पुण्यपापानितेषाभिन्नानिवैपृथक् ।
कथंसंघातभोग्यंत्वंभूयःस्वर्गमवाप्स्यसि ॥२६३
शक्रभुक्तेनृपोराज्यंप्रभावेणकुटुम्बिनाम् ।
यजतेचमहायज्ञैः कर्मपौर्त्तंकरोतिच ॥२६४
तच्चतेषांप्रभावेणमयासर्वमनुष्ठितम् ।
उपकर्तृन्नसन्त्यक्ष्येतानहंस्वर्गलिप्सया ॥२६५
तस्माद्यन्ममदेवेशकिंचिदस्तिसुचेष्टितम् ।
दत्तमिष्टमणोजप्तंसामान्यंतैस्तदस्तुनः ॥२६६
बहुकालोपभोग्यं हिफलयन्ततकर्मणः ।
तदस्तुदिनमप्येकंतःसमंत्वत्प्रसादतः ॥२६७

ब्रह्महत्या, गुरुहत्या, गोहत्या अथवा स्त्री हत्या का जो पाप होता है, वही पाप भक्त का त्याग करने में है।२६०। अपने भक्तों का त्याग करने पर लोक परलोक में कोई सुख नहीं है, अतः आप स्वर्गको गमन करें।२६१। हे देवेश्वर ! मेरे साथ वह़ी भी स्वर्ग में जाँय तो मैंभी वहाँ जाऊँगा, अन्यथा उनके साथ नरक में ही निवास करूँगा।२६२। इन्द्र बोले-उन प्रयोजनों के द्वारा विभिन्न प्रकार के पाप-पुण्य हुए हैं, तो वे आपके साथ स्वर्ग में कैसे जा सकते हैं।२६३। हरिश्चन्द्र ने कहा-हे सुरेश्वर ! कुटुम्बिलों के प्रभाव से ही राजा राज्य भोगता और वावड़ी, कुए आदि वनाता है।२६४। मैंने भी जो धर्म कार्य किए हैं, वह उनके सहयोग से किये हैं, इसलिए साभान्य स्वग के लोभ में उन उपकार करने वालों का त्याग नहीं करूँगा।२६५। इसलिए मैंने जो कुछ भी जप, दान, पुण्य किया है, वह उनके सहित सव में समान हो।२६६। मेरे पुण्य फल का जो भोग वहुत समय तक भोगने योग्य हो, वह उनके साथ चाहे एक दिन को ही भोग सकूँ, ऐसा कीजिए।२६७।

एवंभविष्यतीत्युक्त्वाशक्रस्त्रिभुवनेश्वरः ।
प्रसन्नचेताधर्मश्चविश्वामित्रश्चगाधिजः ॥२६८
गत्वाशुनगरंसर्वेचातुर्यसमायुतम् ।

हरिश्चन्द्रस्यनिकटेप्रोवाचविबुधाधिपः ॥२६९
आगच्छध्वंमनुजनाःशीघ्रंस्वर्गलोकंसुदुर्लभम् ।
धर्मप्रसादात्संप्राप्तसर्वैर्युष्माभिरेवतु ॥२७०
विमानकोटिसम्बद्धंस्वर्गलोकान्महीतलम् ।
गत्वायोध्याजनंप्राहदिवमारुह्यतामित ॥२७१
तदेन्द्रस्यवचश्श्रुत्वाप्रीत्यातस्यचभूपतेः ।
आनीयरोहिताश्वंविश्वामित्रोमहातपः ॥२७२
अयोध्याख्येपुरेरम्येसोऽभ्यषिचन्नृपात्मजम् ।
देवैश्चमुनिभिःसिद्धैरभिषिच्यनराधिपः ॥२७३
राज्ञासहतदासर्वेहृष्टपुष्टसुहृज्जनाः ।
सपुत्रभृत्यदारास्तेदिवमारुरुहुर्जनाः ॥२७४

पक्षियों ने कहा— ऐसा ही होगा' कह कर इन्द्र धर्म और विश्वामित्र जी ॥२६८॥ सभी उस नगर में गये और सब प्रजाजनों राजा हरिश्चन्द्र के सहित एकत्र किया, तब इन्द्र बोले ॥२६९॥ हे मनुष्यों! तुमने धर्म के प्रसाद से अत्यन्त कठिनता से प्राप्य स्वर्गलोक को प्राप्त किया है, इसलिए वहीं चलो ॥२७० इसके पश्चात् स्वर्ग से करोड़ों विमान वहाँ आये और अयोध्यावासियों से कहा गया कि स्वर्ग में जाने के लिए इन विमानों पर शीघ्र चढ़ो ॥२७१॥ फिर विश्वामित्र राजा को प्रसन्न करने के निमित्त इन्द्र के वचन से रोहिताश्व को वहाँ लाये ॥२७२ ॥ और उसे अयोध्यानगरी के राज्य सिंहासन पर अभिषिक्त किया उस समय सब अयोध्या बन्धु बांधव सिद्ध, मुनि और देवगणों के समक्ष अभिषेक कर भार्या पुत्र सेवक आदि से मिलकर सभी स्वर्ग को चले ॥२७१॥ ॥२७४॥

पदे पदेऽविमानात्तेविमानमगमन्नराः ।
तदासंभूतहर्षोसौहरिश्चन्द्रश्चपार्थिवः ॥२७५
संप्राप्यभूतिमतुलांविमानैःसमहीपतिः ।
आसांचक्रेपुराकारेवप्रप्राकारसंवृते ॥२७६
ततस्तस्यर्द्धिमालोक्यश्लोकमत्रोशनाजगौ ।
दैत्याचार्यो[illegible] ॥२७७

हरिश्चन्द्रसमोराजानाभूतोनभविष्यति ।
यश्चैतच्छृणुयाद्भक्त्यानैरन्तर्येणमानवः ।२७८
तेनवेदाःपुराणनिसर्वेमन्त्राःसुसग्रहाः ।
घष्टाःस्युःपुष्करेतोर्थेप्रयागेसिन्धुसागरे ।२७९
देवागारेकुरुक्षेत्रेवाराणस्यांविशेषतः ।
विषुवद्ग्रहणेचैवयत्फलंजपतोलभेत् ।२८०

मार्ग में वे एक दूसरे विमान में चढ़ रहे थे, उस समय राजा हरिश्चन्द्र भी बहुत प्रसन्न हुए । २७५ । तब उन्हें विमान में चढ़ने की महान् विभूति का अनुभव हुआ और वे वलयाकार परकोटे से संयुक्त स्थित रहे। २७६। उस समय सर्वशणास्त्रों के तत्व ज्ञाता दैत्यों के आचार्य शुक्राचार्य जी ने राजा के इस ऐश्वर्य को देख कर प्रशस्ति गान किया ।२७७। वे बोले - राजा हरिश्चन्द्र के समान विश्व में न कोई हुआ न भविष्य में होगा, क्योंकि वे तितिक्षा और दान के फल से अपने नगर निवासियों को भी स्वर्ग में ले गये, इन राजा हरिश्चन्द्र की कथा को भक्ति सहित जो कोई श्रवण करेगा ।२७८। वह वेद, पुराण, तथा सभी मन्त्रों के फल को पावेगा, जो कोई पुष्कर, प्रयाग, सिंधु सागर ।२७९। देव मन्दिर, कुरुक्षेत्र और वाराणसी में पाठ करेगा उसे विशेष फल मिलेगा, तथा जो फल विषुवती और ग्रहण में जप करने से होता है ।२८०।

तत्फलंद्विगुणंचैवसंयतात्माश्रृणोनियः ।
श्रुत्वातुपूजयेद्भक्त्यापुराणज्ञंद्विजोत्तमम् ।२८१
गांभुहिरण्यवस्त्रैश्चतथैमान्नैनजेम्निने ।
येनैवंयत्कृतंपुण्यंतच्छवयंनमयोदितुम् ।२८२
अहोतितिक्षामाहात्म्यमहोदानफलमहत् ।
यदागतोहरिश्चन्द्र.पुराचेन्द्रत्वमाप्तवान् ।२८३
एतत्तेसर्वमाख्यातंहरिचन्द्रविचेष्टतम् ।
यःश्रृणोतिदुःखात्तंससुखमहृदाप्नुयात्ः ।२८४
स्वर्गार्थीप्राप्नुयात्स्वर्गपत्रार्थीपुत्रमाप्नुयात् ।
भार्यार्थीप्राप्नुयाद्भार्यांराज्यार्थीराज्यमाप्नुयात् ।२८५

अत्तः परंकथाशेषःश्रूयतांमुनिसत्तम ।
विपाकोराजसूयस्यपृथिव्रीक्षयकारणम् ।
तद्विपाकनिमित्तंचयुद्धमाडिवकंमहत् ।२८६

उससे द्विगुण फल इसे इन्द्रिय के संयम पूर्वक सुनने से हाता है इस कथा को सुन कर पुराण ज्ञाता ब्राह्मण को संतुष्ट करे ।२८१। उसे गौ, भूमि, स्वर्ण, वस्त्र तथा अन्न प्रदान करने ने जो गुण होता है, वह अवर्णनीय दे ।२८२। तितिक्षा और द्रान का महान् फल होता है, उसी के प्रभाव से राजा हरिश्वन्द्र को इन्द्रत्व की प्राप्ति हुई और वे अपने नगर निवासियों सहित स्वर्ग को प्राप्त हुए।२८३।पक्षियों ने कहा-हे जमिने ! आपसे हरिश्चन्द्र का सम्पूर्ण वृत्तान्त कहा गया, दु,खों से आर्त मनुष्यों को इसके श्रवण से अत्यन्त सुख की प्राप्ति होती है ।२८४। इसके स्वर्गाकांक्षी को स्वर्ग, तुत्रच्छु को पुत्र, पत्नी की कामना वाले को पत्नी तथा राज्य की इच्छा वाले को राज्य को प्राप्ति होतीहै ।२८५। हे मुनिश्रेष्ठ! अब तुम्हारे प्रति पृथवी के क्षय के कारण, राजसूय यज्ञ का विपाक तथा उस विपाक से महत् आडिवक युद्ध स्वरूप शेष कया को कहता हूँ, श्रवण करो ।२८६।

इति श्रीः मार्कण्डेय पुराणे हरिश्चन्द्रोपाख्यानं नाम अष्टमोऽध्यायः ।८।

९—आडिबकयुद्ध

राज्यच्युतेहरिश्चन्द्रेगतेचत्रिदशालयम् ।
निश्चक्राममहातेजाजलवासात्पुरोहितः ।१
वसिष्ठोद्वादशाव्दान्तेगङ्गापर्युषितामुनिः ।
शुश्रावचसमस्तन्तुविश्वामित्रविचेष्टितम् ।२
हरिश्चन्द्रस्यनाशञ्चराज्ञश्चोदारकर्मणः ।
चण्डालसंप्रयोगञ्चभार्यातनयविक्रयम् ।३
सश्रुत्वासुमहाभागःप्रीतिमानवनीपतौ ।
चकारकोपंतजस्वीविश्वामित्रमृषिम्प्रति ।४
ममपुत्रशततेनेविश्वामित्रेणघातितम् ।
तत्रापिनाभवत्क्रोधस्तादृशोयादृशोऽद्यमे ।५

चील को आहत किया, तभी चील ने कंठ उठाकर अपने पर से बगुले पर आघात किया ।१५। उनके पंखों की हवा से अनेक पर्वत टूट कर गिरने लगे, जिससे पृथिवी भी कम्पायमान हो उठी ।१६। पृथिवी के काँपने से समुद्र का जल उछलने लगा तथा पृथिवी पार्श्व की ओर झुक गई ।१७। उस समय भूमंडल के सभी जीव कोई पर्वत के गिरने से, कोई समुद्र की तरंगों से नष्ट होने लगे ।१८। इस प्रकार त्रास को प्राप्त विश्व हा-हा कार करता हुआ भ्रान्त हो उठा और पृथिवी में विपरीतता होने पर ।१९। सभी मनुष्य व्याकुल चित्त से स्वजनों को पुकारते हुए 'भागो' भागो' कहने लगे ।२०। भय से इस प्रकार चिल्लाते हुए कोई कहीं, कोई कहीं गये तब पितामह ब्रह्माजी स्वयं ही सब देवताओं के सहित वहाँ आये ।२०।

प्रत्युवाचचविश्वेशस्तावुभावतिकोपितौ ।
युद्धंवांविरमत्वेतल्लोकाः स्वास्थ्यंव्रजन्तुच ।२२
शृण्वन्तावपितौवाक्यंब्रह्मणेऽव्यक्तजन्मनः ।
कोपामर्षसमाविष्टौयुयुधातेनतस्थतुः ।।२३
ततःपितामहोदेवस्तदृष्ट्वालोकसंक्षयम् ।
तयोश्चहितमस्विच्छंस्तियग्भावमपानुदत् ।२४
तास्तौपूर्वदेहस्थोप्राहदेवः प्रजापतिः ।
व्युदस्तेतामसेभावेवसिष्टकौशिकर्षभौ ।२५
जहिवत्सवसिष्टत्वंत्वंचकौशिकसत्तम ।
तामसंभावमाश्रित्यईदृग्युद्धंचिकीर्षितम् ।२६
राजसूयविपाकोयंहरिश्चन्द्रस्यभूपतेः ।
युवयोर्विग्रहश्चायंपृथिवीक्षयकारकः ।२७
नचापिकौशिकश्रेष्ठस्तस्यराज्ञोऽपराध्यति ।
स्वर्गप्राप्तिकरोब्रह्मन्नुपकारपदेस्थितः ।२८

और कुपित हुए दोनों पक्षियों से बोले कि तुम्हारा युद्ध समाप्त हो और भूमण्डल के सभी जीवस्वस्थ हों ।२२। ब्रह्माजी की यह बात सुनकर भी दोनों पक्षी युद्ध करने से किसी प्रकार न रुके ।२३। तब ब्रह्माजी ने

प्रजा का संहार देख कर उसके हितार्थ दोनों का खगत्व हर लिया। ४ जब उन्हें पूर्व देह की प्राप्ति हुई तब उनका तमोगुण मिटा, यह देखकर ब्रह्माजी ने उन दोनों से कहा ।२५। हे वसिष्ठ ! हे विश्वामित्र ! तुम तमोगुण के अवलम्बन से जो युद्ध करते थे, उसे छोड़ो ।२६। पृथवी को नष्ट करने वाले जिस युद्ध को तुम कर रहे थे वह राजा हरिश्चन्द्र केयज्ञ करने का फल है ।२७। इन विश्वामित्र ने राजा का कोई अपराध नहीं किया, इसके विपरीत उनको स्वर्ग प्राप्त करा कर उपकार किया है ।२८।

तपोविघ्नस्यकर्त्तारौकामक्रोधवशंगतौ ।
परित्यजतभद्रंवोब्राह्मंहिप्रचुपंबलम् ।२९
एवमुक्तौततस्तेनलज्जितौतावुभावपि ।
क्षमयामासतुःप्रीत्यापरिष्यज्दपरस्परम् ।३०
ततः सुरैर्वन्द्यमानौब्रह्मालोकंनिजंययौ ।
वसिष्ठोऽप्यात्मनः स्थानंकौशिकोऽपिस्वमाश्रम् ।३१
एतदाडिबकंयुद्धंहरिश्चन्द्रकथांतथा ।
कथयिष्यन्तियेमर्त्याःसम्यक्श्रोष्यन्तिचैवये । २
तेषांपापापनोदंतुश्रुतह्येवकरिष्यति ।
नचैवविघ्नकार्याणिभविष्यन्तिकदाचन ।३३

तुम काम, क्रोध के वश में पड़ कर तप में विघ्न कर रहे हो, इसलिए इन दोनों का त्याग करो,ब्रह्मत्व से बढ़कर अन्य कोई बल नहीं है, तुम्हारा कल्याण हो ।२९। ब्रह्माजी की बात सुन कर दोनों अत्यन्त लज्जित हुए और परस्पर क्षमा माँगते हुए आलिंगन करने लगे ।३०। फिर देवताओं से पूजित हुए ब्रह्माजी अपने लोक को गये और वसिष्ठ तथा विश्वामित्र ने भी अपने-अपने स्थान को गमन किया ।३१। जो व्यक्ति आडिम्बक युद्ध और हरिचन्द्र की कथा कहेगा अथवा श्रवण करेगा ।३२। उसके सभी पाप नष्ट होंगे और इसे सुन कर कार्यारम्भ करेगा तो उसके कार्य में कभी विघ्न उपस्थित न होगा ।३४।

१० — मृत्युदशा वर्णन

संशयद्विजशार्दूलाःप्रब्रूहिममपृच्छतः ।
आविर्भावतिरोभावौभूतानांयत्रसंस्थितौ ।।१
कथंसञ्जायतेजन्तुकथंवासविवर्धते ।
कथंवोदरमध्यस्थस्तिष्ठत्यङ्गनिपीडितः ।।२
निष्क्रान्तिमुदरात्प्राप्यकथंवावृद्धिमृच्छति ।
उत्क्रान्तिकालेचचकर्थंचिद्भावेनवियुज्यते ।।३
कृत्स्नोमृतस्तथाश्नाति उभेसुकृतदुष्कृते ।
कथतेचतथातस्यफलसम्पादयन्त्यत ।।४
कथनजीर्यतेतत्रपिण्डीकृतइवाशये ।
स्त्रीकोष्ठेयत्रजीर्यन्तेभुक्तानिसुगुरूण्यपि ।।५
भक्षाणितत्रनोजन्तुर्जीर्य्यतेकथामल्पकः ।
कथभोक्तासर्वेस्यकमर्णसुकृतस्यवै ।।६
एतन्मेब्रूतसकलसन्देहोक्तिविवर्जितम् ।
तदेतत्परमंगुह्यं यत्रमुह्यन्तिजन्तवः ।।७

जैमिनी बोले—हे द्विजशार्दूल ! जिसमें प्राणियों का जन्म-मरण संघटित है, उस विषयक मेरे संदेह को दूर करिये ।१। जीव की उत्पत्ति और वृद्धि किस प्रकार होती है तथा वह पीड़ा को सहन करता हुआ गर्भ में किसी प्रकार रहता है ! ।२। फिर गर्भ से निकल कर वृद्धि को प्राप्त होता, मृत्यु के समय उसका प्राण कैसे निकल जाता है ? ।३। काल के गाल में जाकर जीव पुण्य पाप कैसे भोगता है और पाप पुण्य अपने-अपने फल का सपादन किस प्रकार करते हैं । ४ । जठराशय में जाकर कठिनता से पाक वस्तु भी पच जाती हैं तो साधारण पिण्डी [illegible] हुआ जीव स्त्री के जठर में क्यों नहीं पच जाता? ।५। जठराग्नि में [illegible] कर जीव नष्ट क्यों होता है तथा सुकृत से फल को किस प्रकार भो[illegible] है ।६। जिस प्रकार मेरी संदेह दूर हो सके, उस प्रकार मुझे बता[illegible], इस गूढ़ रहस्य में प्राणी मोहित हैं ।७।

प्रश्नभारोऽयमतुलस्त्वयास्मासुनिवेशितः ।

दुर्भाव्यःसर्वभूमानांभावाभावसमाश्रितः ।८
तच्छृणुध्वमहाभागयथाप्राहपितःपुरा ।
पुनःपरमधर्म्मान्मासुमतिनमिनामतः ।९
ब्राह्मणोभार्गवः कश्चित्सुतमहामहामतिः ।
कृतोपनयनंशान्तंसुमतिजडरूपिणम् ।१०
वेदानधीत्यसुमतेयथानुक्रममादितः ।
गुरुशुश्रूषणैव्यग्रोभैक्षान्नकृतभोजनः ।११
ततोगार्हस्थ्यमास्थायचेष्ट्वायज्ञाननुत्तमान् ।
इष्टमुत्पादयापत्यमाश्रयेधावनंततः।१२
वनस्थश्चततोवत्सपरिव्राड्निष्परिग्रहः ।
एवमाप्स्यसितद्ब्रह्मयत्रगत्वानशोचसि ।१३

पक्षियों ने कहा—आपने प्राणियों के भावाभाव वाला जो प्रश्न किया है, वह अत्यन्त गूढ़ है ।८। पुराकाल में अपने पिता के प्रति सुमति नामक एक धर्मात्मा पुत्र ने जो कहा था, वह हम तुम्हारे प्रति वर्णन करते हैं, ध्यान से सुनो ।९। एक समय भार्गव वंश के किसी महामति नामक ब्राह्मण ने अपने जड़ भाव युक्त पुत्र सुमति से कहा ।१०। हे सुमते ! गुरु की सेवा में रह कर भिक्षान्न से जीवन निर्वाह करता हुआ प्रथम वेदाध्ययन कर ।११। फिर गृहस्थ धर्म का पालन करता हुआ उच्छित पुत्रोत्पत्ति के पश्चात् वन को प्राप्त हो ।१२। वन में वास करके संन्यासी होकर ही ब्रह्मज्ञान प्राप्त होगा, जिसकी प्राप्ति होने पर सोच नहीं रहता ।१३।

इत्येवमुक्तोबहुशोजडत्वान्नाहकिञ्चन ।
पितापितंसुबहुशः प्राहप्रीत्यापुनःपुनः ।१४
इतिपित्रासुतस्नेहात्प्रलोभिमधुराक्षरम् ।
सचोद्यमानोबहुशःप्रहस्येदमथाब्रवीत् ।१५
तातैतद्बहुशोभ्यस्तयत्वयाद्योपदिश्यते ।
तथैवान्यानिशास्त्राणिशिल्पानिविविधानिच ।१६
जन्मनामयुतं साग्रं ममस्मृतिपथगतम् ।
उत्पन्नज्ञानबोधस्यवेदैःकिंमेप्रयाजनम् ।

निर्वेदाःपरितोषाश्चक्षयगृद्धयुदयेरताः ।१७
शत्रु मित्रशलत्राणांवियोगाःसङ्गमास्तथा ।
मातरोविविधादृष्टाः पितरोविविधास्तथा ।१८
अनुभूतानिसौख्यानिदु खानिचसहस्रशः ।
बान्धवाबहवःप्राप्ता पितरश्चपृथग्विध : । १९
विण्मूत्रपिच्छिलेस्त्रीणांतथाकोष्ठेमयाषितम् ।
पीडाश्चसुभशंप्राप्त रोगाणाञ्चसहस्रशः ।२०
गर्भदुःखान्यनेकानिबालत्वेयौवनेतथा ।
वृद्धतायांतथाप्तानितानिसर्वाणिसंस्मरे ।२१

पक्षियों ने कहा-इस प्रकार पिता द्वारा बहुत-सी बातें कहने पर भी जड़ता प्राप्त पुत्र ने कोई उत्तर न दिया, परन्तु स्नेह के वशीभूत हुए पिता उनसे बारम्बार कहने लगे ।१४। पिता के प्रलोभन युक्त वचनों को बारम्बार सुन कर सुमति कुछ हंसा और उसने पिता से कहा । १५ । आप इस समय जिस विषय का उपदेश मुझे दे रहे हैं, उनका अनेक बार अभ्यास कर चुका हूँ, इसके अतिरिक्त अनेकों शास्त्र एव शिल्प शास्त्र का भी अभ्यास कर चुका हूँ ।१६। कुछ अधिक दश हजार वर्ष की बात मुझे याद है, मैं अनेक बार दुःख पा चुका हूँ, अनेक बार संतुष्ट हुआ हूं, अनेक बार क्षीणता और वृद्धि को प्राप्त हो चुका हूं, अब मुझे ज्ञान उपलब्ध है तो वेदाध्ययन से क्या लाभ है ? ।१७। अनेक बार मेरा शत्रु, मित्र, कलत्र सहित संयोग और वियोग हो चुका हूँ, मैंने अपने-अनेक माता पिता देखे हैं, ।१८ । सहस्रों प्रकार के सुख-दुःख का मुझे अनुभव है, बाँधव और पिता सभी अनेक प्रकार से देख चुका हूँ । १९ । मैंने अनेक बार मल मूत्र युक्त नारी-जठर में निवास किया हैं, तथा हजारों बार रोगों की यंत्रणा प्राप्त कीं है ।२०। गर्भ की यन्त्रणा, बाल्यकाल, युवावस्था तथा वृद्धावस्था में जितनी बार जो दुःख प्राप्त किया, वह सब मुझे याद है ।२१।

ब्राह्मणक्षत्रियविशांशूद्राणञ्चापियोनिषु ।
पुनश्चपशुकीटानांमगाणामथपक्षिणाम् ।२२
तथैवराजभृत्यानांराज्ञांचाहवशालिनाम् ।

समुत्पन्नोऽस्मिगेहेषुतथैवतववेश्मनि ।।२३
भृत्यतांदासतांचैवगतोऽस्मिबहुशोनृणाम् ।
स्वामित्वमीश्वरत्वंचदरिद्रत्वंतथागतः ।।२४
हतंमयाहतश्चात्यैर्हतंमेघातितंतथा ।
दत्तंममान्यैरन्येरुयोमयादत्तमनेकशः ।।२५
पितृमातृसुहृद्भ्रातृकलत्रादिकृतेनच ।
तुष्टोऽसकृत्तथादैन्यमश्रुधौताननोगतः ।।२६
एवसंसारचक्रेऽस्मिन्भ्रमतातातसङ्कटे ।
ज्ञानमेतन्मयाप्राप्तंमोक्षसम्प्राप्तिकारम् ।।२७
विज्ञातेयत्रसर्व्वोऽयमृग्यजुःसामसञ्ज्ञितः ।
क्रियाकलापोविगुणोनतम्यक्प्रतिभातिमे ।।२८

मैं बहुत बार ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पशु, कीट, पक्षी आदि योनियों में उत्पन्न हो चुका हूँ ।२२। जैसे आपके यहाँ उत्पन्न हुआ हूँ, वैसे ही अनेकों बार राज सेवकों अथवा वीरोंके यहाँ उत्पन्न हो चुका हूँ, ।२३। मैं अनेक वार सेवक एवं भृत्य हुआ हूँ, अनेक वार स्वामी तथा प्रधान हुआ हूँ और अनेक वार दरिद्रता भोग चुका हूँ ।२४। मैंने बहुत से मनुष्यों को मारा और बहुतों ने मुझे भी मारा है, मैंने अनेक बार दानदिया तथा अनेक वार दान ग्रहण किया है।२५। पिता,माता,भ्राता, सुहृद, भार्या आदि से अनेक वार संतुष्ट हुआ और अनेक वार दीन दशा को प्राप्त होकर अश्रु बहाता रहा ।२६। इस प्रकार इस सङ्कट से परिपूर्ण संसार चक्र में निरन्तर भ्रमण करते मुझे मोक्ष के देने वाले ज्ञान की प्राप्ति हो चुकी है ।२७। इस प्रकार ज्ञान मिलने से ऋक्, यजुः, साम नामक सम्पूर्ण क्रिया कलाप का मुझे भले प्रकार ज्ञान है ।२८।

तस्मादुत्पन्नबोधस्यवेदैः किंमेप्रतोजनम् ।
गुरुविज्ञानतृप्तस्यनिरीहस्यसदात्मनः ।।२९
षट्प्रकारक्रियादुःखसुखहर्षरमैश्चयत् ।
गुणैश्ववर्जितंब्रह्मतत्प्राप्स्यामिपरंपदम्ः ।।३०
रसहर्षभयोद्वेक्रोधामर्षजवागुरा ।

विज्ञातामृग्रहिंसग्पाशशतकुला ॥३१

स्माद्यास्याभ्यहृतातत्यक्त्वेमांदु:खसन्तीतम् ।
त्रयीधर्ममधर्माढयंकिंपापफलसन्निभम् ।।३२
तस्यतद्वचनंश्रु त्वाहर्षविस्मयगदगद्म ।
पिताप्राहमहाभाग:स्वसुतंहृष्टमानस: ।।३३
किमेतद्वदसेवत्सतकुतस्तेज्ञानसम्भव: ।
केनतेजडतापूर्वंमिदानीचबुद्धता ।।३४
किन्नुशापविकारोऽयंमुनिदेवकृतस्तव ।
यद्येज्ञानयिरोभूतमाविर्भावमुपागतम् ।।३५

इसलिए ज - मुझे ज्ञान प्राप्त ही है और मैं गुरु विज्ञानमें तृप्त तथा चेष्टा हीन और सदात्मा हूँ तो वेदज्ञान से मेरा क्या प्रयोजन है ? ।२६। मैं सुख दु:ख, हर्ष, रस तथा निर्गुण ब्राह्म पद को प्राप्त हूँ ।३०। तथा रस,हर्ष,भय,उद्वेग,क्रोध अमर्ष और वृद्धावस्था द्वारा नितांत व्याकुल और सैकड़ों बन्धनोंसे व्याप्त रहा हूँ ।३१। अत: इस दुखरूपी प्रवाह का त्याग करके मुझे जाना है,त्रयी विद्या का धर्म अधर्म कैसे लगता है मैं इसे छोड कर ब्रह्मपद पाऊँगा ।३२। पक्षियों ने कहा पुत्र के इस वचन को सुन कर प्रसन्न चित्त हुए पिताने हर्ष विस्मय से युक्त गद्गद् बचन कहे।३३। पिता ने कहा—हे पुत्र ! तुम यह क्या कहते हो? तुम्हें ऐसा ज्ञान कहां से प्राप्त हुआ? तुम जो जड़ स्वभाव वालेथे,अब ऐसी ज्ञान-बुद्धि किस प्रकार उत्पन्न हो गई ? ।३४। तुम्हारा जो छिपा हुआ ज्ञान अब प्रकट हुआ है, वह क्या किसी मुनि या देवता के शाप से अप्रकट था ? ।३५।

श्रृणुतातयथावृत्तांममेदसुखदम् ।
यश्चाहमासमन्यास्मिञ्जन्मन्यस्मतपरन्तुयत् ।।३६
अहमासंगुरविप्रोन्यन्यस्तात्मापरम त्मनि ।
आत्मविद्याविचारेषुपरांिष्ठामुपागत: ।।३७
सततंयोगयुक्तस्यसतताभ्याससङ्गमात् ।
सत्संयोगात्स्वभावाद्वाविचारविधिशोधनात् ।।३८
तस्मिन्नेवपराप्रीतिममासींद्यु जत:सदा ।

आचार्यतांचसंप्राप्त शिष्यसन्देहहृत्तमः ।।३९

ततःकालेनमहताऐकान्तिकमुपागतः ।

अज्ञानाकृष्टसद्भांवोविपन्नश्चप्रमादतः ।।४०

उत्क्रान्तिकालादारभ्यस्मृतिलोपोनमेऽभवत् ।

यावदद्यंगतंचैवजन्मनांस्मृतिमागतम् ।।४१

पुत्र बोला मैं अपने सुख दुःख को देने वाले सभी वृत्तान्तों को कहता हूँ, उन्हें सुनो ।३३। मैं पूर्व जन्म में एक ब्राह्मण था, उस समय ब्रह्म में आत्मा को लीन करके मैंने आत्मविद्या प्राप्त की थी ।७३। सदैव योगस्त रहने के कारण अभ्यास, सत्संग, सत्स्वभाव विचार एवं विधियों का उद्धार ।३८। तथा निरन्तर ब्रह्म में रत रहने के कारण मैं उस जन्म में अत्यन्त प्रसन्न था तथा शिष्यों के सन्देहों का निवारण करने वाला आचार्य था ।३९। कुछ समय व्यतीत होने पर एकान्त में रहने लगा, फिर अज्ञान वश प्रमादी होकर अत्यन्त व्याकुल हुआ ।४०। फिर भी मरण पर्यन्त मेरी स्मृति नष्ट हुई, इसलिये जन्म समय से जितने वर्ष व्यतीत हुये उन सभी का मुझे स्मरण है ।४१।

पूर्वाभ्यासेनतेनैवसोऽहंतातजितेन्द्रियः ।

यतिष्यामितथाकर्तुं नभविष्येयथापुनः ।।४२

ज्ञानवानफलंह्येतद्यज्जातिस्मरणमम् ।

नह्येतत्प्राप्यतेतातत्रयीधर्माश्चितैर्नरैः ।।४३

सोऽहंपूर्वाश्रमादेवनिष्टाधर्ममुपाश्रितः ।

एकान्तित्वमुपागम्ययतिष्याम्यात्ममे क्षणे ।।४४

तद्ब्रुहित्वंमहाभागयत्ते सांशयिकंहृदि ।

एतावतापितेप्रीतिमुत्पाद्यानृण्यमाप्नुयाम् ।।४५

पिताप्राहततःपुत्रश्रद्दधत्तस्यतद्वचः ।

भवतायद्वयंपृष्ठाःसंसारग्रहणाश्रयम् ।।४६

श्रृणुतातयथातत्वममुभूतंमयऽसकृत् ।

संसारचक्रमजरंस्थितिर्गस्यनविद्यते ।।४७

सोऽहंवदामितेसर्वंतवैवामुज्ञयापितः ।

ऊर्ध्वश्वासान्वितःसोऽथदृष्टिभङ्गसमन्वितः ।
ततः सवेदनाविष्टस्तच्छरीरंविमुंचति ।।६३

काष्ठ का दान करने वालों को मरण काल में शीत तथा चन्दन-दान करने वालों को ताप नहीं सताता तथा प्राणियों को भयभीत करने वालों को उस समय अत्यन्त यन्त्रणा भोगनी होती है ।५७। जो मोह और अज्ञान को शिक्षा देते हैं, उन अधमों को अत्यन्त भय तथा घोर पीडा की प्राप्ति होती है ।५८। मिथ्या साक्षी देने वाले, मृषावादी, वेद-निन्दक तथा कुशासकों की अज्ञान से मृत्यु होती है ।५९। तथा उनके मरण काल में अत्यन्त घृणित वेश वाले भयङ्कर यमदूत मुद्गर हाथ में लिये हुए आते हैं ।६०। जैसे ही उन्हें यमदूत दिखाई पड़ते है, वैसे ही वे कम्पित शरीर से भ्राता माता और पुत्र को पुकारते हुए रुदन करते हैं ।६१। उस समय उनको बात समझने में नहीं आती, वर्ण विकृत होता है और दृष्टि घूमने लगतीहै, त्रास और उच्छ्वास से मुख भी सूख जाता है ।६२। फिर ऊर्ध्वश्वास चलती हैं, नेत्र की दृष्टि नष्ट होती है और वेदना से ग्रसित होकर प्राण छूट जाते हैं ।६३।

वाय्वग्रसारीतद्रूपदेहमान्यत्प्रपद्यते ।
तत्कर्मजंयातनार्थंनमातृपितृसम्भवम् ।
तत्प्रमाणवयोवस्थासंस्थानैः प्राग्भवंयथा ।
ततोदूतोयमस्याशुपाशैर्बध्नातिदारुणैः ।
दण्डप्रहारसंभ्रान्तकर्षतोदक्षिणांदिशम् ।।६५
कुशकण्टकवल्मीकशंकुपाषणकर्कशैः ।
तथाप्रदीप्तज्वलनेक्वचिच्छवभ्रशतोत्कटे ।।६६
प्रदीप्तादित्यतप्तोनह्यमानेनदंशुभिः ।
कृष्यतेयमदूतैश्चशिवासन्नादभीषणैः ।।६७
विकृष्यमाणस्तैर्घोरैर्भक्ष्यमाणःशिवाशतैः ।
प्रयातिदारुणेमार्गेपापकर्मायमक्षयम् ।।६८
छत्रोपानत्प्रदातारोयेचवस्त्रदानराः ।
होयान्ति [illegible] ।।६९

विमानै सोज्ज्वलैर्यान्तिभूमदानप्रदानराः ।
एवंक्लेशाननुभवन्नवशःपापपीडितः ।
नीयतेद्वादशाहेनधर्मराजपुरंतरः ।।७०

फिर वायु के आगे होकर कर्मफल रूप यंत्रणा का भोग करने के लिये विना माता- पिता के उत्पन्न होने वाले अन्य शरीर कोधार करते हैं, वह शरीर पहिले के समान वय, अवस्था और संस्था वाला होता है ।६४। फिर यमदूत उन्हें दारुण पाशमें बाँध, दण्ड प्रहार करते हुए दक्षिण की ओर खींचते हैं ।६५। कुश, काँटे वल्मीक शंकु तथा पत्थर से भी कठोर एवं कहीं प्रज्वलित अग्नि से व्याप्त, कहीं सैकड़ों गर्त से युक्त ।६६। सूर्य की अत्यंत उष्णता से जलते हुए, कहीं सैकड़ों गीदड़ों के शब्द से व्याप्त तथा यमदूतों से खींचे जाते हुए ।६७। इस प्रकार उस प्राणी को सैकड़ों गीदड़ खाते हैं, ऐसे मार्ग से पापी पुरुषों को यमलोक में जाना होता है ।६८। जिन्होंने छत्री, जूता, वस्त्र अन्न दिया है वे उस मार्ग में सुख से जाते हैं ।६९। जो भूमिदान करते हैं, वे शुभ विमान में बैठ कर वहाँ पहुँचते हैं, पापी मनुष्य क्लेशों को पाते हुए बारहवें दिन धर्मराज के पुर में पहुँचते हैं

कलेवरेमह्यमानेमहान्तदाहमृच्छति ।
ताडयमानेतथैवार्तिछिद्यमानेचदारुणाम् ।।७
क्लिद्यमानेचिरतरंजन्तुर्दुःखमवाप्नुते ।
स्वेनकर्मविपाकेनदेहान्तरगतोऽपिसन् ।।७२
तत्रयद्बान्धवास्तोयंप्रयच्छन्तितिलैः सह ।
यच्चपिण्डंप्रयच्छन्तिनीयमानस्तदश्नुते ।।७३
तैलाभ्यङ्गोबान्धवानातङ्गसंवाहनचयत् ।
तेनचाप्यायतेजन्तुर्यच्चाश्नन्तिस्वबान्धवाः ।।७४
भूमौस्वपदमिनर्स्यन्तंक्लेशमाप्नोतिबान्धवैः ।
दानंददद्भिश्चतथाजन्तुराप्यार्य्यतेमृतः ।।७
नीयमानःस्वकगेहंद्वादशाहंसपश्यति ।
उपभुङ्क्तेतथादत्तं तोयपिण्डादिकंभुवि ।।७६

द्वादशाहात्परंघोरमावसंभीषणाकृतिम् ।
याम्यंपश्यत्यथोजन्तुःघृष्यमाणःपुरततः ।७७

शरीर के जलने पर भीषण जलन तथा ताड़ित या छेदित होने पर घोर वेदना भोगनी होती हैं ।७१। यह शरीर जब जल में भीगता है, तब देहान्तर के आश्रय में भी कर्म फल से सदा दुःख का अनुभव होता है ।७२। उसके निमित्त उसके बाँधव जिस तिल जौ को जल सहित देते हैं; उस समय वह उसी का भोजन करता है ।७३। बाँधवों को तेल या उबटन लगाना इसलिए वर्जित है कि मृतक के लिए भोजनमें वही वस्तु मिलती हैं ।७४। बांधवों के धरती में सोने से उसका क्लेश मिटता है और दान करने से उसे प्रसन्नता प्राप्त होती है ।७५। बारहवें दिन उनको फिर उसी घरमें जाना होताहै और वहाँ उसके निमित्तजो जल पिण्डादि दिया जाता है, उसका वह भोजन करता है ।७६। बारहवाँ दिन बीतने पर पुनः यमदूतों द्वारा खींचा जाकर अत्यन्त भीषण आकर वाले लोहमय यमपुर को जाता है ।७७।

गतमात्रोऽतिरक्ताक्षंभिन्नाञ्जानचयप्रभम् ।
मृत्युकालान्तकादीनांमध्येपश्यतिवैयमम् ।७८
दंष्ट्राकरालवसनंभ्रुकुटीदारुणाकृतिम् ।
विरूपैर्भीषणैर्वक्रैर्वृतंव्याधिशतैः प्रभुम् ।७९
दंडासक्तंमहाबाहुंपाशहस्तंसुभैरवम् ।
तन्निर्दिष्टांततोयातिगतिंजन्तुःशुभाशुभाम् ।८०
रौरवेकूटसाक्षीतुयातियश्चानृतीनरः ।
ब्रह्मघ्नोहत्ययादष्टोगोघ्नश्चपितृघातकः ।८१
क्षेत्रदारापहारीचसीमानिक्षेपहारकः ।
गुरुपत्न्यभिगामीचकन्यागामीतथैवच ।८२
तस्यस्वरूपंगतोरौरवस्यनिशामय ।
योजनानांसहस्त्रे द्वे रौरवोहिप्रमाणतः ।
जानुमात्रप्रमाणश्चततःश्वभ्रसुदुस्तरः ।८३
तत्राङ्गारचयोपेतंकृतंचधरणीसमम् ।

जाज्वल्यमानस्तीव्रेणतापिताङ्गारभूमिना ।८४

वहां पहुँच कर मृत्यु, काल, अन्तक आदि पार्षदों के सहित यमराज के दर्शन करता है ।७८। वह यमराज अत्यन्त विकराल वदन, भीषणाकार, विरूप तथा वक्र आकृति की असख्य व्याधियों से घिरे हुए हैं ।७९। वह दण्ड और पाश धारण किये हुए अत्यन्त भयंकर आकार वाले है, उन्हीं के द्वारा निर्दिष्ट श्रेष्ट अथवा निम्न गति को प्राणी प्राप्त करते हैं ।८०। मिथ्यावादी तथा मिथ्या साक्षी देने वालों को रौरवनरक में डाला जाता है, ब्रह्म-हत्यारे, गौ हत्यारे तथा पिता की हत्या करने वाले ।८१। खेत, सीमा, धरोहर या स्त्री का हरण करने वाले, गुरु-पत्नी या कन्या से समागम करने वाले भी उसी रौरव नरक को प्राप्त होते हैं ।८२ अब उस रौरव नरक का स्वरूप बताता हूँ उसे सुनो वह दो सहस्र योजन लम्बा है, उसमें जंघा के बराबर गहरा गर्त है ।८३। उस गर्त में मिट्टी जैसे अंगार भरे हैं, उन अंगारों के ताप स प्राणी सदा जलता रहत है ।८४।

तन्मध्येपापकर्माणविमुचन्तियमानुगाः ।
सदह्यमानस्तीव्रेणवह्निनातत्रधावति ।८५
पदेपदेचपादोऽस्यशीर्यतेजीर्यतेपुनः ।
अहोरात्रेणोद्धरणंपादन्यासंचगच्छति ।८६
एवंसहस्रमुत्तीर्णोयोजनानांविमुच्यते ।
ततोऽन्यत्पापशुद्ध्यर्थंतादृङ्निरयमृच्छति ।८७
ततःसर्वेषुनिस्तार्णःपापीतिर्यक्त्वमश्नुते ।
कृमिकीटपतङ्गेषुश्वाहृदेमशकादिषु ।८८
गत्वागजद्रुमाद्येषुगोष्वश्वेषुतथैवच ।
अन्यासुचैवपापसुदुःखदामुचयोनिषु ।८९
मानुष्यंप्राप्यकुब्जावाकुत्सितोवामनाऽपिवा ।
चण्डालपुल्कसाद्यासुनरायोनिषुजायते ।९०

पापी मनुष्यों को यमदूत उसमें फैंकते हैं, वे उस तीव्र अग्नि में दाह को प्राप्त हुए इधर उधर भागते हैं ।८५। इसप्रकार पग-पग पर उनके पाँव अग्नि से जल कर फटते और नष्ट होते हैं, दिन रात्रि में केवल एकवार

ही पैर रखने और उठाने का सामर्थ्य उसमें होता है ।८६। इस प्रकार पैर रखने पर हजार योजन चलने पर वहाँ से मुक्त होकर उसी जैसे अन्य नरक को प्राप्त होता है ।८७। इस प्रकार सब नरकों को भोगकर तिर्यक योनि में जन्म लेता है, क्रमशः कृमि, कीट, पतंग, श्वापद, और मच्छर होता है ।८८। फिर गौ, अश्व, गज, वृक्ष, लता आदि अनेक पाप योनियों को प्राप्त होता हुआ ।८९। मनुष्य जन्म ग्रहण करता है, उसमें भी कुबड़ा कुत्सित, बौना, चाण्डाल, पुल्कस आदि निंद्रनीय योनियों में उत्पन्न होता है ।९०।

अविशिष्टेनपापेनपुण्येनचसमन्वितः ।
ततश्चारोहणींजातिशुद्रवैश्यनृपादिकाम् ।९१
विप्रदेवेन्द्रताश्चापिकदाचिदवरोहणीम् ।
एवन्तुपापकर्म्मणोनरकेषुपतन्त्यधः ।९२
यथापुण्यकृतोयान्तितन्मेनिगदतःश्रृणु ।
तेयमेनविनिर्दिष्टांयान्तिपुण्यांगतिंनराः ।९३
प्रगीतगन्धर्वगणैःपृनृत्ताप्सरसांगणैः ।
हारनूपुरमाधुर्यशोभितात्युत्तमानिच ।९४
प्रयान्त्याशुविमानानिनानादिव्यस्रगुज्ज्वलाः
तस्माच्चप्रच्युताराज्ञामन्येषांचमहात्मनाम् ।९५
जायन्तेचकुलेतत्रसद्वृत्तपरिपालकाः ।
भोगान्सप्राप्नुवन्त्यग्र्यांस्ततोयान्त्यूर्ध्वमन्यथा ।९६
अवरोहिणीश्चसम्प्राप्यपूर्ववद्यान्तिमानवाः ।
एतत्तेसर्वमाख्यातयथाजन्तुर्विपद्यते ।
अतःश्रृणुष्वविप्रषैतथागर्भप्रपद्यते ।९७

फिर शेष रहे पुण्य से मनुष्य योनि में क्रमशः शूद्र, वैश्य, क्षत्रिय वो ।९१। ब्राह्मण होता हुआ सुरपति तक हो सकता है और पाप (चरणकरे अवरोहिणी गति स क्रम पूर्वक उन्हीं योनियों से गिरता है ।९२। अब उसगति को कहता हुँ, जिसे पुण्यवान् मनुष्य पाते हैं । वह भी यमराज के द्वारा निर्दिष्ट गति को प्राप्त करते हैं ।९३। उनके गमन कालमें उनके

चारों ओर गंधर्व गान करते और अप्सरायें नृत्य करती हैं, तथा हार, नूपुर माधुर्य आदि से युक्त अति श्रेष्ठ ।४। विमान उनके पास आते हैं और वे दिव्य मालादि धारण पूर्वक उनमें चढ़कर जाते हैं, फिर पुण्य शेश होने पर विमान से पतित होकर महात्मा ।५। या राजवंश में उत्पन्न होकर सदाचार का पालन करते और अनेक प्रकार के सुख भोग कर क्रमश:ऊर्ध्व गति को पाते हैं ।९६। यदि अवरोहिणी दशा को प्राप्त होते हैं तो प्रथम पूर्वोक्त सब भोग करते हैं, हे तात ! जीवों की जिस प्रकार मृत्यु होती है,वह कह दिया,अब गर्भ धारण का प्रकार सुनिये।९७।

११—गर्भस्थित वर्णन

निषेकंमानवस्त्रीणांवोजंप्रोक्तं रजस्यथ ।
विमुक्तमात्रोनरकात्स्वर्गाद्वापिप्रपद्यते ।१।
तेनाभिभूतंतत्स्थैर्यंयातिबीजद्वयचततः ।
कललत्वबुद्बुदत्वंतत:प्रशित्वमेवच ।२।
पेश्यास्तथायथाबीजादकुरादिसमुद्भवः ।
अङ्गानांचतथोत्पत्तिःपंचानामनुभागशः ।३
उपाङ्गान्यंगुलोनेत्रनासास्यश्रवणानिच ।
प्ररोहंयान्तिचाङ्गभ्यस्तद्वत्तेभ्योन्खादिकम् ।४
त्वचिरोनाणिजायन्तेकेशाश्चैवततःपरम् ।
समंसमृद्धिमायातितेनैवोद्भवकोशकः ।५
नारिकेलंफलंयद्वत्सकोशंवृद्धिमृच्छति ।
तद्वत्पयात्यसौवृद्धिंसकोशोऽधोमुख:स्थितः ।६

पुत्र ने कहा—स्त्री-पुरुष के रज-वीर्य मिश्रण काल में स्वर्ग या नरक से छूटते ही मनुष्य उसका अवलम्बन करता है ।१। तथा उससे अभिभूत होकर दोनों बीज स्थिर होकर बुलबुले के लम्बे या गोल आकार को प्राप्त होतेहैं ।२। उस अण्डाकार में स्थित सूक्ष्म बीजको अंकुर कहते हैं, उस अंकुर के विभाग से पाँचों अंग उत्पन्न होते हैं ।३। फिर सभी उपाङ्ग उत्पन्न होकर उनसे अंकुर और उससे मुखादि उत्पन्न होते हैं ।४। फिर

त्वचा पर रोमावली और केशों की उत्पत्ति होती है, और फिर सब अंग और उद्भवे कोशों की समान भाव से वृद्धि होती है। ५। अर्थात् जैसे नारियल का फल कोष सहित वृद्धि को प्राप्त होता है, वैसे ही गर्भ कोष सहित नीचे की ओर मस्तक किये बढ़ता है।६।

तलेतुजानुपार्श्वाभ्यांकरौन्यस्यसवर्द्धते !
अंगुष्ठौचोपरिन्यस्तौजान्वोरग्रं तथांगुली। ।७
जानुपृष्ठेतथानेत्रेजानुमध्येचनासिका ।
स्फिचौपार्ष्णिद्वयस्थेचबाहुजंघेबहिःस्थिते ।८
एवं वृद्धिक्रमाद्यातिजन्तुःस्त्रीगर्भसंस्थितः ।
अन्यसत्वोदरेजन्तोर्यथारूपतथास्थितिः ।९
काठिन्यमग्निनायातिभुक्तपीतेनजीवति ।
पुण्यापुण्याश्रयमयींस्थितिर्जन्तोस्तथोदरे ।१०
नाडीचाप्यायनींनामनाभ्यांतस्यनिबध्यते ।
स्त्रीणांतथान्त्रशुषिरेसातिबद्धोपजायते ।११।
क्रामन्तिभुक्तपीतानिस्त्रीणांगर्भोदयथा ।
तैराप्यायितदेहोऽसौजन्तुर्वृद्धिमुपैतिवै ।१२
स्मृतितत्रप्रभान्त्यस्यबह्वयःसंसारभूमयः ।
ततोनिर्वेदमायातिपीड्यमानइतस्ततः ।१३

जब निम्न मुख किये प्राणी गर्भ कोष में रहता है, तब जानु और पार्श्व सहित दोनों हाथ नीचेके भागमें रहतेहैं, दोनों अंगूठे जानु पर तथा सब अंगुलियाँ जानु के अगले भाग में फैली रहती है।७। दोनों चक्षु जानु के पीछे और नासिका जानु केमध्यमें रहतीहैं दोनों कूल्हे पार्ष्णि पर तथा बाहु और जंघा बाहरी भाग में रहती हैं।८। गर्भ में प्राणी इस प्रकार बढ़ताहै, अन्याय जीवोंमें अपनी-अपनी आकृतिके अनुसार वहाँ रहता हुआ बढ़ता है।९। उदर की अग्नि में कठिन होता जाता है और खाये पिये पदार्थ द्वारा जीवन धारण होता है पाप और पण्यकी अधिकता के भेदसे गर्भ वास भी भिन्न-भिन्न प्रकार का है।१०। उसकी नाभि में निबद्ध आप्यायनी नामक नाड़ी स्त्री की आंत से लगी रहती हैं।११। उसी के

छिद्र से सब खाये-पिये हुए पदार्थ उसके देह में जाकर देहको तृप्त करते हुए बढ़ाते हैं।१२। उस समय उसे संसार के अनेक जन्म याद आते हैं और तब वह अत्यन्त दुखित होता है।१३।

पुनर्नैवंकरिष्यामिमुक्तमात्रइहोदरात् ।
तथातथायतिष्यामिगर्भंनाप्स्याम्यहंयथा ।१४
इतिचिन्तयतेस्मृत्वाजन्मदुःखशतानिवै ।
यानिपूर्वानुभूतानिदैवभूतानियानित्रै ।१५
तत कालक्रमाज्जन्तुःपरिवर्तत्यधोमुखः ।
नवमेदशमेवापिमासिसञ्जायतेततः ।१६
निष्क्राम्यमाणोवातेनप्राजापत्येनपीड्यते ।
निष्क्राम्यतेचविलपन्हृदिदुःखनिपीडितः ।१७
निष्क्रान्तश्चोदरान्मूर्छामसह्यांप्रतिपद्यते ।
प्राप्नोतिचेतनांचासौवायुस्पर्शसमन्वितः ।१८
ततस्तंवैष्णवीमायासमास्कन्दतिमोहिनी ।
तयाविमोहितात्मासौज्ञानभ्रंशमवाप्नुते ।१९
भ्रष्टज्ञानोवालभावंततोजन्तुप्रपद्यते ।
ततःकौमारकावस्थांयौवनंवृद्धतामपि ।२०
पुनःश्चमरणंतद्वज्जन्मचाप्नोतिमानवः ।
ततःसंसारचक्रेस्मिन्भ्राम्यतेघटियन्त्रवत् ।२१

दैव प्रदत्त शत-शत जन्म के दुःखों को याद कर वह सोचता है कि उदर से निकलकर फिर कभी एसे कार्य न करूँगा, जिससे फिर कभीगर्भ में रहने का दुःख न भोगना पड़े।१४-१५। फिर उस अधो मुखी जीव का जन्म नौवे या दशवें महीने में होता है।१६। उस समय प्राजापत्य वायु से अत्यन्त पीड़ा को प्राप्त हुआ, दुख से पीड़ित तथा विलाप करता हुआ बाहर निकलता है।१७। उदर से निकलते ही उसे मूर्छा होती और वायु के स्पर्श से चेत होता है।१८। फिर मोहिनी माया उसे मोहितकर देती है, जिससे उसका ज्ञान नष्ट हो जाता है।१९। ज्ञान के नष्ट होने पर बाल्य,कौमार,युवा और वृद्धावस्था आदि दशाओं को उसे क्रमशः प्राप्ति

होती है ।२०। फिर मर कर उसी रूप में जन्म लेता है, इस प्रकार संसार चक्र में वह घटीयन्त्र की भाँति निरन्तर घूमता रहता है ।२१।

कदाचित्स्वर्गमाप्नोतिकदाचिन्नरयंनरः ।
निरयंचैवस्वर्गंचकदाचिच्चमृतोश्नुते ।२२
कदाचित्तत्रैवपुनर्जातस्वकर्मसोश्नुते ।
कदाचिद्भुक्तकर्माचमृतःस्वल्पेनगच्छति ।२३
कदाचिदल्पश्चततोजायतेत्रशुभाशुभैः ।
स्वर्लोकेनरकेवापिभुक्तप्रायोद्विजोत्तम ।२४
नरकेषुमहद्दुःखमेतद्यत्स्वर्गवासिनः ।
दृश्यन्तेतातमोदन्तेपात्यमानाश्चनारकाः ।२५
स्वर्गेपिदुःखमतुलंयदारोहणकालतः ।
प्रभृत्यहंपतिस्यामीत्येतन्मनसिवर्तते ।२६
नरकांश्चैवसंप्रेक्ष्यमहद्दुःखमवाप्यते ।
एतांगतिमहंगतेत्यहर्निशमनिर्वृतः ।२७
गर्भवासेमहाद्दुखजायमानस्ययोनितः ।
जातस्यबालभावेचवृद्धत्वेदुःखमेवच ।२८

कभी स्वर्ग, कभी नरक तथा कभी दोनों स्थानों में जाता रहता है ।२२। कभी पुनः इसी स्थानमें जन्म धारण पूर्वक कर्म फल भोगता और कभी सब कर्मों का भोग कर लेने पर अल्पकाल में ही प्राण छोड़ देता है ।२३। कभी साधारण से शुभ या अशुभ कर्म से स्वरुप काल को स्वर्ग या नरक में पड़ता है ।२४। स्वर्ग में निवास करने वावों को अनेक प्रकार के आमोद प्रमोद करते देखकर पापियों को वड़ा दुःख होता है ।२५। परन्तु स्वर्ग में भी असीमित दुख हैं, वहाँ के निवास काल में भय लगा रहता है कि पण्य के क्षीण होने पर पुनः उसीमें गिरना पड़ेगा ।२६। उन नरकवासियों की गति देखकर सोचते हैं कि हम भी फिर ऐसी गति को पायेंगे ऐसा विचार उन्हें अत्यन्त दुःख होता रहता है ।२७। प्रथम तो गर्भवास ही अत्यन्त दुःखपूर्ण हैं, फिर योनि-छिद्र द्वारा बाहर निकलनातो नितान्त ही कष्टमय है और जन्म होने पर वाल्यावस्था और बृद्धावस्था

यह दोनों ही कष्ट देने वाली हैं।२८।

कामेर्ष्याक्रोधसम्बन्धयौवनंचातिदुःसहम् ।
दुखप्रायावृद्धताचमरणेदुःखमुत्तमम् ।२६
कृष्णमाणश्चयान्यैश्चनरकेषुचपात्यतः ।
पुनश्चगर्भाजन्माथमरणंनरकस्तथा ।३०
एवंसंसारचक्रेस्मिञ्जन्तवोघटियन्त्रवत् ।
भ्राम्यन्तेप्राकृतैर्बद्धावध्यन्तिचासकृत्तदा ।३१
नास्तिततासुखकिंचिदत्रदुःखतकुले ।
तस्मान्मोक्षाययततःकथंसेव्यामयात्रयी ।३२

काम, क्रोध, ईर्ष्या आदि से परिपूर्ण युवावस्था तो अत्यन्त ही दुःख मय है, उस पर भी वृद्धावस्ता को तो दुःख की खान ही समझिये, उससे भी वढ़कर मरण में तो अत्यन्त घोर दुःख हैं।२६। इसके पश्चात जब यमदूत खींचकर नरक में ढकेलते हैं, तब तो दुखों की सीमा ही नहीं रहती फिर भी गर्भ में रहना, जन्म लेना, मरना और पुनःनरक की प्राप्तिहोतो हैं।३०।इस प्रकार प्राणी इस संसार चक्र में घट यंत्र के समान निरन्तर घूमते हुए वन्धन के दुःख को वारम्वार भोगते हैं।३१। असंख्य दुःखों वाले इस संसार लेश मात्र भी सुख नहीं हैं,इसलिए जव मोक्ष प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हूं तो त्रयीविद्या धर्म का क्यों सेवन करूँ ? प्रभेतोअपरा विद्या को प्राप्त करना है।३२।

१२—महारौरवादिनर्क वर्णन

साधुवत्सत्वयाख्यातंसंसारगहनंपरम् ।
ज्ञानप्रदानसंभूतंसमाश्रित्यमहाफलम् ।१
तत्रतेनरकाःसर्वेयथावैरौरवास्थता ।
वर्णितास्तान्समाचक्ष्वविस्तरेणमहामते ।२
रौरवस्तेसमाख्यातःप्रथमंनरकोमया ।
महारौरवसंज्ञतुश्रृणुष्वनरकंपितः ।३
नगम्वागमनेयेचयेचअभ्यक्षणेरताः ।

मित्रद्रोहकराश्चैवस्वामिविश्रंभघातका: ४
परदारताश्चैवस्वदारपरिवर्जिन: ।
मार्गभंगकरायेचतडागारामभेदका: ।५
एतेन्येचदुराचारादह्यन्तेतत्रकिङ्करैः ।
योजनानांसहस्राणिसप्तपंचसमन्ततः ।
तत्रताम्रमयीभूमिरधस्तस्याहुताशनः ।६
तत्तापतप्तासासर्वाप्रोद्यद्विद्युत्समप्रभा ।
विभात्यतिमहारौद्रादर्शनस्पर्शनादिषु ।७

पिता ने कहा—हे वत्स ! ज्ञान देने के रूप में महा फलदायक परम संसार-रहस्य का तुमने भले प्रकार वर्णन किया है ।१। रौरव नरक तथा अन्यान्य नरकों का जो वर्णन किया,अब उसीको विस्तार सहित कहो।२। पुत्र ने कहा–हे पिताजी ! मैंने प्रथम आपको रौरव नरक का वर्णन किया था, अब महा रौरव नरक का वर्णन सुनिये ।३। गमन के अयोग्य मार्ग में जाने वाले,अभक्ष्य भोजन करने वाले, मित्रद्रोही तथा स्वामीसे विश्वास घात करने वाले ।४। पर स्त्री का सेवन करने वाले, अपनी पत्नी को त्यागने वाले,मार्ग,तड़ाग और उप वनों को नष्ट करने वाले ।५।पापियों को वहाँ लेजाकर यमदूत दग्ध करते हैं, उसका प्रमाण चारों ओर बारह योजन हैं,उसकी भूमि ताम्रमयी तथा नीचे अग्नि की खान वाली है ।६ अग्नि के ताप से तप्त हुई वह ताम्र वर्ण वाली भूमि बिजली की चमक के समान सब दिशाओं को प्रकाशित करती है उसे देखना या छूना अत्यन्त भयङ्कर है ।७।

तस्यांबद्धःकराभ्यांचपद्भ्यांचैवयतानुगैः ।
मुच्यतेपापकृन्मध्येलुंठ्यमानःसगच्छति ।८
काकैर्बकैर्वृकोलूकैर्मशकैस्तथा ।
भक्ष्यमाणस्तथागृध्रैर्द्रुतमार्गेविकृष्यते ।९
दह्यमानःपितर्मातर्भ्रातस्तातेतिचाकुलः ।
वदत्यसकृदुद्विग्नोनशान्तिमधिगच्छति ।१०

वर्षायुतायुतैःपापंयःकृतंदुष्टबुद्धिभि ।।११
तथान्यस्तुतमोनामसोऽतिशीतःस्वभावतः ।
महारौरववद्दीर्घस्तथातितमसावृतः ।।१२
गोवधश्चकृतोयेनभ्रातृणांघातएवच ।
अबन्नबालघ तीचनीयतेशीतसंकरे ।।१३
शीतात्तांस्तत्रधःवतिनरास्तमसिदारुणे ।
परस्परंसमासाद्यपरिरभ्याश्रयन्तिच ।।१४

पापियों के हाथ-पाँव बाँध कर यमदूत उन्हें उसमें डालते हैं तब वे उनमें पड़े लेटते हैं ।८। मार्ग में काक, बगुले, भेड़िये, उलूक,विच्छू, मच्छर और गृध्रादि द्वारा खाये जाते हैं ।।९।। फिर दग्ध होते हुए' माता, पिता भ्राता इत्यादि चिल्लाते हुए अत्यन्त उद्विग्न तथा अशान्त रहते हैं ।।११।। सदा पाप करके वाले दुष्टबुद्धि मनुष्य हजार- हजार वर्षमें उसका अतिक्रमण करके मुक्त हो पाते हैं ।।११।। उसके पीछे ही घोर अन्धकार से आवृत तम नामक नरक है, वह महा रौरव के समान ही विशाल तथा अत्यन्त शीतल हैं ।।१२ उसमें गौ– हत्यारे, भ्रातृ- हत्यारे और बालघातियों को डाला जाता है ।।१३।। इस नरक में गिरने वाले जीव उस महान् अन्धकार में शीत से आर्त्त होकर इधर- उधर दौड़ते फिरते हैं तथा दूसरे नारकीयों से मिल का उन से लिपट कर वहाँ रहते हैं।१४

दन्तास्तेषांचभज्यन्तेशीतार्त्तिपरिकम्पिताः ।
क्षुतृष्णाप्रबलातत्रतथैवान्येऽप्युपद्रवा ।।१५
हिमखण्डवहोवायुर्भिदत्यस्थीनिदारुणः ।
मज्जासृग्गलितंस्मादश्नुवन्तिक्षुधान्विता ।।१६
लेलिह्यमानाभ्रम्यन्तेपरस्परसमागमे ।
एवंतत्रापिसुमहान्क्लेशस्तमसिमानवैः ।।१७
प्राप्यतेब्राह्मणश्रेष्ठयावद्दुष्कृतसंक्षयः ।
निकृन्तनइतिख्यातस्ततोऽन्योनरकोत्तमः ।।१८
तस्मिन्कुलालचक्राणिभ्राम्यन्त्यविरतंपितः ।
अनेष्टं दृष्टवद्ब्रूयादश्रुतंश्रुतमेवच ।।१९

एकाक्षरंगुरुंयस्तुदुराचारीनमन्यते ।
नश्रृणोतिगुरोर्वाक्यंशास्त्रवाक्यंतथैवचः ।२०
एतेनाषादुराचारास्तत्रतैर्यमपुरुषै ।
तेऽत्रारोप्यनिकृत्यन्ते कालसूत्रेणमानवाः ।।२१
यमानुगांगुलिस्थेनआपादतलमस्तककम् ।
नचैषाजीवितभ्रंशौजायतेद्विजसत्तम ।।२२

शीत से काँपते रहनेके कारण उनके दांत टूट जाते हैं तथा भूख-प्यास आदि सभी उपद्रव प्रवल हो जाते हैं ।।१५।। हिम खण्डोंको वहाने वाली दारुण वायु उनकी हड्डियों को तोड़ देती है, जिससे मज्जा और रक्त गिरता है । वे प्राणी क्षुधातुर होकर उसी का भोजन करते हैं ।१६ परस्पर मिल कर शरीरों को चाटते हुए घूमते, इस प्रकार उन्हें अत्यन्त क्लेश रहता है ।१७। जब तक भले प्रकार पापों का क्षय नहीं हो जाता तब तक तम नामक नगर में महान क्लेशों को भोगते हैं उनके पीछे निकृन्तन नामक एक प्रधान नरक है ।।१८।। वह कुम्हार के चाक के समान निरन्तर घूमता रहता हैं, उस चक्र में पापियों को काल सूत्र से काटा जाता है और न देखे हुए का देखे हुए के समान तथा न सुने हुए को सुने हुए के समान्ही वर्णन करता है ।।१९।। जो दुराचारी मनुष्य एकाक्षर दाता गुरु को ईश्वर के समान नहीं मानता या गुरु और शास्त्र के वचन को नहीं पालता ।२०। वे पापी मनुष्य उस चक्र पर चढ़ाये जाकर काल सूत्र से पैरों से मस्तक तक काटे जाते हैं तो भी उनका जीवन नष्ट नहीं हो पाता ।।२१-२२।।

छिन्नानितेषांशतशःखण्डान्यैक्यंव्रजन्तिच ।
एवंवर्षसहस्राणिछिद्यन्तेपापकर्मिणः ।।२३
तावद्यावदशेषवंतत्पापंहिक्षयंगतम् ।
अप्रतिष्टंचनरकश्रृणुष्वगदतोमम ।।२४
यत्रस्थैर्न्नारिकैदुःखमसह्यमनुभूयते ।
स्वधर्मरतविप्राणांविघ्नंयस्तुसमाचरेत् ।।२५
सबद्धैर्दारुणैःपाशैर्नीयतेचक्रसंकरैः ।
तान्यत्र चक्राणि ... ।।२६

दुःखस्यहेतुभूतानिपापकर्मकृतांनृणाम् ।
चक्रेष्वारोपिताःकेचिद्भ्राम्यन्तेतत्रमानवाः ॥२७

यावद्वर्षसहस्राणिततेषांस्थितिरन्तरा ।
घटीयन्त्रेषुचैवान्योबद्धस्तोयेयथाघटी ॥२८

फिर यह सौ-सौ टुकड़े होकर पूर्ववत् मिल जाते हैं और हजार वर्ष तक इसी प्रकार काटे और जोड़े जाते हैं ।।२३।। जब तक कि उनके पाप नष्ट नहीं हो जाते, अब अप्रतिष्ठ नामक नरक का वर्णन सुनो ।२४ जहाँ रहकर असह्य क्लेश होते हैं, जो मनुष्य स्वधर्म में तत्पर ब्राह्मणों के समक्ष विघ्न उपस्थित करता है ।२५। उसे दारुण पाश में बाँधकर चक्र लेकर नरक में डालते हैं, वह चक्र और घटीयन्त्र ।२६। पापियों के लिए दुःखों के कारण रूप होते हैं, कुछ प्राणी उस चक्र पर चढ़ाकर घुमाये जाते हैं ।२७। उसको उस नरक में एक हजार वर्ष रहना होता है, कोई पापी छोटे घड़े के समान बांधा जाकर ।२८।

भ्राम्यन्तेमानवारक्तमुद्गिरन्तःपुनःपुनः ।
अन्त्रैर्मुखेविनिष्क्रान्तैर्नेत्रैरग्रावलम्बिभिः ॥२९

दुःखानितेप्राप्नुवन्तियान्यसह्यानिजन्तुभिः ।
असिपत्रवनंनामनरकंश्रृणुचापरम् ॥३०

योजनानांसहस्रंयोज्वलदग्न्यास्तृतावनिः ।
ब्रह्मचारिव्रतानांचतपसांविघ्नमाचरेत् ॥३१

असिपत्रवनंयांतियेसदोद्वेगकारिणः ।
तप्ताःसूर्यकरैश्चण्डैयत्रातिवसुदारुणैः ॥३२

प्रपतन्तिसदातत्रप्राणिनोनरकौकसः ।
तन्मध्येचवनंरम्यंस्निग्धपत्रमिवाग्रतो ।३३

पत्राणितक्षूडङ्गानांधलानिद्विजसत्तम ।
श्वानश्चतत्रसवलाःस्वनन्त्ययुतशोऽभितः ॥३४

महावक्त्रामहादंष्ट्राव्याघ्राइवभयानकाः ।
ततस्तद्वनमालोक्यशिशिरच्छायमग्रतः ॥३५

प्रयान्तिप्राणिनस्तत्रतृट्तापपरिपीडिताः ।

हामातह्यातातइतिक्रन्दन्तोऽतीवदुःखिताः ।।३६

उस घटी यन्त्र पर घुमाया जाता है जिससे वह बारम्बार रक्त-वमन करता है उनकी आँते मुख द्वारा बाहर निकलती हैं, रक्त कीधारा बहती है और आँखें निकल आती है ।२६। वहां ने अत्यन्त पीड़ितहोकर असह्य दुःख पाते हैं, इसके पोछे असिपत्र नामक एक दारुण नरक का वर्णन करता हूँ ।३०। यह नरक पृथिवी को सहस्र योजन पार करके स्थित तथा जलती हुई अग्नि से व्याप्त है जो ब्रह्मचारी व्रत और तप से भ्रष्ट होते हैं ।३१। वे उस असिपत्र वन को प्राप्त होते हैं, वे भयङ्कर एवं प्रचण्ड सूर्य किरणोंसे तप कर इसमें पड़ते हैं ।३२। उसमें एक अत्यन्त मनोहर-वन है, देखने में उसके सब पत्ते अत्यन्त चिकने प्रतीतहोते हैं ।३३। हे द्विजोत्तम ! उसके सभी पत्र खड्ड के फलक जैसे हैं, वहाँ अत्यन्त बली श्वान भौंकते रहते हैं ।३४। वे व्याघ्र के समान विशाल दाढ़ वाले थे, जिनकी दाढ़ें तीव्रथीं तथा वे अत्यन्त भयंकर थे उस वन शीतल छाया से युक्त देखकर । ३५। क्षुधा-पिपासा से कातर जीव उसमें घुसकर दुःखित चित्त से 'हा माता, हा पिता' पुकारते हुए रुदन करते हैं ।३६।

दह्यमानाङ्घ्रियुगलाधरणीस्थेनवह्निना ।
तेषांगतानांतत्रासिपत्रपातोसमीरणः ।।३७
प्रवातात्तत्रनात्यन्तंतेषांगात्रस्तथोपरि ।
ततःपतन्तितेभूमौज्वलद्यावकसंचये ।।३८
लेलिह्यमानेचातीवव्याप्ताशेषमहीतले ।
सारमेयास्ततःशीघ्रशातयन्तिशरीरतः ।।३९
तेषां नंगानिरुदतांत्रचश्चातीवभीषणः ।
असिपत्रवनंतातमयैतत्कीर्तितंतव ।।४०
अतःपरंभीमतरंतप्तकुम्भंनिबोधमे ।
समन्ततस्तप्तकुम्भावह्निज्वालासमावृताः ।।४१
ज्वलदग्निचयोत्तप्तास्तैलयश्चचूर्णपूरिताः ।
तेषुदुष्कृतकर्माणोयाम्यैःक्षिप्तास्त्वधोमुखाः ।।४२

अग्नि-युक्त पृथिवी से उनके पाँव दग्ध होते हैं तथा असिपत्रों की

गिराने वाला वायु चलता है ।३७। जिससे खड्गवत् गिरते हुए असिपत्र उन पर पड़ते हैं, फिर वे जलती हुई अग्नि में गिराये जाते हैं ।।३८।। तब जीभसे चाटते हुए पृथिवी पर गिरते हैं और वहाँ अत्यन्त श्वान उन रुदन करते हुए प्राणियों के सभी अङ्गों को छिन्न-भिन्न कर डालते हैं। हे तात् ! आपसे असिपत्र वन नामक नरक का वर्णन किया गया है ।४०। इसके पीछे जो तप्त कुम्भ नामक भयङ्कर नरक हैं, अब उसका विषय में कहताहूं इस नरक के चारों ओर अग्नि की लपटें उड़ती रहती हैं ।४१। प्रज्जवलित अग्नि से तप्प होता हुआ तैल और लौहेसे युक्तचूर्ण उस नरक में पापी मनुष्य को यम के दूत अधोमुख करके गिर ते हैं.४२

दूषयेद्धर्मशास्त्राणियेचान्येतीर्थदूषकाः ।
भुक्तभोगांतु ।नारींनिष्प्रमाणांप्रियांशुभाम् ।।४३
अदृष्टामपिदोषेणत्यजतेमूढचेतनः ।
तेसमानीयपच्यंते लोहकुम्भेषुशीघ्रतः ।।४४
क्वाध्यन्ते विस्फुटःगात्राज्वलन्मज्जाजलाविलाः ।
स्फुटत्कपालनेत्रास्थिच्छिद्यमानातिभीषणैः ।।४५
गृध्रै रुन्पाट्यमुच्छन्ते पुनस्तेष्वेववेगितै ।
पुनःसिमसिमायन्तेत लेनंक्यंव्रजन्तिच ।।४६
द्रवीमूतैःशिरोगात्रस्नायुमांसत्वगस्थिभिः ।
ततोयाम्यैर्भटै राशुदर्वीघट्टनघटिटताः ।।४७
कृतावर्तेमहातैलेमथ्यन्तोपापकर्मिणः ।
एषतोविस्तारेणोस्ताप्तकुम्भोमपायितः ।।४८

जो धर्म शास्त्रों और तीर्थों को दूषित करने वाले हैं तथा जो मन चाहो शुभ लक्षण स्त्री को ।४३। बिना दोष देखे ही दोष देते हैं वह इस लौह कुम्भ में गिराये जाते हैं ।४४। उनके शरीर उसी समय फट जाते हैं और मज्जा,जल आदि जलकर शुष्कहो जाते हैं इस प्रकार उनको पकाया जाताहैं तथा उनके कपाल नेत्रएवंसम्पूर्णआस्थियाँ भयंकरतापूर्वक छिन्न-भिन्न करदी जातीहैं ।४५। उसके पश्चात् अत्यन्तवेगवालेभयंकर ग्रध्र उन्हें उठाकरपुनः उसी में डालतेहैं तथा वे पकते हुए तैलमें मिलकर उसके

समान ही जाते हैं ।४६। मस्तक स्नायु, माँस,त्वचा, अस्थि आदि सभी द्रवी भूत होकर तैलमें मिल जाते हैं तब उन पापियोंको दर्वी द्वारा कूटा जाकर ।०७। महा तैल के गढ़े में डाल कर मथा जाता है इस प्रकार तप्त कुम्भ आदि नरकों का सविस्तार वर्णन आपके प्रति किया है ।४८।

१३—गतलोक वर्णन

अहृवैश्यकुलेजातोजन्मन्यस्मात्तु सप्तमे ।
समतीतेगवांरोधंनिपोनेक्रतवान्पुरा ।।१
विपाकात्कर्मणस्तस्यनरकंभृशदारुणम् ।
संप्राप्तोऽग्निशिखःपूर्णमयोमुखखगाकुलम् ।।२
यन्त्रपीडनगात्रासृक्प्रवाहोद्भूतकर्दमम् ।
विकृष्यमाणदुष्कर्मितन्निपातरवाकुलम् ।।३
पात्यमानस्यमेतत्रसाग्र वर्षशतंगतम् ।
महातापार्त्तितप्तस्यतृष्णादाहान्वितस्यच ।।४
तत्राह्लादकरःसद्यःपवनःसुखशीतलः ।
करम्भवालुकाकुम्भमध्यस्थेवैसमागतः ।।५
अकस्मादेवभोस्तातनररत्नंसमागतम् ।
तत्सम्पर्कापिशेषाणांनाभवद्यातनानृणाम् ।
ममचापियथास्वर्गेस्वर्गिणांनिर्वृतिःपरा ।।६
किमेतदिति नाह्लादविस्तारस्तिमितेक्षणेः ।
दृष्टमस्माभिरासन्नंनररत्नमनुत्तम् ।।७

पुत्र बोला—हे तात ! इस जन्म में सात जन्म पूर्व में वैश्य योनि में उत्पन्न हुआ था, तब मैंने गौओं को जल पीने से रोका था ।१। उसी के फल से दारुण नरक को प्राप्त हुआ, वह नरक अग्नि की शिखाओं और लोहेके मुख वाले पक्षियोंसे परिपूर्णथा।२।यन्त्रमे फँके हुए जीवोंके देह से निकल हुए रक्त में बहने से वहां कीचड़ रहता है, तथा यन्त्र में पड़े हुए उन पापियों के आर्त्तनाद से वह नरक गूँजता रहता था ।३। उस मे महाताप की पीडा से उत्पन्न पिपासा पूर्वक मैंने सौ से कुछ अधिक

वर्ष व्यतीत कियेथे।४।तभी एक दिन करम्भ वालु का वाले घड़े के बीच से प्रसन्नता प्रद ठंडी वायु चलने लगी ।५। उसके स्पर्श से मेरी तथ अन्य वासियों की यन्त्रणा मिट गई, उस समय हम सब स्वर्ग में रहने वालों के समान परमानन्द का अनुभव करने लगे ।६। हम प्रसन्नता से उत्पन्न हुए विनिमय के सहित इधर-उधर देखने लगे तभी हमें पास में ही एक श्रेष्ठ मनुष्य हमको दिखाई दिया ।७।

याम्यश्चपुरुषोघोरोदण्डहस्तोल्लसत्प्रभः
पुरतोदर्शयन्मार्गमितएहीतिचब्रुवन् ।।८
ततस्तेजन्तवःसर्वेत्स्वातद्दर्शनात्सुखम् ।
ऊचुःप्रांजलयोभूपंक्षणमात्रंस्थितोभव ।।९
त्वद्गात्रसंगोपवनोह्यस्माकंसुखकारकः ।
ततोऽसौनरकाभ्योशेउपविष्टःकृपान्वितः ।।१०
पुरुषःसतदादृष्ट्वायातनाशतसंकुलम् ।
नरकंप्राहतंयाम्यंकिङ्करंकृपयान्वितः ।।११
भोयाम्यपुरुषाचक्ष्वकिंमयादुष्कृतंकृतम् ।
येनेदंयातनाभीमंप्राप्तोऽस्मिनरकंपरम् ।।१२
विपश्चिदितिविख्यातोजनकानामहंकुले ।
जातोविदेहविषयेसम्यङ्मनुजपालकः ।।१३
चतुर्वर्ण्यस्वधर्मस्थंकृत्वासक्षितंमया ।
धर्मतोधर्मकल्पेतमनुनात्रयथापुरा ।।१४

उस समय वज्र के सतान दण्ड हाथ में लिए हुए एक भयंकर यमदूत उसे मार्ग दिखा रहा था ।८। उस समय सभी प्राणी उसके दर्शनसे सुखी होकर हाथ जोड़े हुए बोले कि आप क्षण भर को यहां रुकें ।९। आपके शरीर के साथ चलने वाला वायु हमें सुख देरहाहै,तब वह मनुष्य अनुग्रह पूर्वक हमारे पास ठहर गये ।१०। फिर उसने सैकड़ों कष्टों वाले नरकको देखा और अनुग्रह भरे हृदय से यमदूतों से कहने लगा ।११। उसने कहा-हे यमदूतो! मैंने ऐसा कौन पाप किया है, जिसके कारण मुझे इस अत्यन्त भयानक नरक में लाया गया हूँ, यह मुझे शीघ्र बताओ ।१२। मैं पितृ कुल

में पण्डित कहा जाता था, इसलिए विदेह राज्य में प्रजा पालक था ।१३। चारों वर्णों की मैंने धर्म पूवक रक्षा की थी और सभी कार्य मनु के समान ही धर्म से किया था ।१४।

यज्ञैर्मयेष्टं वहुभिर्धमत:पालितामही ।
नोत्सृष्टश्चैवसंग्रामोनातिथिर्विमुखोगतः ।।१५
पितृदेवर्षिभृत्याश्चनचापचरितामया ।
महातापार्तितप्तस्यतृष्णादाहार्दितस्यच ।।१६
कृतास्पृहाचनमयापरस्त्रीविभवादिषु ।।१७
पर्वकालेषुपितरस्तिथिकालेषुदेवताः ।
पुरुषंस्वयमायान्तिनिपानमिवधेनवः ।।१८
यतस्तेविमुखायान्तिनिःस्वस्यगृहमेधिनः ।
तस्मादिष्टश्चपूर्तश्चधर्मौ द्वावपिनश्यतः ।।१९
पितृनिश्वासविध्वस्तंसप्तजन्मार्जितंधनम् ।
त्रिजन्मप्रभवंदैवोनिश्वासोहन्त्यसंशयम् ।।२०
तस्माद्दैवेचपित्र्येचनित्यमेवहितोऽभवम् ।
सोऽहंकथमिमंप्राप्तोनरकभृशदारुणम् ।।२१

मैंने अनेक यज्ञों के अनुष्ठान पूर्वक धर्म पूर्वक पृथिवी का पालन किया था, मैंने युद्ध का त्याग कभी नहीं किया और कभी किसी अतिथि को विमुख नहीं किया ।१५। मैंने पितृ, देव, ऋषि अथवा सेवकों को भी कभी दुःखी नहीं किया तथा महाताप से तप्त और प्यास से आतुर ।१६। प्राणियों की रक्षा में तत्पर सदा रहा हूँ, परधन या परनारी की कामना मैंने कभी नहीं की ।१७। जैसे गौएं गोष्ठ में आती हैं, वैसे ही पूर्वकाल में पितरगण और तिथि काल में देवगण मेरे यहाँ आते थे ।१८। जिस गृहस्थ के यहाँ से पितर या देवता विमुख होते हैं, जिसके यज्ञ और पूर्त का विनाश हो जाता है ।१९। पितरों के विमुख होने से सात जन्म का संचित पुण्य तथा देवताओं के विमुख होने से तीन जन्म का एकत्र हुआ पुण्य नष्ट हो जाता है ।२०। इस कारण मैं पितरों और देवताओं के कार्य में सदा रहता था फिर इस दारुण नरक को क्यों प्राप्त हुआ हूँ ? ।२१।

१४—कर्मफल प्राप्ति

इतिपृष्टस्तदातेनश्रृण्वतांनोमहात्मना ।
उवाचपुरुषोयाम्योघोरोऽपिप्रश्रितंवचः ॥१
महाराजयथात्थत्वतथैतन्नात्रसंशयः ।
किन्तुस्वल्पंकृपापंभवतास्मारयामितत् ॥२
वैदर्भीतवयापत्नीपीवरीनामनामतः ।
ऋतुमत्याऋतुर्वन्ध्यस्त्वयातस्याःकृता.पुरा ॥३
सुशोभनायांकैकेय्यामासक्तेनततोभवान् ।
सुशोभनायांकैकेय्यामासक्तेनततोभवान् ।
ऋतुव्यतिक्रमात्प्राप्तोनरकंघोरमीदृशम् ॥४
होमकालेयथावह्निराज्यपातमवेक्षते ।
ऋतौप्रजापतिस्तद्वद्बीजपा मवेक्षते ॥५
यस्तमुल्लंघ्यधर्मात्माकामेष्वासक्तिमान्भवेत् ।
सतुपितृप्राहृणात्पापमवाप्यनरकंपतेत् ।६
एतावदेवतेपापंनान्यत्किञ्चनविद्यते ।
तदेह्यागच्छपुण्यानामुपभोगायपार्थिव ।
एतच्छ्रुत्वातुराजर्षिःक्पप्राजनकोऽब्रवीत् ॥७

पुत्र बोला—हे तात ! इस प्रकार उस पुरुष के प्रश्न करने पर यमदूत ने भयङ्कर होते हुए भी जिस नम्रता से उत्तर दिया, उसे मैंने सुना ।१। यमदूत ने कहा—हे महाराज ! आप सत्य कहते हैं, परन्तु आपसे एक सामान्य पाप बन गया था, उसे आपको स्मरण कराता हूँ ।२। आपकी एक पत्नी विदर्भ देश की थी, उसका नाम पीवरी था, आपने उसके ऋतुमती होने पर ऋतु को विफल किया था ।३। आप उस समय केकय देश की रानी सुशोभना के प्रति अत्यन्त आसक्त थे, इसलिए ऋतुकाल का व्यक्तिक्रमण करने से आपको इस दारुण नरक को प्राप्ति हुई हैं ।४। जैसे होम काल में अग्नि आहुति की कामना करता है, वैसे ही प्रजापति ऋतु काल में बीज की कामना करते हैं ।५। इसका उल्लंघन करने वाले धर्मात्मा पुरुष भी पितर-ऋण के पाप से लिप्त होकर नरक में पड़ते हैं ।६। आपने यही एक मात्र पाप किया

हैं, और कोई पाप आपसे नहीं हुआ अब आप सभी पुण्यों का फल-भोगने के लिए चलिए, यह सुन कर उन राजर्षि ने कृपा पूर्वक कहा ।७

यास्यामिदेवानुचरयत्रवंमांनयिष्यसि ।
किंचित्पृच्छामित्तन्मेत्वंयथावद्वक्तुमर्हसि ।।८
वज्रतुण्डास्त्वमोकाकाःपुंसांनयनहारिणः ।
पुनःपुनःश्चनेत्राणितद्वदेषांभवन्तिहि ।।९
किंकर्मंकृतवन्तश्चकयैतज्जुगुप्सितम् ।
हरन्त्येषांतथाजिह्वांजायमानांपुनर्नवाम् ।।१०
करपत्रेणपाटयन्तेकस्मादेतेऽतिदुःखिताः ।
करम्भयालुकास्ताश्चतथैतेक्वाथतैलगाः ।।११
अयोमुखैःखगैश्चौवकृष्यन्तेकिंविधावद ।
विश्लिष्टदेहबन्धार्तिमहारावविराविणः ।।१२
अयश्चचूनिपातेनसर्वाङ्गक्षतविक्षतः ।
किमेतेनिःस्वनन्तोपितुद्यन्तेऽर्हानिशंनराः ।।१३
एताश्चान्याश्वदृश्यन्तेयातनाःपापकर्मिणाम् ।
येनकर्मविपाकेनतन्ममोद्देशतोवद ।।१४

राजा बोले—हे यमदूत ! आप मुझे जहाँ ले जाओगे, वहीं मैं जाऊँगा परन्तु मेरे प्रश्न का यथार्थ उत्तर दो ।८। यह वज्र के समान काका इन पुरुषों के नेत्रों का हरण करते हैं और उनके वे नेत्र पुनः उत्पन्न हो जाते है, ऐसा बारम्बार हो रहा है ।९। इन्होंने ऐसा कौन- सा निन्दित कर्म किया है, जिससे इनके नेत्र निकाले जाने पर भी पुन, उत्पत्र होते हैं ।१०। यह करपत्र की मार से क्यों इतना दुःख भोग रहे हैं तथा तप्त वालू और तैल में भूने जा रहे हैं ।११। लौहमुख पक्षियों द्वारा नोचे जाने पर इनके देह के बन्धन टूट रहे हैं जिसके पीड़ा के कारण वह आर्त्तनाद कर रहे हैं ।१२। तथा पक्षियों की लौहमय तोंद के आघात से इनके सभी अंग छिन्न भिन्न हो रहे हैं, इन्होंने ऐसा क्या पाप किया है ज़िससे यह निरन्तर ऐसी यन्त्रणा प्राप्त कर रहे हैं ।१३। पापियों की अन्य प्रकार की पीड़ाएँ मिलते हुए भी देख

रहा हूँ, किस कर्म के कारण इन्हें इन दुःखों की प्राप्ति हो रही है, यह मुझे प्रारम्भ से अन्त तक बताओ ।१४।

यन्मांपृच्छसिभूपालमापकर्मफलोदयम् ।
तत्तेऽहंसंप्रवक्ष्यामिसंक्षेपेणयथातथम् ।।१५
पुण्यापुण्येहिपुरुषःपर्यायेणसमुश्नुते ।
भुञ्जतश्चक्षयंयातिपापंपुण्यमथापिवा ।।१६
नतुभोगादृतेपुण्यपापंवाकर्ममानवः ।
परित्यजतिभोगाच्चपुण्यापुण्येनिवोधमे ।।१७
दुर्भिक्षादेवदुर्भिक्षक्लेशात्क्लेशंभयाद्भयम् ।
मृतेभ्यःप्रमृतायान्तिदरिद्राःपापकर्मिणः ।।१८
गतिंनानाविधांयान्तिजन्तवःकर्मवन्धनात् ।
उत्सवादुत्सवंयान्तिस्वर्गात्स्वर्गंमुखात्सुखम् ।।१९
श्रद्दधाना चदान्ताश्चधनदाःशुभकारिणः ।
व्याघ्रकुंजरदुर्गाणिसर्पचौरभयानितु ।।२०
हताःपापेनगच्छन्तिपापकर्मिमतःपरम् ।
सुगन्धिमाल्यसद्वस्त्रसाधुयानासनाशनाः ।।२१
स्तूयमानाःसदायान्तिपुण्यैःपुण्याटवीष्वपि ।
अनेकशतसाहस्रजन्मसञ्चयसंचितम् ।।२२

यमदूतों ने कहा—हे राजन् ! पाप के फलोदय के विषय में जो प्रश्न आपने किया है, उसका वर्णन संक्षिप्त रूप से करता हूँ ।१५। क्रमानुसार ही मनुष्यों को पाप-पुण्य भोगने होते हैं, उसी से उनके पाप या पुण्य का क्षय होता है ।१६। बिना भोगे पुण्य या पाप से कभी मनुष्य की शुद्धि नहीं होती है भोगने से ही वह मिटता है, उसी से मनुष्य को मुक्ति प्राप्त होती है। जो पापी हैं वे दरिद्री होते हैं, वे दुर्भिक्ष, क्लेश, भय और मृत्यु को पाते हैं ।१७-१८। कर्म के वन्धन से विभिन्न प्रकार की गतियाँ प्राप्त होती हैं पुण्यात्मामों को उत्सव, स्वर्ग तथा सुख पर सुख मिलते रहते हैं ।१९। वही श्रद्धावान्, शान्तचेता, [illegible] करने वाले होते हैं, तथा पापी मनुष्य व्याल,हाथी, सर्प, चोर आदि से भय युक्त स्थान में ।२०। पाप से भरे

कर जाते हैं, उनकी अन्य गति क्या हो सकती है? तथा श्रेष्ठ वस्त्र, सुगन्धित मालाएँ, विमान और भोजन ।२१। आदि की प्राप्ति महात्मा पुरुषों को अपने पुण्य के बल से होती है, वे प्रशंसित होते हुए पवित्र स्थानों को प्राप्त होते हैं ।२२।

पुण्यापण्यनृणांतद्वत्सुखदुःखांकुरोद्भवम् ।
यथावोजंहिभूपालपग्गांसिसमवेक्षते ।।२३
पुण्यपुण्येतथाकालदेशान्यकर्मकारकम् ।
स्वलंपापंकृतंपुंसांदेशकालोपपादितम् । २४
पादन्यासकृतंदुःखं कण्टकोत्थंप्रयच्छति ।
तत्प्रभूततरस्थूलशकुकीलकसम्भवम् ।। ५
दुःखयच्छतितद्वच्चशिरोरोगादिदुःसहम् ।
अपथ्याशनशीतोष्णश्रमतापादिकारकम् ।.२६
तथान्योन्यपवेक्षन्तेपापानिफलसङ्गमे ।
एवंमहान्तिपापानिदीर्घरोगादिकाःक्रियाः ।।२७
तद्वच्छास्त्राग्निकृच्छार्तिवन्धनादिफलप्रवै ।
स्वल्पंपुण्यंशुभगन्धंहैलयासम्प्रयच्छति ।।२८
स्पर्शंवाप्यथवाशब्दरसंरूपमथापिवा ।
चिराद्गुरुतरतद्वन्महान्तमपिकालजम् ।।२

अनेक शत सहस्र जन्मों के पुण्य, पाप को प्राणी संचित करते रहते हैं, वही उनके सुख-दुख रूप में उत्पन्न होते हैं, जैसे सभी बीज जल की कामना करते हैं ।२३। उसी प्रकार पुण्य, पाप भी काल, देश और पाव की कामना करते हैं, यदि देश, काल के अनुसार किंचित् भी पाप किया हो तो ।२४। पैर रखने पर कांटा लगने जैसे दुःख का ही अनुभव होता है, परन्तु अधिक पापों का आचरण करने पर शूल या कील आदि से उत्पन्न होने वाले ।२५। शिरो-रोग आदि दारुण दुःखों का भोग करना होता है, जैसे अपथ्य अन्न, शीत ताप, श्रम आदि को उत्पन्न करते हैं। २६। वैसे ही सब पाप फल के उत्पन्न होने के समय में परस्पर की अपेक्षा करते हैं, महापाप कर्म से दीर्घ रोगादि विकारों की प्राप्ति होती है ।२७। शस्त्र पीड़ा, अग्नि का दाह अथवा

बधनादि के कष्ट भोगने होते हैं, क्रीड़ाके बहाने किंचित् पुण्य करनेसे भी श्रेष्ठ गंध ।२८। सुखमय स्पर्श,मधुर वाणी, मीठे रस और सुन्दर रूपका भोग अल्पकाल के लियेही होता है तथा बहुत पुण्य करनेपर कालक्रम से अधिक फल उपलब्ध होता है ।२९।

एवंचसुखदु:खानिपुण्यापुण्योद्भवानिवै ।
भूतानोऽनेकसंभारसम्भवानोहतिष्ठति ।।३०
जातिदेशावरुद्धानिज्ञानाज्ञानफलानिच ।
तिष्ठन्तितत्रपृक्तनिलिङ्गमात्रेणचाप्ममि ।।३१
कर्मणामनसावाचानकदाचित्क्वचिन्नरः ।
अकुर्वन्पापककर्मपुण्यंवावप्यतिष्ठते ।।३२
यद्यत्प्राप्नोतिपुरुषःसुखदुखःमथापिवा ।
प्रभूतमथवास्यल्पंविक्रियाकारचेतसः ।।३३
तावतातस्यपुण्यंवापापवात्यथचेतरेत् ।।३४
उपाभोगात्क्षयंयातिभुज्यमानमिवाशनम् ।
एवमेतेमहापापयातनाभिरहर्शिनम् ।।३५

इस प्रकार प्राणी पाप-पुण्य से उत्पन्न दुःख या सुखका भोग करता हुआ संसार में वास करता है ।३८। जाति, देश, काल आदि से अवरुद्ध ज्ञान-अज्ञान का सम्पूर्ण फल आत्मामें चिह्निता हो जाता है ।३१। मन, वाणी,कर्मसे कभी कोई पाप-पुण्य किये विना उसका फल उत्पन्न नहींहो सकता ।३२। यह जो कुछ सुख-दुःख की प्राप्ति है, वह अल्प या अधिक चित्त का ही विकार है ।३३। उसे उतने ही पाप पुण्य के फलकी प्राप्ति होती है ।३४। जैसे भोजन किए हुए अन्न का क्षय उसके उपभोग से ही होगा, वैसे ही भोगे विना पाप का क्षय नहीं हो सकता ।३५।

क्षपयन्तिनराघोर नरकान्तविवर्तिनः ।
तथैवराजन्पुण्यानिस्वर्गलोकेमरैः सह ।।३६
गन्धर्वसिद्धाप्सरसांगीमाद्यै रुपभुंजते ।
देवत्वेमानुषत्वेचतिर्यक्त्वेचशुभाशुभम् ।।३७
पुण्यपापोद्भवंभुक्त्वे सुखदुःखोपलक्षणम् ।

यत्वंपृच्छसिमाराजन्यातनाःपापकर्मिणाम् ।।३८

केनकेनतिपापेनतत्तेवक्ष्याम्यशेषतः ।

दुष्टेनचक्षुषादृष्टाःपरदारानराधमैः । ३९

मानसेनचदुष्टेनपरद्रव्यंदसस्पृहैः ।

वज्रतुण्डाःखगास्तेषांहरंत्येतेविलोचने ।।४०

पुनःपुनःशच्चसंभूतिरक्षणेरेषांभवत्यथ ।

यावतोऽक्षिनिमेषांस्तुपापमेभिर्नृभिःकृतम् ।।४१

तावद्वर्षसहस्राणिनेत्रार्तिप्राप्नुवंत्युत ।

असच्चास्त्रोपदुशास्त्रृर्यैर्दत्तापैश्चमन्त्रिताः ।।४२

सम्यन्दृष्टेर्विनाशायरिपूणामपिमानवैः ।

यैःशास्त्रमन्यथाप्रोक्तंयैरसद्वागुदाहृता ।।४३

इसलिये नरक में रहकर जीव यातनाएँ प्राप्त करके ही महापाप क्षय करते रहते हैं तथा इसी प्रकार पुण्यात्मा स्वर्गवासी भी देवके साथ रहकर पुण्य को भोगते हैं ।३६। उन्हें सिद्ध, गन्धर्व, अप्सराओं के गान आदि से पुण्य फल मिलता है,तथा देवत ,मनुष्य या खग-योनि पाकरभी शुभाशुभ ।३७। पुण्य और पाप से उत्पन्न सुख-दुःख युक्त भोगते हैं, हे राजन् ! आपने प्रश्न किया कि पापीगण किस-किस पापकर्मसे ऐसी यंत्रणा भोगते हैं ।३८। अब मैं इसे पूर्ण रूप से कहता हूँ जिन नराधम मनुष्यों ने परनारी को दूषित नेत्रों से देखा है ।३९। अथवा पराये धन को हड़पने की इच्छा वाले नेत्रों से देखा है, उनके दोनों नेत्रों को यह वज्रतुण्डी पक्षी हरण करते हैं ।४०। तथा वही नेत्र बारम्बार उत्पन्न हो जाते हैं,इन मनुष्यों ने जितने पलक लगने तक यह पाप किये हैं।४१। उतनेही सहस्र वर्ष यह इस नेत्र पीडाको प्राप्त करते रहेंगे, जिन्होंने शत्रु की भी ज्ञानदृष्टिका हरण करनेके लिए अन्यायपूर्वक विपरीत शास्त्रोपदेश अथवा भ्रमात्मक परामर्श दिया है या मिथ्या भाषण किया है।४२-४४।

वेददेवद्विजातीनांगुरोर्निन्दाचयैःकृता ।

हरंतिनेषांजिह्वाश्चजायमानाःपुनःपुनः ।।४४

तावतोवत्सरानेतेवज्रतुंडा सुदारुणाः ।

मित्रभेदस्यापित्रापुत्रस्यस्वजनस्यश्च ॥४५

यज्वीपाध्याययीर्मात्रासुतस्यसहचारिणः ।
भार्यापत्योश्चयेकेचिद्भेदंचक्रुर्नराधमाः ॥४६

तइमेपश्यपाटच्यंतेकरपत्रेणपार्थिव ।
परोपतापकार्येचाह्लादनिषेधिकाः ॥४७

तालवृतानिलादिचन्दनोशीरहारिणः ।
प्राणान्तिकंददुस्तापमदुष्टानामचयेऽधमाः ॥४८

करम्भवालुकासंस्थास्तइमेपापभागिनः ।
भुङ्क्तेश्राद्धंतुयोऽन्यस्यनरोन्वेहनिमंत्रितः ॥४९

जिन्होंने वेद, देवता ब्राह्मज और गुरुजनों की निन्दा की है- यह वज्रतुण्डी पक्षी उनकी जीभ को काटते हैं, जितनी बार यह पाप किया है, उतने ही वर्ष उन्हें ऐसी यन्त्रणा मिलती है तथा जिन्होंने मित्रों में या पिता-पुत्र ने भेद डलवाया है।४४-४५। अथवा याज्ञिक यजमान में, माता पुत्र में या पति-पत्नी में मनमुटाव करा दिया है ।४६। वे इस कर पत्र से आहत होते हैं अथवा जो किसी को क्रोधदिलाते या किसीकी प्रसन्नता नष्ट करते हैं ।४७। जो ताड़ का पंखा या खस या चन्दन ग्रहण करते अथवा साधुओं को प्राणान्तक पीड़ा देते हैं। । ४८ । वे पापी तप्त रेत में गिर कर पाप का फल पाते हैं अथवा जो एक श्राद्ध में निमंत्रित होकर दूसरे के यहाँ भोजन करते हैं उनको यह पक्षीगण व्यथित करते हैं ।४९।

दैवेवाप्यथवापैत्र्येसद्विधाकृष्यतेखगैः ।
मर्माणियस्तुसाधूनामसद्वाग्भिर्निकृन्तति ॥५०

तामिमेतुदमानास्तुखगास्तिष्ठन्त्यवारिताः ।
यःकरातिचपशुन्यमन्यवागन्यथामतिः ।॥५१

पाटय्तेहिद्विधाजिह्वातस्ययेत्थंनिशितैःक्षुरैः ।
मातापित्रोर्गुरूणांचयेऽवज्ञांचक्रुरुद्धताः ॥५२

ताइमेपूयविण्मूत्रगर्त्तेमज्जन्त्यधोमुखाः ।
देवतातिथिभूतेषुभृत्येष्वभ्यागतेषुच ॥५३

अभुक्तवत्सुयेऽश्नन्तितद्वत्पित्रग्निपक्षिषु ।

दुग्धास्तेषुपर्वतसभुजाःसूचीमुखास्तुते ।।५४
जायन्तेगिरिवष्मांणःपश्यैतेयाहशानराः ।
एकपक्त्यातुर्येविप्रमथवेतरवर्णजम् ।।५५
विषमंभोजयन्तीहविड्भुजस्तइमेयथा ।
एकसार्थंप्रयातंयेनिःस्वमर्थार्थिनंनरम् ।।५६

तथा जो झूँठी बात बना कर किसी की चुगली करते हैं ।५०। अर्थात् देवता या पितर-कार्य में एक का निमंत्रण स्वीकार करके दूसरे का भोजन करते हैं ।५१। उनकी जिह्वा इस तीक्ष्ण छुरी के द्वारा दो टूक कर दी जाती है,जो मत्त होकर माता, पिता तथा गुरुजनों का तिरस्कार करते हैं ।५२। वे इस पीक मल और मूत्र से परिपूर्ण कुन्ड में अधोमुख गिराये जाते हैं, देवता,अतिथि, सेवक, अभ्यागत ।५३। पितरगण, अग्नि और पक्षियों को भोजन दिये बिना स्वयं खा लेते हैं वे सूचीमुख होकर पीव और गोंद खाते हैं ।५४। उनका शरीर पर्वताकार होता है, जो ब्राह्मण और अन्य जाति वालों को एक पंक्ति में बैठाकर ।५५। असमान भोजन कराते हैं, वह इसकी विष्ठा खाते हैं व्यापार के लिए एक साथ जाते हुए भी अपने धनहीन साथी को छोड़कर स्वयं भोजन कर लेते हैं, उन्हें यहाँ कफ का भोजन प्राप्त होता है, ।५६।

अपास्यस्वान्नमश्नन्तितइमेश्लेष्मभोजिनः ।
गोब्राह्मणाग्नयःस्पृष्टायेरुच्छिष्टैर्नरेश्वर ।।५७
तेषामेतेऽग्निकुण्डेषुप्रज्वलत्स्वाहिताकराः ।
सूर्येन्दुतारकाहृष्टायैरुच्छिष्टैस्तुकामतः ।।५८
तेषांयाम्यैर्नरैर्नत्रेन्यस्तोवह्निः समिध्यते ।
गावोऽग्निर्जननीविप्रोज्येष्ठभ्रातापितास्वसा ।।५९
जामयोगुरवोवृद्धायैःस्पृष्टास्तुपदान्‌भिः ।
बद्धांघ्रयस्तेनिगडैर्लोहैरग्निप्रतापितः ।।६०
अंगारराशिसध्यस्थास्तिष्ठन्त्याजानुदाहिनः ।
पायसंकृसरंछागंदेवान्नानिचयानिवैः ।।६१
भुक्तनियैरसंस्कृत्यतेषांनेत्राणिपापिनाम् ।

निपातितानांभूपृष्टेउद्वृत्ताक्षिनिरीक्षता ।।६२

जिन्होंने उच्छिष्ट रहकर गौ, ब्राह्मण या अग्नि का स्पर्श किया है ।५७। उनके हाथ अग्निकुन्डमें गिरकर दग्ध होते हैं तथा उच्छिष्ट अवस्था में जिन्होंने सूर्य, चन्द्र या तारागण के दर्शन किये हैं ।५८।उनके नेत्रोंपर यह यमदूत अग्नि रखते हैं,जिन्होंने गौ,ब्राह्मण,माता-पिता,ज्येष्ठ,भ्राता, भगिनी, अग्नि ।५६। वंश की वहन गुरु अथवा वृद्ध ब्राह्मणका स्पर्श पैर से कियाहै,उनके पैर अग्निसे तपाई हुई लौह-बेड़ियोंमें जकड़े गये हैं।६०। तथा वे हीं जाँघ तक अंगारों के ढेरमें खड़े कियेहैं जिन पापियोंने खीर, खिचड़ी या छाछ अथवा अन्य किसी देवान्नको ।६१।संस्कार किये बिना खा लिया है,उन पापात्माओं के नेत्र उखाड़कर भूमिमें डाले हुये दिखाई दे रहे हैं तथा दर्शन करने वाले यमदूतों के मुख में गिर रहे हैं । ६२।

सन्दंशैःपश्यकृष्टोनरैर्याम्यैर्मुखात्ततः ।
गुरुदेवद्विजानांवेदानांचनर धमः ।।६३
निन्दानिशामितायैश्चापापानामभिनन्दताम् ।
तेषामयोमयान्कीलानग्निवर्णान्पुनःपुनः ।।६४
कर्णेषुपूरयन्त्येतेयाम्या।विलपतामपि ।
यै प्रपादेवविप्रौकोदेवालयसभाः शुभाः ।।६५
भङ्क्त्वाविध्वंससानीताःक्रोधलोमानुवर्त्तिभिः ।
तेषामेतैःशितैःशस्त्रैर्मुहुर्विलपतांत्वचः ।।६६
पृथक्कुर्वन्तिवैयाम्याःशरीरादतिदारुणाः ।
गोब्राह्मणकंमार्गास्तुयेऽत्रमेहन्तिमानवाः ।।६७
तेषांमेतांनिकृष्यन्तगुदेनांत्राणिवायसैः ।
दत्त्वाकन्यांतएकस्मैद्वितीयायप्रयच्छति ।।६८
सत्वेवंनैकध छिन्नक्षारनद्यांप्रवाह्यते ।
स्वपोषणपरोयस्तुपरित्यजतिमानवः ।।६९
पुत्रभृत्यकलत्रादिबन्धु [illegible] ।।
दुर्भिक्षेसंभ्रमेव पिसोऽप्येवंयमकिंकरैः ।।७०
उत्कृ[illegible]दत्ता।निमुखेस्वमांस[illegible] ।

शरणागतान्यस्त्यजतिलोभादुत्दोचजीविकः ॥७१

जो गुरु,देवता,ब्राह्मण और वेदकी निन्दा सुनकर उसका अनुमोदकरते हैं,अग्निवर्षक लोहेकी कीलें यमदूत बारबार।६३-६४। उन विलाप करते हुए पापियों के कानों में घुसाते हैं, जिन्होंने देवालय, ब्राह्मण का गृह अथवा सभाभवन को ।६५। लोभ अथवा क्रोध के वश होकर विध्वंश किया हैं, उनका चर्म तीक्ष्ण शस्त्रों के द्वारा ।६६।शरीरसे यमदूत अलग करते हैं तथा जो गौ,ब्राह्मण और सूर्यके मार्गमें मलामूत्रका त्याग करते हैं ।६७। उन पापियों की सब आँतें गुह्य द्वार से कौए खींच लेते हैं, जो एक बार किसी को कन्या दान करके, वही कन्या किसी अन्यको देते हैं ।६८। उनको इस प्रकार टुकड़े-टुकड़े करके खारी नदी में प्रवाहित किया जाता है, जो अन्य मनुष्यों का पोषण न करके, अपना ही करते हैं।६९। दुर्भिक्षया अन्य संकट कालमें पुत्र,सेवक,कलत्र तथा बन्धु-बाँधवका त्याग करते ह, यमदूत ।७०। उसके माँस को काट-काट कर उन्हीं के मुख में डालते हैं और वे ही क्षुधार्त्त हुए उसी को खाते हैं ।७१।

सोऽप्येवंयत्रपीडाभिःपोठड्यतेयमकिंकरैः ।
सुकृतंयेप्रयच्छन्तियावज्जन्मकृतंनराः ॥७२
तेपिष्यन्तेशिलापेषैर्यंतेपापकर्मिणः ।
क्षुत्क्षामास्तृट्पतज्जिह्वातालवावेदनातुराः ॥७४
दिवामैथुनिनःपापाःपरदारभुजश्चये ।
तथैवकण्टकैस्तीक्ष्णैरायसैःपश्यशाल्मलिम् ॥७५
आरोपिताविभिन्नांगाःप्रभूतासृक्स्रवाबिलाः ।
मूषायामपिपश्यैतान्ध्मायामानान्यमानुगैः ॥७६
पुरुषैःपुरुषव्याघ्रपरदारावमर्शिनः ।
उपाध्यायमधःकृत्वास्तव्धोयोऽध्यायनंनरः ॥७७
गृह्णातिशिल्पमथवासोऽप्येवंशिरमाशिलाम् ।
विभ्रत्क्लेशमवाप्मोतिजनमार्गेऽतिपीडितः ॥७८

जो लोभवश वेतन भोगी अथवा शरणागतका त्याग करतेहैं उनको इस प्रकार की यंत्र पीडा दीजाती है, जो मनुष्य अपने सब जन्मोंके पुण्य

को मूल्य लेकर बेच देते है ।७२। वे इन पापियों के समान ही पाषाण के कोल्हू में पेले जाते हैं, जो किसी की धरोहर हड़पते हैं उनका सम्पूर्ण देह बंधन में पड़ता है ।७३। उन्हें कृमि, वृश्चिक, काक, उल्लू आदि रात-दिन चोंटते रहते हैं तथा उनकी जिह्वा और तालु क्षुधा पिपासा से शुष्क हो जाते हैं ।७४। जिन्होंने दिन में नारी समागम अथवा परस्त्री-गमन किया यह लोहे के तीक्ष्ण कांटों वाले शाल्मलि वृक्ष पर ।७५। चढ़ाये जाकर अंग भंग पूर्वक रक्तपात से व्याकुल हो रहे हैं तथा वे धोंकनी में रख कर जलाये जा रहे हैं ।७६। यह देखो, परस्त्री से समागम करने वालों की दशा ऐसी होती है तथा जो उपाध्याय को नीचा आसन देकर अहंकार पूर्वक अध्ययन ।७७। करते या शिल्प ग्रहण करते हैं, वह इसी प्रकार सिर पर शिला रख कर बोझ से अत्यन्त क्लेश पाते हैं ।७८।

क्षुत्क्षामोऽहर्निशं भारपीडाव्यथितमस्तकः ।
मूत्रश्लेष्मपुरीषाणियैरुत्सृष्टानिवारिणि ।।७९
तइमेश्लेष्मविण्मूत्रदुर्गन्धनरकंगताः।
परस्परंचमांसानिभक्षयन्तिक्षुधान्विताः ।।८०
भुक्तं नातिथ्यविधिनापूर्वमेभिःपरस्परम् ।
अपविद्धास्तुयैर्वेदावह्नयश्चाहिताग्निभिः ।।८१
तइमेशैलशृंगाग्रात्पात्यन्तेऽधःपुनःपुनः ।
पुनर्मं तया जार्णायावज्जीवंतियेनराः ।।८२
इमेकृमित्वमापन्नाभक्ष्यन्तेऽत्रपिपीलिकैः ।
नीचप्रतिग्रहादानाद्याजनान्नित्यसेवनात् ।।८३
पाषाणमध्यकीटत्वंतरसततमश्नुत ।
पश्यतोभृत्यवर्गस्यमित्रस्याप्यतिथेस्तथा ।।८४
एकोर्मिष्टान्नभुग्भुक्तंज्वलदंगारसंचयम् ।
वृकैर्भयंकरैःपृष्ठंतित्यमस्योपभुज्यते ।।८५

बोझ के कारण मस्तकमें वेदना पाते हुए क्षुधा-पिपासासे सदा पीडित रहते हैं, जिन्होंने मल, मूत्र या कफ का जलमें त्याग किया है ।७९।वह इस मल, मूत्र और कफ वाले दुर्गंधियुक्त नरक को प्राप्त हुए हैं तथा यह

जो क्षुधातुर होकर एक-दूसरे का माँस भक्षण कर रहे है ।८०। इन्होंने अतिथ्य सत्कार पूर्वक भोजन नहीं किया था । जिन आहिताग्नि मनुष्यों ने वेद तथा अग्नि का निरादर किया है ।८१। वह इस पर्वत-शिखर से वारम्बार गिरा ये जाते हैं,जिन्होंने दुवारा व्याही हुई पत्नी का स्वामित्व प्राप्ति कर उसके साथ जीवन व्यतीत कियाहै।८२। वह कृमि रूप होकर चींटियों द्वारा खाये जा रहे हैं,जिसने नीच पुरुष का दान ग्रहण अथवा सेवा या यजन किया हैं ।८ । वह पत्थर के भीतर होने वाला कीट होता है,जो अतिथि बंधुओं और भृत्यों का तिरस्कार कर ।८४। मिष्ठान्न का एकाकी भोजन करता है, वह यहाँ प्रज्वलित अगार भक्षण करता है तथा इसकी पीठ के माँस को भयंकर भेड़िये नित्य भक्षण करतें हैं ।८५।

पृष्ठमांसंनृपैतेनयतोलोकस्यभक्षितम् ।
अंधोऽथबधिरोमूकोभ्राम्यतेत्रक्षुधातुरः ॥८६
अकृतज्ञोऽधमःपुंसामुपकारिषुवर्त्तते ।
अयंकृतघ्नोमित्राणामपकारींसुदुर्मतिः ॥८७
तप्तकुंभेनिपतितोविलपन्यातिशोषणम् ।
करंभवालुकांतस्मात्ततोयंत्रावपीडनम् ॥८८
असिपत्रवनतस्सात्करपत्रेणपाटनम् ।
कालसूत्रेतथाच्छेदमनेकाश्चैवयातनाः ॥८९
प्राप्यनिष्कृतिमेतस्मान्नवेद्मिकथमेष्यति ।
श्राद्धेसगतिनोविप्राःसमुपेत्यपरस्परम् ॥९०
दुष्ठाहिनिःसृतंफेनसर्वांगेभ्यःपिबंतिव ।
सुवर्णस्तेयीविप्रघ्नःसुरापोगुरुतल्पगः ॥९१
अधश्चोर्ध्वंचदीप्ताग्नौदह्यमानाःसमततः ॥९२

जिन्होंने किसी की पीठ पीछे निन्दा की, वह यहाँ अन्धे वधिर और मूक होकर क्षुधार्त्त घूमते हैं।८६।इस अधम ने उपकारी के प्रति कृतज्ञता प्रकट नहींकी अतःयह दुर्बुद्धि कृतघ्न तथा मित्रोंका अपकार करनेवाला है ।८७। इसीलिए तप्तकुम्भ में डाला गया है, यह घोर विलाप करता है, इसके पश्चात् इसे पीसा जायगा, फिर तप्त बालुका क्रीड़ा को भोगकर

।८८। असिपत्र नरक में खड्ग की धार से संतप्त होगा, फिर कालसूत्र नरक में अंग अंग का छेदन होगा, इस प्रकार अनेक विधि यंत्रणा भोग कर ।८९। किस प्रकार इससे मुक्त होगा, इसे मैं नहीं जानता, इस दुष्ट ब्राह्मणों ने परस्पर श्राद्ध- भोजन किया था ।९०। इसलिए उन्हें सर्पों के सर्वांग से निकाला हुआ फेन ही खाना पड़ता है । उसने सुवर्ण की चोरी की है, यह ब्रह्म हत्यारा है, इसने मद्य पान किया है, इसने गुरु-पत्नी का अपहरण किया है ।९१। इसलिए यह चारों ओर से प्रज्वलित अग्नि में दग्ध किये जाते हैं ।९२।

तिष्ठंत्यब्दसहस्राणिसुबहूनिततःपुनः ।
जायन्तेमानवाःकुष्ठक्षयरोगादिचिह्नताः ।।९३
मृता पुनश्चनरकंपुनर्जाताश्चतादृशम् ।
व्याधिमृच्छतिकल्पांतपरिमाणंनराधिप ।९४
गाघ्नोन्यूनतरंयातिनरकेऽथतिजन्मनि ।
तथोपपातकानांससर्वेषामितिनिश्चय ।।९५
नरकप्रच्युतायान्तियैर्यैर्विहितपातकैः ।
प्रयांतियोनिजातानितन्मेनिगदतःशृणु ।।९६

यहाँ हजारों वर्ष रह कर फिर कुष्ट, क्षय आदि रोगों से युक्त मनुष्य देह प्राप्त कर ।९३। प्राण त्याग करके पुनः नरक में जाते हैं, इसी प्रकार बारम्बार जन्म- मरण को प्राप्त होते हुए कल्प के अन्त तक दुःख भोगते हैं गौ हत्या या दूसरे-दूसरे पाप उपपातक करने से तीन जन्म तक नीचे से भी नीचे नरक भोगने होते हैं, इसमें सन्देह नहीं है ।९५। अब वह वर्णन करता हूँ, जिस प्रकार नरक में पड़े हुए जीव जिस-जिस योनि में जाते हैं ।९६।

१५—नरकस्थोद्धार वर्णन

पतितात्प्रतिगृह्याथखरयोनिंव्रजेद्द्विजः ।
नरकात्प्रतिमुक्तस्तुकृमिःपतितत्रायकः ।।१
उपाध्यायव्यलीकंतुकृत्वाश्वाभवतिद्विजः ।
तज्जायांमनसावापिद्रव्यंवाप्रिकामयेत ।।२

गर्दभोजायतेजन्तु पित्रोश्चाप्यवमानकः ।
मातापितरावाक्रु श्यसारिकासम्प्रजायते ॥३
भ्रातुःपत्न्यवमन्ता चकपोतत्वंप्रपद्यते ।
तावेत्रपोडयित्वातुकच्छपत्वंप्रपद्यते ॥४
भर्तृ पिण्डमुपाश्नन्यस्तदिष्टंननिषेवते ।
सोऽपिमोहसमापन्नोजायतेवानरोमृतः ॥५
न्यासापहर्त्तानराकद्विमुक्तोजायतेकृमिः ।
असूयकश्चनरकान्मुक्तोभवतिराक्षसः ॥६

यमदूत ने कहा पतित मनुष्य से धन लेने वाला ब्राह्मण गधे की योनि को प्राप्त होता है तथा पतित पुरुष को यज्ञ कराने पर नरक से मुक्त होकर कृमि-योनि पाता है ।१। उपाध्याय के प्रति छल करे, उसकी स्त्री या अन्य वस्तु की इच्छा करने से श्वान-योनि मिलती है ।२। माता-पिता का अपमान करने वाला गधा और उन्हें गाली देने वाला भैंसा होता है ।३ भाई की पत्नी का अपमान करने वाला कबूतर होता है,उसे पीड़ित करने से कछुआ बनता है ।४। स्वामी का पिन्ड भोजन करके जो उसका अभि- लषित नहीं करता वह मोह में भर कर मरणान्तर वन्दर बनता है ।५। किसी की धरोहर हड़पने वाला नरक से मुक्त होने पर कृमि होता है, असूया करने वाला नरकान्त में राक्षस होता है ।६।

विश्वासहन्ताचनरोमीनयोनौप्रजायते ।
धान्यंयवांस्तिलान्माषान्कुलत्थान्सर्षपांश्चणाम् ॥७
कलायन्कलमान्मुद्गान्गोधूमानतसीस्तथा ।
सस्यान्यन्यानित्राहृत्वामीहाज्जन्तुरचेतनः ॥८
सञ्जायतेमहावक्त्रोमूषिकोवभ्रुसन्निभः ।
परदाराभिमर्शात्तु वृकोघोरोऽभिजायते ॥९
श्वासृगालोवकोगृध्रोव्यालःकङ्कस्तथाक्रमात् ।
भ्रातृभार्य्यांचदुर्बुद्धिर्योधर्षयतिपापकृत् ॥१०
पुंस्कोकिलत्वमाप्नोतिसचापिनरकाच्च्युतः ।
सखिभार्य्यांगुरोर्भार्य्यांराजभार्य्यांचपापकृत ॥११

प्रधर्षयित्वाकामात्मासूकरोजायतेनरः ।
यज्ञदादनविवाहानांविघ्नकर्त्ताभवेत्कृमिः ।।१२
पुनर्दातातुकन्यायाःकृमिरेवोपजायते ।
देवतापितृविप्राणामदत्वायोऽन्नमश्नुते ।।१३

विश्वासघाती को मछली की योनि मिलती है तथा जो धान्य, जौ तिल, उड़द, कुलथी, सरसों चना ।७। कैथा, मूंग, मूगा, गेहूँ या तीसी आदि हरण करता है वह मोह से मदमत्त होता है ।८। तथा नीले जैसे दीर्घ मुख वाला मूसा होता है, परनारी से समागम करने वाला भयंकर भेड़िया वन जाता है ।९। फिर कृमि श्वान, गीदड़, बगुला, गृध्र, सर्प या काक बनता हैं तथा जो भाई की पत्नी से समागम करता है ।१०। वह नरकके दुःख भोग कर कोयल होता है,जो मित्र की पत्नी या राजा की पत्नी ।११। से समागम करते हैं, वे शूकर होते हैं, यज्ञ, दान या विवाह कार्यमें विघ्न उपस्थित करने वाले कृमि होते हैं ।१२। एक बार दान की हुई कन्या किसी दूसरे को देने वाले मनुष्य भी कृमि योनि पाते हैं तथा जो देवता, पितर, ब्राह्मण को जिमाये बिना स्वयं भोजन करता है वह नरक यातना भोगने के पश्चात् काक होता है ।१३।

प्रमुक्तोनरकात्सोऽपिवायसःसम्प्रजायते ।
ज्येष्ठंपितृसमंवाभ्रातरंयोवमन्यते ।।१४
नरकात्सोपिविभ्रष्टःक्रौंचयोनौप्रजायते ।
शूद्रश्चब्राह्मणीगत्वाकृमियौनौप्रजायते ।।१५
तस्यामपत्यमुत्पाद्यकाष्ठान्तःकीटकोभवेत् ।
सूकरःकृमिकामद्गुश्चण्डालश्चप्रजायते ।।१६
अकृतज्ञोऽधमःपुसांविमुक्तोनरकान्नरः ।
कृतघ्नःकृमिकःकोटःपतङ्गोवृश्चिकस्तथा ।।१७
मत्स्यस्तुवायसःकर्मःपुल्कसोजायतेततः ।
अशस्त्रंपुरुषंहत्वानरःसंजायतेखरः ।
कृमिःस्त्रींवधर्त्ताचबालहंताचजायते ।।१८
भोजनंचोरयित्वातुमक्षिकाजायतेनरः ।

तत्राप्यस्तिविशेषोवैभोजनस्यश्रृंणुष्वतः ।१९।
हृत्वादुग्धंतुमार्जारोजायतेनरकाच्च्युतः ।
तिलपिण्याकसंमिश्रमन्नंहृत्वातुमूषकः ।।२०
घृतंहृत्वातुनकुलःकाकोमद्गुरुजामिषम् ।
मत्स्यमांसापहृत्काकःश्येनोमेषामिषापहृत् ।।२१

तथा ज्येष्ठ भ्राता का अपमान करने वाला नरक के पश्चात् क्रौंच पक्षी होता है, ब्राह्मण में गमन करने वाला शूद्र क्रमि योनि में जन्म लेता है ।१४-१५। ब्राह्मण के गर्भ से पुत्र उत्पन्न करने पर काठके भीतर का कीड़ा, शूकर, कृमि,मल,-क्रमि अथवा चाण्डाल होता है ।१६। जो मनुष्योंमें अधम तथा कृतज्ञता रहित है वह नरक से मुक्त होकर क्रमि कीट, पतंग, या विच्छू ।१७। मत्स्य, कौआ, कूर्म अथवा डोम योनि में उत्पन्न होता है,किसी निःशस्त्र की हत्या करने पर गधे की योनि मिलती हैं, स्त्री और बालक की हत्या करने वाला कृमि होता है ।१८। भोजन चुराने वाला मक्षिका, अंव भोजन के विषय में जो विशेष हैं, उसे सुनो ।१९। अन्न चुराने से नरक भोगने के पश्चात् विल्ली होता हैं, तिल दाना मुक्त अन्न हरण करने वाला मूपक होता हैं ।२०। घृत हरण करने वाला नौला, छाग के मास चुराने वाला काक तथा मृग का माँस चुराने वाला गिद्ध होता है ।२१।

चिरीबाकस्त्वपहृतेलवणेदध्निवाक्रमिः ।
चोरयित्वापयश्चापिवलाकासंप्रजायते ।।२२
यस्तुचोरयतेतैलतैलपायीसजायते ।
मधुहृत्वानरोदंशोऽपूयंहृत्वापिपीलिका ।।२३
चोरयित्वाहविष्यान्नंजायतेगृहगोधिका ।
आसबंचोरतित्वातुतित्तिरित्त्वामवाप्नुयात् ।।२४
अयोहृत्वातुपापात्मावायसःसंप्रतायते ।
पात्रेकाँस्येपिहारीतःकपोतोरौप्यभाजने ।।२५
हृत्वातुकांचनंर्भाडंक्रमियोनौप्रजायते ।
कौशेयंचोरयित्वातुचक्रवाकत्वमृच्छति ।।२६
काशकारश्चकौशेयेमृतेवस्त्रेभिजायते ।

दुकूलेशाङ्गकःपापोहृतेचैवांशुकेकुकः ।२७
ऋक्षश्चैवाविकंहृत्वावस्त्रंक्षौमंचजायते ।
कार्पासिकेहृतेक्रौंचोवह्नेर्हर्ताबकःखरः ।२८

नमक चुराने वाला जलकाक, दही चुराने वाला कृमि और दूध चुराने वाला बगुला होता है ।२२। तेल चुराने वाला तेली, मधुचुराने वाला डाँस और पूड़े चुराने वाला चींटी होता है ।२३। हविष्यान्न की चोरी करने वाला गीध आसव चुराने वाला तीतर होता है ।२४। लोहा चुराने वाला काक,पात्र चुराने वाला हारीत तथा चाँदीका पात्र-चोर कबुतर बनता हैं ।२५। स्वर्ण पात्र का चोर कृमि बनता है, रेशम चुराने वाले को चकवे की योनि ग्रहण करनी होती है ।२६। कौशेय वस्त्रचुराने से कौशकर होता है, दुपट्टा चुराने वाला मोर तथा अंकुश चुराने वाला तोता होता है ।२७। ऊनी और अलसी के वस्त्र चुराने वाला रीछ, कपास चुराने वाला क्रौंच तथा अग्नि चुराने वाला बगुला या गधा होताहै ।२८।

मयूरोवर्णकान्हृत्वापत्रशाकंचजायते ।
जावञ्जीवकतांयातिरक्तवस्त्रापहृन्नरः ।२९
छुच्छुंदरीशुभान्गंधान्वासोहृत्वाशशोभवेत् ।
खजःपलालहरणेकाष्ठहृद्घुणकीटकः ।३०
पुष्पापहृद्दरिद्रस्तुपगुर्यानापहृन्नरः ।
शाकहर्त्ताचहारीतस्तोवहर्त्ताचचातकः ।३१
भूमिहृन्नरकान्गत्वारौरवादीन्सुदारुणान् ।
तृणगुल्मलतावल्लीत्वक्सारतरुतांक्रमात् ।३२
प्राप्यक्षीणाल्पापस्तुनरोभवतिवैततः ।
वृषस्यवृषणौछित्त्वाषडत्वंप्राप्नुयान्नरः ।३३
परिहृत्यतथाभूयोजन्मनामेकविंशतिः ।
कृमिःकीटःपतंगोवापक्षीतोयचरोमृगः ।३४
पंग्वंधोवधिरःकुष्ठीयक्ष्मणाचप्रपीड़ितः ।३५
मुखरोगाक्षिरोगैश्चगुदरोगैश्चबाध्यते ।

अपस्मारीचभवतिशूद्रत्वंचसगच्छति ।।३६

मनुष्य वर्णक या शाकपत्र चुराता है, और लाल वस्त्र चुराने वाला चकवा चकवी होता है ।२९। श्रेष्ठ गंध द्रव्य का चोर छछुन्दर होता है, वस्त्र चोर खरगोश होता है पराल चोर गजा और काष्ठ चोर धुन होता है ।३०। पुष्प चोर दरिद्री यान चोर लँगड़ा, शाक चोर हारीत पक्षी और जल का चोर चातक होता है ।३१। भूमि हरण करने वाला रौरव आदि घोर नरकों में भ्रमता हुआ तृण, गुल्म, लता गल्ली तथा वृक्ष रूप में उत्पन्न होता है ।३२। इस प्रकार क्रम पूर्वक पापों के क्षीण होने पर मनुष्य की योनि प्राप्त हो पाती है, वैल को वधिया करने वाले को जन्मा न्तर में नपुंसक होना होता है ।३३। फिर इक्कीस जन्म तक कृमि, कीट पतंग जलचर पक्षी, मृग ।३५। और गाय की योनि प्राप्त करता है,फिर चाण्डाल या डोम आदि होकर लँगड़ा, अन्धा, वधिर, कुष्टी तथा क्षयी होता है ।३४। तथा मुख रोग, नेत्र और गुह्य रोग से संतप्त होकर मृगी रोग से आक्रान्त होता हुआ शूद्र बनता है ।३६।

एषएवक्रमोदृष्टोगोसुवर्णादिहारिणाम् ।
विद्यापहारिणांचैववनिष्क्रियभ्रंशिनांगुरोः ।।३७
जायामन्यस्यपारक्यांपुरुषःप्रमिपादयेत् ।
प्राप्नोतिषढतांमूढोयातनाभ्यःपरिच्युतः ।।३८
यः करोतिनरोहाममसमिद्धे हुताशने ।
सोजीर्णघनदुःखार्तोमंदाग्निरभिजायते ।।३९
परनिंदाकृतघ्नत्वंपरमर्मोपघट्टनम् ।
नैष्ठर्यंनिघृणत्वंचपरदारोपसेवनम् ।।४०
परस्वहरणाशौचदेवतार्नाचकुत्सनम् ।
निकृत्यावंचनानृणांकार्पण्यंचनृणांवधः ।।४१
यानिचप्रतिषितद्धानितद्वृत्तिचप्रशंसताम् ।
उक्लक्षणानिजानीयान्मुक्तानानरकादनुः ।।४२

जिसने सुर्वण आदि वस्तु चुराई है,उसकी भी यही दशा होतीहै जो विद्या का हरण करता है या गुरु के धन का अपहरण करता है।३९।उसे

भी ऐसे ही उग्र दुःखों को भोगना पड़ता है तथा जो दूसरे की पानी लेकर किसी और को दे देता है,वह अनेक प्रकार के दुःख भोगता हुआ नपुंसक हो जाता है ।३८। समाधि के बिना अग्नि में होम करने वाले को अजीर्ण और मंदाग्नि सताती ।३९। परनिन्दा, कृतघ्नता, निष्ठुरता, परमर्म छेदन,परनारि का सेवक तथा लज्जाहीनता ।४०। पर धन हरण,देवनिन्दा अपवित्रता, कृपणता,ठगी, हिंसा । १। तथा अन्याय निषिद्ध कर्मों का करना और उन-उन विषयों में प्रवृत होना,ऐसे मनुष्य के विषय में समझलो कि नरक की यातनायें भोगकर ही उसने जन्म लिया है ।४२।

दयाभूतेषुसद्वादःपरलोकंप्रतिक्रिया ।
सत्याभूतहिताचोक्तिर्वेदप्रमाण्यदर्शनम् ।।४३
गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिपूजनंसाधुसंगमः ।
सत्क्रियाभ्यसनंमैत्रीतद्बुध्येतपंडितः ।।४४
अन्यानिचैवसद्धर्मक्रियाभूतानियानिच ।
स्वर्गच्युतानांलिगानिपुरुषाणामपापिनाम् ।।४५
एतदुद्दशतीराजन्भवतःकथितंमया ।
स्वकर्मफलभोक्तृणांपुण्यानांपापिनांतथा ।। ६
तदेह्यन्यत्रगच्छामोदृष्टंसर्वंत्वयाधुना ।
त्वयाचदृष्टोनरकस्तदेह्यन्यत्रगम्यताम् ।।४७
ततस्तमग्रतःकृत्वासराजागतुमुद्यतः ।
ततश्चसर्वैरुत्कृष्टंयातनास्थायिभिर्नृभिः ।।४८
प्रसादंकुरुभूपेतितिष्ठतावन्मुहूर्त्तकम् ।
त्वदंगसंगीपवमोमनोह्लादयतेहिनः ।।४९
परितापंचगात्रेषुपीडांवाधांचकृत्स्नशः ।
अपहंतिनरव्याघ्रकृपांकुरुमहीपते ।।५०

सब जीवों के प्रति दया, परलोकार्थ शुभकर्म, दूसरों के हितके लिए भाषण, वेद के लिए भाषण, वेद के दृष्टान्त का देखना ।४३। गुरु, देवता सिद्ध ऋषियों का पूजन,साधुओं का संग, सत्कर्म का अभ्यास सबके प्रति मित्रता ।४४। तथा अन्याय सत्कर्म जिसमें हों, उसे समझें कि स्वर्ग का

का सुख भोग करने के पश्चात् उसने जन्म धारण किया है ।४५। अपने कर्मफल को भोगने वाले पुण्यात्माओं और पापियों के सम्पूर्ण विषय को मैंने आपके प्रति कह दिया है ।४६। आपको भी नरक देखना पड़ा है, अब आप अन्तत्र चलिये ।४७। पत्र बोला-जैसे ही वह महाराज यमदूत को आगे करके चलने को हुए वैसे ही नरकमें पड़े सब जीव ऊँचे स्वरसे क्रन्दन करते हुए बोले ।४८। हे राजन् ! प्रसन्न हूजिये: एक मुहूर्त भर यहाँ ठहरिये,आपके संसर्ग वाला वायुसे हमारा चित्त अत्यन्त आह्लादपूर्ण होरहा है ।४९। इस वायु ने हमारे अङ्ग-अङ्ग का परिताप हर दिया है, अतः हे पृथिवीपते ! हमारे ऊपर दया कीजिये ।५०।

एतच्छ्रुत्वावचस्तेषांतयाम्यंपुरुषंततः ।
पप्रच्छकथमेतेषामाह्लादोमयितिष्ठति ।।५१
किंमयाकर्मतत्पुण्यंमर्त्यलोकेमहत्कृतम् ।
आह्लाददायिनीव्युष्टिर्येस्येयंतदुदीरय: ।।५२
पितृदेवातिथिप्रेष्यशिष्टैनान्नेनतेतनुः ।
पुष्टिमभ्यागतायस्मातद्गतवमनोयतः ।।५३
ततस्त्वद्गात्रसंसर्गीपवनोह्लाददायकः ।
पापकर्मकृतोराजन्यातनानप्रबाधते ।।५४
अश्वमेधादयोयज्ञास्त्वयेष्टाविधिवद्यतः ।
ततस्त्वद्दर्शनाद्याम्यायन्त्रशस्त्राग्निवायसाः ।।५५
पीडनच्छेददाहादिमहादुःखस्यहेतव ।
मृदुत्वमागताराजस्तेजसोपहतास्तव ।।५६

उनके यह वचन सुनकर राजा ने यमदूत से पूछा—मेरे यहाँ खड़े होने से यह इतने सुखी क्यों हो रहे हैं ? ।५१। मर्त्यलोक में ऐसा कौन सा पुण्य मैंने किया है, जिससे मेरे कारण इन पर ऐसा आनन्द देने वाली वृष्टि हो रही है ? ।५२। यमदूत ने कहा—हे राजन् ! पहिले आपने देवता, पितर, अतिथि, सन्यासी आदि को भोजन देकर उससे बचा हुआ अन्न खा कर अपनी उदर पूर्ति की थी, और आपका चित्त इसी में रत था अतः हर समय आपके देह के संसर्ग वाले वायु से इन पापियों की सब यातनायें मिट रही हैं ।५४। आपने

अश्वमेध आदि यज्ञ विधिवत् किये हैं, इसलिए सम्पूर्ण महा दुःखोंके कारण रूप यम के यंत्र अग्नि, शास्त्र, काक तथा अन्य पक्षियों ने आपके दर्शन से हत होकर कोमलता में प्रवृत्ति की है ।५५-५६।

नस्वर्गेब्रह्मलोकेवातत्सुखंप्राप्यतेनरैः ।
यदार्त्तजंतुनिर्वाणदानोत्थमितिमेमतिः ।।५७
यदिमन्सन्निधावेतान्यातनानप्रबाधते ।
ततोभप्रामुखाऽत्रग्हंस्थास्येस्थाणरिवाचलः ।।५८
एहितराजेन्द्रगच्छमिनिजपुण्यसमार्जितान् ।
भुंक्ष्वभोगांस्तुभुज्यंतुयातनाःपापकर्मिणः ।।५९
तस्मान्नतावद्यास्यामियावदेसेसुदुःखिताः ।
मत्सन्निधानात्सुखिनोभवंतिनरकौकसः ।।६०
धिक्तस्यजीवितंपुंसःशरणार्थिनमायतम् ।
योनार्त्तमनुगृह्णातिवैरिपक्षमपिध्रुवम् ।।६१
यज्ञदानतपांसीहपरत्रचनभूतये ।
भवंतितस्ययस्यार्त्तपरित्राणेनमानसम् ।।६२
नरस्ययस्यकठिनंमनोवालातुरादिपु ।
वृद्धेषुचनतंमन्यमानुषंराक्षसोहिसः ।।६३

राजा वोले-मेरा विचार है कि जो सुख दुखियों की रक्षा में मिलता है, वह स्वर्ग या ब्रह्मलोक में भी नहीं मिलता ।५७। यदि मेरे यहाँ खड़े रहने मात्र से इनकी यंत्रणा नष्ट होरही है तो मैं अचल होकर यही निवास करूँगा ।५८। यमदूत ने कहा राजन् ! आप चलिए, अपने पुण्य से संचित सव शुभ फलों को भोगिये, यह स्थान तो पापात्माओं के दुःख भोगने के लिए ही है ।५९। राजा वोले—जव तक यह घोर दुःख पायेंगे, तव तक मैं नहीं जाऊँगा, क्योंकि मेरे यहाँ रहने से इन सवको सुख मिलता है ।६०। यदि शत्रु भी दुःख से आतर होकर शरण में आवे तो जो उस पर कृपा न करे उसे धिक्कार है ।६१। जिसका चित्त आर्त्तपुरुष की रक्षा में नहीं है, उसके यज्ञ, दान, तप सव कुछ लोक-परलोक में सुख नहीं पहुँचा सकते ।६२। वाल, वृद्ध, आतुर आदि के प्रति कठोर चित्त

वाले मनुष्य तो राक्षस ही हैं। ऐसा समझो।६३।

एषांमत्सन्निकर्षानुयद्यग्निपरितापजम्।
तथोग्रगंधजं ग्रापिदुःखंनरकसंभवम् ॥६४
क्षुत्पिपासोद्भवंदुःखयच्चमूर्छाप्रदंमहत्।
विनाशमेतितभ्दमन्येस्वर्गसुखात्परम् ॥६५
प्राप्स्यतेतेयदिसुखंबहवोदुःखितेमयि।
किंवाप्ताप्तंमयानस्यात्तस्मात्त्वंवदमाचिरम् ॥६६
एषधर्मश्चशक्रश्चत्वांनेतुं समुपागतौ।
अवश्यमस्माद्गन्तव्यतस्मात्पार्थिवगम्यताम् ॥६७
नयामित्वामहंस्वर्गंवयासम्यगुपासितः।
विमानमेतदारुह्यमाविलंवस्वगम्यताम् ॥६८
नरकेमानवाधर्नपीडयमानाःसहस्रशः।
त्राहीत्यमीचक्रं दतिमामतोनव्रजाम्यहम् ॥६९
कर्मणानरकप्राप्तिरेषांपापिष्ठकर्मणाम्।
स्वर्गस्त्वयापिगंतयोनृपपुण्येनकर्मणा ॥७०

यद्यपि इनके पास रह कर मुझे नरकाग्नि के भीषण ताप से उत्पन्न तीव्र गन्ध का दुःख झेलना पड़ेगा।६४। क्षुधा-पिपासा से उत्पन्न मूर्च्छादायक दुःख भोगना होगा, फिर भी इनकी रक्षा के विचार से मैं उस महादुःख को भी स्वर्ग सुख से बढ़कर समझूँगा।६५। यदि मेरे दुःख पाने मात्र से दुःखी प्राणियों को सुख मिलेगा? इसलिए हे यमदूत! तुम यहाँ से चले जाओ, देर मत करो।६६। यमदूतों ने कहा-राजन्! यह इन्द्र और धर्म आपको स्वर्ग में ले जाने के निमित्त उपस्थित हुए मैं आपको यहाँ से अवश्य जाना होगा, इसलिए यहाँ से चलिये।६७। धर्म ने कहा राजन्! आपने भले प्रकार से मेरी उपासना की है, इसलिए मैं आपको स्वर्ग में ले जाऊँगा, अब आप देर न करें, इस विमान में शीघ्र ही बैठें।६८। राजा ने कहा—हे धर्म! हजारों मनुष्य इस नरक में पड़े हुए आर्तनाद कर रहे हैं, इसलिए मैं इस स्थान को छोड़ कर नहीं जा सकता।६९। इन्द्र बोले—इन पापियों को स्वकर्म फल से यह

[illegible]

में जाना चाहिए ।७०।

यदिजानासिधर्मस्त्वंत्वंवादेशतक्रतो ।
ममयावत्प्रमाणंतुशुभंतद्वक्तुमहथः ।।७१
अब्बिन्दयोयथांभोधौयथावादिवितारकाः ।
यथावावर्षतोधारागंगायांसिकतायथा ।।७२
असख्येयामहाराजन्नावायोनिपुजंतवः ।
तथातवापिपुण्यस्यसंख्यानैवोपपद्यते ।।७३
अनुकंपामिमामद्यनारकेष्विहकुर्वता ।
तदेवशतसाहस्रसंख्यानीतंत्वयानृप ।।७४
तद्गच्छत्वंनृपश्रेष्ठतत्तु ममरालयम् ।
ततेतुनरकेपापक्षपयंतुस्वकमंजम् ।।७५
कथम्पृहांकरिष्यंतिमत्संपर्कायमानवाः ।
यदिमत्संनिधावेषामुत्कर्षोनोपपद्यते ।।७६
तस्माद्यत्सुकृतंकिंचिन्ममास्ति त्रिदशाधिप ।
मुच्यंतांतेननरकात्पापिनोयातनागताः ।।७७

राजा ने कहा—हे धर्म ! हे देवेन्द्र ! मेरा संचित पुण्य कितना है, यदि आपको ज्ञात हो तो मुझे बताइये ।७१। धर्म बोले—राजन् ! समुद्र में जितने जल-विन्दु हैं, आकाश में जितने तारे हैं, वर्षा में जितनी जल-धारें हैं, तथा गंगा में जितनी बालू है, आपका उतना ही पुण्य है ।७२। जिस प्रकार जल-बिन्दु की गणना नहीं की जासकती उसी प्रकार आपको पुण्य भी संख्यातीत है ।७३। तथा अब इस नरक वासियों के प्रति दया प्रकट करने से आपका पुण्य भी शतक सहस्र गुणा अधिक हो गया है ।७४। इसलिए आप अपने पुण्य का फल भोगने को वहाँ चले और यह पापी भी नरक में रहकर अपने को नष्ट करें ।७५। राजा बोले—यदि मेरी निकटता से इन्हें कुछ सुख न हुआ होता तो यह मेरे साथ की अभिलाषा ही क्यों करते ? ।७६। इसलिए मेरा जो कुछ पुण्य है उसी के द्वारा यह नरक यातनाको प्राप्त करने वाले पापी नरकसे मुक्त हों।७७।

एवमूर्ध्वंतरंस्थानंत्वय प्राप्तंमहीपते ।

एतांस्तुनरकात्पश्यविमुक्तान्पापकर्मिणः ॥७८
ततोपतत्पुष्पवृष्टिस्तस्योपरिमहीपतेः।
विमानंचाधिरोप्यैनस्वर्लोकमनयद्धरिः ॥७६
अहंचान्येचयेतत्रयातनाभ्यःपरिच्युताः।
स्वकर्मफलनिर्दिष्टततोयोन्यंतरंगताः ॥८०
एवमेतेसमाख्याताःनरकाद्विजसत्तमः।
येनयेनचपापेनयांयोनिमुपैतिवै ॥८१
तत्तत्सर्वंसमख्यातंयथादृष्टमयापुरा।
पुरानुभवजंज्ञानमवाप्यकथितंतव।
अतःपरंमहाभागकिमन्यत्कथयामिते ॥८२

इन्द्र वोले हे राजन् ! इससे आपको और भी उच्च स्थान प्राप्त हुआ, यह देखिये सब पापी नरक से मुक्त हो गए।७८। पुत्र बोला फिर उन राजा के ऊपर पुष्प वृष्टि होने लगी और सुरपति उन्हें विमानों में चढ़ा कर स्वर्गलोक को ले गये।७९। इधर मैंने भी अपने नरकीयों सहित यन्त्रणा से मुक्त होकर स्वकर्म के अनुसार विभिन्न योनियों में जन्म धारण किया।८०। हे द्विजोत्तम ! इन नरकों की सब बात आपके प्रति यथार्थ रूप में कहदी और यह भी कह दिया कि किस योनि में जाना होता है।८१। जो कुछ पूर्वकाल में मैंने देखा वह सब आपसे कह दिया इस सबका मैंने स्वयं अनुभव किया है, इसलिए यह नितान्त सत्य है, अब और क्या कहूँ यह मुझे आज्ञा दीजिये।८२।

इति श्रीमार्कण्डेयपुराणे पितापुत्र संवादे पञ्चदशोऽध्याय ॥१५॥

१६—दत्तात्रेय माहात्म्य वर्णन

कथितामेत्वयावत्ससंसारस्याव्यवस्थितम्।
स्वरूपमपिदेहस्यघटीयंत्रवदव्ययम् ॥१
तदेवमेतदखिलंममावगतामीदृशम्।
किमयावदकर्त्तव्यमेवमस्मिन्व्यवस्थिते ॥२
यदिमद्वचनंतातश्रद्दधास्यविशङ्कितः।

तत्परित्यज्यगार्हस्थ्यवानमस्थमनाभवः ।।३
तमुनिष्ठायविधिवद्विहायाग्निपरिग्रहम् ।
आत्मन्यात्मानमाधायनिर्द्वंद्वोनिष्परिग्रहः ।।४
एकांतशीलोवश्तात्माभवभिक्षुरतंद्रितः ।
तत्रयांगपरोभूत्वावाह्यस्पर्श विवर्जितः ।।५
ततः प्राप्स्यसितंयोगंदुःखसंयोगभेषजम् ।
मुक्तिहेतुमनोपम्यमनाख्येयमसंज्ञितम् ।।६
तत्संयागान्नतेयोगोभूयोभूतैर्भविष्यति ।
वत्सयोगंपमाचक्ष्वमृक्तिहेतुमतःपरम् ।।७
येनभूतैःपुनर्भूतोनेद्दग्दुःखमवाप्नुयाम् ।
यत्रासक्तिपरस्यात्मामसंसारवंधने ।।८

पिता बोले—हे वत्स ! तुमने घटी यन्त्र के समान निरन्तर चलते हुए संसार चक्र का अतिशय स्वरूप तुमते मुझे वताया ।१। अव मुझे ज्ञान होगया कि सब ऐसा ही हैं, अब मुझे क्या करना उचित है? ।२। पुत्र ने कहा-यदि आप शंका रहित मन से मेरी वात मानें नो गृहस्थाश्रम का त्याग कर बनाप्रस्थ हो जाइये ।३। विधान के अनुसार अग्नि परिग्रह त्याग, आत्मा में आत्मा का संयोग स्थापति करके द्वन्द रहित परिग्रह-रहित हो जाइये ।४। एकान्त में रहकर आत्मा को वश में कर आलस्य त्याग करिये, इस प्रकार जव वाह्य स्पर्श से परे होंगे ।५। तव आप मोक्ष-कारण, निरूपम वचनातीत, निःसंग दुःख के लिए औषधि स्वरूप इस योग को प्राप्त करेंगे ।६। इस योग के संयोग से पंचभूत के साथ आपकी पुनः संगति नहीं होगी, पिता बोले-अव तुम मोक्ष के कारण रूप उस योग का वर्णन करो ।७। जिसके अवलम्वन से भौतिक संयोग युक्त पुनर्जन्म का दुःख मुझे फिर कभी न भोगना पड़े, यद्यपि आत्मा निर्लिप्त है फिर भी संसार के विषयों में इसकी आसक्ति है ।८।

नेतियोयमयोद्वोपितंयोगमधुनावद ।
ससरादित्यत ापर्त्तिविप्लुष्यद्दे हिमानसम ।।९
ब्रह्मज्ञा [illegible] रणा ।

अविद्याकृच्छपर्पेणदष्टंत्तद्विषपीडितम् ।।१०
स्ववाक्यामृतदानेनमांजीवयपुनर्मृतम् ।
पुत्रदारगृहक्षेत्रममत्वनिगडार्दिनम् ।।११
मांमोचयेष्टसद्भावविज्ञानोद्घाटनैश्चिरम् ।
शृणुतातयथायोगोदत्तत्रेयेणधीमता ।।१२
अलर्कायपुराप्नोक्तःसम्यक्पृष्टेनविस्तरात् ।
दत्तात्रेयस्सुतःकस्यकक्वायोगमुक्तवान् ।।१३
कश्चालर्कोमहाभागोयोयोगंपरिपृष्टवान् ।
कौशिकोब्राह्मणःकश्चित्प्रतिष्ठानेभवत्पुरे ।।१४
सोन्य जनकृतैःपापैःकुष्ठरोगातुरोभवत् ।
तंतथाव्याधितभार्यापतिदेवमिवार्चयत् ।।१५

इसलिए विषयों को पाकर आत्मा उन विषयों में न लगे, हे वत्स! मेरा मन और शरीर भय रूप भास्कर के ताप से तप्त है ।९। तुम ब्रह्म-ज्ञान मय वचन रूप जल से उस ताप को ठंडा करो, मुझे अविद्या रूपी कालसर्प ने दंशित किया है, उसकी पीड़ा से मैं मृतक के तुल्य हो रहा हूँ ।१०। तुम अपने वचनामृत से मुझे पुनर्जीवित करो, मैं पुत्र, भार्या पर खेत आदि की ममता रूप बेड़ियों में जकडा हुआ हूँ ।११। तुम सद्भाव ज्ञान के द्वारा मुझे उससे मुक्त करो । पुत्रने कहा-पुराकाल में अलर्क द्वारा प्रश्न करने पर दत्तात्रेयजीने जो योग उसे विस्तार सहित बताया था, उसे कहता हूँ, पिता बोले-दत्तात्रेयजी किसके पुत्र थे, और उन्होंने योग का वर्णन किस प्रकार किया था ।१२-१३। तथा योग का प्रश्न करने वाले अलर्क कौन थे! पुत्र ने कहा-प्रतिष्ठान नगर में एक कुशिक वंशी ब्राह्मण रहता था ।१४। वह पूर्वजन्म के पाप से कुष्टी होगया, अतिकुष्ठ से आक्रांत होने पर भी उसकी पत्नी देवता के समान उसका पूजन करती थी ।१५।

पादाभ्यंगांगसंवाहस्नानाच्छादनभोजनैः ।
श्लेष्ममूत्रपुरीषासक्प्रवाहक्षालनेनच ।।१६
रहस्येवोपचारेणप्रियसंमाणेनच ।
सततंपूज्यमानोपिशोप्यतीवविनीतया ।।१७

अतितीव्रप्रकोपत्वान्निर्भर्त्सयतिदारुणः ।
तथापिप्रणतासाध्वीतममन्यतदैवतम् ॥१८
तंतथाप्यतिबीभत्संसर्वश्रेष्ठममन्यत ।
अचंक्रमणशीलोपिसकदाचिद्द्विजोत्तमः ॥१९
प्राहभार्यानयस्वेतित्वंमांतस्यानिवेशनम् ।
यासावेश्यामयादृष्टाराजमार्गेगृहेसता ॥२०

वह तेल मलती, चरण दाबती, आच्छादन करती, भोजन कराती और मल, मूत्र, कफ, रक्त आदि को धोती थी ॥१६॥ तथा निर्जन में प्रिय भाषण और विनीत भाव के सहित उसका आदर सहित उसका पूजन करती थी ॥१७॥ परन्तु वह ब्राह्मण अत्यन्त क्रोधी था, विनीत भाव वाली पत्नी से पूजित होकर भी झिड़की देता रहता था फिर भी वह देवता मानती थी ।१८। वह उस वीभत्स स्वरूप के ब्राह्मण को सदा सर्वश्रेष्ठ मानती थी। एक समय उस ब्राह्मण में चलने तककी शक्ति न थी तो भी ।१९। उस अपनी पत्नी से कहा—वह वैश्य राजमार्ग के पार्श्ववर्ती गृह में रहती है, मैंने उसे देखा है ॥२०॥

तांमेप्रापयधर्मज्ञेसैवमेहृदिवर्त्तते ।
दृष्टासूर्योदयेबालारात्रिश्चेयमुपागता ॥२१
दर्शनानंतरंसामेहृदयान्नापसर्पति ।
यदिसाचारुसर्वांगीपीनश्रोणिपयोधरा ॥२२
नोपगूहतितन्वंगीतन्मांद्रक्ष्यतिवैमृतम् ।
वामःकामोमनुष्याणांबहुभिःप्राप्यचेतसः ॥२३
ममाशक्तिश्चगमणेसंकुलप्रतिभातिमे ।
ततस्तदावचनंश्रुत्वाभर्त्तुःकामातुरस्यसा ॥२४
तत्पत्नीव्याकुलाजातामहाभागापतिव्रता ।
गाढंपरिकरंबद्ध्वाशुक्लमादायचाधिकम् ॥२५
स्कंधेभर्त्तारमारोप्यजगाममृदुगामिनी
निशिनेवावृतेव्योम्निचलद्विद्युच्चदृश्यते ॥२६
राजमार्गेप्रियंभर्त्तुश्चिकीर्षंतीद्विजांगना ।

पथिशूलेतदाप्रोतमचोरंशंकया ॥२७
माण्डव्यमतिदुःखातृमंधकारेत्वसद्द्विजः ।
पत्नींस्कंवसमारूढश्चालयामासकौशिकः ॥२८

तू मुझे उस वेश्या के घर ले चल, वह मेरे हृदय में निरन्तर बसी रहती है, मैं प्रातः काल उसे देखा था अब रात्रि का समय हो गया है ।२१।जव मैंने उसे देखा है तभी से वह मेरे हृदय से पृथक नहीं हो रही है, यदि पु? प ?धरा ।२२।वाला मुझसे न मिलेगी तू अवश्या ही मरण मृत देखेगी, क्योंकि प्रथम तो कामदेव मनुष्यों के अनुकूल ही नहीं हैं ।२३। उस पर भी अनेकों मनुष्य उसके भक्त हैं मुझमें चलने की सामर्थ्य नहीं है, इससे और भी विषय संकट प्रतीत हो रहा है उस कामातुर पतिदेव की वातें सुन कर ।२४। वह पतिव्रता व्याकुल हो गई फिर भी उसने वहुत सा धन लेकर ॥२५॥ पति को अपने कन्धें पर चढ़ाया और धीरे- धीरे चल पड़ी, एक तो अंधेरी रात, दूसरे आकाश में वादल छाये हुए थे, वह विजली कीचमक में अपने पति के प्रिय कार्य के लिए राजमार्ग में चलदी, उसी मार्ग में शूल गढ़ी हुई थी जिस पर चोरी के मिथ्या अपराध में ।२६—२७। मुनिवर चढ़े हुए दुःख भोग रहे थे, मार्ग में अंधेरा होने से पत्नी के कन्धे पर स्थित कौशिक ब्राह्मण का भूमि से स्पर्श हुए और पैर विचलित होगया ॥२८॥

?ामर्गिनाथसक्रुद्धोमांडव्यस्तमुवाचह ।
येनाहमेवमत्यर्थंदुःखितश्चालितावृथा ॥२९
इत्थंकष्टमनुप्राप्तःमपापात्मानराधमः ।
सूर्योदयेऽवशःप्राणैर्वियोक्ष्यति न संशयः ॥३०
भास्करालोकनादेतसविनाशमवाप्स्यसि ।
तस्यभार्याततःश्रुत्वातशापमतिदारुणम् ॥३१
प्रवाचव्यथितासूर्योनैवोदयमुपेष्यति ।
ततःसूर्योदयाभावादभवत्संततानिशा ॥३२
वहुन्यहःप्रमाणानिततोदेवाभययुः ।
निःस्वाध्यायवषट्कारस्वधास्वाहाविवर्जितम् ॥३३
कथनुखल्विदंसर्वंनगच्छेत्संक्षयजगत् ।

अहोरात्रव्यवस्थायाविनाम सतु संक्षयः ॥३४॥
तत्संक्ष यान्नत्वयनेज्ञायेते दक्षिणोत्तरे ॥३५

जिससे माडव्य मुनि ने क्रोध से कहा कि जिसने मेरा पैर विचलित करके मुझे व्यर्थ ही ।२६।यंत्रणा दी है वह पापी सूर्योदय होने ही असह्य यंत्रणा भोगता हुआ मृत्यु को प्राप्त होगा ।३०। सूर्य के उदय होतेही उस का प्राण अवश्य चला जायगा, इस दारुणने शाप को सुनकर उसकी पत्नी ने अत्यन्त व्यथित होकर कि अब सूर्य ही उदय नहीं होंगे, उस पतिव्रता के इस वचनसे सूर्योदय नहीं हुआ और इसप्रकार अनेक रात्रियाँ हुई देखकर देवता भी भयभीत होकर ।३२। विचर करने लगेकि स्वाध्याय, वषटकार स्वधा और स्वाहा के इसप्रकार लुप्त होने से विश्व की रक्षा कैसे होगी? ॥३३॥ अहोरात्र की व्यवस्था टूट जाने से मास और ऋतु का विभाग न होगा, जिसके कारण उत्तरायण या दक्षिणायन ज्ञान भी न हो पायगा ॥३४-३५॥

विनाचायनविज्ञानंकालः संवत्सरः कुतः ।
पतिव्रतायावचनान्नोद्गच्छतिदिवाकरः ।३६।
सूर्योदयंविनानैवस्नानदानादिकाःक्रियाः ।
अग्नेर्विहरणचैवक्रत्वभावश्चलक्ष्यते ।३७।
नकालेनविनाचेष्टिनचयज्ञादिकाःक्रियाः ।
नश्यंतिसर्वभूतानितमोभूते चराचरे ।३८।
नैवाप्यायनमस्माकंविनाहोमेनजायते ।
वयमाप्यापितापन्यैर्यज्ञभागंर्यथोचितैः ।३९।
वष्टयादिनानुगृह्णामामर्त्यान्सस्याभिवृद्धये ।
निष्पादितास्वाषधीपुमर्यायज्ञैर्यैजतिनः ।४०।
ववंवयंप्रयच्छामःकामान्जज्ञादिपूजिताः ।
अधोहिवर्षामवयंमर्त्याश्चोर्ध्वप्रवर्षिणः ।४१।

यहज्ञान न होने से संवत्सर का स्थिर करना संभव न होगा, तथा अन्यान्य कालोंका ज्ञानभी कैसे हो सकेगा? अब उस पतिव्रता के वचन से सूर्योदय ही रुक गया है ।३६। सूर्योदय के अभाव में स्नानादि कार्य, हवन

तथा सम्पूर्ण यज्ञों का अभी अभाव हो हीं गया है।३७ काल के अभाव से इष्टि तथा तज्ञदानादि क्रिया नहीं हो सकती तथा अन्धकार से ग्रास होकर सब जीव नाश को प्राप्त होरहे हैं।३८। यज्ञ के विना हमारी तृ... का भी अन्य उपाय नहीं है, क्योंकि यज्ञ भाग देकर ही मनुष्य हमें तृप्त करते हैं।३९। हम भी अन्नादि की उपलब्धि के लिए वृष्टि करके उनपर अनुग्रह करते हैं, औषधियों के उत्पन्न होने पर उनके द्वारा यज्ञ किये जाते हैं।४०। उनके पूजन से संतुष्ट होकर हम इच्छितवर देतेहैं हम नीचे की ओर जल बरसाते और वे ऊपर की ओर घृत बरसाते हैं।।४१।।

तोयवर्षेणहिवयंहविर्वर्षेणमानवाः।
येस्माकंनप्रयच्छतिनित्यनैमित्तिकीःक्रियाः।४२।
क्रतुभागंदुरात्मानःस्वयंवाश्नतिलोलुपाः।
विनाशायवयंतेषांतोयसूर्याग्निमा!रुताः।४३।
क्षितिचसंदूषयामपापानामपकारिणाम्।
दुष्टतोयादिदोयेणतेषांदुष्कृतकर्मणाम्।४४।
उपसर्गाःप्रवर्त्तन्तेमरणायसुदारुणाः।
येत्वस्मान्प्रीणयित्वातुभुंजतेशेषेमात्तना।४५।
तेषांपुण्यतमांल्लोकान्वितरामौमहात्मनाम्।
तन्नास्तिसर्वमेतद्धिनचोपायव्यस्थितम्।४६।
कथनुदिनसंगःस्यादन्योन्यमवदन्सुराः।
तेषामेवसमेतानांयज्ञव्युच्छत्तिशकिनाम्।४७।
देवानांवचनंश्रुत्वाप्राहदेवःप्रजापतिः।
तेजःपरंतेजसैवतपसाचतपस्तथा।४८।

हम जल वृष्टि से और मनुष्य हवि देकर परस्पर प्रसन्न होते हैं जो नित्य नैमित्तिक क्रिया हमको अर्पण नहीं करते।४२। अर्थात् जो नित्य नैमित्तिक क्रिया हमें न देकर यज्ञ भाग को स्वयं ही खा जाते हैं, उनके विनाशार्थं हम जल, अग्नि, सूर्य, वायु।४३। और पृथिवी को दूषितकर देते हैं, जिससे उन पापियों को।४४। नष्ट करने वाले दारुणरोग उत्पन्न होते हैं, परन्तु जो हमें तृप्त करके शेष मात्र का भोजन करते है।४५।

उन महात्माओं को हम पुण्यमय स्थान प्रदान करते हैं, परन्तु इस समय तो वह सब कार्य अवरुद्ध है और उसका कोई उपाय भी दिखाई नहीं दे रहा है ।४६। इस दग्ध सृष्टि की स्थिरता कैसे हो? दिन किस प्रकार कटे ? यज्ञ के नष्ट होने की शंका करते हुए देवगण परस्पर इस प्रकार कहने लगे ।४७। उसके ऐसे वचनोंको सुनकर देवोत्तम प्रजापति ब्रह्माजी बोले ।।४८।।

प्रशाम्यत्यमरास्तस्माच्छृणुध्वंवचनंमम ।
पतिव्रतायामाहात्म्यान्नोद्गच्छतिदिवाकरः ।।४६
तस्यचानुदयाद्धानिर्मर्त्यानांभवतांयथा ।
तस्मात्पतिव्रतामत्रे रनसूयांतपस्विनीम् ।।५०
प्रसादयतवैपत्नीभानोरुदयकाम्यया ।
तं साप्रसादितागत्वाप्राहेष्टंव्रियतामिति ।।५१
अयाचतदिनंदेवाभवत्वितियथापुरा ।
पतिव्रतायामहात्म्यनहीयतेकथंत्विति ।।५२
संमान्यतांतथासाध्वींतथाप्रोवाचाम्यहंसुराः ।
यथापुनराहोरात्रसंस्थानुपजायते ।।५३
यथाचतस्याःसपतिर्नशापान्नशमेष्यति ।
एवमुक्त्वासुरांस्तस्यागत्वासामंदिरंशुभा ।।५४
उवाचकुशलंपृष्टाधर्मंभर्तुस्तयात्मनः ।
कच्चिन्नदसिकल्याणिस्वभर्तुःसुखदायिनी ।।५५
कच्चिच्चाखिलदेवेभ्योमन्यसेह्याधिकपतिम् ।
भर्तुःशुश्रूषणादेवमयःप्राप्तंमहत्फलम् ।।५६

परम तेज और तप से ही तप का विनाश होता हैं, इस लिए मेरी बात सुनो पतिव्रता की महिमासे सूर्योदय नहीं हो रहा है, सूर्योदयके अभाव से तुम्हारी और मनुष्य की हानि है यदि तुम सूर्योदय चाहते हो तो महर्षि अत्रि की पत्नी अनुसूया को ।४६- ५०। प्रसन्न करो। पुत्रने कहा—तब देवताओं ने जाकर अनुसूया को प्रसन्न किया इसके पश्चात् अनसूयाने कहा तुम इच्छित विषय बताओ ।१५। देवताओं ने कहा पहिले के समान-

सूर्योदय होजाय अनसूया बोली पतिव्रत की महिमा कभी नष्ट नहीं होसकती ।५२। फिर भी मैं उस पतिव्रता के सम्मान पूर्वक ऐसा उपाय करूँगी, जिससे दिन निकल आवे ।५३। और उसका पति भी शाप के कारण मृत्यु को प्राप्त न हो, ऐसा कह कर अनूसूया उसके घर गई ।५४। और उसकी तथा उसके स्वामीं की कुशल पूछी—हे स्वामीको सुखदेने वाली ! तुम उनका सुख देखनेसे प्रसन्नतो रहती हो ? ।५५। तथा अपने स्वामीको देवताओं सेभी श्रेष्ठ मानती हो, मैं भी अपने स्वामीकी सेवा से ही महाफल को प्राप्त हुई हूं ।५६।

सर्वकामफलावाप्तिःपत्युशुश्रूषणात्स्त्रियाः ।
पंचर्णानिमनुष्येणसाध्विदेयानिसर्वदा ।५७।
तथात्मवर्णधर्मेणकर्तव्योधनसंचयः ।
प्राप्तश्चार्तस्तथापात्रेविनियोज्योविधातः ।५८।
सत्यार्जवतपादानदयायुक्तोभवेत्सदा ।
क्रियाचशास्त्रनिर्दिष्टारागद्वेषविवर्जिता ।५९।
कर्त्तव्याहरहःश्रद्धापुरस्कारेणशक्तितः ।
स्वजातिविहितानेवंलोकान्प्राप्नोतिमानवः ।६०।
क्लेशेनमहतासाध्विप्राजापत्यादिकान्क्रमात् ।
स्त्रियश्चैवंसमस्तस्यनरैर्दुःखार्जितस्यवै ।६१।
पुण्यस्यार्द्धापहारिण्यःपतिशुश्रूषयैवहि ।
नास्तिस्त्रीणांपृथग्यज्ञोनश्राद्धंनाप्युपोषितम् ।६२।
भर्तुःशुश्रूषयैवैतालोकानिष्टाञ्जयंतिहि ।
तस्मात्साध्विमहाभागेपतिशुश्रूषणंप्रति ।
त्वयामतिःसदाकार्यायतोभर्तापरागतिः ।६३।

पत्नी की सम्पूर्ण कामनाएं पतिसेवा में ही निहित हैं, हे साध्वि? पाँच ऋण सर्वदा देय हैं ।५७। अपने वर्ण-धर्म के अनुसार धनका संचय करके उपयुक्त पात्रको दान करे ।५८। तथा सदैव, सत्य, सरलता, तप, दान और दया परायण रहे और नित्यप्रति राग द्वेषसे रहित शास्त्रोक्त कर्म को श्रद्धा सहित करे, ऐसा करने से सब लोकों की प्राप्ति होती है

।५९-६०। तथा प्राजापत्य दि पवित्र धाम को प्राप्त होते हैं, परन्तु स्त्रियाँ पति-सेवा से ही उसके सब पुण्यमें आधा भाग प्राप्त कर लेतीहैं स्त्रियों के लिए यज्ञ, श्राद्ध अथवा उपवास आदिका कोई पृथक विधान नहीं।६१-६२। वहतो स्वामीकी सेवा मात्रसे ही सब इच्छित लोकोंको प्राप्तहोतीहैं इसलिये तुमइसीमें लगी रहो, क्योंकि पत्नीकी परमगति पतिही हैं।६२।

यद्देवेभ्यो यच्च पित्रादिकेभ्यः कुर्याद्भर्ताभ्यर्चनं सत्क्रियाश्च ।
तस्यार्द्धं वै केवलानन्यचित्ता नारी भुङ्क्ते भर्तृशुश्रूषयैव ।६४।
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रतिपूज्य तदादरात् ।
प्रत्युवाचात्रिपत्नीं तामनसूयामिदं वचः ।६५।
धन्यास्म्यनुगृहीतास्मि दैवस्याप्यवलोकतः ।
यन्मे प्रकृति कल्याणि श्रद्धां वर्धयसे पुनः ।६६।
जानाम्येतन्न नारीणां काचित्पतिसमा गतिः ।
तत्प्रीतिश्चोपकाराय इहलोके परत्र च ।६७।
पतिप्रसादादिह च प्रेत्य चैव यशस्विनी ।
नारी सुखमवाप्नोति नार्या भर्त्ता हि दैवतम् । ६८।
सा त्वं ब्रूहि महाभागे प्राप्तायाम मम मंदिरम् ।
आर्यायाः किनु कर्त्तव्यं मयार्येणापि वा शुभे ।६९।

स्वामी द्वारा किये जानेवाले देवता, पितर, अतिथि आदिका सत्कार या सब सत्कर्म, सभी में स्त्रीको पति-सेवाके कारण अर्द्धांश प्राप्त होता है ।६४। पुत्र ने कहा—अनुसूया के वचन सुनकर उसने आदर सहित अनुसूया का पूजन किया और बोली ।६५। आज में अत्यन्त अनुगृहीत और धन्य होगई हूँ क्योंकि आपने स्वामी के प्रति मेरी श्रद्धाको औरभी बढ़ा दिया है, तथा देवताओं ने भी मुझ पर अनुग्रह किया है ।६६। मैं जान गयी कि स्वामीके अतिरिक्त अन्य कोई गति स्त्रीकी नहीं है उन्ही की प्रसन्नता से इहलोक और परलोक बनता है ।६७। पति की कृपा से ही स्त्रियाँ इहलोक-परलोकमें सुख पातीहै, क्योंकि उनका देवता पति ही है ।६८। जब स्वयं ही यहाँ पधारी है, तब मुझे आदेश दीजिये कि मुझे या मेरे स्वामी को क्या करना उचित है ? ।६९।

एतेदेवाःसहेन्द्रेणमामुपागम्यदुःखिताः ।
त्वद्वाक्यापास्तसत्कमंदिननक्तानिरूपणः ।७०।
याचंतेर्हनिशासंस्थांयथावद्विखंडिताम् ।
अहंतदर्थमायातश्रृणुचैतद्वचोमम् ।७१।
दिनाभावात्समस्तानासभावोयाकर्मणाम् ।
तदभावात्सुराःपुष्टिनोपयांतितपस्विनो ।७२।
अह्नश्चैवसमुच्छेदादुच्छेदःसर्वकर्मणाम् ।
तदुच्छेदादनावृष्ठ्याजगदुच्छेदमेष्यति ।७३।
तत्वमिच्छसिधैर्येणजगदुद्धर्त्तुमापदः ।
प्रसीदसाध्विलोकानांपूर्ववद्वर्त्ततांरविः ।७४।
मांडयेव्येनमहाभागेशप्तौभर्तामेश्वरः ।
सूर्योदयेविनाशत्वप्राप्स्यसीत्वतिमन्युना ।७ ।
यदितेरोचतेभद्रं ततस्तद्वचनादहम् ।
करोमिपूर्ववद्देहंभर्त्तारंवचनात्तव ।७६।
मयापिसर्वशास्त्रीणांमाहात्म्यंवरवर्णिनी ।
पतिव्रतानामाध्यमितिसंमानयामिते ।७७।

अनुसूया से कहा—हे साध्वि ! तुम्हारे वचन से दिन-रात्रि का भेद न रहने से सब सत्कर्म नष्ट होगये हैं, इसलिए सुरराज इन्द्रके सहित यह सम्पूर्ण देवता मेरे पास आकर ।७०। पहिलेके समानही दिन-रात्रि होने को कहते हैं, मैं इसीलिए यहाँ आई हूँ ।७१। दिन के न होने से यज्ञानुष्ठान भी नहीं हो रहा है और यज्ञ के न होने से देवताओंकी तुष्टि भी नहीं हो सकती ।७२। दिन के अभाव में सब कर्मों का नाश हो गया तथा कर्म-नाश से अनावृष्टि होगई, इससे सम्पूर्ण विश्वका नाश सम्भव है ।७३। यदि तुम इस विपत्ति से संसारको वचाना चाहोतो सबपर प्रसन्न होओ जिससे सूर्य पूर्ववत् उदयको प्राप्त हो सके ।७४। ब्राह्मणी बोली हे महाभागे! मुनि माण्डव्य ने क्रोध पूर्वक मेरे स्वामी को शाप दिया हैकि 'सूर्योदय होते ही तेरा पति मृत्युको प्राप्त होगा ।७५। अनुसूयाने कहा—हे कल्याणि ! ऐसा होनेपर मैं तुम्हारे स्वामीके शरीरको पहिलेके समान

कर दूँगी ।७६। पतिव्रता स्त्री की महिमा मेरे लिए सदैव आराधन के योग्य है, इसलिए मैं तुम्हारा सम्मान रखूँगी ।७७।

तथेत्युक्तेतथासूर्यमाजुहावतपस्विनी ।
अनसूयार्घ्यमुद्यम्यदचार्धरात्रेतदानिशि ।७८।
ततोविवस्वान्भगवान्फुलपद्मारुणाकृतिः ।
शैलाधिराजमुदयमारुरोहोरुमंडलः ।७ ।
समनंतरमेवास्यभर्त्ताप्राणंर्व्ययुज्यत ।
पपातचमहीपृष्ठेपतंग्तंजगृहेवसा ।८०।
नविषादस्त्वयाभद्रे कर्तव्यःपश्येमेवलम् ।
पतिशुश्रूषयावाप्यंतपसःकिंचिरेणमे ।८१।
यथाभर्तृसमंनान्यमपश्यपुरुषक्वचित् ।
रूपशीलतःलतोबुद्धयावङ्माधुर्यादिभूषणैः ।८२।
तेनसत्येनविमोयंव्याधिमुक्तःयुवा ।
प्राप्योनुजीवितभार्यासहायःशरदांशतम् ।८३।

पुत्र बोला कि ब्राह्मणी के 'ऐसा ही हो' कहने पर अनुसूयाने अर्घ्य सहित सूर्यका आह्वान किया, उस समयतक दशरात्रियोंका समय व्यतीत हो चुका था ७८। फिर प्रफुल्लित कमलके समान लाल वर्ण वाले सूर्य जैसे ही उदयाचल में चढ़े ।७९। तभी उस ब्राह्मण का प्राणान्त हो गया, इससे वह ज्योंही पृथ्वी में गिरा त्यों ही ब्राह्मणी ने उसे सँभाला ।८०। अनसूयाने कहा-हे भद्रे! तुम विषाद न करो, मैंने पति सेवा सेही जिस तपोबल को प्राप्त किया है, वह तुम्हें अभी दिखाई पड़ेगा ।८१। मैं यदि रूप, शील, बुद्धि, वाणी माधुर्य आदि सद्गुणों में अपने स्वामीके समान किसी अन्य को नहीं मानती ।८२। तो मेरे उसी सत्य के बल से यह ब्राह्मण रोग-रहित होकर युवावस्थाको प्राप्तहो और पुनर्जीवन प्राप्तकर सौ वर्ष तक पत्नी के सहित जीवित रहे।८३।

यथाभर्तृसमंनान्यमहंपस्यामिदवतम् ।
तेनसत्येनविप्रोयंपुनजीवत्वनामयः ।८४।
कर्मणा मनसावाचाभर्तुराराधनप्रति ।

यथा मभोद्यमोनित्यंतथापंजावताद्द्विजः ।।८५
ततोविप्रः समुत्तस्थौव्याविमुक्त पुनर्यवा ।
स्वभाभिर्भासयन्वेश्नवृन्दारकइवाजरः ।।८६
ततोपतत्पुष्पवृष्टिर्देवबाद्यानिसस्वनुः ।
लेभिरेचमुदंदेवाथनसूयामथाब्रुवन् ।।८७
वरवृणीष्वकल्याणिदेवकार्यमहत्कृतम् ।
आदित्योदयसद्भावाद्वरंवर ासुव्रते ।।८८
त्वयाथस्मात्ततोदेवाव रदास्तेतपस्विनि ।
यदिदेवाःप्रसन्नासेपितामहपुरोगमाः ।।८९
वरदावरयोग्याच्चयद्यहभवतामता ।
तद्यांतुममपुत्रत्वंब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ।।९०

मैं यदि अपने स्वामी के समान किसी अन्य देवताको भी नहीं मानती तो मेरे इसी सत्यक बल से यह ब्राह्मण रोग- रहित होता हुआ पुनर्जीवन को प्राप्त हो ।४८। यदि मन वाणी और काया से मैंने स्वामी की नित्य आरा- धना कीहै तो यह ब्राह्मण जीवित हो ।४९। पुत्र बोला कि वह ब्राह्मण रोग- मुक्त युवा रूप होकर अपनी प्रभा से गृहको प्रकाशित करता हुआ उठ पड़ा ।८६। तब पुष्पों की वृष्टि और देव-वाद्यों की ध्वनि होने लगी और फिर अत्यन्त प्रसन्न हुए देवताओं ने अनुसूया से कहा ८८।देवगण बोले—हे कल्याणि ! तुमने देवताओं के महान् कार्य संपादन किया है, अब तुम सूर्योदय के कारण वर माँगो ।८८। सब देवता तुम्हें वर देना चाहते हैं. यह सुनकर अनुसूया ने कहा– हे देवगण ! यदि आप प्रसन्न होकर मुझे वर देना चाहते हैं तो मुझे यह वर दीजिये कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव मेरे पुत्र रूप में उत्पन्न हों ।८९-९०।

योगंचप्राप्नुयांभर्तृसहिताक्लेशमुक्तये ।
एवमस्त्वितिदेवास्तांब्रह्माविष्णुशिवादयः ।।९१
उक्त्वाजग्मुर्यथान्यायमनुमान्यतस्विनीम् ।
ततःकालेनहुतिथेद्वितीयोब्राह्मणसुतः ।।९२
स्वभार्यांभगवानत्रिरनसूयामपश्यत ।

ऋतुस्नातासुचःर्वंगींलोभनीयतमाकृतिम् ।।९३
समामोमनसाभेजेसमुनिस्तामनिन्दिताम् ।
तस्याभिपश्यतस्ताँतुविकारोयोभ्यजायत ।।९४
तमपोवाहपनस्तिर्यंगूर्ध्वंववेगवान् ।
ब्रह्मरूपंचशुक्लाभंपतमानंसमंततः ।।९५
सोमरूपंरजोरूपंदिशस्तंजगृर्च्दश ।
ससोमोमानसोजज्ञे तस्यामात्रेःप्रजापते ।।९६
पुत्रःसमस्ततत्वानायुराधारएवच ।
तुष्टेनविष्णुनाजज्ञे तात्रेयोममहात्मना ।।९७
स्वशरीरात्समुत्पन्नःसत्वोद्रिक्तोद्विजोत्तमः ।
दत्तात्रेयइतिख्यातःसोनसूयास्तनंपपौ ।।९८

और मैं अपने पति के सहित क्लेश से मुक्त होने के लिए योग को प्राप्त होऊँ । पुत्र बोला—यह सुनकर ब्रह्मा, विष्णु शिवादि देवगण 'ऐसा ही हो' कह कर ।९१। उस तपस्विनी का सम्मान कह कर चले गये, फिर कुछ समय व्यतीत होने पर ब्रह्माजी के द्वितीय पुत्र ।९२। भगवान अत्रि ने एक दिन अपनी सर्वाङ्ग सुन्दरी पत्नी को ऋतु से निवृत होकर स्नान करते देखकर ।९३। काम वशीभूत होने पर मानसिक संभोग से उनका तेज स्खलित हो गया ।९४। वायु ने उस तेजको वहनकर ऊर्ध्व और तिर्यक् भावमें प्रवाहित किया, गिरते समय उस तेजने दशों दिशाओं का अवलम्बन किया और उन ब्रह्मरूपी सोम पुत्र रूपमें अनुसूया सेउत्पन्न हुए ।९५-९६। संतुष्ट हुए भगवान् विष्णु ने सत्वगुण का अवलम्न कर के भी दत्तात्रेय के नाम से उत्पन्न होकर स्तन पान किया ।९७-९८।

विष्णुरेवावतीर्णोसौद्वितीयोत्रेःसुतोभवत् ।
सप्ताहात्प्रच्युतोमातुरुदरात्कुपितोयतः ।।९९
हैहयेंद्रमुपामुपावृत्तामपराध्यन्तमुद्धताम् ।
दृष्ट्वात्रौकुपितःसद्योदग्धुकामःसहैहयम् ।।१००
गर्भवासमहायासदुःखामर्षसमन्वितः ।
दुर्वासास्तमस युक्तोरुद्रांशःसौभ्यजायत ।।१०१

इतिपुत्रत्रयंनस्याजज्ञे ब्रह्मे शवैष्णवम् ।
सोमोब्रह्माभवद्विष्णुर्दत्तात्रेयोभ्यजायत ॥१०२
दुर्वसाःशंकरोजज्ञे वरदानादिदवौकसाम् ।
सोमःस्वरश्मिभिःशीतैर्वीरुदौषधिमानवान् ॥१०३
आप्याययन्दास्वर्गेवर्त्ततेसप्रजापतिः ।
दत्तात्रेयःप्रजाःपातिदुष्टदत्यनिबर्हणात् ॥१०४
शिष्टानुग्रहकृद्योगीशेश्वांशःसवैष्णवः ।
निर्दहत्यवमंतादंदुर्वासाभगवानजः ॥१०५
रौद्रभावंसमाश्रित्यदङ्मनोवाग्भिरुद्धतः ।
सोमत्वंजगतान्त्रिपुश्चक्रे प्रजापतिः ॥१०६

यह अत्रि के द्वितीय पुत्र हुए, जो क्रोध के कारण माता के उदर से सातवें दिन ही उत्पन्न हो गये थे ।१६। हैहयराज के उद्धत स्वभाव से अत्रमुनि को अपमान हुआ था इस अपराधको देखकर हैहय को भस्मकरने के प्रयोजन से ।१००। गर्भवास रूप क्लेश से अमर्ष युक्त हो तमोगुण का आश्रय करके रुद्र के अंश से दुर्वासाजी की उत्पत्ति हुई ।१७२। इस प्रकार ब्रह्मा, विष्णु और शिव तीनों ने ही अनुसूया के पुत्र रूप में जन्म लिया, ब्रह्मा ने चन्द्र के रूप में, विष्णु ने दत्तात्रेय के रूप में ।१०२ शिवजी ने दुर्वासा के रूप में जन्म धारण किया, वह प्रजापति चन्द्रमा अपनी शीतल किरणों से लता, औषधि, मनुष्य आदि को ।१०३। तृप्त करते हुए स्वर्ग में रहते हैं, विष्णु अंश रूप दत्तात्रेय दुष्टों का संहार ।१०४। और संतजनो के प्रति उपकार दिखाते हुए प्रजा पालन में लगे तथा भगवान् दुर्वासा ।१०५। रुद्रात्मक देह से नेत्र, मन और वाणी द्वारा अपमानकर्त्ता दुष्टोंको नष्ट करने लगे, फिर महर्षि अत्रि ने चन्द्रमा को सोमत्व का पद प्रदान करके प्रजापति बनाया ।१०६।

दत्तात्रेयोपित्रिषयान्योगस्थोददृशेहरिः ।
दुर्वासाःपितरंत्यक्त्वामातरंचोत्तमव्रतम् ॥१०७
उन्मत्ताख्यंसमाश्रित्यपरिबभ्राममेदिनीम् ।
मुनिपुत्रवृतोयोगीदत्तात्रेयोप्यसंगिताम् ॥१०८

अभीप्समानःसरसिनिममज्जचिरंविभुः ।
तथापितंमहात्मानमतीवप्रियदर्शनम् ।।१०६
तत्यजुर्नकुमारास्तेमरसस्तीरसंश्रयाः ।
दिव्येवर्षशतेपूर्णेयदातेनत्यजतितम् ।।११०
तत्प्रीत्यासरसस्तीरंसर्वेमुनिकुमारकाः ।
ततोदिव्यांबरधरांसुरूपासुनितंविनीम् ।।१११
नारीमादायकल्याणीमुत्ततारजलान्मुनिः ।
स्त्रीसंनिकर्षिण ंह्यतेपरित्यक्ष्यंतिमामिति ।११२
मुनिपुत्रास्ततोयोगेस्थास्यामितिर्विचितयन् ।
तथापितेमुनिसुतानत्यजन्तिदामुनिम् ।।११३

विष्णु अंश वाले दत्तात्रेयजी योगके अवलम्वन में दुर्वासा माता-पिता से पृथक् रहकर श्रेष्ठव्रत ।१००। पूर्वक उन्मत्त भाव पृथिवी में विचरण करने लगे । दत्तात्रेयजी के परमयोगी होने के कारण मुनियों के पुत्र इन्हें सदा घेरे रहते थे ।१०८। वह उनसे वचने के लिए वहुत दिनोंतक सरोवर में निमग्द रहे, परन्तु वे अत्यन्त प्रिय लगने वाले महात्मा थे ।१०९। इसलिए मुनिकुमारों ने उन्हें फिर भी न छोड़ाऔर वे सरोवर के तटपर ही रहते लगे, इस प्रकार सौ दिव्य वर्ष व्यतीत होने पर भी खड़े रहे ।११०। जव उनकी प्रीति वश मुनिकुमारों ने उन्हें न छोड़ा तो वे दिव्य वस्त्र धारण किये एक स्वरूपवती ।१११। नारीको साथ लेकर जल से निकले और सोचा कि मैं स्त्री के साथ हूँ इसलिए यह अव मुझे छोड़कर चले जायेंगे ।११२। और मैं भी संग रहितहोकर योग-परायण हो जाऊँगा, तो भी मुनिकुमारों ने उन्हें नहीं छोड़ा।११३।

ततःसहतयानार्यामद्यपानमथाकरोत् ।
सुरापानततंतेनसभार्यंतत्यजुस्ततः ।।११४
गीतवाद्यादिवनिताभोगसंसर्गदूषितम् ।
मन्यमानायहात्मानंतयासहवह्निष्क्रियम् ।।११५
नावापदोषयोगीशोवारुणींसपिवन्नपि ।
अंतावसायिवेश्मांतर्मातरिश्वास्पृशन्निव ।।११६

सुरांपिबन्सपत्नीकस्तपस्तेपेसयोगवित् ।
योगीश्वरश्चिंत्यमानोयोगिभिर्मुक्तिकांक्षिभिः ॥११७॥
कस्यचित्त्वथकालस्यकार्त्तवीर्योर्जुनोबलः ।
कृतवीर्येदिवंय तेमंत्रिभिःसपुरोहितैः ॥११८॥
पोरैश्चत्माभिषेकार्थसमाहूतोब्रवादिदम् ।
नाहंराज्यकरिष्यामिमत्रिणोनरकोत्तरम् ॥११९॥

तब वे उस स्त्री के साथ मद्य पीने लगे, सोचा कि स्त्री के सहित मद्य पीते देखकर चले जायेंगे ।११४। परन्तु फिर भी उन मुनिकुमारों ने उन्हें महात्मा जानकर नहीं छोड़ा ।११५। वह योगीश्वर दत्तात्रेयजी चाण्डाल के घर रहकर मद्यपान करके भी दूषित नहीं हुए ।११६। वे पत्नी सहित मद्यपान पूर्वक तप करने लगे, इस पर मुनिकुमार उनके चिन्तनीय रहे ।११७। कार्तिकेय के स्वर्ग-गमन के पश्चात् पुरवासी, मंत्री, पुरोहितादि ने मिलकर उसके पुत्र अर्जुन को राज्य पर अभिषिक्त करने के लिए आमन्त्रित किया, परन्तु उसने उत्तर दिया कि हे मन्त्रिगण ! राज्य का परिणाम नरक है, इसलिए मैं राज्य नहीं करूँगा ।११८-११९।

यदर्थंगृह्यतेशुल्कंतदनिष्पादयन्वृथा ।
पण्यानांद्वादशंभागंभूपालायवणिग्जतः ॥१२०॥
दत्वातमरथिभिर्मार्गेरक्षितोयातिदस्युतः ।
गोपाश्चघृततक्रादेःषड्भागंचकृपीवलाः ॥१२१॥
दत्वान्यद्भूभुजेर्दद्युर्यदिभागंततोधिकम् ।
पण्यादीनामशेषाणांवणिजीगृह्णतस्ततः ॥१२२॥
अग्निहोत्रंतपःसत्यंवेदानांचेवसाधनम् ।
आतिथ्यंवैश्वदेवंचइष्टतित्यभिधीयते ॥१२३॥
वापीकूपतडागानिदेवतत्यतनानिच ।
अन्नप्रदानमर्थिभ्यःपूर्त्तमित्यभिधीयते ॥१२४॥
इष्टापूर्त्तविनाशायतद्राज्ञश्चौहर्कमिणः ।
यदन्यैःपाल्यतेलोकस्तद्वृत्यंतरसंश्रितः ॥१२५॥
गृह्णतोबलिषड्भागंनृपतेर्नरकोध्रुवम् ।

निरूपितमिदंराज्ञःपूर्वैरणक्षवेतनम् ।।१२६।।

इस राज्य का ग्रहण करना अत्यन्त कठिन कार्य है, वेश्या व्यापारी राजाको आय का वारहवाँ भाग।१२०। देकर चोरों के भयसे बच जाते हैं,ग्वारिआ घृत या मठा आदि का छटवाँ अंशतथाकृषकभी सब धान्नोंका छटवाँ अंश।१२१। राजा को देते हैं, यदि अन्य को दे तो वह इनकी वस्तु का अधिक भाग लेगा।१२२। अग्निहोत्र, तप, सत्य वेद-साधन, आतिथ्य, वैश्वदेव कर्म यह इष्ट कहे जाते हैं।१२३। तथा कूप, वावडी, देवालय का निर्माण और धनेच्छकों को दान करना पूर्त्त कहा जाता है।१२४। अधिक कर लेने वाला राजा इष्टापूर्ति को नष्ट करने वाला कहाहै, तथा दूसरोंके द्वारा प्रजाका पालन कराता हुआ जो स्वयं अन्यवृत्तिकरता है।१२५। और षष्ठभाग ग्रहण करता है वह राजा अवश्य ही नरकको प्राप्त होता हैं, पंडितजनों ने प्रजा के रक्षणार्थ ही वेतन स्वरूप षष्ठभाग ग्रहण करने का विधान किया है। २६।

अरक्षंश्चोरतश्चोरस्तद्धनंनृपतेर्भवेत् ।
तस्माद्यदितपस्तप्त्वाप्राप्तोयोगित्वमोप्सितम् ।।१२७।।
भुवःपालनसामर्थ्ययुक्तएकोमहीपतिः ।
पृथिव्यामस्त्रभृन्नाद्याप्यहमेवर्द्धिसयुतः ।। २८।।
ततोभविष्येनात्मानकरिष्येपापभागिनम् ।
तस्यतन्निश्चयंज्ञात्वामंत्रिमध्यस्थितोब्रवीत् ।।१२९।।
गर्गोनाममहाबुद्धिर्मुनिर्भूपवयोतिगः ।
भक्त्यातुकृपयाविष्टस्तंतोषयितुमर्हति ।।१३०।।
यद्येवंकर्त्तुंकामस्त्वंराज्यंसम्यक्प्रशासितुम् ।
ततःश्रृणुष्वमे वाक्यंकुरुष्वचननृपात्मज ।।१३१।।
दत्तात्रयंमहात्मानंसह्यद्रोणीकृताश्रमम् ।
तमाराधयभूपालपातियोभुवनत्र .म् ।।१३२।।

यदि राजा उसे लेकर प्रजा-रक्षण न करे तो यह चोरी करना हुआ, इसलिए यदि मैं तप करके योगी होता हुआ।१२७। पृथिवी का पालन करके एकमात्र नराधिप वनसकूँ तो ही मैं राज्य करना चाहता हूँ।१२७।

अन्यथा आत्मा को व्यर्थ ही पाप मार्ग पर नहीं चलाना चाहता, अर्जुं का यह विचार सुनकर मंत्रियों के मध्य बैठे हुई ।१२९। वयोवृद्ध मुनिश्रेष्ट गर्ग भक्ति और कृपा के सहित राजपुत्र को प्रसन्न करते हुए बोले—हे राजपुत्र ! यदि आप भले प्रकार से राज्य शासन करना चाहते हैं तो, मेरी वात सुनकर वैसा कीजिए । १३१ । सह्याद्रि पर्वत पर निवास करने वाले त्रैलोक्य पालक दत्तात्रेयजीका आप आराधन कीजिये।१३२।

योगयुक्तं महात्मानंसर्वत्रसमदर्शिनम् ।
विष्णोरंशंजगद्धातुरवतीर्णंधरातले ।।१३३।।
यमाराध्यसहस्राक्षःप्राप्तवान्पदमात्मनः ।
हृतंदुरात्मभिर्दैत्यैजघानचदितेःसुतान् ।।१३४।।
कथमाराधितोदेवैर्दत्तात्रेयःप्रतापवान् ।
कथंवापहृतदैत्यैरिद्रत्वंप्रापवासवः ।।१३५।।
दैत्यानांदेवतानांचयुद्धमासीत्सुदारुणम् ।
दैत्यानामीश्वरेजंभेदेवानांचशचीपतौ ।।१३६।।
तेषांतुयुध्यमानानांदिव्यःसंवत्सरोगतः ।
ततोदेवाःपराभूतादैत्याविजयनोऽभवन् । १३७।।
विप्रचित्तिमुखैर्देवादानवैस्तेपराजिताः ।
पलायनकृतोत्साहनिरुत्साहाद्विषज्जये ।।१३८।।
बृहस्पतिमुपागम्यदैत्यसैन्यवधेप्सवः ।
अमंत्रयंतसहितावालखिल्यैःसहर्षिभिः ।।१३९।।
विकृताचंरणंभक्त्यासंतोषयितुमर्हथ ।।१४०।।

जो वे परमयोगी, परमभाग समदर्शी तथा विश्व रक्षणार्थं विष्णु-अंशसे पृथिवी पर अवतीर्णहुए हैं ।१३३। जिनकी आराधना करके हीं सहस्राक्ष इन्द्र को दैत्यों द्वारा छीने हुए अपने पद की प्राप्ति हुई है ।१३४। अर्जुन ने कहा-देवताओं ने दत्तात्रेयजी को आराधना किस प्रकार की थी और इन्द्र को दैत्यों द्वारा छीने हुए अपने पद की प्राप्ति कैसे हुई थी ।१३५। गर्ग बोले-किसी समय भयंकर देव सुर संग्राम हुआ था, उससमय जम्भदैत्यों

के और इन्द्र देवताओं के अधिपति थे ।१३६। युद्ध करते हुए उन्हें एक दिव्य संवत्सर व्यतीत हो गया और अन्त में देवताओं की पराजय तथा दैत्यों की विजय हुई । १३७ । तब विप्रचित्ति आदि प्रमुख दानवों से हराते हुए देवगण इधर उधर भागने लगे और विजय के प्रति निरुत्साहित होकर । १३८ । दैत्यों को मारने की इच्छा से बृहस्पतिजी के पास जाकर बालखिल्य ऋषि सहित मन्त्रणा करने लगे । १३९ । बृहस्पतिजी ने कहा हे देवगण ! अब तुम विकृत आचरण वाले अत्रिपुत्र दत्तात्रेय को भक्ति पूर्वक सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करो ।१४०।

सर्वोदै त्यविनाशायवरदोदास्यतेवरम् ।
ततोहनिष्यथसुराःसहितान्दैत्यदानवान् ॥१४१॥
हंतुं शक्तानसदेहोदत्तात्रेयप्रसादतः ।
इत्युक्तास्तेतदाजग्मुदत्तात्रेयाश्रमंसुराः ॥१४२॥
ददृशुश्चमहात्मानंक्षांतंलक्ष्म्यासमन्वितम् ।
उद्गीयमानंगन्धर्वैःसुरापानरतंमुनिम् ॥१४३॥
तेयस्यगत्वाप्रणतिंचक्रुःसर्वार्थसाधनीम् ।
भक्त्यातस्योपजह्रुश्चमद्यपस्यसुरादिकम् ॥ ४४॥
तिष्ठंतमनुतिष्ठंतियांतंयाँतिदिवौकसः ।
अराधयामासुरधःस्थितास्तिष्ठंतमासने ॥१४५॥
सप्राहदेवान्प्रणतान्दत्तात्रेयकिमिष्यते ।
मत्तोमवद्भियेनेयंशुश्रूषक्रियतेमम ॥१४६॥

दत्तात्रेयजी संतुष्ट होकर तुम्हें दैत्योंका विनाश करने वाला वर देंगे, उस समय तुम संगठित होकर दैत्यों और दानवोंके संहार में समर्थ होंगे, ।१४१। गर्ग जी ने कहा-बृहस्पति द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर देवगण दत्तात्रेयजी के आश्रम में गये ।१४२। उन्होंने वहाँ जाकर देखा कि वह महात्मा लक्ष्मीजी सहित मद्य-पानमें रत है तथा उनके समीप गन्धर्वगण गान कर रहेहैं।१४ । उनके निकट जाकर देवगण सवार्थसिद्ध करनेवाली स्तुति करते हुए उनके लिए भक्ष्य, भोज्य तथा मालादि एकत्र करने लगे । १४४ । वह बैठते तो यह भी बैठते, वह चलते तो यह भी चलते, इस

प्रकार उनके आसन के नीचे भाग में बैठकर देवताओं ने उनका आराधन किया ।१४५। तब दत्तात्रेयजी ने उन देवताओं से कहा-तुम मेरी इस प्रकार सेवा कर रहे हो, इसलिए बताओ कि क्या चाहते हो ? ।१४६।

दानवैर्मुनिशार्दूलजभाद्यैर्भूर्भुवादिकम् ।
हृतत्रैलोक्यमाक्रम्यक्रतुभागाश्चकृत्स्नशः ।।१४७
तद्वधेकुरुवुद्धित्वंपरित्राणायनोनघ ।
त्वत्प्रसादादभीप्सामःपुनःप्राप्तुंत्रिविष्टपम् ।।१४८
मद्यासक्तोहमुच्छिष्टोनचंवाहजितेन्द्रियः ।
कथमिच्छथमत्तोपिदेवाःशत्रुपराभवम् ।।१४९
अनघस्त्वंजगन्नाथनलेपस्तवविद्यते ।
विद्याक्षालनशुद्धांतर्निविष्टज्ञानदीधिते ।।१५०
सत्यमेतत्सुराविद्याममास्तिसमदर्शिनः ।
अस्यास्तुयोषितःसंगादहमुच्छिष्टतांगतः ।।१५१
स्त्रीसंभोगोतिदुःखायसातत्येनोपसेवितः ।
एवमुक्तास्ततोदेवीःपुनर्वचनमब्रुवन् ।।१५२
अनघेयंमुनिश्रेष्ठजगन्मातानदुष्यति ।
यासाविद्यातवविभोसर्भज्ञस्यहृदिस्थिता ।।१५३
ययांशुमालासूर्यस्यगिजचंडालसंगिनी ।
नदुष्यतिजगन्नाथतथेयवरवर्णिनो ।।१५४

देवताओं ने कहा-हेमुनिशार्दूल! जम्भादि दानवों ने आक्रमण करके भूर्भुवादि तीनों लोकों और सम्पूर्ण यज्ञ भाग को हर लिया है ।१४७। आप उनके संहारमें मन लगा कर हमारी रक्षा करिये, आपकी कृपा से हम स्वर्ग को पुनः प्राप्त करें यह हमारी इच्छा है।१४८। दत्तात्रेयजी ने कहा-हेदेवगणों! मैं मद्यपान रत, अजितेन्द्रिय और अपवित्रहूँ, तो मेरे द्वारा शत्रुओं के जीते जाने की आशा तुम कैसे कर रहे हो ? ।१४९। देवताओं ने कहा-हे प्रभो ! आपने विद्या से स्वच्छ हुए अन्तःकरण में ज्ञानरूपी रश्मियों को प्रविष्ट किया है, इसलिए आप पाप-रहित एवं विषयों से अलिप्त है ।१५०। दत्तात्रेयजी ने कहा-हे देवगण ! मुझ में विद्या तो है तथा मैं

समदर्शी भी हूं,परन्तु स्त्री-संसर्ग से अपवित्र हो गया हूँ, ।१५१। क्योंकि स्त्री-संसर्ग अत्यन्त दोष की खान है, यह सुनकर देवताओं ने पुनः कहा ।१५२। देवता बोले—हे निष्पाप ! मुनिवर ! जो विद्या तुम्हारे सर्वज्ञके हृदयमें स्थित है,उससे यह दोष को प्राप्त नहीं होती है ।१५३। जैसे सूर्य रश्मियाँ चाण्डालादि के संसर्ग दोष से दूषित नहीं होती,वैसे ही यह जगत्त्राता आपके संसर्ग से दूषित नहीं हो सकती ।१५४।

एवमुक्तास्ततोदेवैर्दत्तात्रेयोब्रवीदिदम् ।
प्रहस्यत्रिदशान्सर्वान्यद्येतद्भवतांमतम् ॥१५५
तदाहूयासुरान्सर्वान्यन्युद्धायसुरसत्तमाः ।
इहानयतमद्दृष्टिगोचरंमाविलंब्यताताम् ॥१५६
मदहष्टिपातहुतभुक्प्रक्षोणवलतेजसः ।
येननाशमशेपास्तप्रयांतिममदर्शनात् ॥१५७
तस्यतद्वचनस्तुत्वांदेवैर्दैत्यामहाबलाः ।
आयवाहसमाहूताजग्मुर्देवगणाश्रमम् ॥१५८
तेहन्यमानादंतेर्यैर्देवाःसर्वेभयातुराः ।
दत्तात्रेयाश्रमंजग्मुःसमस्ताःशरणार्थिनः ॥१५९
तमेवविविशुर्दैत्याःकालयतोदिवौकसः ।
ददृशुस्तंमहात्मानंदत्तात्रेयंमदालसम् ॥१६०
वामपार्श्वस्थितामिष्टामशेषजगनःशुभाम् ।
भार्याचास्यमुचार्वंगीलक्ष्मीमिदुनिभाननाम् ॥१६१

गर्गजी ने कहा—देवताओं के यह वचन सुनकर दत्तात्रेयजी ने कुछ हँसते हुए कहा—यदि तुम्हारा ऐसा ही विचार है ।१५५। तो तुम सब युद्ध के लिए असुरों को यहाँ बुलाकर मुझे दिखाओ, इसमें देर मत करो ।१५६। क्योंकि मेरे दृष्टिपात रूप अग्नि से उनका तेज, वल क्षीण हो जायगा और वे तुरन्त मृत्यु को प्राप्त हो जाँयगे ।१५७। गर्गजी ने कहा—उसके ऐसे वचन सुनकर देवताओंने असुरों को युद्धके लिए आह्वान किया और महाबली असुरोंने आकर क्रोध पूर्वक देवताओं पर आक्रमण किया ।१५८।तब दानवों की मार से भय भीत हुए देवता दत्तात्रेयजी के आश्रम

में शरण पाने के लिए गये ।१५६। दैत्य भी देवताओं को नष्ट करने के विचार से उसी आश्रम में पहुँचे और उन्होंने वहाँ मद से मत्त हुए दत्तात्रेयजी को देखा ।१६०। तथा उनके वामपार्श्व में स्थित सम्पूर्ण इष्टों के देने वाली उनकी भार्या लक्ष्मीजी को भी उन्होंने देखा ।१६१।

नीलोत्पलाभनयनांपीनश्रोणिपयोधराम् ।
सुदतींमधुराभाषांसवयोषित्गुणैर्युताम् ।।१६२
दृष्ट्वाग्रस्तदादैत्याःसाभिलाषमनोभवाः ।
नशेकुरुद्धतादैत्यामनसावोढ्ढमातुराः ।।१६३
त्यक्त्वादेवान्स्त्रियंतांतुहर्तुं कामाहातौजसः ।
प्रेरितास्तेनपापेनह्यासक्तास्तेब्रुवन् ।।१६४
स्त्रीरत्नमेतत्त्रैलोक्यसारंचेद्धिदितंभवेत् ।
कृतकृत्यास्ततःसर्वेइतिनोभावितंमनः ।।१६५
तस्मात्सर्वेसमुत्क्षिप्यशिबिकायांसुरार्दनाः ।
आरोप्यस्वमधिष्ठाननयामइतिनिश्चिताः ।।१६६
सानुरागास्ततस्तेतुमुनेरंतिकमागमन् ।
तस्यतांयोषितंसाध्वीसमुत्क्षिप्यस्मरातुराः ।।१६७
शिबिकायसमारोप्यत्तहितादैत्यदानवाः ।
शिरःसुशिबिकांकृत्वास्वस्थानाभिमुखाययुः ।।१६८

दैत्यगण उस नीलपद्म के समान नेत्र वाली पीनस्तनी सर्वांगसुन्दरी नारी को ।१६२। देखकर उसको ग्रहण करने की इच्छा करते हुए कामावेग से अधीर हो उठे ।१६३। तथा देवताओं को छोड़कर उस नारी को हरण करने की इच्छा पूर्वक पाप से मोहित हुए कहने लगे !१६४। यह स्त्री-रत्न त्रैलोक्य का सार है, हम इस नारी रत्न को लेकर ही कृतकार्य होंगे ।१६५। इसलिए हे दानवो ! इस विषय में चिन्ता न करो, हम इसे पालकी में बैठाकर अपने घर ले चलेंगे ।१६६। गर्गजी ने कहा—उन दैत्यों ने परस्पर इस प्रकार परामर्श किया और दत्तात्रेयजी की पत्नीको उठा कर ।१६७। पालकी में चढ़ा लिया, फिर दैत्य-दानव मिलकर, पालकी को उठा कर अपने स्थान की ओर चल दिये ।१६८।

दत्तात्रेयस्तथादेवान्प्रहस्येदमथाब्रवीत् ।
दिष्टयाचसतदैत्यामामेषालक्ष्मीःशिरोगता ।
सप्तस्थानान्यतिक्रम्यलयमन्यमुपेष्यति ॥१६९
कथयस्वजगन्नाथकेषुस्थानेष्ववस्थिता ।
पुरुषस्यफलंकिवाप्रयच्छत्यथनश्यति ॥१७०
नृणांपादस्थितालक्ष्मीर्निलयंसंप्रयच्छति ।
सक्थ्नोश्चसंस्थितावस्त्रंरत्नंनानाविधंवसु ॥१७१
कलत्रदागुह्यसंस्थाक्रोडस्थापत्यदायिनी ।
मनोरथान्ययरयतिपुरुषाणांहृदिस्थिता ॥१७२
लक्ष्मीलक्ष्मींवतांश्रेष्टाकंठस्थाकंठभूषणम् ।
अभीष्टवधुदारैश्चतथाश्लेषपवासिभिः ॥१७३
मृष्टान्नंवाक्यलावण्यमाज्ञामविरथांतथा ।
मुखस्थिताकवित्वंचयच्छत्युदधिसंभवा ॥१७४
शिरोगतासंत्यजतिततोन्यंयातिचाश्रयम् ।
सेयंशिरोगतादैत्यान्परित्यजतिसाप्रतम् ॥१७५

फिर दत्तात्रेयजी ने कुछ हँस कर देवताओं से कहा हे देवगण ! तुम्हारा भाग्य फिर गया, सप्त स्थान में अतिक्रम करके लक्ष्मी दानवों के मस्तक पर चढ़ गयी है, इसलिए यह उन्हें छोड़ कर दूसरे के पास जायगी ।१६९। देवताओं ने पूछा-हे प्रभो लक्ष्मीजी के किस-किस स्थान पर जाने से हित अथवा अहित होता है, यह हमें बताइये ।१७०। दत्तात्रेयजी बोले—मनुष्य के पैर में लक्ष्मी रहे तो गृह प्रदान करती है, सक्थिनी अस्थि में रहे तो वस्त्र और विभिन्न प्रकार के रत्न देती है, गुह्य स्थान में रहे तो स्त्री देती हैं ।१७१। गोद में रहे तो पुत्र देती है तथा हृदय में निवास करे तो सभी मनोरथों को पूर्ण करती है ।१७२। यदि लक्ष्मी का वास कंठ में हो तो कंठ भूषण प्राप्त होता तथा प्रवासी प्रियतम, वधु या स्त्री से मिलाप होता है ।१७३। यदि मुख में लक्ष्मी स्थित रहे तो श्रेष्ठ वाक्य लावण्य और कवित्व की प्राप्ति होती तथा आज्ञा सफल होती है ।१७४। यदि मस्तक में स्थित हो तो उसका त्याग कर अन्य का आश्रय करती है, आज वही लक्ष्मी इन दानवों के

शिर पर चढ़ गई .है इसलिए इनका परित्याग कर देगी ।१७५।

प्रगृह्यास्त्राणिवध्यन्तांतस्मादेतेसुरारयः ।
नभेतव्यंभृशत्वेतेमयानिस्तेजसः कृताः ॥१७६
परदारावमर्शाच्चदग्धपुण्याहतौजसः ।
तस्मादेतेभिहन्यंतांभवद्भिरविशंकितैः ॥१७७
ततस्तेविधैरस्त्रैर्वध्यमानाःसुरारयः ।
शिरःसुलक्ष्म्याप्य.क्रांताविनेशुरितिनःश्रुतम् ॥१७८
लक्ष्मीश्चोत्पत्यसंप्राप्तादत्तात्रेयमहामुनिम् ।
स्तूयमानासुरैःसेंद्रैर्दैत्यनाशान्मुदान्वितैः ॥ ७९
प्रणपत्यततोदेवादत्तात्रेयमहामुनिम् ।
जयकृष्णजगन्नाथदैत्यांतकहरप्रभो ॥१८०
नारायणच्युतानंतवासुदेवाक्षयाजर ।
त्वत्प्रसादात्सुखक्ष्मोराज्यसंपज्जनादन ॥१८१
शार्ङ्गधन्वंश्चक्रपाणेभक्तानांनित्यवत्सल ।
इतिस्तुत्वानाकपृष्ठंयथापूर्वंगताःसुराः ॥१८२
तथात्वमापराजेद्रयादिच्छसियथेप्सितम् ।
प्राप्तमैश्वयमतुलतूणमाराधयस्वतम् ॥१८३

हे देवगण ! अब तुम भय त्याग कर शस्त्र उठाओ और उन्हें मारो, क्योंकि मेरे दृष्टिपात से तेज रहित हो चुके हैं ।७६। पर नारी के साथ बलात्कार से पुण्य भस्म होता है और पराक्रम की हानि होती है, इस लिए अब तुम शंका रहित होकर उनका संहार कर डालो ।१८७। गर्गजो बोले इसके पश्चात् देवगण तीक्ष्णअस्त्र-शस्त्रोंकेद्वारा असुरोंका संहार करने लगे, इस प्रकार लक्ष्मी को सिर पर चढ़ाने से असुरों का नाशहोगया ऐसा सुना गया है ।१७८।फिर लक्ष्मीजी उनके मस्तक से उतर कर दत्तात्रेयजी के ही पास आगई और दैत्यों के नष्ट होने से प्रसन्नता को प्राप्त हुए सब देवता उनकी स्तुति करने लगे । ७९। फिर दत्तात्रेयजी को प्रणाम पूर्वक हे कृष्ण ! हे जगन्नाथ ! दैत्यों के नाशक ! हे हर हे ! प्रभो ! आपकी जय हो । १८०। हे नारायण. हे अच्युत ! हे अनन्त हे वासुदेव ! हे

अक्षय ! हे अजर ! हे जनार्दन ! आपके ही प्रसाद से हमें सुख, लक्ष्मी और राज्य सम्पदा की प्राप्ति हुई हैं।१८ । हे शार्ङ्ग धनुधारी [हे चक्रपाणि ! आप सदैव भक्तों पर कृपा करते हैं,इस प्रकार स्तुति करके जहां से आये थे वही लौट गये ।१९२। इसलिए हे राजेन्द्र ! यदि तुम्हें अतुल ऐश्वर्य को कामना है, तो उन दत्तात्रेय जी की शीघ्र ही आराधना करो ।१८६।

१७—दत्तात्रेय उपाख्यान

इत्यृषेर्वचनंश्रुत्वाकार्त्तवीर्योनरेश्वरः ।
दत्तात्रेयाश्रमंगत्वातभक्त्यासमपूजयत् ।।१
पादसंवाहनाद्येनमर्घ्याहरणेनच ।
स्रक्चदनागंधां फलाद्यानयननेनच ।।२
तथान्नसाधनैस्तस्यउच्छिष्टापोहनेनच ।
परितुष्टोमुनिर्भूपंतमुवाचतथैवसः ।।३
यथैवोक्ताःपुरादेवामद्यभोज्यादिकुत्सनम् ।
स्त्रीचेयममपाश्वस्थेत्येतद्भोगानुकुत्सितः ।।४
सदंवाहनमामेवमुपरोद्धुंत्वमर्हसि ।
अशक्तमुपकारायशक्तमाराधयस्वभोः ।।५
तेनैवमुक्तोमुनिनास्मृत्वागर्गवचश्चतत् ।।६
प्रत्युवाचप्रणयैनंकार्त्तवीर्यस्ततोर्जुनः ।
देवस्त्वहिपुराणोयःस्वांमायांसनुपाश्रितः ।।७

पुत्र बोले—राजा कार्तवीर्य जो ने गर्गजी की बात सुनकर दत्तात्रेयजी के आश्रम में जाकर भक्ति पूर्वक उनका पूजन किया । १ । चरण संवाहन करके अर्घ्य, पुष्प माला, सुगंधि,जल तथा चन्दनादि उनके निमित्त प्रस्तुत किया ।१। इसी प्रकार अन्नादि लाते और उनका उच्छिष्ट स्वयं भोजन करते, यह देखकर सन्तुष्ट हुए मुनि उनसे उसी प्रकार बोले ।८। जैसे पहिले देवताओं के प्रति अपने निन्दित कर्म कहे थे ऋषि ने कहा—मेरे पास जो यह स्त्री है, मैं इसमें आसक्त रहता हूं ।६। हे

राजन इस प्रकार सदा निन्दित कर्म करता रहने वाला मैं उपकार में असमर्थ हूं तो मेरी सेवा से तुम्हें क्या लाभ होगा ? इसलिए समर्थ का ही आराधन करो ।३। पुत्र बोला- यहसुन कर तथा गर्ग मुनि के वचनों को याद करके ।६। कार्त्तवीर्य ने दत्तात्रेयजी को प्रणाम किया और कहा—हे प्रभो ! आप मुझे इस प्रकार मोहित क्यों करते हैं ? आप अपनी माया से युक्त हैं ।७।

अनघस्त्वंतथैवेयंदेवीसवभवारणिः ।
इत्युक्तःप्रीतिमान्देवोभूयस्त्वप्रत्युवाचह ॥८
कार्त्तवीर्यमहावीर्यवशीकृतमहीतलम् ।
वरंवृणीष्वगुह्यमेत्वयानामयदीरितम् ॥९
तेनतुष्टिःपाराजातात्वय्यद्यममपार्थिव ।
येचमांपूजयिष्यंतिगंधमाल्यादिभिर्नराः ॥१०
लक्ष्म्यासमेतर्गीतैश्चब्राह्मणानांतथाच्चचंनैः ॥११
वाद्यैमंनोरमैर्वीणावेणुशंखादिभिस्तथा ।
तेषामहंपरांपुष्टिपुत्रदारधनादिकीम् ॥१२
प्रदास्याम्यवधूतश्चहनिष्याम्यवमन्यताम् ।
सत्वंवरयभद्रंमेवरंयं मनसेच्छसि ॥१३
प्रसादसुमुखस्तेहंगुह्यनामप्रकीर्त्तनात् ।
यदिदेवप्रसन्नस्त्वंतत्प्रयच्छर्द्धिमुत्तमाम् ॥१४
यथत्प्रजांपालयेयंनचाधर्ममवाप्नुयाम् ।
परानुस्मरणंज्ञानमप्रतिद्वंद्वतांरणे ॥१५

इसलिए आप निष्पाप हैं यहदेवी सम्पूर्ण विश्व को अरणि के समान होने से पाप रहित है, राजा के इस प्रकार कहने पर दत्तात्रेयजी ने प्रसन्न होकर कहा-हेभूमंडल कोवश मेंकरने वालेवाले कार्त्तवीर्यार्जुन! वरमांगो तुमने मेरे गुप्त नामों का उच्चारण किया है ।९। इससे मैंअत्यन्त संतुष्ट हूं तथा जो गंधमाला आदि के द्वारा मेरी पूजा करते हैं ।१०। तथा सब प्रकार सन्तुष्ट करते हुए पूजा के वाद्य ।११। वीणा, वेणु, शंखादि बजाते हैं उनको मैं स्त्री, पुत्र और धनादि के प्रदान द्वारा परम संतोष देता

हूँ ।१२। तथा जो अवधूत कहकर मेरा तिरस्कार करते हैं उनका हलन करता हूँ, इसलिए तुम्हारी इच्छा होतो मांगो, तुम्हारा मंगल हो ।१३।। तुमने मेरे गुणगणों का कीर्तन किया है, इसलिए मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। अर्जुन बोला यदि आप प्रसन्न हुए हैं तो मुझे ऐसी श्रेष्ठ ऋद्धि दीजिये ।१४। जिससे मैं सहज ही सम्पूर्ण प्रजा का पालन करता हुआ पाप-भोगी न बनूँ और शत्रुओं के अनुसरण में मुझे ज्ञान प्राप्त हो तथा रणक्षेत्र में कोई भी मेरा सामना न कर सके ।१५।

सहस्रमाप्तुमिच्छामिबाहूनांलघुतागुणम् ।
असंगागतय:संतुशैलाकाशाम्बुभूमिषु ।।१६
पातालेषुचसर्वेषुवधश्चाप्यधिकान्नरात् ।
तथामार्गप्रवृत्तस्यसंतुसन्मार्गदेशिका: ।।१७
सतुमेतिथय:श्लाघ्या।वित्तंवान्यत्तथाक्षयम् ।
अनुष्टद्रव्यताराष्ट्रेममानुस्मरणेनच ।।१८
त्वयिभक्तिश्चदेवास्तुनित्यमव्यभिचारिणी ।
यएतेकीर्तिता:सर्वेतान्वत्ससमाप्स्यसि ।।१९
मत्प्रसादात्प्रभविताचक्रवर्तित्वमैश्वरम् ।
प्रणिपत्यततस्तस्मैदत्तात्रेयायसोर्जुन ।।२०

मैं लघुत्व गुण से युक्त सहस्रबाहु हो जाऊँ, जल, थल, पर्वत, आकाश आदि सब स्थानों में निर्बाध तथा श्रेष्ठ मनुष्य के हाथ से मृत्यु की अभिलाषा है, में सन्मार्ग मे प्रवृत्त व्यक्तियों को सन्मार्ग दिखाने की इच्छा करता हूँ। १६-१ । अक्षय धन-दान एवं आदित्य लाभ करूँ मेरा नाम उच्चारण करने वाला धन हीन न रहे ।१८। आपके पदपद्मों में सदा मेरी भक्ति रहे,दत्तात्रेयजी ने कहा- हे वत्स ! तुम्हारा कहा हुआ सभी होगा ।१९। मेरे प्रसाद से तुम चक्रवर्ती नरेश होगे पुत्र बोला— फिर अर्जुन ने दत्तात्रेयजी को प्रणाम किया ।२०।

आनीयप्रकृती सम्यगभिषेकमगृहणत ।
आगताश्चापिगंधर्वास्तथैवाप्सरसांगणा: ।।२१
ऋषयश्चवसिष्ठाद्यामेर्वाद्या:पर्वतास्तथा ।

गंगाद्याःसरितःसर्वाःसमुद्रारत्नसंभवाः ।।२२
प्लक्षाद्याश्चतथावृक्षदेवाश्वैसवादयः ।
वासुकिप्रमुखानागाअभिषेकार्थमागताः ।।२३
ताक्ष्याद्याःपक्षिणश्चैवपौराजानपदास्तथा ।
संभाराःसंभृताःसर्वदत्तात्रेयप्रसादतः ।।२४
अथासंज्वाल्यतैर्वह्निदेवैर्ब्रह्मादिभिःसहः ।
नारायणेनाभिक्तोदत्तात्रेयस्वरूपिणा ।।२५
समुद्रैश्चनदीभिश्चऋषिभिश्चाभिषेचितः ।
अघोषयामासतदास्थितोराज्येसहैहयः ।।२६
दत्तात्रेयात्परामृद्धिमवाप्यातिबलान्वितः ।
अद्यप्रभृतियःशस्त्रंमामृतेन्योगृहीष्यपि ।।२७
हृतव्यःसमयादस्युःपरहिंसारतोपिवा ।
इत्याज्ञप्तेनतद्राज्येकश्चिदायुधभृन्नरः ।।२८

सम्पूर्ण प्रजा को बुलाकर अधिषेक कराया, उस समय गंधर्व और अप्सरायें ।२१। वसिष्ठादि ऋषि सुमेरु आदि पर्वत, गंगादि सब नदीं और जल से रिपुर्ण सभी समुद्र ।२२। प्लक्षदि सब वृक्ष, इन्द्रादि सब देवता, वासुक्यादि सब नाम ।२३। गरुडादि पक्षी नगर और नगरवासी तथा सभी लोक दत्तात्रेयजी के प्रसाद से सम्पूर्ण सामग्री सजाये हुए अभिषेकार्थ वहाँ उपस्थित हुए ।२४। ब्रह्मादि देवताओं ने अग्नि को प्रजवलित किया तथा दत्तात्रेय रूपी भगवान् नारायण से अभिषेक किया ।२५। फिर समुद्र और ऋषियों ने अभिषेक किया और हैं यह राज्य में स्थित हो गये' ऐसी घोषणा सर्वत्र की गई ।२६। दत्तात्रेयजी के प्रसाद से अतुलित ऐश्वर्य को प्राप्त हुए महाबली हैहय ने राज्य में प्रतिष्ठित होकर आज्ञा दी कि अब मेरे अतिरिक्त जो कोई भी अस्त्र धारण करेगा ।२७। वह हिंसक या दस्यु मेरे द्वारा मारा जायगा । ऐसी राजाज्ञा सुनकर कोई भी अस्त्रधारी न रहा ।२८।

तमृतेपुरुषव्याघ्रंबभूवोरुपराक्रमम् ।
सएवग्रामपालोभूत्पशुपालःसएवच ।।२९

क्षेत्रपालःसएवासीद्द्वितीयोनचरक्षिता ।
तपस्विनांपालयितासार्थपालश्चसोभवत् ॥३०
दस्युव्यालाग्निशस्त्रारिभयेष्वब्धौनिमज्जताम् ।
अन्यासुचैवमग्नानामापत्सुपरवीरहा ॥३१
सएवसंस्मृतःसद्यःसमुद्धर्त्ताभवन्नृणाम् ।
कनष्टद्रव्यताचासीत्तस्मिञ्छासतिपार्थिवे ॥३२
तेनेष्टं बहुभिर्यज्ञैःसमाप्तवरदक्षिणैः ।
तपश्चतप्तुं सुमहत्संग्रामेवातिचेष्टितम् ॥३३
तस्यर्द्धिमहिमानं चदृष्ट्वाप्राहांगिरामुनिः ।
नतूनकार्त्तवीर्यस्यगतियास्यंतिपार्थिवाः ॥३४
यज्ञैर्दानैस्तपोभिर्वासंग्रामेचातिचेष्टितैः ।
दत्तत्रैयाद्दिनेयस्मिसंप्राप्तेर्दिर्नरेश्वर ॥३५

सम्पूर्ण पृथ्वी के एक कार्त्तवीर्यार्जुन ही राजा हुए, उस समय वही ग्राम-पालक एवं पशु-पालक थे ।२९। वही शेष ब्राह्मण और तपस्वियों के रक्षक तथा अर्थ पालक हुए ।३०। वही राजा चोर, सर्प, अग्नि शत्रु, भयंङ्कर समुद्र या विभिन्न विपत्तियों में पड़े मनुष्योंकी रक्षा करने वालेहुए ।३१। उनके नाम के उच्चारण मात्र से सब की विपत्ति दूर होने लगी और उनके शासन कालमें कोई धनहीन न रहा।३२। उन्होंनेअनेक प्रकार के दक्षिणामय यज्ञ पूर्ण किये तथा वे महान् तप का आचार करने वाले और युद्ध में अजेय हुए ।३३। उसकी ऐसी समृद्धि देखकर अंगिरा मुनि ने कहा था कि 'इनके समान कोई दूसरा राजा नहीं हुआ ।३४। तथा यज्ञ, दान, तप या युद्ध प्रसङ्ग में कोई इनके समान नहीं होगा वे जब अतत्रेयजी से अतुलित ऐश्वर्यवान् हुए हैं। ३५।

तस्मिन्तस्मिन्दिनेयागदत्तात्रेयस्यसोकरोत् ।
तथैवचप्रजाःसर्वास्तस्मिन्नहनिभूपते ॥३६
तस्यर्द्धिपरमांदृष्ट्वायागचक्रुःसमाधिना ।
इत्येततस्यमाहात्म्यंदत्तात्रेयस्यधीमतः ॥३७
विष्णोश्चराचरगुरोरनंतस्यमहात्मनः ।

प्रादुर्भावाःपुराणेषुकथ्यतेशार्ङ्गधन्वनः । ३८
अनंतस्याप्रमेयस्यशंखचक्रगदाभृतः ।
एतस्यपरमंरूपंयश्चिन्तयतिमानवः ॥३९
ससुखीसचसंसारात्समुत्तीर्णोचिराद्भवेत् ।
सदैववैष्णवानांचश्त्याहंसुलभोस्मिभोः ॥४०
पत्रपुष्पफलेनाहंपूतिभोमोक्षदोस्मिभवे ।
इत्येवंयस्यवैवाचस्तंकथंनाश्रयेज्जनः ॥४१
अधर्मस्यविनाशायधर्मार्थधारार्थमेवच ।
अनादिनिधनोदेवाकरोतिस्थितपालनम् ॥४२
ततैवजन्मचाख्यांतमालर्ककथयामिते ।
यथाचयोगःकथितोदत्तात्रेयेणतस्यवै ।
पितृभक्तस्यराजर्षेरलर्कस्यमहात्मनः ।४३

उस दिन उन्होंने दत्तात्रेय का यज्ञ किया प्रजा ने भी अपने राजा की ।३६। परम ऋद्धि को देखकर उसी दिन यज्ञ किया, यह दत्तात्रेयजी का माहात्म्य है। ३। उन चराचर के गुरुअनन्त,शार्ङ्गधर,शख, चक्र, गदाधारी दत्तात्रेयी रूपी भगवान् नारायणकी उत्पत्ति सब पुराणोंमें विभिन्न प्रकार से कही गई है,नारायण के इस रूप का जो मनुष्य चिन्तन करते हैं ।३८। वे सुखी होते हुए तुरन्त संसार रूपी पाश से मुक्त हो जाते हैं उनकी प्रतिज्ञा है कि हैं वैष्णवो ! भक्ति के द्वारामैं तुम्हारे लिए सदैव सुलभ हूँ,मैंपत्र,पुष्प,फल के द्वारा पूजित होकर मोक्ष देता हूँ' ऐसे भगवान् की शरण में मनुष्य क्यों न जांय ।४०-४१। वह स्नादि देवता धर्माचरण और अधर्म-विनाश के लिए स्थिति और पालनादि करते हैं । ४२ । हें पिताजी ! अब आप से अलर्क ब्राह्मण का वृतान्त कहता हूँ, वे महात्मा अलर्क संसार प्रसिद्ध राजर्षि और पितृ-भक्त थे ।४३।

१८—कुवलयास्व उपाख्यान

प्रापवभूपमहावीर्यंशत्रुजित्नामपार्थिवः ।

तुतोषयस्ययज्ञेष सोमावाप्त्यापुरंदरः ।.१
तस्यात्मजोमहावीर्योवभूवारिविदारणः ।
नाम्नाऋतुध्वजख्यातःसर्वलक्षणसंयुतः ॥२
वुद्धिविक्रमलावण्येर्गुरुशुक्राश्विनांसमः ।
ससमानवयोबुद्धिसत्वविक्रमचेष्टितैः ॥३
नृपपुत्रीनृपसुतंर्नित्यमास्तेसमावृतः ।
कदाचिच्छास्त्रसद्भावविवेककृतनिश्चयः ॥४
कदाचित्काव्यसंलापगीतनाटकसभवैः ।
तथैवाक्षविनोदैश्चशस्त्रास्त्रविनेयेष च ॥५
योग्योनियुद्धतागाश्चस्य दनाभ्यासतत्परः ।
रेमेनृपेद्रपुत्रीसौनरेंद्रतनयैर्वृत्तैः ॥६

पुत्र बोता हे पिताजी ! पुराकाल में शत्रुजित् नामक एकम हाबली ताजा थे, उनके यज्ञ में सोम-पान करके इन्द्र सन्तुष्ट हुए। १। उनके ऋतुध्वज नामक एक अत्यन्त पराक्रमी तथा विख्यात पत्र हुआ।२। वह बुद्धि में वृहस्हति के तुल्य, विक्रम में सुरपति के और रूप में अश्विनी कुमारों के समान थे,यह जिन राजकुमारों से मिलते, वे भी आयु सव, बल चेष्टा में उस राजकुमार से से कम न थे. वहकभी शास्त्र ज्ञानसे उत्पन्न विवेक पूर्वक अवस्थान करते थे।३-५। कभीकाव्यचर्चा,कभी संगी कभी नट्यादि से प्रसन्न होतेकभी हाश क्रीड़ाकभी शास्त्रास्त्र, कभीविनय भाव ।५। कभी योग्यपुरुषों मलयुद्ध कभी द्व, नश्व, रथादि की सवारी करते हुल राजपुत्रों से क्रीड़ा करते ।६।

यथैवहिदिवातद्वद्रावपिमुदायुतः ।
तेषांतुक्रीडतांतत्रद्विजभूपविशांसुताः ॥७
समानवयसःप्रीत्यारंतुमायांत्ययेनकशः ।
कस्यचित्वथकालस्यनागलोकान्महीतलम् ॥८
कुमारावागतौनागौपुत्रावश्वतरस्युतः ।
ब्रह्महतिच्छन्नौतरुणौप्रियदर्शनौ ॥९
तौतंन पसुतैःसार्द्धं तथैवान्यैद्विजात्मजैः ।

विनोदैर्विविधैस्तत्रस्थतुःप्रीतिसंयुतौ ॥१०
मर्त्यैंचतेनृपसुतास्तेचप्रह्यविप्रांलुताः ।
नागराजात्मजौतौचस्नानसवाहनादिकाम् ॥११
वस्त्रगधान्नसंयुक्तांचक्रुर्भोगभुजिक्रियाम् ।
अहन्यहन्यनुप्राप्तेतौचनागकुमारकौ ॥१२
आजाग्मतुर्मुदायुक्तौप्रीत्यासूनोर्महीपतेः ।
सचताभ्यांनृपसुतःपरंनिर्वाणमाप्तवान् ॥१३
विनोदैर्विविधैर्हास्यसंलापादिभिरेवच ।
विनाताभ्यांनबुभुजेनसस्नौनपपौमधु ॥१४

जैसे आनन्द से दिन व्यतीत होता वैसे रात्रि भी व्यतीत होती थी, जहाँ वहखेलते थे, वहाँ सैकड़ों राजपुत्र ,ब्राह्मण या वैश्यों के बालक ।७। आ! आकर खेलते,इस प्रकार कुछ समय व्यतीत होने पर पृथ्वी मेनागलोक से ।८। नागराज अश्वतार के दो पुत्र ब्राह्मण के वेश में आये वे दोनों हों युवा प्रिय दर्शन थे ।९। यह भी उन राजपुत्रों और ब्राह्मण पुत्रों के साथ विभिन्न प्रकार के विनोद करते हुए प्रीतिपूर्वक वहाँ रहने लगे ।१०। वह राजपुत्र,ब्रह्मपुत्र वश्यपुत्र और दोनो नाग पुत्र सभी भागानुसार भोजन करने लगे, इस प्रकार राजपुत्र की प्रीति से प्रसन्नहुए एक साथ स्नान, विमान पर चढ़ना ।११। वस्त्र धारण गन्धप्लुलेपन और भागानुसार भोजन करने लगे इस प्रकार राजपुत्र की प्रीति से प्रसन्न हुए दोनोंनाग पुत्र वहाँ नित्य प्रति आने-जाने लगे ।११-१३। उनके विविध प्रकार के आमोद-प्रमोद हास्य-संलापादि से सुखी हुएवे उनके बिना भोजन स्नान आदि भी नहीं करते थे । १४ ।

नरेमेचनजग्राहशास्त्राण्यात्ममणर्द्धये ।
रसातलेचतौरात्रिंविवानेनमहात्मना ॥१५
निःश्वासपरमौनीत्वाजग्मतुस्तद्दिनेदिने ।
मर्त्यंलोकेपराप्रीतिर्भवतोःकेनपुत्रकौ ॥१६
सहेतिचप्रलपितौताबुभौनागदारकौ ।
दृष्टयोरत्रपातालेबहूनिदिवसानिमे ॥१७
दिवारजन्यामेवोभोपश्याभिप्रियदर्शनौ ।

इतिपित्रा स्वयंपृष्टौप्रणिपत्यकृतांजली ।१८
प्रत्यूचतुर्महाभागानुरगाधिपतेःसुतौ ।
पुत्रःशत्रुजितस्तातनाम्नाख्यातऋतध्वजः ।। ९
रूपानार्जवोपेतःशूरोमानीप्रियवदः ।
अनावृतकथोवाग्मीविद्वान्मैत्रोगुणाकरः ।।२०

तथा क्रीड़ा और गुण वृद्धि के लिए शस्त्र भी नहीं उठाते, तथा वे नागपुत्र भी उस राजपुत्र के बिना रात्रिकाल ।५। रसातलमें दीर्घ श्वास लेते हुए व्यतीत करते और दिन में उनके पासआते, कुछ काल इस प्रकार व्यतीत होने पर एक दिन नागराज अश्वत ने अपने दोनों पुत्रों से पूछा— हे पुत्रो! मर्त्यलोक के प्रति तुम्हारी एसी प्रीति क्यों हुई है?बहुत दिनों से तुम्हें मैं दिन के समय पाताल लोक में नही देखता । ६-७। रात्रि होने पर ही तुम दिखायी देते होइसका क्या कारण है इस प्रकार पूछनेपर उन दोनोंने अपने पितासे प्रणाम करके हाथ जोड़े हुए कहाहेतात! मर्त्यलोकमें राजा शत्रुजित् के पुत्र ऋतुध्वज हैं ।१८-१९। वह स्वरूपवान,सरलचित्त शूर, प्रियभाषी, यशस्वी, विद्वान्, मित्रता के योग्य तथा गुणों की खान हैं । २०

मान्यमानयिताधीमान्ह्रीमान्विनयभूषणः ।
तस्योपचारसंप्रीतिसंभोगापहृतंमनः ।।२१
नागलोकेऽन्यलोकेवानरतिंविदतेपितः ।
तद्वियोगेननौतातनिशापातालशीतला ।।२२
परितापायतत्संगश्चाह्लादायरविर्दिवा ।
पुत्रःपुण्यवतोधन्यः सयस्यैवंभवद्विधः ।।२३
परोक्षस्यापिगुणिभिः क्रियतेगुणकीर्तनम् ।
संतिशास्त्रविदोऽशीलासतिमूर्खाःसुशीलिनः । २४
शास्त्रशीलेसममन्येयस्मिन्धन्यतरंतुतम् ।
यस्यमित्रगुणान्मित्राश्चपराक्रमम् । २५
कथयंतिसदामत्सुपुत्रवांश्तेनवौपिता ।
तस्योपकारिणःकच्चिद्भवद्भ्यामभिवांछितम् ।।२६

किंचिन्निष्पादितंवत्सौपरितोषायचेतसः ।
सधन्योजीवितंतस्यतस्यजन्मसुजन्मनः ॥२७
यस्यार्शिनोनविमुखामित्रार्थेनचदुर्बल ।
मद्गृहेयत्सुवर्णादिरत्नवाहनमासनम् ॥२८
यद्वान्यत्प्रीतयेतस्यतद्देयमविशंकया ।
धिक्तस्यजीवितपुंसोमित्राणामपकारिणः ॥२९

वह मानी, बुद्धिमान् लज्जावाला तथा विनय से मुक्त है उनकी प्रीति में हमारा मन आकर्षित होकर ।२१। नागलोक, पृथ्वी अथवा किसी भी अन्य स्थानमें प्रसन्न नहीं रहता । पातालकी शीतल रात्रिभीउनके वियोग में ।२२। हमरे ताप दायिनी होती हैं और उनके संग में सूर्य के ताप से तप्तदिनभी हमको हर्षजनक होता है। पिता से कहा-वह पुण्यवान् पुत्र धन्य है, क्योंकि तुम्हारे जैसे गुणवान् भी ।२३। पीछे से जिनका गुणगान करते हैं, अनेक शास्त्रज्ञानी भी बुरे स्वभाव वाले तथा अनेकमूर्ख भी सुशील होते हैं। २४। मेरे विचारमें वह राजपुत्र धन्यहैक्योंकि जिसकी मित्रता का गुण मित्र द्वारा और पराक्रम शत्रु द्वारा प्रकट होता है ।२५ उसी पुत्र के द्वारा पिता पुत्रवान् कहा जाता है, तुमने उस उपकार करने वाले के लिए कुछ किया भी है ? ।२६। हे पुत्र ! उस मित्रकी संतुष्टि के लियें तुमने कुछ कार्य किया है? इस जगत्में वही धन्य है और उसीका जन्म सफल है ।२७। जो कामना वालों को विमुख नहीं करता और मित्र के प्रति भी दुर्बल नहीं है, इसलिए मेरे गृह में स्वर्ग रवर्ण, वाहन, आसन इत्यादि ।२८। जो कुछ भी हैं, उसे उनकी प्रसन्नता के लिए दे सकते हैं क्योंकि मित्रों का अपकार करने वालों को धिक्कार है।२९।

प्रतिरूपकुर्वन्योजीवामीत्यवगच्छति ।
उपकारंसुहृद्वर्गेष्वपकारंचशत्रुषु ॥३०
नमेघोवर्षंतिप्राज्ञास्तस्येच्छंतिसदोन्नतिम् ।
किंतस्यकृतकृत्यकर्तुं शक्येतकेनचित् ॥३१
यस्यसर्वार्थिनोगेहेसर्वंकामैःसदार्चिताः ।
यानिरत्नानि...

वाहनासनयानानिभूषणान्यंबराणिच ।
विज्ञानं यच्चयत्रास्तितदन्यत्रनविद्यते ॥३३
प्राज्ञानामप्तसोतातसर्वसंदेहहृत्तमः ।
एकतस्यास्यिकर्त्तव्यमसाध्यंतच्चकीमतम् ॥३४
हिरण्यगर्भ गोविंदशर्वादीनांवराद्दते ।
तथापिश्रोतुमिच्छामितस्ययत्कार्यमुत्तमम् ॥३५

उपकारी मित्र केप्रति उपकार न करके जो जीवित रहते हैं. इनका जीवन भी असफलहै,जो पुरुष बन्धुवर्ग के उपकार और शत्रु वर्ग के अपकार रूप को सींचतेहैं, उन्हीं की उन्नति का साधन देवता करते हैं, पुत्र ने कहा—वह स्वयं पी कृतकृत्य हैं, उनका क्या उपकार कर सकते है? ।३०-३१। जिनसे याचक इच्छित पदार्थ द्वारा सदा पूजित होते है उनका उपकार करने की सामर्थ्य हमें नहीं है क्योंकि उनके यहाँ जो रत्न है, वह पालन में भी उपलब्ध नहीं हैं ।३२। उनके जैसे वाहन,आसन,यान आभूषण वस्त्र हमारे यहाँ रहीं हैं और जैस विज्ञान और कहीं भी नहीं हो सकता ।३३। वह पंडितजी का भी सदेह दूस करने में समर्थ हैं, उनका एक धर्म है, परन्तु वह हमारे द्वारा साध्य नहीं हो समता ।३४। हिरण्य गर्भ भगवान् गोविन्द तथा शिवादि के अतिरिक्त वह किसी के द्वारा सिद्ध नहीं हो सकता पिता ने कहा—उनके श्रेष्ठ कार्य को में सुनना चाहता है ।३५।

असाध्यमथवासाध्यंकिंचासाध्यंपिश्चिताम् ।
देवत्ममरेशत्वतत्पूज्यत्वंचमानवाः ॥३६
प्रयांतिवांछितंवान्यद्दृढंयेव्यसायिनः ।
नाविज्ञातंनचागम्यंनाप्राप्यद्विविचेहवा ॥३७
उद्यतानांमनुष्याणांयतचितेन्द्रियात्मनाम् ।
योजनानांसहस्राणियातिगच्छन्पिलिकः ॥३८
अगच्छन्वैनतेयोपिपयोपदमेकनगच्छति ।
क्वभूतलंक्वचध्रौव्यंस्थानंयत्प्राप्तवान्ध्रुवः ॥३९
उत्तानपादनृपतेःपुत्रःसद्भूमिगोचरः ।

तत्कथ्यतांमहाभागौकार्यंवान्येनपुत्रको ।४०
सभूपालयुतःसाधुयैंनानृण्यंलभेतवाम् ।
तेनाख्यातमिदतातपूर्वंवृत्तं महात्मना ।।४१

वह काय साध्य हो या असाध्य दृढ़तर उद्योगी पुरुष देवत्व अथवा इन्द्रत्व के पुज्य भाव को भी प्राप्त कर सकते हैं। ७। दृढ़ पुरुष ही मनो वांछित पा सकते हैं, स्वर्ग से भी अविज्ञान, अगम्य और कोई वस्तु नहीं है। ३७। मन आत्मा और इन्द्रिय को वश में करने वाले पुरुष मनोरथ कों प्राप्त कर लेते है। देखो चींटी कितनी छोटी होती है, किन्तु अधिक उद्योग वाली होने के कारण चलते-चलते सहस्र योजन तक जा सकती है।३८। पक्षिराज गरुड़ उद्योग न करके एक पग भी नहीं जा सकते जो उद्योग नहीं करते उनके लिए कुछ भी शक्य नहीं उत्तानपाद के पुत्र ध्रूव पृथ्वो में होकर ही अत्यन्त दुर्लभ स्थान को प्राप्त होगये,कहाँ वह ध्रुव का स्थान और कहाँ वह पृथ्वी? इसलिए जिस प्रकार उस राज पुत्र का कार्य हो सके, वह बताओ ।६९-४, तब तुम भी मित्र-ऋण से बच सको। पुत्र बोले—हे तात ! उन महात्मा को इस प्रकार बताया था। ।४१।

कौमारकेयथातस्यवृतंसद्वृत्तशालिनः ।
तस्यशत्रुजितंतात पूर्वंकश्चिद्द्विजोत्तमः ।।४२
गालवोम्यागमद्धीमान्गृहीत्वातुरगोत्तमम् ।
प्रत्युवाचचराजानसमुपेत्याश्रमम् । ४३
कोपिदंत्याधमोराजन्विध्वंसयातपापकृत् ।
तत्तद्रूपसमास्थायसिंहेभवनचारिणाम् ।।४४
अन्येषांचातिकायानामहर्निशम कारणात् ।
समाधिध्यानयुक्तस्यमौनव्रतरतस्यच ।।४५
तथाकरोतिविघ्नानियथानेच्छामिपार्थिव ।
दग्धुंकोपाग्निनासद्यःसमर्थास्तंवयंनस्तु ।।४६
दुःखार्जितस्यतपसोव्ययमिच्छामिपार्थिव ।
एकदातुमयाराजन्नतिनिर्विण्णचेतसा ।।४७
तत्वलेशितेनानिःश्वासोनिरीक्ष्यावमुक्तः ।

ततोंबरतलात्सद्यःपतितोयंतुरंगमः ॥४८

उन राजपुत्र की कुमारावस्था में जो हुआसो सुनो, शत्रुजित् नामक एक श्रेष्ठ ब्राह्मण है ।४२।एक समय गालब नामक द्विजवरने सुन्दर अश्व लेकर आश्रममें आकर राजासे कहा ।४३ कोई पाप कर्मवाला दैत्य मेरे आश्रममें आकर विध्वंश करता है,वह सिंह गज अथवा अन्य जन्तुके रूप में आकर मेरे समाधि मग्न होने या मौनव्रत रखनेपर मेरा मन विचलित कर देता है, हे राजन् ! मैं अपनी क्रोधाग्नि में भस्म कर सकता हूँ ।४४-४५। परन्तु, मैं ऐसा करके अपनी अधिक दिनो में दुःख पूर्वक संचित तपस्या को क्षीण नही करना चाहता हूँ हे राजन् ! एक दिन मैंने अत्यन्त दुःखित हृदय से ।४७। क्लेश युक्त होकर आकाश की ओर अपना दीर्घश्वास छोड़ा, जिससे यह अश्व उसी समय आकाश से आ गिरा ।४८।

वाक्चाशरीरिणीग्राहनरनाथश्रृणुष्वतत् ।
अश्रांतःसकलभूमेर्बलयंतुरगोतमः ॥४६
समर्थःकांतुमकणतबार्यप्रतिपादित ।
पातालांबरतोयेषुनास्यप्रतिहतागतिः ॥५०
समस्तदिक्षुव्रजतोनसंगःपर्वतेष च ।
यतोभूलयं सर्वमश्रांतोय चरिष्यति ॥५१
ततःकुवलोनाम्नाख्यातिंलोकेषु यास्यति ।
क्लिश्नात्यहनिशपापोश्चत्वांदानवाधम ॥५२
तमप्येनं समारुह्यद्विजश्रेष्ठनिष्यति ।
शत्रुजिन्नामभूपालस्तस्यपुत्रऋतध्वजः ॥५
प्राप्यै तदश्वरत्नं चख्यातिमेतेनयास्यति ।
सोहं त्वामनुसंप्राप्तस्तपमोविघ्नकारिणम् ॥५४
तनिवारयभूपालभागभाङ्नृपतिर्यतः ।
तदेवदश्वरत्नतेमयाभूपनिवेदितम् ॥५५
पुत्रमाज्ञापयतथायथाधर्मोनलुप्यते ।
सतस्यवचनाद्राजातंवपुत्रमृतध्वजम् ॥५६
तदश्वरत्नमारोप्यकृतकौतुलमंगलम् ।

अप्रधर्षयतमीश्माशालदेरनमंरहा ॥५७
स्वमाश्रमदंसोपितसादाययौमुनिः ॥५८

उस समय जो आकाश वाणी हुई उसेसुनो-हे द्विजवर तुम्हें जोअश्व प्राप्त हुआ है,वह, बिना कहीं रुके,सूर्यके समान सर्वत्र गमन करने में समर्थ है, पाताल, आकाश जल, कहीं भी इसकी गति का अवरोध नहीं होता । ९-१० । यह सब दिशाओं और पर्वतों तथा पृथ्वीवलय सर्वत्र बिना रुके गमन कर सकता है,इसलिए यह सभी लोकों में ,कुवलय' नाम से प्रसिद्ध होगा और जो दानवधाम तुम्हारेलिए दिन-रात्रि क्लेश उपस्थित करता है । ५१-५२। उसे अश्व पर चढ कर शत्रुजित राजा के पुत्र ऋतुध्वज मारेगे ।५ । तथा इस अश्वरत्न द्वारा अत्यन्त ख्याति को प्राप्त होंगे,इसलिए मैं यहाँ आया हूँअब आपभी उग्र तपमें विघ्न उपस्थितकरने वाले को ।४४। निवारण करे और मेरे द्वारा प्रदत्त इसेअश्वरत्नको लेकर ।५५। अपने पुत्र को ऐसी राजा दीजिये, जिससे धर्म लुप्त न हो पावें.उस ब्राह्मण की यह बात सुनकर राजा शत्रुजित् ने अपने पुत्र ऋतुध्वज को । ६। मंगलचार आदि कराकर उस अश्व पर चढ़ाया और गालब मुनि के साथ भेज दिया ।५७। जिन्हें साथ लेकर मुनि भी अपने आश्रम की ओर चल दिये । ८।

९९—मदालसा उपाख्यान [१]

गालवेनसमंगत्वानृपपुत्रेणतेनयत् ।
कृतंतत्कथ्यतांपुत्रौविचित्रायुधयोधिना ॥१
सगालवाश्रमेरम्येतिष्ठन्भूपालनन्दनः ।
सर्वविघ्नोपशमनंचकारब्रह्मवादिनाम् ॥२
वीरःकुबलयाश्वंतंवसंतंगालवाश्रमे ।
मदावलेपापतोनाजानाद्दानवाश्रमः ॥३
ततस्तगालवविप्रसंध्योपासनतत्परम् ।
सोकरंरूपमास्थायप्रधर्षयितुमागमतू ॥४
मुनिशिष्यैरथोत्कृष्टेशीघ्रमारुह्यतंहयम् ।

अन्वधावद्वराहतनुस्तुत्रःशरासनी ॥५
आजघानचबाणंनचन्द्राधींकारवर्चसा ।
आकृष्यबलवच्चापंचारुचित्रोषशोणितम् । ६
नाराचाभिहतःशीघ्रमात्मत्राणपरोमृगः ।
गिरिपादपसंधासोत्यकामन्महाटवीम् । ७

पिता ने कहा—गालब मुनि के साथ जाकर राजकुमार ने क्या किया था, वह मुझे बताओ, वह वर्णन अत्यन्त विचित्र है ।१। पुत्र वाले — राजपुत्र ऋतुध्वज नेगायव मुनि के आश्रम में निवास करके ब्रह्मवादी मुनियों के सभी विघ्न नष्ट कर दिये थे ।२। गालव मुनि के आश्रम में निवास करने वाले वीर कुवलयाश्व के रहने की बात को नहीं जान सका ।३। इसलिए तह शकर का रूप धारण करके संध्योपासन में लीन गायव मुनि के शरीर से अपना शरीर रगड़ने लगे ।४। उस समय मुनिशिष्यों ने उच्च स्वर में चीत्कार किया तब उस अश्व पर चढ़कर राजपत्र भी अर्धचन्द्राकार बाण से उस पर प्रहार किया ।६। उस वाण से आहत हुआ दैत्य आत्म रक्षार्थ पर्वत और महावन में घूमने लगा ।७।

तमन्वधावद्वेगेनतुरगोहौमनोजवः ।
चोदितोराजापुत्रणपितुरादेशकारिया ॥८
अतिक्रम्याथवेगेनयोजनानिसहस्रशः ।
धरण्यांविवृतेगर्तेनिपपातलघुक्रमः ॥९
तस्यानंतरमेवाथसचाश्वनृपते सुतः ।
निपपातमहागर्तेतिमरौघसमावृते ॥१०
ततोनादृश्यतमृगःसतस्मिन्नाजसूनुना ।
प्रकाशंचसपातालमपश्यत्तत्रचार्चिषा ॥११
ततोपश्यतसौवणप्रासादशतशसंकुलम् ।
पुरंदरपुरप्रख्यंपुरंप्राकारशोभितम् ॥१२
तत्प्रविश्यसनापश्यत्तत्रकंचिन्नरंपुरे ।
भ्रमताचततोदृष्टातत्रयोषित्वरान्विता ॥१३

ततः पुरे महाक्रन्दः पौराणां भवनेष्वभूत् ।२६
यथैव तस्य नृपते स्वगृहे समवर्तत ।
राजा च तां मृतां दृष्ट्वा विना भर्त्रा मदालसाम् ।२७
प्रत्युवाच जन सर्वं विमृश्य स्वस्थमानसः ।
न रोदितव्यं पश्यामि भवतामात्मनस्तथा ।२८

अब जो आपको करना हो, वह करियेऔरउनका वह कंठाभूषणलीजिये मुझ तपस्वी का स्वण से क्या प्रयोजन ? कहकर तालकेतु जहाँ से आया, वहीं चला गया।२८-२३। इसके पश्चात् वहाँ सभी मूर्च्छित होकर गिरपड़े फिर राजा ओर रानी चैतन्यता लाभकरके।२४। तथा अन्य राजस्त्रियाँभी अत्यन्त दुःखित होकर विलाप करनेलगीं तबमदालसानेउस कन्ठाभूषणको देखा ।२५।और स्वामी की मृत्यु की बात सुनकरउसने दुःखसेकातरहोकर प्राण त्याग दिये,राजभवन में होने वाला कुन्दनप्रतिध्वनित होने लगा,फिर राजा शत्रुजित अपनी पुत्रवधूकोमरी हुई देखकर।२६-२७। तथा सावधान चित होकर सब कहने लगे कि हम सबको रोना नहीं चाहिये ।२८।

सर्वेषामेव संचिंत्य संबंधानानित्यताम् ।
किं नुशोचाभि तनयं किंनु शोचाम्यहं स्नुषाम् २९
विमृश्य कृतकृत्यत्वान्मन्ये शोच्यावुभावपि ।
मच्छुश्रूषुमद्वचनाद्द्विजरक्षणतत्परः ।३०
प्राप्तो मद्य सुतो मृत्युं कथ शोच्यः सधीमताम् ।
अवश्यं याति यद्देहं पद्द्विजानां कृते यदि ।३१
मम पुत्रेण संत्यक्तं नन्वभ्युदयकारि तत् ।
इयं च सत्कुलोत्पन्ना भर्त्तर्य्येवमनुव्रता ।३२
कथं तु शोच्या नारीणां भर्तुरन्तन्न दैवतम् ।
अस्माकं बांधवानां च तथान्येषां दयावताम् ।३३
शोच्या ह्येषा भवेदेवं यदि भर्त्रा वियोगिनी ।
यातुभर्तुर्वधं श्रुत्वा तत्क्षणादेव भामिनी ।३४

भर्तारमनुयातेयं न शोच्यातो विपश्चिताम्
ताः शोच्या या वियोगिन्यः सह भर्त्रा कुलांगनाः ।३५

सभी प्राणियों का सम्बन्ध अनित्य है, मैं पुत्र या पुत्रवधू किसका शोक करूं ? ।२९। दोनों ही कृतकृत्य थे, इससे शोक के योग्य नही हैं, क्योंकि जिसने मेरी आज्ञानुसार ही ब्राह्मणों की रक्षा से लगे रह कर ।३०। प्राण दिया है, उस पुत्र के लिए शोक करना उचित नहीं है मेरे पुत्र ने अपने नाशवान् देह को ब्राह्मणों के लिए ।३१। त्यागा है, तब वह अशोचनीय और कल्याणकारी है और जब सत्कुल में उत्पन्न हुई इस नारी ने भी अपने पति का अनुगमन किया है ।३२। तो वह भी शोचनीय नहीं हो सकती । क्योंकि स्त्री के लिए पति के अतिरिक्त अन्य कोई देवता नहीं है, यदि अपने पति की मृत्यु के अनन्तर जीवित रहती तो हम सब की शोचनीय दशा होती, इसने तो अपने पति का मरना सुनते ही प्राण छोड़ दिया है ।३३—३ । इस लए पण्डितजनों के लिए शोचनीय नहीं है, स्वामी की मृत्यु होने पर भी जो नारी जीवन धारण करे, वह शोचनीय होती है ।३५।

कष्टभ्रांत्या न गच्छन्ति कष्टदाः स्युः कुलात्मनोः ।
भर्तु वियोगस्त्वनया नानुभूतः कृतज्ञया ।३६
दातारं सर्वं सोख्यानामिह चामुत्र चोभयोः ।
लोकयोः का हि भर्त्तारं नारी मन्येत मानुषम् ।३७
न स शोच्यो न चवेह नार्य तज्जननी नच ।
त्यजता ब्रह्मणार्थाय प्रांणान्सर्वे समतारिताः ।३८
विप्राणां मम धर्मस्य गतः सत्तु महामतिः ।
आनृण्यमर्द्धं मुक्तस्य त्यागाद्देहस्य मे सुतः ।३९
मातुः सयीत्वं मद्व शवैसज्यं शौर्यमात्मनः ।
संग्रामे स त्यजन्प्राणान्सोऽविदद्द्विजरक्षात् ।४०
ततः कुवलयाश्वस्य माता भर्तु रनंतरम् ।
श्रुत्वा पुत्रवधातादृक्प्राह हृष्टातु तं पतिम् ।४१

न मे जनन्या स्वस्रा वा प्राप्ता प्रीतिर्नृपेदृशी ।
श्रुत्वा मुनिपरि त्राणे हतं पुत्रं यथा मया ।४२

जो स्वामी के सहित जाती है, वह कभी शोचनीय नहीं है, जो गमन में कष्ट मानकर नहीं जाती, वह अपने कुल को कष्ट देने वालीहै, कृतज्ञा होने के कारण इससे अपने स्वामी के वियोग का अनुभव नहीं किया।३६। ईहलोक ओर परलोक दोनों में सुख देने वाले स्वामी को कौन स्त्री मनुष्य मानती है ? ।३७। हमारा पुत्र, पुत्रवधू, में अथवा उसकी माता हममें से कोई भी शोचनीय नहीं है, क्योंकि ब्राह्मणों की रक्षा में प्राण देने वाले पुत्र के कारण हम सभी का उद्धार हुआ है ।३८।मेरा पुत्र अपने अधर्म मुक्त शरीर को छोड़कर ब्राह्मण के प्रति, धर्म के प्रति और मेरे प्रति भी उऋण हो गया है ।३९। ब्राह्मणों की रक्षा के युद्ध में मरने से माता का सतीत्व, वंश की स्वच्छता और अपनी शूरता किसी का भी त्याग उसने नहीं किया ।४०। कुवलयास्व की माता ने ‧त्र का मृत्यु समाचार सुनकर अपने स्वामी को देख विषाद रहित चित्त से बोली ।४१। हे महाराज ! मुनियों की रक्षा करते-करते सन्तान का मरण सुनकर मैं जैसी सुखी हुई वैसा सुख मुझे माता-बहिन किसी के द्वारा नही मिल सकता ।४२।

शोचतां ब्राह्मणानां ये निःस्वनेनातिदुःखिताः ।
म्रियतेव्याधिना क्लिष्टातेषां माता वृथा प्रजा ।४३
संग्रामे युध्यमाना ये भीता गोद्विजरक्षणे ।
क्षुण्णाः शस्त्रैर्विपद्यंतेत एव भुवि मानवाः ।४४
अर्थिना मित्रवर्गस्य विद्विषांच पराङ्मुखः ।
योनि याति पिता तेन पुत्री माता चवीरसूः ।४५
गर्भक्लेशः स्त्रियो मन्ये साफल्य भजते तदा ।
यदारिविजयो वास्यात्संग्रामे वाहतः सुतः ।४६
तत सराजा संस्कारं पुत्रपत्नीमलंभयत् ।
निर्गम्यचबहिः स्नातो ददौ पुत्रायचोदकम् ।४७

तालकेतुश्चनिर्गम्य तथैवयमुनाजलात् ।
राजपुत्रमुवाचेदं प्रणवान्मधुरं वचः ।४८
यच्छ्रुतं भूपाल पुत्रत्वं कृतार्थो कृतस्त्वया ।
वाछितं तुकृतकार्यं त्वय्यत्रा विचले स्थिते ।४६
वारुणंयज्ञकार्यं च जलेशस्य महात्मनः ।
तन्मया साधितं सर्वं यन्ममासीद भीसितम् ।५०
प्रणिपत्य सतप्रागाप्राजपुत्रः परं पितुः ।
समारुह्यतमेवाश्वं सुपर्णनिल [विक्रमम् ।५१

जो बन्धुओं के लिए दुःख से श्वांस लेते हुए या रोगाक्रान्त हुए प्राण त्याग करते हैं, उनकी माताओं का सतति-प्रजनन व्यर्थ ही है ।४३।जोगी ब्राह्मण की रक्षा के निमित्त युद्धमें भय-रहित चित्तसे शस्त्रसे मरताहै,उसे ही मनुष्य कहते है ।४४। जिसकेद्वारायाचक मित्र औरशत्रुगण विमुखनहीं होते, उसी से पिता पुत्रवान् होता है।४५।जब पुत्र युद्धमें मर जातायाशत्रु पर विजय प्राप्त करकेलौटते हैतभी स्त्री का गर्भ-प्रेलेश सफलहोताहै।४६ नागपुत्र बोले-फिर राजा शत्रु [ि]तने पुत्रवधू का संस्कार करनगरकेवाहर जाकर स्नान किया और पुत्रके निमित जलन्जलि दी।४७।उधर तालकेतु उसीप्रकार यमुना जलसे निकलकर प्रणाम करता हुआ मीठेवचनों सेरज-कुमार से बोला ।४८।हे राजकुमार ! आपके द्वारा मैं कृतार्थ हुआ क्योंकि आपने यहाँ रह कर मेरा अभिलषित कार्य किया गया है ।५०।इस प्रकार जलपति वरुण का यज्ञ मेरी माया से सिद्ध हो गया, हे राजपुत्र ! अब आप जाइये ।५०। यह सुनकर राजपुत्र ने मुनि को प्रणाम किया और उस वायु वेग वाले अश्व पर चढ़ कर पिता के नगर को गये ।५१।

२१–कुवलयाश्व पातालप्रवेश

सराजपुत्रः सम्प्राप्यवेगांदात्मपुरन्ततः ।
पित्रोर्ववं [दिषुः पादौ दिदृक्षुश्च मदालसाम् ।।१

सददर्शतदुद्विग्नमप्रहृष्टमुख पुरम् ।
पुनश्चविस्माताकारं प्रहृष्टवदनं पुनः ।२
अन्यमुत्फुल्लनयनं दिष्ठ्यादिष्टयेतिवादिनम् ।
परिष्वजन्मन्योमतिकौतूहलान्वितम् ।३
सराजपुत्रोमित्रं तुउत्फुल्लनयवं शुभम् ।
आलिलिंगतादाकालेसोहृदेनपरेण च ।४
तः पौरास्तदालोक्यर्दिष्टयदिष्टयेति वादिनः ।
चिरंजीवोरुकल्याणहतास्तेपरिपंथिनः ।५
पित्रोप्रल्हादयमनस्तथास्माकमकंटकः ।
इत्येतं वादिभिः पौरः पुनः पृष्ठेचसवृतः ।६
तष्क्षणप्रभवानन्दः प्रविवेशपितुर्गृहम् ।
पिताचत्तंपरिष्वज्यमाताचान्येचबांधवाः ।७
चिरञ्जीवोरुकल्याणददौचास्मैंतदाशिषः ।
प्रणिपत्यततः सोथकिमेतदितिवस्मितः ।८

नागपुत्रों ने कहा– राजकुमार ने पिता-माता के चरणों में बन्दनाकर ने और मदालसा को देखने की इच्छा करके अपने नगर में जाकरदेखा।१ नगर निवासी अत्यन्त उद्विग्न हैं, परन्तु उन्हें देखकर प्रसन्न औरविस्मित हो रहे है ।२। फिर प्रफुल्लित नेत्रों से भाग्य को सराहते हुए परस्पर आलिगन करने लगे ।३। उस राजपुत्र ने प्रफुल्लित नेत्र वाले अपने श्रेष्ठ मित्र को अत्यन्त प्रीति सहित हृदय से लगाया ।४। फिर नगरवासी उनके प्रति कहने लगे कि अत्यन्त भाग्य वाले दीर्घजीवी होवे, तुम्हारे सभी शत्रु नाश को प्राप्त हों ।५। हमारे तथा माता-पिता के हृदय को प्रसन्न करो, ऐसा कहते हुए इनके आगे पीछे इकट्ठे हो गए।६। राजकुमार ने उनसे घिरे हुए पिता के भवन में प्रवेश किया, तब पिता, माता तथा अन्याय बांधवगण ।७। उन्हे आशीर्वाद देने लगे, तब राजकुमार ने उनको प्रणाम करके विस्मित चित्त से पूछा—हे तात ! यह क्या है ? ।८।

प्रपच्छपितरंचाथसोऽस्मोसर्वंसदुक्तवान् ।
सभार्यांतांमृतांश्रुत्वाहृदयेष्टांमदालसाम् ।९
पितरौचपुराहष्ट्वालज्जाशोकविमध्यगः ।
चिंतयामाससाबालामांश्रुत्वानिधनंगतम् ।१०
तत्याजजीवितंसाध्वीधिङ्मानिष्ठुरमानसम् ।
नृशंसोहमनार्योंहंविनातांमृगलोचनाम् ।११
मत्कृतेनिधनंप्राप्तायज्जीवान्ततिनिर्घृणः ।
पुनःसंचितयामासपरिसंस्तभ्यमानसम् । २
मोहोद्गममपास्यैवंनिःश्वस्योच्छ्वस्यचातुरः ।
मृतेतिसामन्निमित्तंत्यजामियदिजीवितम् ।१३
किमयोपकृतंतस्याः श्लाघ्यमेतत्तुयोषिताम् ।
यदिरोदितमिवादीनंहाप्रियेतिवदन्मुहुः ।१४
तथाप्यश्लाघ्यमेतन्नोवयहिपुरुषाः किल ।
अथशोकजडोदीनोऽसृजाहीनोदुलान्वितः ।१५
विपक्षस्यभविष्यामिततः परिभवास्पदम् ।
मयारिशातनात्कायं राज्ञः शुश्रूषणांपितुः ।१६

तब उन्होंने राजकुमारको सम्पूण वृत्तांत कह सुनाया राजकुमारमदालसा का मरण-समाचार सुनकर शोंकसागरमें डूबकर शोक करने लगेकि जब उस साध्वी ने मेरा मृत्यु वृत्तान्त सुनकर ९-१०। प्राण छोड़ दिएतो मुझ निष्ठुर को धिक्कार है, मैंनृशंस औरअनार्य हूँजो उसके बिनाजीवित हूँ ।११। जिसने मेरे लिए प्राण त्याग दिये, उसके बिना जीवित रहूँ तो मैं अत्यन्त निदय सिद्ध हूँगा, यह सोचते हुए ।१२।अत्यन्त कातर होकर दीर्घ श्वांस लेते हुए सोचाकि उसने मेरे लिए प्राण त्यागेहैंतोमैं भ यदि उसके लिए प्राणका त्याग करदूं ।१३।तो परन्तु यह स्त्रियों के लिए ही उचित है यदि मैं 'हा प्रिये' कहता हुआ बरम्बार विलाप करूं ।१४। तो वहभी निन्दा के योग्य होगा, तदि शोक सतापमेंमाल्यादि का त्याग कर दूं ।१५।

तो शत्रु अपमान करेंगे, मेरा एक मात्र धर्म शत्रुओं का संहार और पिता की सेवा करना है ।१६।

जीवितं तस्यचायत्तं ...त्याज्यंतत्कथमया ।
किंत्वत्रमेन्यत्कर्त्तव्यंत्यागोभोगस्ययोषितः ।१७
सचापिनोपकारायतन्वंग्याः किन्तुसर्वथा ।
मयानृशंस्यंकर्तव्यं नापकार्युपकारिवा ।१८
यामदर्थेत्यजत्प्राणांस्तदर्थेल्पामिदंमम्य ।
इत्कृत्वाभ ...सोथनिष्पाद्योदकदानिकम् ।१६
क्रियाश्चानंतरंकृत्वाप्रत्युवाचऋतध्वजः ।
यदिसाममतन्वंगीनस्याद्भार्यामदालसा ।२०
अस्मिञ्जन्मनिनान्यामेभवत्रींसहचारिणी ।
तामृतेमृपशावाक्षींगधर्मतनयामहम् ।२१

मेरे जीवन का अवलम्ब यही है, इसलिए प्राण त्याग कदापि उचित नहीं है, दि मैं अन्य स्त्री के गमन का त्याग करूंगा ।१७। तो भी उस का कोई उपकार न होगा, परन्तु उपकार हो या अहकार मुझे तों इसी नृशंश आचरण का पालन करना होगा ।१ ।जिसने मेरे लिए प्राण त्यागा है, उसके लिए यह कार्य सामान्य थ । ऐसा निर्णय कर राजकुमार ने जलदानादि करके ।१६। तथा सब सत्कार से निवृत्त होकर कहाकि जब मेरी पत्नी मदालसा ही नहीं है ।२०। तब इस जन्म में कोई अन्य नारी मेरी सहधार्मिणी नहीं हो सकती, मैं सत्य कहता हूँ कि मैं उस गन्धर्व की सुता के अतिरिक्त अन्य स्त्री से समागम नहीं करूंगा ।२१।

नभोक्ष्येयोषितंकांचिदितिसत्यंमयोदितम् ।
सधर्मचारिणींपत्नीतांमुक्त्वागजगामिनीम् ।२२
कांचिन्नान्यांकरिष्यामितेनसत्यंमयोदितम् ।
एवंसर्वान्परित्यज्यस्त्रीभोगांस्तातसर्वदा ।२३
क्रीडन्नास्तेसमंतुल्यैर्वयस्यैः शीलसंपदा ।
एतत्तस्यपरंकार्यंतातातत्केनसाध्यते ।२४

कर्तुमत्यंतदुःष्प्राप्यमश्वरैः किमुतेतरैः ।
इतिवाक्यंयोः श्रुत्वाविमर्शमगमत्पिता ।२५
विमृश्यचाहतोपुत्रोनागरट्प्रहन्निव ।
यद्यशक्ययितिश्रुत्वानकरिष्यंतिमानवाः ।२६
कर्मण्युद्यममुद्योगहान्याहानिस्तः परम् ।
आरभेतनरः कर्मस्वपौरुषमहापयन् ।२७
निष्पत्तिा कर्मणांद वेपौरुषेचव्यवस्थिता ।
तस्मादहं तथायत्नंकरिष्येपुत्रकार्यतः ।२८

मैं उस सद्धर्म का आचरण करने वाली भार्या को छोड़कर किसी दूसरी नारी को स्वीकार नही करूंगा । नागपुत्रों ने कहा-हे तात ! मदालसा के अतिरिक्त वह सम्पूर्ण स्त्री-संग त्याग कर ।२२-२३। अपने स्वभावादि में समान तथा समवयस्कों के साथ क्रीड़ा करते रहते है उनके हित में यही एक प्रमुख कार्य है, जिसमें किसी का वश नही चल सकता ।२४। क्योंकि यह ईश्वर के लिए भी दुष्प्रांय है तो मनुष्य की तो बात ही क्या है ? उनकी बात सुनकर नागराज अश्वतर विचारमग्न होगये ।२२- और फिर हंसते हुए उन्होंने अपने दोनों पुत्रों से कहा-सामर्थ्य से पर होने के कारण जो मनुष्य उद्योग नहीं करते ।२६। उससे उनकी अत्यन्त हानि होती है अपने पौरुष को नष्ट करके ही मनुष्य कार्यारम्भ करते है ।२७। परन्तु दैव या पौरुष में ही कर्म की निष्पति है, इसलिए हे पुत्रो ! जिस प्रकार यह कार्य बन सके, मैं वह कार्य कार्य करूंगा ।२८

तपश्चर्यासमास्थाययथैतत्साध्यतेचिरात् ।
एवमुक्त्वासनागेंद्रः प्यक्षावतरणागिरेः २९
तीर्थंहिमवतोगत्वातपस्तेपेसुदुश्चरम् ।
तुष्टाववाग्भिरिष्टाभिस्तत्रदेवीसरस्वतीम् ।३०
तन्मनानियताहारोभूत्वातिषवगणप्लुतः ।
जगद्धात्रीसहं देवोमारिराधायिषुः शुभाम् ।३१

स्तोष्येप्रणम्यशिरसाब्रह्मयोनिंसरस्वतीम् ।
सदसद् वियत्किंचिन्मोक्षवधार्थंवन्पदम् ।३२
तत्सर्वंत्वम्यसंयोगंयोगवद्देविसंस्थितम् ।
त्वमक्षरं परंदेवियत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ।३३
अक्षरं परमं ब्रह्मजगच्चैतत्क्षरात्तकम् ।
दारुण्यवस्थिततोवह्निभौंमाश्चपरमाणवः ।३४
तथात्वयिस्थितब्रह्मजच्चेदमशेषतः ।
ओंकारक्षरुसंस्थानंयत्तेदेविस्थिरास्थिरम् ।३५

मैं तपस्या के द्वारा इसे शीघ्र करने का यत्न करूंगा, ऐसा कह कर नागराज अश्वतर हिमालय के प्लक्षावतरणा नामक तीर्थ में जाकर ।२९। दुष्कर तप करने लगे, परिमित भोजन तीनों समय स्नान और वाणी द्वारा सरस्वती का स्तवन करते हुए अश्वर ने कहा-मैं जनज्जनी भगवतीं के आराधना की इच्छा से ।३०-३१ ब्रह्म स्नान सरस्वती को प्रणाम पूर्वक स्तुति करता हूँ, हे देवी! मोक्ष अथवा अर्थ संयुक्त सत् असत् रूप जो पद हैं ।३४। वह सभी आप में संयुक्त न होकर संयुक्त के महान ही अवस्थित रहते है, हे देवी! आप परम अक्षर हैं आप में सब प्रतिष्ठित है।।३३। सभी अक्षर परमाणु के तुल्य आप में स्थित हैं, अक्षर रूपपरब्रह्म ओर क्षरात्मक जगत् भी तम प्रतिष्ठित है. जैसे अग्नि के सभी परमाणु काष्ठ में रहते हैं वैसे ही ब्रह्म और विश्व तुम ही विद्यमान है ।३४-३५।

तत्रमात्रात्रयंसर्वंमस्तियद्देविनास्तिच ।
त्रयो लोकास्त्रयोदेवास्त्रैविद्यं पावकत्रयम् ।३६
त्रीणिज्योतीषिवर्णास्त्रयोधर्मादयस्तथा
त्रयोगुणास्त्रास्त्रयः शद्धास्त्रयोदोषास्तथाश्रमाः ।३७
त्रयः कालास्तथावस्थः पितरौर्हनिशादयः ।
एतन्मात्रात्रयदेवितवरूपं सरस्वतति ।३८
विभिन्नदर्शिनामाद्य ब्रह्मणोहिसनातना ।
सोमसंस्थाहविः संस्था पाकसंस्थाश्चसप्तुयाः ।३९

तास्त्वदुच्चारणद्विक्रियतेब्रह्मवादिभिः ।
अनिर्देश्यंतथाचान्यदर्द्धमात्राश्रितंपरम् ।४०
अविकार्यंक्ष यंदिव्यं परिणामविवर्जितम् ।
तवैवचपरंरूप यन्नशक्यं मयेरितुम् ।४१
नचास्येननवाजिह्वाताल्वोष्ठादिभिरुच्यते ।
इन्द्रोपिवमवोब्रह्माचन्दार्कोज्योतिरेवच ।।४२

ओंकार,अक्षर संस्थान,स्थिर,अस्थिर अर्थात् सत् असत् तुम्हींमें विद्यमान रहते हैं, तीनलोक, तीन वेद, तीन विद्या ।३६। तीन अग्नि तीन ज्योति तीन वर्ग, तीन वर्ण,तीन गुण,तीन शब्द,तीन दोष,तीन आश्रम ।३७। तीन काल,तीन अवस्था,पितर तथा दिन रात्रि इत्यादि कितनी भी वस्तुएं तीन मात्रा स्वरूप है। ३८।तथा पृथक्-पृथक् सम्प्रदायकवाले पुरुषों कोआद्यऔर सनातन सप्त विधि व्याहृति का वेद में निरूपण हुआ है। ३९।वहसबतुम्हारे ही कीर्तनमें ब्रह्मवादी समाप्ति करते हैं ।हेमाता !इसकेअतिरिक्त आपका जो एक और परम रूप है, जिसे अर्द्धमात्रा कहते है ।४०। वह भी इसी प्रकार विकार रहित, क्षय रहित और शेष रहित है, हे माता!मैं इतना शक्तियुक्त नहीं हूँ कि आपकी इस परम रूपका निरूपण कर सकूं।४१। क्योंकि उसका मुख जिह्वा, तालु तथा ओष्ठादि से उच्चारण सम्भव नहीं, उस सूर्य अथवा अन्य ज्योतिर्मय पदार्थ उसी के रूप हैं ।४२।

विश्वावसविश्वरूपंविश्वेशंपरमेश्वरम् ।
सांख्यावेदांतवेदोक्तंबहुशाखास्थिरीकृतम् ।४३
अनादि-मध्यनिधनंसदन्नः सदेवतु ।
एकत्वनेकमप्येकभवभेदसमाश्रितम् ।४४
अनाख्यंषडगुणाख्यंचषट्काख्यंत्रिगुणाश्रम् ।
नानाशक्तिमतामेकंशक्तिवभाविकंपरम् ।४५
सुखासुखमहत्सौख्यं रूपंतवविभाव्यते ।
एवदेवित्वयाव्याप्तंसकलंनिष्कलंजगत् ।

अद्वैतावस्थितं ब्रह्मयच्चद्वैतेत्यवस्थितम् ।
येर्थानित्यायेविनश्य तिचान्येवास्थूलायेचसूक्ष्माच्चसुक्ष्माः ।
येवाभूमायेंतरिक्षेन्यतोवातेषांसत्य स्वत्तएवोपलब्धिः ।४७
यच्चामूर्तयच्चमूर्तसमस्तन्यद्वाभूतेष्वेकमेकं किंचित् ।
यद्दिव्येस्तिक्ष्मातलंखेन्यतोवातत्सम्बधन्त्तस्वरैःर्य जनैश्च ।४८
एवस्तुतातदादेवीविष्णोर्जिह्वासरस्ती ।
प्रत्युवाचमहात्मानंनागमश्वतरततः ।४९

वही विश्व स्थान, ईश्वर एव परब्रह्म है, सांख्य, वेदान्त औरतर्कशास्त्र में जिसका वर्णन हुआ तथावेदकीअनुकशाखाओंद्वारा जिसे जिसेस्थिरकिया गया।४३।तथा जिसको न आदि है,न मध्य अथवा अन्तभीनहीं है, जो सत् असत्रूपहैतथा संसार भेदमें अनेकरूप और विभिन्न प्रकार वाला है।४४। जिसकी आख्यागुण षटक् और वर्म हैतथा जों त्रिगुणालम्बी औरशक्तिमानों की शक्तिके परम वैभव से सम्पन्न ।४५।एवं सुख असुख औरमहासुखरूप है, हे माता ! तुममें वह सभी लक्षित होता है इस प्रकार सम्पूर्णकलायुक्त एव कलातीत विश्व तुम्हारे द्वारा व्याप्त होरहाहै।४६। तथा द्वैतावस्थित या अद्वैतावस्थित ब्रह्मभी तुम्हारे द्वाराहीव्याप्त है,जो नित्य, अनित्य, स्थूल या सूक्ष्म, पृथ्वी, अन्तरिक्ष अथवा अन्यत्रविद्यमान हैतुमसेही उसकी प्राप्ति होती है ।४७। जो मूर्त्त या अमूर्त्त है, सब प्राणियों में विद्यमानहै, स्वर्ग पृथिवी, अन्तरिक्ष अथवा अन्य सभी स्थानों में जिसका निवास है, उनसब सब पदार्थों का ज्ञान तुम्हारे ही स्वर व्यंजन द्वारा होता है ।४७। नाग-राज द्वारा इस प्रकार स्तुत हुई सरस्वती ने उनसे कहा ।४९।

वरन्तेकम्बलभ्रातः प्रयच्छाम्युरगाधिप ।
तदुच्वतांप्रदास्यामियत्तोमनसिवर्त्तते ।५०
साहाय्यंदेविदेहित्वंपूर्वकम्बलमेवच ।
समस्तस्वरसम्दद्धमुभयोः सम्प्रयच्छच ।५१
सप्तस्वराग्रामरागाः सप्तपन्नगसत्तम ।
गीतकानिचसर्त्तैवतावत्यश्चापिमूर्च्छनाः ।५२

तानाश्चैंकोनतंचाशत्तथाग्रामत्रयंचयत् ।
एतत्सर्वंभवान्वेत्ताकम्बलश्चैवतेनघ ।५३
ज्ञातस्यतेमत्प्रादेनभुजंगेन्द्रपरतथा ।
चतर्विधंपरंतालं त्रिः प्रकारंलयत्रयम् ।५४
गतित्रयंतथातालंमयादत्तं चतुर्विधम् ॥
एतद्भवान्मत्प्रसादात्पन्नगेंद्रापरंचयत् ।५५
आस्यांतर्गतमयात्तं स्वरव्यंजनयोश्चयत् ।
तदशेषमयादत्तं भवतः कम्बलस्यच ।५६

सरस्वती बोली—हे उरगाधिप ! मैं वर देने को उद्यत हूँ, इसलिए तुम्हारी जो इच्छा हो, माँग लो, वही दूंगी ।५०। अश्वतर ने कहा—हे माता ! मेरे पूर्व सहायक और कम्बल और मुझे दोनों ही श्रुतिग्राम और मूर्च्छनादि सब प्रदान कीजिए ।५१।सरस्वती देवी ने कहा-हे पन्नग श्रेष्ठ ! तुम कम्बल दोनों ही मेरी कृपा से श्रेष्ठ गायक हो जाओगे तथा सप्तस्वर ग्राम के सप्त राग, गालन एवं मूर्च्छना।४२।तथा उनचास तरह की ताल और तीन प्रकार का ग्राम है, तुम सभी प्रकार का गायन कर सकोगे ।५३। हे रागराज ! तुम चार प्रकार के अन्य पथ तथा तीन ताल और तीन प्रकार की लय का ज्ञान भी प्राप्त करोगे ।५४। मैं तुम्हें तीन प्रकार की गति और चतुर प्रकार वाद्य ताल भी तुम्हें देती हूँ, यह तथा इनके अतिरिक्त और समस्त ज्ञान तुम्हें मेरे प्रसाद से हो जायगा ।५५। इनके अन्तर्गत आयत्त स्वर, व्यञ्जनादि जो कुछ है, वह सब विषय तुम दोनों को दिया ।५६।

यथानात्यस्यभूलोकेपातालेवापिपन्नगः ।
प्रणेतारौभवंतोचसर्वस्याद्यभविष्यतः ५७
पातालेदेवलोकेचभूलोकेचैवपन्नगो ।
इत्युक्त्वासातदादेवीसर्वजिह्वासरस्वती ।५८
जगामादर्शनंसद्योनागस्यकमलेक्षणा ।
तयोश्चतद्यथावृतं भात्रोः सर्वंप्रजायत ।५९

विज्ञानमुभयोरग्र यपदतालस्वरादिकम् ।
ततः कैलासशैलद्रशिखरस्थितमीश्वरम् ।६०
गीतकैः सप्तभिर्नागौत त्रीलयसमन्वितैः ।
आरिराधयिषद्देवमनर्नाग हरंहरम् ।६१
प्रचक्रतुः परंयत्नमुभौसंहतावाक्कलौ ।
प्रातर्निशायांमध्याह्नेसंध्याष्टोश्चपितत्परौ ।६२
ततः कालेमहातास्तूयमानोवृषध्वजः ।
तुतोषगोतकैस्तौचप्राहसंगृतांवरः ।६३

तुम स्वर्गलोक, पृथिवी और पाताल में समस्त विषय में अनुपम गणेता रहोगे ।५७। त्रैलोक्य में तुम्हारे समान अन्य नहीं होगा, जड़ बोला ऐसा कह कर भगवती सरस्वती ।५८। तत्काल अन्तर्धान हो गई और उनकी कृपा से यह दोनों भाई सभी विनय के ज्ञाता हुए ।५९। पद, ताल तथा स्वरादि में उनको अनुपम सिद्ध हुई, तब वह कैलाश में स्थिर ईश्वर ।६०। अनंगहारी शिव की तन्त्रीलय युक्त सप्तस्वर से गायनपूर्वक आराधना प्रारम्भ की ।६१। वह व यो और इन्द्रियों को संयम में करके प्रातः मध्याह्न एवं सायं त्रिकाल में शिवको उपावसना में तत्पर हुए ।६१। तब देव देव शङ्कर बहुत काल में प्रसन्न हुए और उन दोनों से बोले कि 'वर माँग लो ।६३

ततः प्रणम्याश्वतरः कवलेनसमंतदा ।
विज्ञापयन्मादेवंशितिकंठमुमायातिम् ।६४
यदिनोभगवन्प्रीतोदेवदेवात्रिलोचन ।
ततोयथाभिलषितंवरमेनंप्रयच्छतां ।६५
मृताकवलयाश्वस्यापत्नीदेवमदालसा ।
तेनैववयसासद्यादुहितृत्वंप्रयातुमे ।६६
जातिस्मरायथापूवन्द्वत्क्षांतसमान्विता ।
योगिनीयोगमातचजायतांवचनात्तव ।६७
यथोक्तं पन्नगश्रेष्ठसर्वमेतद्भविष्यति ।
मत्प्रसादासंदिग्धंशृणचेदंभुजगम् ।६८

श्राद्धावसातेप्राश्नोयामध्यं पिण्डामात्मना ।
कामच्चेमामनुध्यायन्कुरुत्वंपितृपूजनम् ।६९
तत्क्षणादेवसासुभ्रूर्भवतोमध्यामात्फणात् ।
ससुत्पस्स्यतिकल्याणीतथारूपायथामृता ।७०

तब कम्बल सहित अश्वतर ने प्रणाम कर पार्वतीपति भगवानशंकर से निवेदन किया ।६४। हे प्रभो ! आप सर्वशक्ति सम्पन्न है, यदि आप प्रसन्न हुए हैं तो हमें यह इच्छित वर दीजिए ।६४। कुवलयाश्व की पत्नी मदालसा ने प्राण त्याग किया है, वह जिस अवस्था में मरण को प्राप्त हुई है. उसी अवस्था मे मेरी कन्या के रूप में उत्पन्न हो ।६६। वह पूर्ववत् कान्तिमती तथा जातिस्मरा होकर मेरे गृह में जन्म धारण करे ।६७ शिवजी बोले-हे पन्नगोत्तम ! तुम्हारा कहा हुआ मेरी कृपा से अवश्य होगा, अब जो कहता हूं उसे सुनों ।६८। श्राद्ध का समय उपस्थित होने पर पवित्र एवं सावधान मन से तुम स्वयं मध्यम पिण्ड का भोजन करना तथा मेरा ध्यान करके पितरों का यजन करना ।६९। मध्यम पिण्ड का भक्षण करने से मदालसा ने जिस अवस्था में प्राण त्यागा है,उसी अवस्था में तुम्हारे मध्य फण से उत्पन्न हो जायगी ।७०।

स्वयमेवोपधुंजस्वयतः सर्वंभविष्यति ।
उपत्स्यतेततः सातुसत्यंवंमध्यमात्फणात् ।७१
एतच्छ्रुत्वाततस्तौतुप्रणिपत्यमहेश्वरम् ।
रसातलमनुप्राप्तौपरितोषसमन्वितौ ।७२
तथाचकृतवाञ्छ्राद्धं सनागः सम्बलानुजः ।
पिडंचमध्यमंद्वद्यथावद्भुक्तवान् ।७३
उपभुक्तेतत पिंडेतस्यसातनुमध्यमा ।
जज्ञेनिःश्वतः सद्यस्तद्रूपामध्यमात्फणात् ।७४
न चापिकथयामासकस्यचित्सभुजंगमः ।
अंतर्गृहेतांसुदतीस्त्रीभिर्गुप्तामधारयत ।७५

तौचानुदिनमागम्यपुत्रौ नागपतेः सुखम् ।
ऋतुध्वजेनसहितौचिक्रीडातेमराविव ।७६
एकदातुसतौप्राहसनागोऽश्वतरोमुदा ।
तन्मयापूर्वमुक्तं तुक्रियतेकिंनुतत्तथा ।७७
सराजपुत्रोयुवयोरुपतारीममांतिकम् ।
किंनुनानीय वत्सावुपकारायमानदः ।७८

तुम ऐसी कामना करके पितरों का तर्पण करो, जिससे वह जिस अवस्था में मृत हुई उसी अवस्था श्वास त्याग के समय तुम्हारे मध्यम फण से निकलेगी ।७१। यह सुनकर दोनों भाई शिवजी को प्रणाम करके पाताल में गए ।७२। फिर अश्वतर ने उसी प्रकार पितर श्राद्ध करते हुए मध्यम पिण्ड का भोजन किया ।७३। अन्त में अपने इच्छित का ध्यान करके श्वास छोड़ा तभी उनके मध्यम फण से मदालसा अपने उसी रूप में उत्पन्न हो गई ।७४। अश्वतर ने यह किसी को न बताई और मदालसा को स्त्रियों के साथ छिपा कर घर रखा ।७५। उधर उनके दोनों पुत्र देवकुमारों के सामने ऋतध्वज के पास आकर नित्य प्रति आनन्द पूर्वक खेलने लगे ।७७। एक दिन नागराज ने उन दोनों ने कहा—पूर्व में मैंने तुमसे जो कुछ कहा था, तुम उसे क्यों नहीं करते ।७७-७८।

एवमुक्तौपनस्तेनपुत्रौस्नेहवमातुतौ ।
गत्वातस्यपुरंसख्यूरेमातेतेनधीमतः ।७९
ततः कुवलयाश्व तकृत्वाकिंचित्कथांतरम् ।
अब्रूतांद्रणिपातेनस्वग्रहागमनंप्रति ।
तावाहनृपपुत्रोसोनन्विदभवतोगृहम् ।
धनवाहनवस्त्रादियन्मदोयं तदेववाम् ।८१
यस्यवांवांछितंदातुधनरत्नमथापिवा ।
तद्दीयतांद्विजसुतौयदिवांप्रणयौमयि ।८२
एतावताहं दैवेनवंचितोस्मिदुरात्मना ।
यद्भवद्मयांममत्वं नोमदीयेकियतांगृहे ।८३

यदिवांमेप्रियं कार्यं यमुग्राह्योस्मिवयादि ।
तद्धं नेमन गेहेचममत्वमनुकल्प्यताम् ।८४

स्नेही पिता द्वारा ऐसा कहा जाने पर उनके दोनों पुत्र ऋतुध्वज के नगर में जाकर उनके साथ खेलने लगे ७६। फिर उन्होने प्रीति पूर्वक कुवलयाश्व को अपने गृह चलने का अनुरोध किया ।८०। राजकुमार बोला— मेरा गृह धन, वस्त्र, यान आकि जो कुछ है, सब तुम्हारा ही है ।८१। यदि मेरे प्रति तुम्हारी अधिक प्रीति हुई है और मुझे जो धन, रत्न दना चाहते हो, वह दो ।८२। यदि तुम मेरे घर को अपना नहीं मानते हो मैं दव वारा वचित हुआ ही समझिये ।८३। हो मेरा प्रिय करने की इच्छा करते हो और मुझे अपना कृपापात्र मानते हो तो गृह और धन में अपनत्व रखो ।८४।

युवयोर्यन्मदीयं तन्मामकं युवयोः स्वयम् ।
एतत्सर्वं विजाीयसखाप्राणोबहिश्चरः ।८५
पुनर्नैव विभिन्नार्थंवक्तव्यं द्विजसत्तमो ।
मत्प्रसादपरौप्रोत्याशापितौहृदयेनमो ।८६
ततः स्नेहार्द्रं वदनौतावुभोनागनंदनौ ।
ऊचतुर्नृपतेः पुत्र किंचित्प्रणयकोपितम् :८७
ऋतुध्वज नसदेहोयथं वाहभवानिदम् ।
तथवचास्मन्मनसिनात्राचत्ये मतोन्यथा ।८८
किंत्वात्रयोः समपित्राप्रोक्तं मेतन्महात्मना ।
द्रष्टुं कुवलयाश्वततमिच्छामीतिपुनः पुनः :८९
ततः कुवलयाश्वोथसमुत्थायवरानात् ।
यथाह तानेतिववदन्प्रणाममकोदभुवि ।९०
धन्योहमति पुण्योहं कन्योस्ति सदृशोमया ।
यत्तातोमामभिद्रष्टुं करोतप्रवणमनः ।९१
तदुत्तिष्ठतगच्छामताताज्ञांक्षणमप्यहम् ।
नातिकां तुमिहेच्छामिपदभयांतस्यशापास्यहन् ।

तुम्हारा है, वह मेरा और मेरा है वह तुम्हारा, मेरी इस बात को

: थार्थ समझो, क्योंकि तुम मेरे बाह्य प्रमाण स्वरूप हो।८५। अतएव हे विप्रो! ऐसी भेद स्थापित करने वाली बात न कहना, मैं तुम्हें शपथ देता हूँ कि तुम प्रीतिपूर्वक प्रसन्न होओ।८६। तब दोनों नागपुत्रों ने स्नेहसिक्त मुख से प्रीतिपूर्वक कुछ रोष व्यक्त करते हुए कहा।८७। हे राजकुमार! जो तुमने कहा है, वही हम सोचते हैं, इसमें कुछ भेद मत समझो।८८। परन्तु हमारे पिता ने तुम्हें देखने की बारम्बार इच्छा प्रकट की है।८९। तब कुवलयाश्व श्रेष्ठ आसन से 'स्वयं' पिताजी ने इच्छा की है' यह कहते हुए उठकर प्रणाम किया।९०। और कहा—अवश्य ही मैं धन्य एवं पुण्यवान् हूँ' क्योंकि मुझे देखनेके लिए स्वयं पिताजी उत्सुक हुए हैं।९१। इसलिए, चलो क्षणमात्र को भी उनकी आज्ञा का उल्लघन मैं नहीं कर सकता, मैं उनके चरण स्पर्श पूर्वक तथा शपथ से कहता हूँ।९२।

एवमुक्त्वाययौसोथसहताभ्यांनृपात्मजः।
प्राप्तश्चगौतमीपुण्यांनिगम्यनगराद्बहिः।९३
तन्मध्येनययुस्तेवनागेद्रनृपनंदनाः।
मेनेचराजपुत्रोऽसौपारेतस्यास्तयोर्गृहं।९४
ततश्चाकृष्यपातालताभ्यांनीतोनृपात्मजः।
पातालेदद्दृशेचोभौसपन्नगकुमारकौ।९५
फणामणिकृतोद्द्योतौव्यक्तस्वस्तिकलक्षणौ।
विलोक्यतौसुरूपांगौविस्मयोत्फुल्ललोचनः।९६
विहस्यचाब्रवोत्प्रेम्णासाधुभोद्विजसत्तमौ।
कथयामासतुस्तौतुपितरंपन्नगेश्वर।९७
शांतमश्वतरनागंमाननीयदिवौकसाम्।
रमणीयंततोपश्यत्पातालंनृपात्मजः।९८

यह कहकर ऋतध्वज उनके साथ चले और नगर के बाहर जलसे परिपूर्ण गोमती नदी पर पहुँचे।९३। उसके मध्यसे तीनों चलने लगे, राजकुमार ने समझा कि गोमती के पार ही उनका घर है।९४। परन्तु उन्होंने राजकुमार को खींचा और पाताल में ले गये, वहाँ पहुँचकर, राजकुमारने

देखा कि दोनों नागपुत्रों ने अपना यथार्थ रूप धारण कर लिया है ॥६५॥ फणों में स्थित मणि के प्रकाश से उनका हृदय और स्वस्तिक चिह्न प्रकाशित होगया, राजकुमार ने उनके स्वरूप को देखकर विस्मय से विस्फारित नेत्रों द्वारा ।६६। हंसते हुए साधुवाद दिया, फिर देवतानों द्वारा भी स्तुत पितृदेव अश्वतर से राजकुमार के आगमन का वृत्तान्त कहा गया । राजकुमार ने देखा कि पाताल का वह नगर अत्यन्त रमणीक है।६७-६८।

कुमारैस्तरूणंवृद्धैरुरगैरुपशोभितम् ।
तथैवनागकन्याभिःक्रीडतीभिरितस्ततः ।६६
चारुकुंडलहाराभिस्ताराभिर्गगनं यथा ।
गीतशब्दस्तथान्यत्रवीणावेणूस्वरानुगैः ।१००
मृदंगपणवातोद्यहारिवेश्मशताकुलम् ।
वीक्षमाणःसपातालंययौशत्रुजितःसुतः ।१०१
सहताभ्यामभीष्टाभ्यांपत्रगाभ्यामरिंदमः ।
ततः प्रविश्यतेसर्वेनागराजनिवेशनम् ।१०२
ददृशुस्तं महात्मानमुरंगाधिपतिस्थितम् ।
दिव्यमाल्यांवरधरमणिकुंडलभूषणम् ।१०३
स्वच्छमुक्त फललताहारिहारोपशोभितम् ।
केयूरिणमहाभागमासनेसर्वकांचने ।१०४
[illegible]णित्रिद्रुमवैडूर्यंजालांतरीतरूपके ।
सताभ्यांदर्शितस्तस्यतातोस्माकमसाविति ।१०५

बाल युवा, वृद्ध सब जाति के सर्प सुशोभित हैं और उनके चारों ओर नागकन्याए क्रीड़ा करती घूम रही हैं॥६६॥उनके हार और कुण्डल अत्यन्त सुन्दर हैं, उनके सामीप्य से तारावलि से विभूषित आकाश के समान पाताल की नगरी सुशोभित हो रही हैं, कहीं सङ्गीत की ध्वनि, कहीं वंशी और कहीं वीणायें बज रही हैं ॥१००॥ मृदङ्ग, पणव एव आतोद्य केशब्द से प्रतिध्वनित सैकड़ों रमणीक घर सुशोभितहैं, उस नगरी को देखते हुए राजकुमार अपने समवयस्क मित्रों के साथ चल रहेथे,फिर उन्होंने नागराज के स्थान में प्रवेश करके॥१०१-१०२॥उन्हें वहाँ निवास

करते देखा, उनका दिव्य बिछौना, दिव्य माला तथा दिव्य मणिमयकुण्डल शोभायमान हैं ॥१०३॥ स्वच्छ मनोरमहार से अत्यन्त सुशोभित, हाथों में केयूर धारण किये हुए वह स्वर्ण सिंहासन पर बैठे है ॥१०४॥ मणिमूगा वैदूर्य आदि के कारण उनका प्राकृत स्वरूप ढ़क गया हैं, सखाओं ने राजकुमार से कहा कि हमारे पिता यही हैं ॥१०५॥

वीरःकुवलयाश्वोयंतित्रेचासौनिवेदितः ।
ततोननामचरणोनागेंद्रस्यऋतध्वजः ।१०६
समुत्थाप्यबलाद्गाढ़ मनागःपरिषस्वजे ।
मूर्ध्निचैवमुपाघ्रार्याचिरं जीवेत्युवाचह ।१०७
निहतामित्रवर्गश्चपित्रोःशुश्रूणकुरु ।
वत्सधन्यस्यकथ्यतेपरोक्षस्यापितगुणाः ।१०८
भवतोममपुत्रःस्यामाभ्यायेमेनिवेदिताः ।
तदेतरेववद्धथामनोवाक्कायचेष्टितैः ।१०९
जीवितगुणिनःश्लाघ्यजीवन्नपिमृतोऽगुणी ।
गुणवान्भिवृत्तिपित्रोःशत्रूणांहृदयेज्वरम् ।११०
करोत्यात्माहतकुर्वंस्विश्वासचमहाजने ।
देवताःपितरौविप्रामित्रार्थिविभवादयः ।१११
बांधवाश्चतथेच्छतिजीवितंगुणिनश्चिरम् ।
परवादनिवृतानादुर्गतेषुदयावताम् ।११२

फिर पिता से कहा कि यही वीर कुवलयाश्व है, तब ऋतध्वज ने नागराज के चरणों में प्रणाम किया ॥१०६॥ नागराज ने राजकुमार का आलिंगन कर शिर सूंघते हुए कहा-चिरंजीव होओ ॥१०७॥ तथा शत्रुकुल का विनाश करते हुए माता—पिता की सेवा करो। तुम धन्य हो, मेरे पुत्र तुम्हारे पीछे भी तुम्हारे अलौकिक गुण ॥१०८॥ गाया करते हैं, इससे भी तुम्हारा मन, वाणी, शरीर और चेष्टा की सर्वाश मैं वृद्धि होगी ॥१०९॥ गुणवान् पुरुष ही प्राण धारण के योग्य हैं, जो गुणहीन हैं, वह जीवित रहकर भी मरे हुए के समान हैं, क्योंकि गुणवान्पुरुष माता-पिता को शान्ति देते और शत्रु कुल को संत्रा

करते हैं ॥११०॥ महाजनों के विश्वास को प्राप्त करके अपना कल्याण साधन करते हैं, देव, पितर, ब्राह्मण मित्र, प्रार्थी एवं विभव इत्यादि।१११।।एवं बंधुजन गुणवान् के ही दीर्घजीवी होने की कामना करते हैं, गुणवान् व्यक्ति बुरे कर्म करने वालों को निरस्त करते और दुःखियों के प्रति दया प्रदर्शित करते हैं ॥११२॥

गुणिनांसफलंजन्मसश्रितानांविपद्गतः ।
एवमुक्त्वासतंवीरंपुत्राविदमथाब्रवीत् ।११३
पूजांकुवलयाश्वस्यकर्त्तुकामोभुजंगमः ।
स्नानादिकक्रमंकृत्वासर्वमेवयथाक्रमम् ।११४
मधुपानादिसंभोगमाहारचयथेप्सितम् ।
ततःकुवलयाश्वेनहृदयोत्सवभूतया ।११५
कथयास्वल्पककालस्थास्यामोहृष्टचेतस ।
अनुमेनेचतंमौनीवचःशत्रुजित सूतः ।११६
तथाचकारचपतिःपन्नगानामुदारधीः ।११७
समेत्यतैरात्मजभूपनंदनैर्महोरगाणामधिपःससत्यवाक् ।
मुदायुतोन्नानिमधूनिचात्मवान्ययोपजीषंवुभुजेसभोगभाक्।११८

दुःखियों के आश्रयदाता होने से भी उनका जन्म सफल है, ऐसा कहकर राजकुमार का पूजन करने लगे तथा अपने दोनों पुत्रों से बोले कि हम सब एकत्र होकर स्नानादि से निवृत्त होकर।।११३। इच्छानुसार मधु-पान एवं आहार भक्षण कर कुवलयाश्व सहित उत्सुकता पूर्वक ।।११५।। प्रसन्न मन से रहेंगे, इस पर कुवलयाश्व ने मौन रहकर ही उनकी बात का अनुमोदन किया ।।११६।। फिर उदारचेता नागराज ने उसके अनुरूप कार्यारम्भ किया ।।११७।। सत्यभाषी नागराज अश्वतर के दोनों पुत्र राज-कुमार के साथ प्रसन्न चित्त से अन्नमधु का सेवन करने लगे ।।११८।।

२२ कुवलयाश्व को पुनः मदालसा प्राप्त

कृताहारंमहात्मानमधिपंपन्नगाशिनाम् ।
सपासांचक्रिरेपुत्रौभूपालतनयस्तथा ।१
कथाभिरनुरूपाभिःप्रहृष्टात्माभुजंगमः ।
प्रीतिसंजनयामासपुत्रसख्युरुवाचह ।२
तवभद्रसुखंब्रूहिगेहमभ्यागतस्ययत् ।
कर्तव्यमुत्सृजाशंकापितरीवसुतेमयि ।३
हिरण्यंत्रासुवर्णवावस्त्रंवाहनमासनम ।
यद्वाभिमतमत्यर्थंदुर्लभतद्व्रगुष्वमाम् ४
भवत्प्रसादाद्भगवन्सुवर्णादिगृहेमम ।
पितुरस्तिममाद्यापिर्नकिंचित्कार्यंम दृशः ।५
तातेवर्षसहस्रायुःशासतीमांवसुंधराम् ।
तथंत्वयिपातालनम याञ्जोन्मुखमनः ।६
तेसुभाग्या सुपण्याश्चयेषांपितरिजीवति ।
तृणकोटिसमवित्तंत रुण्यंवित्त कोटिषु ।७

जड़ बोला—फिर नागराज अश्वतरके भोजन कर लेने पर उनके दोनों पुत्र और राजकुमार उनकी उपासना में लगे ।१। तब नागपति अश्वतरने अनुरूप वचनों ने राजकुमारों को प्रसन्न करते हुए कहा हे भद्र !।२। तुम मेरे गृह आये हो, जैसे शङ्कारहित होकर पुत्र अपने पितासे बातें करता है वैसे ही तुम भी करो, मुझे बताओ कि मैं तुम्हारा कौन-सा प्रिय कार्य करूँ ।३। इन बातको स्वच्छन्द होकर कहो, स्वर्ण, रजत, वस्त्र, वाहन अथवा जो कुछ इच्छित हो, वह यदि दुर्लभ भी हो तो मुझसे माँग लो ।४। कुवलयाश्व बोला—हे भगवन् ! आपकी कृपासे मेरे पिताके गृहमें स्वर्णादि सब वस्तुएं हैं मुझे अभीतक ऐसे किसी वस्तुकी आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई ।५। मेरे पिता सहस्र वर्ष हुए, जब इस पृथिवी पर शासन करते थे और आप भी पाताल में निवास करते थे, तब कभी भी मेरा मन प्रार्थना में प्रवृत्त नहीं हुआ ।६। जिनके पिता जीवित हैं, वह पुरुष धन्य हैं इस लए युवावस्था में

करोड़ संख्य। धन को भी जो तिनके के समान मानते हैं, वह परम पुण्य वान् महापुरुष हैं ।।७।।

मित्राणितुल्यशिष्टःनितद्वद्देहमनामयम् ।
जनेवाध्रितेवित्तंयौवनंकितुनास्तिमे ।८
असत्यथंनृणांयाञ्चाप्रवणंजायतेमनः ।
सत्यशेषेकथंयाञ्चांममजिह्वाकरिष्यति ।६
येनंचित्यंधनंकिंचिन्ममगेहेस्तिनास्तिवा ।
पितृबाहुतरुच्छ यांसश्रिताःसुखिनोहिते ।१०
येतुबाल्यात्प्रभृत्येवविनापुत्राकुटुंबिनः ।
तेसुखास्वादविभ्रंशान्मन्येधात्रेवञ्चिताः ।११
तद्वयंतत्प्रसादेनधनरत्नादिसंचयम् ।
पितृभक्ताःप्रयच्छाम कामतोनित्यमर्थिना ।१२
तत्सर्वमिहसंप्राप्तयंदंध्रियुगलंतत्र ।
मच्चूड़ामणि नाघृष्टंयच्चांगस्पर्शमाप्तवान् ।१३
इत्येवंप्रश्रितंवाक्यमुक्तपन्नगसत्तमः ।
प्राहराजसुतंप्रीत्यापुत्रयोरुपकारिणम् ।१४

मेरे मित्र उचित शिष्टाचार से युक्त हैं, मेरा देह युवा एवं रोग रहित है,तो मेरे पास क्या नहीं है ।।८।। मेरा पिता विलक्षण धनसे संपन्न हैं। जिनके पास धन नहीं, वही याचना में प्रवृत्त होते हैं मेरे यहाँ प्रचुर धन होने से मेरी जिह्वा याचना क्योंकरें ? ।६।घर में धन हो या न हो, जो पिता रूपी वृक्ष की भुजलताओं के आश्रित है, उन्हें कोई चिन्ता नही होती, क्योंकि यथार्थ रूप सुखी वही हैं ।।१०।।परन्तु जो बाल्यकाल से ही पितृहीन होकर परिवार के भरण पोषणमें व्यस्त होते हैं उन्हें विधान ने सुख से वंचित करदिया है ।।११।। आपकी कृपा से मैं अपने पिता के द्वारा प्रदत्त असंख्य धन-रत्नादि कों याचकों को देता हूँ ।।१२।।फिर जब अपनी चूडामणि के द्वारा आपके चरणारविन्दों का स्पर्श किया है और आपका संग लाभ हुआ तो मुझे निःसंदेह सम्पूर्ण लाभ हो गये हैं ।।१३।।

ऐसे वचन सुनकर नागराज अपने पुत्रों के हित में तत्पर उस राजकुमार से बोले ॥१४॥

यदिरत्नसुवर्णादिमत्तोवाप्तुं नते ऽनः ।
यदन्यन्मनसःप्रीत्यंन्न् हितत्तं ददाम्यहम् ।१५
भगवंस्त्वत्प्रसादेनप्रार्थितस्यगृहेमम ।
सर्वमस्तिविशेषेणसंप्राप्तं तवदर्शनात् ।१६
कृतकृत्योऽस्मिचैतेनसफलजीवितमम ।
यदंगसंश्लेसमितस्तदेवस्यमानुषः ।१७
ममोत्तमांगेत्वत्पादरजसार्यादिहास्पदम् ।
कृततेनंवनप्राप्तंकिमयापन्नगेश्वर ।१८
यदित्ववश्यदातव्योवरामेमनसेप्सितः ।
तत्पुण्यकर्मसंस्कारोहृदयान्माव्यपतुमे ।१९
सुवर्णमणिरत्नादिवाहनं गृहमासनम् ।
स्त्रियन्नपानं पुत्राश्चचारुमाल्यानुलेपनम् ।२०
एतेचविविधाभोगागीतवाद्यादिकचयत् ।
सर्वमेतन्ममततंफलंपुण्यवनस्पतेः ।२१
तस्मान्नरेणतन्मूलसेकेयत्नःकृतात्मना ।
कर्त्तव्य पुण्यसक्तानांनकिंचिद्भुव दुर्लभम् ।२२

स्वर्ण रत्नादि की कामना न होते हुए भी जिससे तुम्हारे अन्तर की प्रीति का संचार हो सके, वह विषय मुझसे कहो, उस मैं प्रदान करूँगा ॥ ५॥ कुवलयाश्व बोले—भगवान् ! मेरे गृह में आपकी कृपा से सम्पूर्ण प्रार्थनीय वस्तुएँ विद्यमान हैं, तथा आपका दर्शन लाभ करने से समस्त वस्तुएँ ही मुझे मिल गयी हैं ॥१६॥ आप देवता के अंग संग का लाभ करके मैं अपने को धन्य मानता हूँ इससे मेरा जीवन धारण करना भी सफल हुआ है ॥ ७॥ हे नागेश्वीर ! आपके चरणराज ने मेरे मस्तक पर निवास किया है, इससे मुझे क्या नहीं प्राप्त हुआ ? ॥'८॥ तो भी यदि आप मुझे इच्छित वर देना चाहते हैं तो यही दीजिये कि मेरा हृदय से कभी पुण्यकर्म के संस्कार न निकालें।१९। स्वर्ण,

मणि, रत्न, वाहन, घर, आसन,स्त्री,पुत्र,अन्न, रस,माला,अनुलेपन ।२०। तथा गायन-वादन आदि सब वस्तुएँ पुण्य का ही फल हैं। २१। इसलिये कृत चित्त होकर उसी की जड़ सींचनी चाहिये, पुण्य में आसक्त मनुष्यों के लिए पृथिवी में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है ।२२।

एवंभविष्यतिप्राज्ञतवधर्माश्रितामतिः ।
सत्यंचैतत्फलं सर्वंधर्मस्योक्तं यथात्वया ।२३
तथाप्यवश्वंमद्गेहमागतेनत्वयाधुना ।
प्राह्यं यन्मानुषेलोकेदुष्प्रापंभवतोमतम् ।२४
तस्यतद्वचनं श्रुत्वा सतदानृपनंदनः ।
मुखावलोकनंचक्रे पन्नगेश्वरपुत्रयोः ।२५
ततस्तौप्रणिपत्योभौराजपुत्रस्ययन्मतम् ।
तत्पितुःसकलंवीरौकथयामासतुःस्फुटम् ।२६
तातास्यपत्नीदयिताश्च त्वेमविनिपातितम् ।
अत्यजद्दयिताप्राणान्विप्रलब्धादुरात्मना ।२७
केनापिकृतं वरेणदानेनकुबुद्धिना ।
गंधर्वराजस्यसुतानाम्नाख्यातामदालसा ।२८

अश्वतर बोले–ऐसा ही होगा,तुम्हारा मन सदा पुण्य कार्यों में रहेगा तुम्हारा सब कथन सत्य है,धर्म का एक मात्र फल यही है ।२३। फिर भी जब तुम मेरे गृहपर आयेही तो मृत्युलोकमें जोतुम्हें दुष्प्राप्यहो वह अवश्य लेना चाहिए ।२४। जड़ बोला-नागराज का वचन सुनकर राजकुमारने उनके पुत्रों के मुख की ओर देखा ।२५। तब उन दोनों ने अपनेपिता को प्रणाम करके राजकुमार की कामनाको स्पष्ट रूपसे कहा ।२६। दोनोंपुत्र बोले-इनकी प्रियतमाने किसी दुरात्मा दानवद्वारा छलपूर्वक इनकी मृत्युका समाचार पाकर प्राण त्याग किया है ।२७।उस दानवने शत्रुतावशही ऐसा किया था,इनकी पत्नीका नाम मदालसा था,वह गंधर्वराजकी पुत्रीथी। २८।

कृतज्ञोयंततस्तातप्रतिज्ञांकृतवानिमाम् ।
नान्याभार्याभवित्रीमे वर्जयित्वामदालसाम् ।२९

द्रष्टुतांचारुसर्वांगीमयवीरोऋतध्वजः ।
तातवांचतियद्यं तत्क्रियतेतत्कृतभवेत् ।३०
भूतैर्वियोगिनोयोगस्तादृशैरेवतादृशः ।
कथमेतद्विनास्वप्नमायांवाशंबरोदिताम् ।३१
प्राणपयत्यभुजगेशपुत्रशत्रुजितस्ततः ।
प्रत्युवाचमहात्मानं प्रेमलज्जासमन्वितः ।३२
मायामयीमप्यधुनाममतातोमदालसाम् ।
यदिदर्शयतेमन्येपरंकृतमनुग्रहम् ।३३
तस्मात्पश्येहदत्वमायांचेद्द्रष्टुमिच्छसि ।
अमुग्राह्योमवान्गेहेबालोप्यभ्यागतोगुरु ।३४
आनयामासनागेंद्रोगृहेगुप्तांमदालसाम् ।
दर्शयामासचादराजपुत्रायतामुभाम् ।३५

मदालसा के मरने पर, उसके प्रति कृतज्ञता प्रकाश करने के लिए इन्होंने प्रतिज्ञाकी है कि उसके अतिरिक्त अन्य किसी नारी को पत्नी नहीं बनाऊँगा ।२६। यह उस सर्वांग सुन्दरी के दर्शन को अत्यंत लालायितहैं यदि ऐसा हो सके तो इनका यथार्थ उपकार हो सकता है ।३०। अश्वतर बोले पंचभूतात्मक देह का वियोग होने पर पूर्ववत् संयोग आसुरी माया के अतिरिक्त अन्य प्रकार से सभव नहीं ।३१। ह सुनकर ऋतुध्वज ने नागराज को प्रणाम किया और लज्जा सहित कहा ।३२। हे तात ! यदि आप इस मदालसा को माया पूर्वक ही मुझे दिखा सकें तो मैं इसे परम अनुग्रह ही समझूँगा ।३३। अश्वतर ने कहा— वत्स ! यदि तुम माया देखना चाहते हो तो अनुग्रह के पात्र होने के कारण देखो, यद्यपि तुम बालक होकर यहाँ आये हो फिर भी अतिथि होनें के कारण गुरु के समान सन्मान के योग्य हो ।३३। नागराज ने यह कह कर घर में छिपी हुई मदालसा को वहाँ बुलाकर राजकुमार को दिखाया । ५।

तेषांसमोहनार्थायजजल्पचततःस्फुटम् ।
सेयंगवेतितेभार्याराजपुत्रमदालसा ।२६

सदृष्ट्वातादातन्वींतत्क्षणाद्विगतत्रपः ।
प्रियेतितामभिमुखययौवाचमुदीरयन् ।३७
निवारयामासचतंनागःसोश्वतरस्त्वरन् ।
मायेय पुत्र मास्प्राक्षीः प्रागेव कथिततव ।३८
अंतर्द्धानमुपैत्याशुमायासंस्पर्शनादिभिः ।
ततःपपातमेदिन्यांसतुमूर्च्छापरिप्लुतः ।३९
हाप्रियेतिवदन्सोर्थचितयामासभामिनीम् ।
माहाममयज्ञोवेतिनालंप्रत्ययवानहम् ।४०
अहोममेत्यहचेतिबलप्रत्ययोर्नहत् ।
येनाहपातनारीणांविनाशस्त्रंनिपातितः ।४१
ममेतिदर्शितानेनमिथ्यामायेतिविस्फुटम् ।
वाय्वंबुतेजसांभूमेराकाशस्यचचेष्टया ।४२

तथा सबको मोहित करने के लिए मंत्रोच्चार पूर्वक मदालसा को दिखाते हुए राजकुमार से कहा-हेवत्स ! तुम्हारी भार्या मदालसा यही है इसे तुम देखो ।।३६।। उसे देखते ही राजकुमार लज्जा त्याग कर 'प्रिये' कहते हुए तत्काल उसके सामने पहुँचे।।३७।। अश्वतरने उन्हें निषेध करते हुए कहा-हे वत्स ! यह माया है, इसे स्पर्श मत करना, यह मैं पहिले ही कह चुका हूँ ।।३८।। स्पर्शादि से माया तत्काल नष्ट हो जाती है, ऐसा सुन कर ऋतध्वज मूर्च्छित होकर पृथिवी में गिर पडे ।।३६।। फिर हा प्रिये ! कहते हुए बोले-क्या मुझे मोह हो गया है अथवा कुछ और बात हैं, यह बात समझ में नहीं आती है ।।४०।। परन्तु मुझे बल पूर्वक निश्चय हैं कि यह मेरी ही है जिससे मुझे बिना शस्त्र मारा है ।।४१।। वह मिथ्यामाया ही मुझे दिखाई है, अथवा यह वायु, जल, तेज या आकाश की कोई चेष्टा है ? ।।४२।।

ततःकुवलयाश्वंसमाश्वास्यभुजगम ।
कथयामासतत्सर्वंमृतसंजीवनादिकम् ।४३
ततःप्रहृष्टपतिलभ्यकांतांप्रणम्यनागनिजमाजगाम ।
सस्तूयमानःस्वपुर तमश्वमारुह्यसंचिततमभ्युनेतम् ।४४

श्रृणुयाभ्दक्तिपूर्वंयोनैरंतर्पणामानव ।
वेदघोषफलखेनप्राप्तंवैभुविदुर्लभम् ।४५
सप्राप्नोतिसुखंनित्यंसर्वकामसमन्वितः ।
लाकेचदुर्लभंतस्यनास्तिर्किचिन्नतीवहि ।४६

जड़ बोले-फिर नागराज अश्वतर ने कुवलयाश्व को समझा बुझा कर जिस प्रकार मदालसा कोप्राप्त किया था वह सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाया ।४३।। तब कुवलयाश्व को अपनी भार्या की प्राप्ति से अत्यंत आनन्दहुआ और उन्होंने अपने अश्व को स्मरण किया याद करते ही वह अश्व वहां आ गया और राजकुमार ने नागराज को प्राणाम कर भार्या सहित घोडे पर बैठ कर अपने नगर को प्रस्थान किया ।।४४।। जो मनुष्य इस कथा को भक्तिभाव पूर्वक सुनते हैं, वे वेद पाठ के फल को प्राप्त होते हैं, यह उपाख्यान पृथिवी में अत्यन्त दुर्लभ है, इससे संदेह नहीं है ।।४५।। सब कामनाओं की प्राप्ति एवं नित्य सुख की प्राप्ति होती है लोक में उसके लिए कुछ भी दुर्लभ नहीं होता ।।४६।।

२३ मदालसा का पुत्र-उल्लापन

आगम्यस्वपुरंमोथपित्रोःसर्वमशेषतः ।
कथयामासतन्वंगीयथाप्राप्तापुनर्मृता ।१
ननामसापिचरणोश्वश्रूश्वशुरयोशुभा ।
स्वजनचयघापूर्ववंदनाश्लेषणादिभिः ।२
पूजयामासयन्वगीयथान्यायययथावयः ।
ततोमहोत्सवोजज्ञेपौराणांतत्रवैपुरे ।३
ऋतध्वजश्चसुचिरंतयारेमेसुमध्यया ।
निर्झरेषुचशैलानांनिम्नगापुलिनेषुच ।४
काननेषुचरम्येषुवनेषूपवनेषुच ।
पुण्यक्षयंकंछमानास पिकामोपभोगतः ।५

सहतेनातिक्रांतासुरेमे रम्यासुभूमिषु ।
ततःकालेनमहताशत्रुजित्सनराधिपः ।६
सम्यक्प्रशास्यवसुधांकालधर्ममुपेयिवान् ।
ततःपौरामहात्मानं पुत्रतस्यऋतध्वजम् ।७
अभ्यषिंचतराजानमुदाराचारचेष्टितम् ।
सम्यक्पालयतस्तस्यःप्रजापुत्रानिवौरसान् ।८

पुत्र बोला—अपने नगर में पहुँच कर ऋतध्वज ने मृतक मदालसा को जिस प्रकार पुनः प्राप्त किया वह सब वृत्तांत अपने माता-पिता से कहा ।१। कल्याणी मदालसा ने भी अपने सास-श्वसुर के चरणों में प्रणाम पूर्वक ।२। सभी स्वजनों की यथा योग्य वंदना, पूजन आदि किया और फिर नगरी में पुरवासियों ने महोत्सव मनाया ।३। तथा राजकुमार ऋतध्वज ने मदालसा के साथ पर्वत, झरने नदी, पुलिन ।४। वन, उपवन आदि में बहुत समय विहार किया, मदालसा भी कामोपभोग द्वारा वासना सहित ।५। सुन्दर कांति युक्त ऋतध्वज के साथ विविध मनोहर स्थानों में विहार करने लगी इस प्रकार बहुत काल व्यतीत हो गया तब राजा शत्रुजित् ।६। काल धर्म के वशीभूत हो गये और नगरनिवासियों ने उनके पुत्र ।७। उदार आचरण वाले ऋतध्वज को राज्य पर बैठाया और वे भी भले प्रकार से प्रजा पालन में तत्पर हुए ।८।

मदालसायाःसंजज्ञ पुत्रप्रथमजस्ततः ।
तस्यचक्रे पितानामविक्रांतइतिधीमतः ।६
ततुषुस्तेनवंभृत्याजहासचमदालसा ।
सावंमदालसापुत्रबालमुत्तानशायिनम् ।१०
उल्लापनच्छलेनाहरुदमानमविस्वरम् ।
शुद्धोसिरेतातनतेस्तिनामकृतंचतेकल्पनयाधुनैव ।११
पंचात्मकं देहमिदंनतेस्तिनैवास्यत्वंरोदिषिकस्यहेतोः ।
नवाभवान्रोदितिवैस्वजन्माशुद्धोयमासाद्यमहोसमहम् । १२
विकल्प्यमानोविविधैर्गुणैश्चभौतासकलेंद्रियेषु ।
भूतानिभूतैःपरिदुर्बलानिवृद्धिसमायांतियथेहपुंसः ।१३

अन्नांबुपानादिभिरेवकस्यनतेस्तिवृद्धिर्न चनेस्तिहानिः ।
त्वक्चुकेशीर्यमाणेनिजेऽस्मिस्तस्मिन्स्वदेहेमूढ तां व्रजेथाः १४

इसके पश्चात्, मदलशा ने प्रथम पुत्र को जन्म दिया, जिसका नाम दिक्रान्त' रखा गया ।।९।। पुत्र होने के कारण भृत्यगण अत्यंत प्रसन्न हुए मदालसा हँसने लगी, उस पुत्र के पाँव पसारकर सोने पर ।। १०।। अथवा अस्फुट स्वर से रोने पर मदालसा उससे कहती है हे पुत्र ! तुम नाम विहीन का नाम करके कल्पना से ही हुआ है ।।११।। तुम इस शरीर को पंचभूतात्मक समझो क्योंकि जैसे यह शरीर तुम्हारा नहीं है, वैसे ही तुम भी इसके नहीं हो, फिर क्यों रोते हो ? यह शब्द भी स्वयं ही प्रकट होता है ।।१२।। विभिन्न भौतिका गुण अथवा अगुण तुम्हारी इन्द्रियों मेंहै, जैसे अत्यन्त दुर्बल भूतगण भूत की सहायता से ही अन्न जलादि के दान से बढ़ते हैं ।।१३ उसके समान तुम्हारी वृद्धि अथवा क्षय नहीं है यह शरीर तो केवल आच्छादत हैं, यह तो क्षींण हो जायगा, इसलिए तुम इसके मोह में मत पड़ना ।।१४।।

शुभाशुभैःकर्मंनिर्देहमेतन्सदादिमूढ़ोःकचुकस्ते पनद्धः ।
तातेतिकिंचित्तानयेतिकिंचिदम्बेतिकिंचिद्दयितेतिकिंचित १५
ममेतिकिंचिन्नममेतिकिंचिद्भौतसंघबहुधामालपेथाः ।
दुःखानिदुःखोपगमायभोगान्सुखायजानातिविमूढ़चेताः ।१६
तान्येवदुःखानिपुनःसुखानिजानातिविद्वानविमूढचेताः ।
हासोऽस्थिसंदर्शनमक्षियुग्ममत्युज्ज्वलंयत्कलुषंवसायाः ।१७
कुचादिपीनंपिशितघनंतत्स्मानरटे किंनरकोनयोषित् ।
यानं क्षितौयानगतश्चदेहोदेहेपिचान्यःपुरुषानिविष्टः ।१८
ममत्वमुर्व्यांनतथायथास्वेदेहेतिमात्रंघविमूढताषा ।१९
त्यजधर्ममधर्मं च उभेसत्यानृतेत्यज ।
उभेसत्यानृतेत्यक्त्वायेनत्यजसितत्त्यज ।२०

शुभाशुभ कर्म सेही इसका आच्छादन हुआ समझो, पिता,पुत्र, माता स्त्री अथवा अन्य आत्मीयजन।।१५।।अपना कुछ नहींहै,इनका अधिकमानन करना मूढ़चेता प्रकारही दुःख को दुःखनाशक तथा भोगोंको सुखकाकारण

मानते हैं ।।१६।। अविद्या से ही अन्धे हो मोहमें पडे हैं,वह दुःख को सुख ही मानते हैं, स्त्री हँसती है तो हड्डी दिखाई पड़ती हैं और उसके नेत्रों में बसा की कलुषता प्रतीत होती है ।।१७।।उसके स्तनादि भी माँसपिण्ड मात्र हैं, उसका गुह्य स्नान भी वैसा ही है, तब क्या स्त्री साक्षात् नरक का ही स्वरूप नहीं हैं ? पृथिवी में यान, यान में शरीर और शरीर में अन्य पुरुष का निवास हैं ।।१८।। जैसी ममता शरीर के प्रति है, वैसी पृथिवी के प्रति भी नहीं है, यही मूर्खता हैं, क्योंकि शरीर पृथिवी का ही सूक्ष्म अंश है ।१९। धर्म' अधर्म, सत्य असत्य का त्याग करो इसे त्याग ने पश्चात् जिससे त्याग किया जाय, उसे भी त्याग दो ।।२०।।

वधमानंपुतंसातुराजपत्नोदिनेदिने ।
तमुल्लापादिनोबोधमनयन्निर्ममात्मकम् ।२१
यथायथाबललेभेयथालेभेमतिंपितः ।
तथातथात्मबोधचसोवापन्मातृभाषितैः ।२२
इत्यतयासतनयोजन्मप्रभृतिबोधितः ।
चकारनमतिंप्राज्ञोगार्हस्थ्यप्रतिनिर्ममः ।२३
द्वितीयोस्याःसुतोजज्ञे तस्यनामाकरोत्पिता ।
सुबाहुरवमित्युक्ते साजहासमदालसा ।२४
तमप्येवंयथःपूर्वबालमुल्लापवादिनी ।
प्राहबाल्यात्सचप्रारतथाबोधमहामतिः ।२५
तृतीयन्तनयञ्जान्तन्तराजाशत्रुमर्दनम् ।
यदाहन्तेनसासुभ्रूजहासातिचिरंपुनः ।२६
तथंसापितन्वग्याबालत्वादेवबोधित. ।
क्रियाश्चकारनिष्कामानकिंचित्फलकारणम् ।२७
चतुर्थस्यवतस्याथचिकीर्षुर्नामभूपतिः ।
ददर्शतांशुभाचारामीषद्धासांमदालसाम् ।२८

जड़ बोला—इसप्रकार यह राजपुत्र दिनोंदिन बढ़ने लगा, रानी मदालसाभी पुत्रको खिलानेके मिस उस स्वच्छ आत्मा वालेपुत्रको ज्ञान ।२१

देने में लगी क्रम-क्रम करके पुत्र जैसे पिता के द्वारा बल वृद्धि को पाने लगा वैसे ही माताके उपदेश द्वारा आत्मज्ञान भी प्राप्त करने लगा।२२। जन्म से ही माता से आत्मज्ञान विषयक उपदेश को पाकर ममता दूर हो गई और गृहस्थ धर्म के प्रति राजकुमार निस्पृह हो गये।।२३।।कुछ कालोपरान्त मदालसा के दूसरा पुत्र उत्पन्न हुआ, उनका नाम पिता ने सुबाहु रखा, मदालसा उस समय भी हँसी ।।२४।। वह उसे भी उसी प्रकार आत्मबोध देने लगी, इससे उसका मन भी ज्ञान प्राप्त करके बिरक्त हो गया ।।२५।। फिर तीसरा पुत्र उत्पन्न हुआ तो राजाने उसका नाम शत्रू-मर्दन रखा, उसे सुनकर मदालसा बहुत देर तक हँसती रही ।।२६।। वह इसे भी पहले की तरह आत्मज्ञान देने लगी, जिससे वह भी काम.रहित हो गया ।।२७।।फिर चौथा पुत्र उत्पन्न हुआ तब उसका नामकरण करने के लिए राजा ने मदालसा की ओर देखा तो वह हँस पड़ी ।।२ ।।

तामाहराजहसतोकिंचित्कौतूहलान्वितः ।
क्रियमाणेऽसकृन्नाम्निकथ्यताहास्यकारणम् ।।२९
विक्रांतश्चसुबाहुश्चयथान्यःशत्रुमर्दनः ।
शोभनानीतिनामानितानिमन्यकृतानिवै ।३०
योग्यानिक्षत्रबंधूनांशौर्यटि पयुतानिच
असत्येतानिवैभद्रेयदतेमनसिस्थितम् ।३१
तदस्यक्रियतांनामचतुर्थस्यसुत स्यमे ।
मयाज्ञाभवतःकार्यामहाराजयथात्थमाम् ।३२
तथ नामककरिष्यामिचतुर्थस्मसुतस्यते !
अलर्कं इतिधमज्ञःख्यातिलोकेगयिष्यति ।३३
कनीयानेषतेपुत्रोमतिमांश्चभविष्यति।
तच्छ्रुत्वानामपुत्रस्यकृतमात्रामहोपतिः ।३४
अलकइत्यसम्बद्धं प्रहस्येदमथाब्रवीत् :
भवत्यायदिदंनामसत्पुत्रस्यकृतंशुभे ।३५

किमीदृशमसम्बद्धमर्थंकोस्यमदालसे ।
कल्पनेयंमहाराजकृताशाव्यावहारिकी ।३६

यह देखकर राजा ने पूछा—मैं जब-जब पुत्र होने के पश्चात् नामकरण के लिए उद्यत हुआ, तब तब ही तुम हँस पड़ती हो, इसका क्या कारण है ? ।। ६।। मैंने इन पुत्रोंके नाम विक्रान्त सुबाहू और शत्रुमर्दन रखे, यह मेरे विचार से युक्ति संगत ही है, ।।३०।। क्योंकि क्षत्रियों का
रखे यह मेरे विचार से युक्ति संगत ही है, ।।३०।। क्योंकि क्षत्रियों का
नाम शौर्य और दर्प से युक्त होना ही ठीक है, फिर भी तुम्हारे विचार में वह तीनों नाम अयुक्त हो तो ।।३१।। इस चौथे पुत्र का नाम तुम हीरखो मदालसा ने कहा—हे महाराज ! आपकी आज्ञा का पालन करना मेरा कर्त्तव्य है ।।३२।। इसलिए मैं आपकी आज्ञानुसार नामकरण करती हूँ, यह पुत्र भूमण्डल में 'अलर्क' नाम से प्रसिद्ध होगा ।।३३।। आपका यह सबसे छोटा पुत्र अत्यन्त बुद्धिमान होगा । परन्तु इस असम्बद्ध नाम को सुनकर ।।३६।। राजा ने हँसते हुए कहा-तुमने जो पुत्र का नाम रखा है ।।३५।। वह असम्बद्ध है, इस नाम का क्या अर्थ है ? मदालसा ने कहा-हे राजन ! नामकरण तो केवल लोकाचार और नितान्त कल्पना है ।।३५।।

त्वत्कृतानांतथानाम्नांशृणुभूपनिरर्थताम् ।
वदन्तिपुरुषाप्राज्ञाव्यापिनंपुरुषंसतः ।३७
क्रांतिश्चयतिरुद्दिष्टादेशाद्देशांतरन्तुया ।
सर्वगोनप्रयातीह्व्यापीदेहेश्वरोयतः ।३८
ततोविक्रांतसंज्ञेयमताममनिरर्थिका ।
सुबाहुरितियासंज्ञाकृतातस्यसुतस्यते ।३९
निरर्थासाप्यमूर्त्तस्यपुरुषस्यमहीपते ।
पुत्रस्यथकृतनामतृतीयस्यरिमर्दनः ।४०
मन्येतच्चाप्यसम्बद्धश्रृणुवाप्यत्रकारणम् ।
एकएवशरीरेषुसर्वेषुपुरुषोयदा ।४१
तदास्यराजन्कःशत्रुःकोवामिहेष्यते ।
भूतंभूंतानिमर्द्यन्तेअमत्तोमर्द्यते कथम् ।४२

धन्यासिरयोवसुधातशत्रुरकाःचर पालयितासिपुत्र ।
तत्पालनादिद्रसमोपभोग्यधर्म्मफलंप्राप्स्यसिचामरत्वम् ।।५६

उस समय कम मार्ग के अवलम्बन से पिण्डोदक द्वारा उनका और उन्हीं के समान देवताओं और अतिथियों का पूजन करते है ।५१। क्यों कि देवता, मनुष्य पितर, प्रेत, भूत, गुह्यक, पक्षी, कृमि, कीटादि सभी मनुष्यों के आश्रय में जीवन निर्वाह करते हैं ।५२। इसलिये हे तन्वन्गी ! क्षत्रियोचित कर्त्तव्य और इहलोक परलोक के फल लाभ के लिये जो उचित है, वही शिक्षा इसे दो ।५३। पतिकी बात सुन कर मदालसा ने उस पुत्र को खिलाने के लिये कहा ।५४। हे पुत्र ! तुम वृद्धि को प्राप्त होओ, मित्रों के उपकारऔर शत्रुओं के संहार कर्म द्वारा मेरे स्वामी के हृदय को आनन्दित करो ।५५। हे 'पुत्र ! तुम धन्य 'हो' क्यों कि तुम शत्रु रहित होकर दीर्घ काल तक वसुन्धरा का पालन करोगे, जिससे सभी लोकों में सुख का संचार होगा और इस प्रकार परम धर्म संचय करके अमरत्व का प्राप्त होगे ।५६।

धरामरान्पर्वसुतर्पयेथाःसमीहितम्बन्धुषु पूरयेथरः ।
हितपरस्मैंहृदिचिंतयेथामनःपरस्त्रीषु निवतयेथा ।।५७
सदामुरारिंहृदिचिंतयेथास्तद्धय नतोंतःषरीञ्जयेथाः ।
मायांप्रबोधेन नेवारयेथा ह्यनित्यतामेवविचिंतयेथाः ।।५८
अर्थागमायक्षितिपाञ्जयेथायशोऽर्जनायार्थमपिव्ययेथा ।
परापवादश्रवणाद्बिभीथाविपत्समुद्राज्जनमुद्धरेथाः ।।५९
यज्ञैरनेकैर्विबुधानजस्रमन्नैर्द्विजान्प्रीणयसश्रितांश्च ।
स्त्रियश्चकामैरतुलैश्चिरायर्युद्धैश्चारीस्तोययितासिवीरा६०
वालोममोनन्दयवान्धवानांगुरोस्तथाज्ञाकरणैःकुमारः ।
स्त्रीणांयुवासत्कुलभूषणानांवृद्धोवनेवत्सवनेचरणाम् ।।६१
राज्यं कुर्वसुमृदोनन्दयेथा साधून्नक्ष स्तातयज्ञं र्यजेथाः ।
दुष्टान्निघ्नन्वैरिणश्च जिमध्ये गोविप्रार्थवत्समृत्युं भजेयाः।६२

तुम प्रत्येक पर्व दिन में ब्राह्मण की तृप्ति करो, बन्धुजनों का इच्छित करो और परहित साधन को इच्छा करते हुए परनारी में मनमत लगाओ

।५७। सदा भगवान् का ध्यान करते हुए कामादि छै शत्रुओं को वश में करो, ज्ञान के द्वारा माया को दूर करो और विश्व की अनित्यता का सदा ध्यान रखो ।५८। अर्थ प्राप्त करते हुए पाँच वस्तुओं को जीतो और यश के लिये व्यय करो, पर निन्दासे डरो,लोगों को उत्पत्ति सागर से उबारो ।५९। विभिन्न आज्ञानुष्ठानों से देवताओं को निरन्तर दान से विप्रों को और आश्रितों को प्रसन्नकरो, विभिन्न भोगों सेस्त्रियों और युद्ध शत्रुओं को सतुष्ट करो ।६०। बाल्यकाल में बांधवों का, कौमारावस्था में आज्ञा पालन द्वारा माता-पिता का,युवावस्था में स्त्री का और वृद्धावस्था मेंबन वास पूर्वक वनचरों का उपकार करो ।६१। हे वत्स ! तुम राज्य में प्रतिष्ठित होकर सुहृदों आनन्दित करोगे, यज्ञानष्ठान, गौ, ब्राह्मण और साधुजन की रक्षा के लिये युद्ध में शत्रुओं को जीतकर परलोक गमन करोगे ।६२।

२४ राजधर्म कथन

एवमुल्लाप्यमानस्तुसतुमात्रादिनेदिने ।
ववृधेवयसाबालोबुद्धयाचालकंसंज्ञितः ॥१
सकौमारकमासाद्यऋतुध्वजसुतस्तदा ।
कृतोपनयनःप्राज्ञः पणिपत्याहमातरम् ॥२
मयायदम्बकर्त्तव्यमैहिकामुष्मिकायवै ।
सुखायवदतत्सर्वंप्रश्रयावनतस्यमे ॥३
ममार्थंचैवधर्मार्थंप्रजानांचैवयद्धितम् ।
श्रेयसेवच्चतत्सर्वंप्रजारञ्जनमादितः ॥४
वत्सराज्यभिषिक्तेनप्रजारञ्जनमादितः ।
कर्त्तव्यमविरोधेनस्वधर्मश्चमहीभृताम् ॥५
व्यसनानिपरित्यज्यसप्तमूलहराणिवै ।
आत्मारिपुभ्यःसंरक्ष्योबहिर्मन्त्रविनिर्गमात् ॥६

दुष्टादुष्टांश्चजानीयादमात्यानरिदोषतः ।
अष्टधानाशमाप्नोति स्वचक्रात्स्तन्दनाद्यथा ॥७
तथाराजाप्यसन्दिग्धंबहिर्मन्त्रविनिर्गमात् ।
चरंश्चरास्तथाशत्रोरन्वेयण्याःप्रयत्नतः ॥८

पुत्र बोला माता मदलसा इस प्रकार पुत्र को नित्य प्रति उपदेश देने लगी और यह बालक बुद्धि तथा अवस्था में वृद्धि को प्राप्त होने लगा ।१। कौमारावस्था प्राप्त होने पर अलर्क का यज्ञोपवीत हुआ तब उसने प्रणाम पूर्वक अपनी माता से कहा ।२। हे माता ! इहलोक और परलोक के सुख के लिये मुझे जिस प्रकार का कर्म करना चाहिये उसे विस्तार पूर्वक कहिये ।३। धर्म, अर्थ, प्रजापति, प्रजापालन से मोक्ष की प्राप्ति आदिका यथा योग्य वणन करो मदालसा ने कहा-हे पुत्र ! राज्याभिषेक होने पर धर्मानुसार प्रजा को सुखी करना ही राजा का प्रथमकर्त्तव्यहै । ४-५। मृत्य सहित व्यसनों का त्याग करके, अपना मन्त्र बाहर न जाय इस प्रकार शत्रुओं का तिरस्कार करने के कार्य में प्रवृत्त रह कर शत्रुओं से अपनी रक्षा करो ।६। शत्रुओं के मिलने से अमात्यगण की दुष्टता या स्वामिभक्तिको जाने तथा श्रेष्ठ पहिले वाले रथसे गिरने सेजैसे आठ प्रकार का आघात होता है ।७। वैसे ही मन्त्रणा के फूटने पर राजा को प्राप्त होता, राजा को इसका ज्ञान अवश्य करना चाहिये कि शत्रुओं ने किसी प्रकार अमात्यवर्ग को अपनी ओर तो नही मिला रखा है ।८।

विश्वासोनतुकर्तव्योराज्ञामित्राप्तबन्धुषु ।
कार्ययोगादमित्रेषु विश्वसीतनराधिपः ॥९
स्थानवृद्धिक्षयज्ञेनषाड्गुण्यविदितात्मना ।
भवितव्यं नरेन्द्रेणतकामवशप्रवर्तिना ॥१०
प्रागात्ममंत्रिणश्चैवततोभृत्यामहीभृता ।
ज्ञयाश्चानंतरंपौराविरुध्येतततोरिभिः ॥११
यस्त्वेतानविजित्यैववरिणोविजिगीषते ।
सोजितात्माजितामात्यःशत्रुवर्गणबाध्यते ।।१२

तस्मात्कामादयःपूर्वंजेयाःपुत्रमहीभृता ।
तज्जयेहिजयोराज्ञोराजानश्यतितैर्जितः ।।१३
कामःक्रोधश्चलोभश्चमंदीमानस्तथैवच ।
हर्षश्चशत्रवोह्येतेनाशायकुमहीभृताम् ।।१४

मित्र, आप्त या बन्धु किसी का भी विश्वास करना राजा को उचित नहींकिन्तु समयान्तर देखकर शत्रु का भी विश्वास किया जा सकताहैं।६। राजा कामके वशीभूत न हो, स्थान वृद्धि औरक्षयको,सदा जानेतथा संधि, विग्रह आदिछः गुणोंमें बुद्धिसे काम ले ।१० प्रथमस्वयं को फिर आमात्यों को भृत्यों को और प्रजाओंको वशमें करलेतब शत्रुओंसे विग्रह करे ।११। जो पहिले आत्मा पर विजय प्राप्त किये विनाही शत्रूको जीतने कीइच्छा करे वह राजा आत्यगणों द्वारा वशमें कर लिया जाता है और शत्रुओं से परविजय प्राप्त करे, उन्हें जीतने से सभीपर विजय मिलती है, जो राजा कामदि के वशीभूत होता है. वह नष्ट हो जाता है ।१३। काम, क्रोध क्रोध, मद, मान और हर्ष यही शत्रु राजा के नाश के कारण हैं ।१४।

कामप्रसक्तमात्मानंस्मृत्वापाँडु निपातितम् ।
निवर्त्तयेत्तथाक्रोधादनुह्लादंहतात्मजम् ।।१५
हतमैलंतथालोभान्मदाद्वेनंद्विजैर्हतम् ।
मानादनायुषःपुत्रंहतंहर्षात्पुरंजयम् ।।१६
एभिर्जितंसर्वंमरुत्तेनमहात्मना ।
स्मृत्वाविवर्जयेदेतान्षड्दोषाँश्चमहीपतिः ।।१७
काककोकिलभृंगाणांबकव्यालशिखंडिनाम् ।
हंसकुक्कुटलोहानांशिक्षेतचरितंनृपः ।।१८
कौशिकस्याक्रियांकुर्याद्विपक्षेमनुजेश्वरः ।
चेष्टांपिपीलिकानाँचकालेभूपःप्रदर्शयेत् ।।१९
ज्ञेयाग्निविस्फुलिंगाबीजचेष्टाचशाल्मलेः ।
चंद्रसूर्यस्वरूपंचनीत्यर्थंपृथिवीक्षिता ।।२०

वग्रकोपद्मशरभशूलिकागुर्विणीस्तनात् ।
एवसाम्नाच्चभेदेनदानेनचपार्थिव ॥२१

काम के वशीभूत होकर ही राजा पाण्डु नाश को प्राप्तहुए क्रोध के वशमें होने से अनुह्राद को पुत्र धनसे वंचित रह जाना पड़ा ।१५।लोभके वशीभूत हुए ऐल नष्ट होगए मद,के वशमें पड़कर वेन ब्राह्मणों द्वारानष्टहुए अभियानके कारण अनायु का पुत्र हत हुआ और हर्षके कारण पुरञ्जयका मरण हुआ ।१६। परन्तु राजा मरुत इन सभी शत्रुओंको जीतकर अखिल विश्वको वश में कर लिया, इन सब बातोंके स्मरण पूर्वक सभी दोषोंका परित्याग करना चाहिए ।१७। काक, कोकिल, भौरा,मृग, व्याल-मोर,हंस कुक्कुट और लौहसे शिक्षा लेनी चाहिए ।१८। शत्रुके प्रतिउलूक जैसाकोई आडम्बर न करके शत्रुओं को नष्ट करे, क्योंकि शत्रुओंके प्रतिभी उचित व्यवहार करना चाहिये,पिपीलिकाके समानयथा समय संचयकरे ।१९।राज को अग्निकी चिंगारीऔर शाल्मलिबीजके समान व्यापक होने वाला होना चाहिए,वह सूर्य और चन्द्रमाके समान राजनीति प्रयोग पूर्वक पृथ्वीको देखने वाला हो ।२०। व्यभिचारणी, कमल शरभ,शूलिका, गुर्विर्णीस्तन तथा गोपाङ्गना इन सबसे राजा शिक्षा ग्रहण करे ।२१।

दण्डेनचप्रकुर्वीतनीत्यर्थं पृथिवीक्षिता ।
प्रज्ञानूपेणवादेयानथाचडालयोषितः ।२२
शक्रार्कयमसोमानाँतद्वद्वायोर्महीपतिः ।
रूपाणिपचकुर्वीतमहीपालनकर्मणि ॥२३
यथेंद्रश्चतुरोमासान्वार्योधेणैवभूतलम् ।
आप्यायेयत्तथालोकान्परिचारैर्महीपतिः ॥२४
मासानष्टौयथासूर्यस्तोयंहरतिरश्मिभिः ।
सूक्ष्मेणैवाभ्युपायेनतथाशुल्कादिनानृपः ॥२५
यथायमः प्रियद्वेष्यौप्राप्तेकालेनियच्छति ।
तथाप्रियाप्रियेराजादुष्टादुष्टेसमोभवेत् ॥२६

पूर्णेंदुमालोक्ययथाप्रीतिमाञ्जायतेनरः।
एवंयत्रप्रजाःसर्वानिर्वृतास्तच्छशिव्रतम् ।। ७

मारुतःसर्वभूतेषु निगूडश्चरतेयथा।
एवंचरेन्नृपश्चरिःपौरामात्यारिबंधुषु ।।२८

नीति पूर्वक दण्ड से पृथ्वी का पालन करे, चाण्डाल स्त्री से वृद्धि प्राप्त करे, क्योंकि वह किसी प्रकार के व्यवहार से विमुख नहींहोती ।२२। इन्द्र, सूर्य, यम, चन्द्रमा और वायु के अनुरूप आचरण करके पृथ्वी का पालन करे ।२३। जैसे इन्द्र चार मास वृष्टि करके पृथ्वी के प्राणियों को तृप्त करते हैं वैसे ही राजा दानादि के द्वारा सबको प्रसन्न करे ।२४। जैसे किरणों के द्वारा सूर्य आठ मास जल का शोषण करते हैं हैं: वैसे ही सूक्ष्म रीति से राजा कर आदि ले ।२५। जिस प्रकार यम काल आने पर अथवा द्वेषी सभी को समान रूप से ग्रहण करते हैं वैसे ही राजा भी समदर्शी हो ।२६। पूर्ण चन्द्रमा को देखकर जैसे सब जीव प्रसन्न होते है, वैसे ही राजा के आचरण से प्रजा प्रसन्न रहे ऐसा प्रयत्न करे, जिस प्रकार वायुसब भूतों में गुप्त रहकर विचरण करता है, वैसे ही गुप्त रीति से राजा भी अमात्य, बांधव और प्रजाजन केचरित्रादि पर दृष्टि रखे ।२८।

नलोभार्थैर्नकामार्थैर्नार्थार्थैर्यस्यमानसम् ।
पदार्थैःकृष्यतेधर्मात्सराजास्वर्गमृच्छति ।।२९

उत्पथग्राहिणोमूढान्स्वधर्माच्चलितान्नान् ।
यः करोतिनिजेधर्मेसराजास्वर्गमृच्छति ।।३०

वर्णधर्मानसीदंतियस्यराष्ट्रे तथाश्रमाः ।
राज्ञस्तस्यसुखंतातंपरत्रेहचशाश्वतम् ।।३१

एतद्राज्ञःपरकृत्यतथैतद्वृद्धिकारणम् ।
स्वधर्मेस्थापनंनृणांचाल्यतेनकुबुद्धिभिः ।।३२

पालनेनैवभूतानांकृतकृत्योमहीपतिः ।
सम्यक्पालयिताभागंधर्मस्याप्नोतिवैयतः ।।३३

एवमाचरतेराजाचातुर्वर्ण्यस्यरक्षणम् ।
ससुखीविहरत्येषशक्रस्यैतिसलोकताम् ॥

जिस राजा का मन लोभ, अर्थ, काम अथवा अन्य किसी भी कारण से आकृष्ट नहीं होता उसी को स्वर्ग की प्राप्ति होती है ।२९। मूढ़, कुमार्गी, धर्म, सेविचलित व्यक्तियों को स्वधर्म पर लाने वाला राजा अवश्य ही स्वर्ग को प्राप्त होता है ।३०। हे पुत्र ! जिनके राज्य में वर्णाश्रम धर्म नाश को प्राप्त नहीं होते, वह राजा इहलोक-परलोक दोनों में निरन्तर सुख भोगता है ।३१। राजा का कर्त्तव्य है कि वह बुद्धि-मानों के परामर्श से सदा काय करे और सभी को अपने-अपने धर्म में लगाये रखे इसी से राजा की सिद्धि होती है ।३२। जिस प्रकार प्रजा के भले प्रकार पालन करने से राजा कृतकृत्य होता है, वैसे ही उसको धर्मांश की भी प्राप्ति होती है ३३। इस प्रकार जो राजा चारों वर्णों की रक्षा में नियम पूर्वक लगा रहता है, वह इहलोक में अत्यन्त सुख पूर्वक बिहार करता हुआ अन्त में रुद्र के सालोक्य को प्राप्त होता है ।३४।

२५ वर्णाश्रम धर्म कीर्तन

तन्मातुर्वचनंश्रुत्वासोलर्कोमातरंपुनः ।
पप्रच्छवर्णधर्माश्चधर्मान्येचाश्रमेषु च ॥१
कथितोयमहाभागेराज्यतंत्रश्रितस्त्वया ।
ममधर्मोहमिच्छामिश्रोतुं वर्णाश्रात्मकम् ॥२
दानमध्ययनयज्ञोब्रह्मस्यत्रिधोदितः ।
धर्मोनान्यश्चतुर्थोस्तिधर्मस्तस्तापदं विना । ३
याजनाध्योदनेशुद्धस्तथापुत्रप्रतिग्रहः ।
एतत्सम्यक्समाख्यातंत्रितयचास्यजीविका ॥४
दानमध्ययनं यज्ञाःक्ष यस्याप्ययंत्रिधा ।
धर्मप्रोक्तःक्षितेरक्षाशस्त्राजीवश्चजीविका ॥५

दानमध्ययन यज्ञोवैश्यस्यापित्रिधैनसः ।
वाणिज्यंपाशुपाल्यंचकृषिश्चैवास्यजोविका ॥६
दानंयज्ञोथशुश्रूषाद्विजातीनांत्रिधामया ।
व्याख्यातःशूद्रधर्मोपिजीविकाकारुकर्मजा ॥७
तद्वद्द्विजातिशुश्रूषापोषणक्रयविक्रयैः ।
वर्णधर्मास्त्विमेप्रोक्ताःश्रूयतामाश्रमाश्रयाः ॥८

पुत्र ने कहा—अलर्क जननी के इस प्रकार वचन सुनकर फिर वर्णधर्म और आश्रम धर्म का विषय पूँछने लगा ।१। अलर्क ने कहा—हें महाभागे? तुमने राजधर्म का तो वर्णन किया किन्तु अबमैं वर्णनधर्म और आश्रमधर्म सुनने कीइच्छा करताहूँ ।२। मदालसा बोली,हे वत्स! दान अध्ययन और यज्ञ यह तीन ब्राह्मण के धर्महैं इनके अतिरिक्त चौथाधर्म और कुछ नहींहै अन्य धर्म उसके पक्षमें आपत्ति मेंहैं ।३। शुद्धतापूर्वक यज्ञ कराना,अध्यापन और पवित्र भावसे प्रतिग्रह,यह तीन कर्म ही ब्रह्मणोंकी जीविका साधन हैं ।४। दान,यज्ञ और अध्ययन तीन कर्म क्षत्रियोके कर्त्तव्य रूपहैं तथा पृथ्वी पालन और शस्त्राभ्यास उनकी जीविकाके साधनहैं।५। दानअध्ययन और यज्ञ यह तीनधर्म वैश्योंके हैं तथा पशु-पालन,वाणिज्य और खेतीयह उसकी जीविका के साधन हैं ।६। शूद्रके कर्मदान यज्ञऔर तीनों जातिकी सेवा करना यह तीन हैं,तथा कारु कर्म । । ब्राह्मण-सेवा पशुपालन और क्रय-विक्रय उनकी जीविका के साधन हैं, यह वर्णों का धर्म मैंने कहा है, अब आश्रम धर्म श्रवण करो ।८।

स्ववर्णधर्मात्संसिद्धिनरःप्राप्नोतिनच्युतः ।
प्रयातिनरकप्रेत्यप्रतिषिद्धनिषेवणात् ॥९
यावत्तुनोपनयनक्रियतेवैद्विजन्मनः ।
कामचेष्टोक्तिभक्षस्तुतावद्भवतिपुत्रक ॥१०
कृतोपनयनःसम्यग्ब्रह्मचारीगुरोगृहे ।
वसतत्रधर्मोस्यकथ्यः तन्निबोधमे ॥११

स्वाध्यायोधाग्निशुश्रूसास्नानंभिक्षाटनंतथा ।
गुरोर्निवेद्यतच्चाद्यमनुचातेनसर्वदा ॥१२
गुरोःकर्मणिसोद्योगः सम्यक्प्रीत्युपपादकः ।
तेनाहूतःपठेच्चंवतत्परोनान्यमानसः ॥१३
एकंद्वौसकलान्वापिवेदान्प्राप्गुरोर्मुखात् ।
अनुज्ञातोवरांदत्वादक्षिणांगुरवेततः ॥१४

अपने-अपने धर्म का पालन करने से ही सर्वसिद्धियों ी प्राप्तिसंभव है दूसरी जातिवालेके धर्मपर चलनेसे स्वधर्म की हानि होतीहै और नरक की प्राप्ति होती है ।६। हे वत्स! द्विजातियों का जबतक उपनयन संस्कारन हो तभी तक वे स्वेच्छा व्यवहार, आहार और आलापादिमें प्रवृत्त हो सकते हैं ।१०। उपनयन सस्कार के सम्पन्न होने के पश्चात ब्रह्मचर्य पालन पूर्वक गुरुके पास रहे,उस समय जिस धर्म का आचरण करना चाहिये उसे सुनो ।११। सुवाध्याय, अग्नि सुश्रूषा स्नान, भिक्षाटन करके पहिले गुरुको भोजन करावे फिर उनकी आज्ञा से स्वयं भोजन करे ।१२। गुरुके कार्यमें सदैवतत्पर रहना तथा उनकेसंतोष और आदेशके अनुसारकार्य करना तथा अनन्य चित्त अध्ययन करना ब्रह्मचारी का परम कर्तव्य हैं ।१३। गुरुके मुख से एक दो अथवा चारों वेदों को पढ़कर उनकी चरण-वन्दना करे और आज्ञा लेकर दक्षिणा दे ।१४।

गार्हस्थ्वाश्रमकामस्तुगृहस्थाश्रममावसेत् ।
वानप्रस्थाश्रमवापिचतुर्थवेच्छयात्मनः । १५
तथैववागुरार्गेहेद्विजोनिष्ठामवाप्नुयात् ।
गुरोरभावेतत्पुत्रेतच्छिष्येतत्सुतविना ॥१६
शुश्रूषुनिरभीमानोब्रह्मचर्याश्रमंवसेत् ।
उपावृत्तस्ततस्तस्माद्गृहस्थाश्रमकाम्यया ॥१७
ततोऽसमानर्षिकुलांतुल्यांभार्यामरोगिणीम् ।
उद्वहेन्न्यायतोऽयंगांगृहस्थाश्रमकारणात् ॥१८

स्वकर्मणाधनंलब्ध्वापित्̣देवातिथीस्तथा ।
सम्यक्संप्रीणयेद्भक्त्यापोषयेच्चाश्रितांस्तथा ॥१९
भृत्यात्मजाञ्जामयोयद्दीनार्थिपतितानपि ।
यथाशक्त्यान्नदानेनयांसिपशवस्तथा ॥२०
एषधर्मोंगृहस्तस्यऋतावभिगमस्तथा ।
पचयज्ञविधानंतुयथाशक्तिनहापयेत् ॥२१

इसके पश्चात् गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होना चाहे तो विवाह आदि कार्य करे अन्यथा अपनी इच्छा के अनुसार वानप्रस्थ या चतुर्थाश्रम में प्रवेश करे।१७। अथवा नैष्ठिक ब्रह्मचारी होकर गुरु के घर पर हो रहे,गुरु न हों तो उनके पुत्र अथवा शिष्य के पास निवास करे।१३। सदा सेवा-परायण रहे तथा अभिमान को पास न आने दे, इस प्रकार ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करे, अथवा गुरु के घर से निकल कर गृहस्थाश्रम की इच्छा करे तो।१ । अपने अनुरुप कन्या देखकर उसका पाणिग्रह करे, वह कन्या समान गोत्र की, रोगी और विकलांगी न हो।१८। अपने विहित कर्म द्वारा न्याय पूर्वक धन का उपार्जन करे और भक्ति पूर्वक पितर, देवता और अतिथि को तृप्त करने का प्रयत्न करे तथा आश्रितों का भले प्रकार पालन करे।१९। भृत्य पुत्र, दीन अन्धा, पतित आदि को अपनी शक्ति के अनुसार अन्नादि देकर उनका स । पोषण करना चाहिये।२०। स्त्री स हगमन केवल ऋतुकाल में ही करे, शक्ति के अनुसार पंच यज्ञ करें, यह गृहस्थ का धर्म है।२१।

पितृदेवा तिथिज्ञातिभृशशेषंस्त्रयं नरः ।
भुंजीतचसमभृत्त्यैर्यथाविभवमात्मनः ॥२२
एषतूद्देशतःप्रोक्तोगृहस्थस्याश्रमोमया ।
वानप्रस्थस्यधर्मंतेकथयाम्यधार्यताम् ॥२३
अपत्यसंततिंदृष्ट्वाप्राज्ञोदेहस्यचानतिम् ।
वानप्रस्थाश्रमगच्छेदात्मनःशुद्धिकारणात् ॥२४
तत्रारण्योपभोगश्चततपोभिश्चात्मकर्षणम् ।
भूमौशःपात्रह्मचर्यंपितृदेवातिथिक्रियाः ॥२५

होमस्त्रिषवणस्नानजटावल्कलधारणम् ।
मौनादिकरणंचैवनन्यस्वेहनिषेवणम् ।।२६
इत्येषपापशुद्ध्यर्थंमात्मनश्चोपकारकः ।
वानप्रस्थाश्रमस्तमाद्भिक्षोस्तुचरमोपरः ।।२७
चतुर्थं यस्यस्वरूपं तुश्रूयातामाश्रमस्यमत् ।
यश्चधर्मोस्यमंज्ञैः प्रोक्तस्तातमहात्मभिः ।।२८

यथा सामर्थ्य पितरों, देवताओं, अतिथियों, और जाति वालों को भोजन कराने के पश्चात् भृत्यों के सहित स्वयं उस बचे हुए अन्नका भोजन करे ।२२। यह गृहस्थाश्रम धर्म संक्षिप्त रूप मैंने कहा है, अब वानप्रस्थ धर्म को कहती कहती हूँ उसे सावधान चित्त से श्रवणकरो ।२३ बुद्धिमान पुरुष का कर्त्तव्य है, कि वह धन सन्तानादि की सम्पन्नताओर अपने शरीर की अवनति को देखकर आत्म शुद्धि के लिए वानप्रस्थाश्रम ग्रहण करे ।२४। वहाँ फल, मूलादि का आहार करे और तपस्या का आचरण करके आत्मोत्कर्ष का सम्पादन करे, पृथ्वी में शयन, ब्रह्मचर्य-पालन तथा पितर, देवता और अतिथि की सेवा ।२५। हवन त्रिकाल संध्याकाल में स्नान, जटा-वल्काल का धारण, मौन, योगाभ्यास तथास्नेह सेवन पूर्वक रहे ।२६। इस प्रकार पाप के शोधन और आत्मा के उत्कर्ष के लिए वानप्रस्थाश्रम का अवलम्बन करे, इस आश्रम से पश्चात् भिक्षु नाम का एक अन्य चरम आश्रम है ।२ । हे पुत्र ! इस चतुर्थाश्रम का जो स्वरूप धर्मज्ञाता महात्मा पुरुषों द्वारा निरूपित किया है, उसे कहती हूँ, श्रवण करो ।२८।

सर्वसंगपरित्य.गोब्रह्मचर्यमकोपता ।
जितेंद्रियत्वमावासेनकस्मिन्वसतिश्चिरम् ।।२९
अनारंभस्तथाहारेभिक्षान्नंचैककालिकम् ।
आत्मज्ञानावबोधश्चतथाचात्मावलोकनम् ।।३०
चतुर्थेत्वाश्रमेधर्मो मयायं तेनिवेदितः ।
सामान्यमन्यवर्णानामाश्रमाणांचमेश्रृणु ।।३१
सत्यं शौचमहिंसाचअनसूयातथाक्षमा ।
आनृशंस्यमकार्पण्यंतोषश्चाष्टमोगुणः ।।३२

एतेसंक्षेपतःप्रोक्ताधर्मावर्णाश्रमेषु च ।
एषु नित्यधर्मेषु नित्यं तिष्ठेत्समततः ॥३३
सयातिब्रह्मलोकहियावदिन्द्राश्चतुर्दश ।
यश्चोल्लंध्यस्वकं धर्मंस्ववर्णाश्रमसंज्ञितम् ॥३४
नरोन्यथाप्रवर्त्तेतसदंडयोभभृतोभवेत् ।
येचस्वधमसंत्यागात्पापं कुर्वंतिमानवाः ॥३५
उपेक्षतस्तान्तपतेरिष्ठापूतपयात्यधः
तस्माद्राज्ञाप्रयत्नेनसर्ववर्णाःस्वधर्मतः ॥३६
प्रवर्त्यन्तेन्यथादडयाःस्थाप्याश्चैवस्वकर्मसु ॥३७

सर्व संग का त्याग करे, क्रोध-रहित इन्द्रिय संयम ब्रह्मचर्य आदि के पालन पूर्वक भ्रमणशील रहे बहुत दिनों तक एक स्थान में न रहे ।२९। कर्म का विसर्जन, भिक्षा से प्राप्त अन्न का केवल एकबार भोजन, आत्मज्ञान कीकामना औरआत्म दर्शन यह सब चतुर्थाश्रमी को करना चाहिये ।३०। चतुर्थाश्रम में जो धर्मानुष्ठ कर्त्तव्य है, वह तुमसे कह दिया, अब अन्यान्य वर्णाश्रमों के साथ रण धर्म को तुमसे कहती हूँ, उसे सुनो ।३१। सत्य, शौच अहिंसा, अनसूया, क्षमा, आनृशस्य, अकृपणता और सन्तोष यह आठ गुण सभी वर्णाश्रमों का साधारण धर्म माना गया है ।३२। इस प्रकार सम्पूर्ण वर्णाश्रम धर्म का मैंने तुमसे संक्षिप्त वर्णन किया है, सभी को अपने-अपने वर्णाश्रम धर्म का पालन करना कर्तव्य है । ३। अपने धर्म में दृढ़ रहने वाला मनुष्य तब तक ब्रह्मलोक में निवास करता है, जब तक की चौदह इन्द्रों का पतन नहीं हो जाता और अपने वर्णाश्रम धर्म का उल्लघन करके ।३४। अन्य के धर्म को ग्रहण करता है, वह राजदण्ड का भागी होता है अथवा जो मनुष्य अपने धर्म को त्याग कर पाप-कर्म करता है ।३५। उसे यदि राजा दण्ड नहीं देता तो वह अपने इष्टापूर्त को नष्ट करता है, इसके लिए राजा का कर्त्तव्य है कि वह सभी वर्णों को अपने-अपने धर्म में स्थित करे । ६। और जो इसके विरुद्ध आचरण करे उसे दण्ड देकर अपने कर्म में लगावे ।३ ।

सतमस्यंधतामिस्रे तमिस्रे चनिमज्जति
यस्त्वेमांनानवोधेनुं स्वैवुत्सै रमरादिभिः ॥१४
प्रापयत्युचितेकालेसस्वर्गायोपपद्यते ।
तस्मात्पुत्रमनुष्येणदेवर्षिपितृमानवाः ॥१५
भूतानिचानुदिवसंपोष्याणिस्वतनुर्यथा :
तस्मात्स्नातःशुचिर्भूत्वादेवर्षिपितृतर्पणाम् ॥१६
प्रजापतेस्तथैवाद्भिःकालेकुर्यात्समाहितः ।
सुमनोगंधधूपैश्चदेवानभ्यर्च्यमानवः ॥१७
ततोग्नेस्तर्पणंकुर्याद्दद्याच्चबलिमित्यथ ।
ब्रह्मणेगृहमध्येतुविश्वेदेवेभ्यएवच ॥१८
धन्वंतरिसमुद्दिश्यप्रागुदीच्यांबलिंक्षिपेत् ।
प्राच्यांशक्राययाम्यायांयमायबलिमहरेत् ॥१९
प्रतिच्यांवरुणोथाथसामायोत्तरतोबलिः ।
दद्याद्धोत्रविधत्रेचबलिंद्वारेगृहस्यच ॥२०
अर्यम्णेथबहिर्दद्याद्गृहेभ्यक्षचसमंततः ।
नक्तं चरेभ्योभूतेभ्योबलिं प्रकाशतोहरेत् ॥२१

तथा उसे अन्धधतामिस्र और तामिस्र नामक नरकों की प्राप्ति होती है, इस धेनु के वत्सों को जो मनुष्य यथा समय ॥१४॥ उपर्युक्त प्रकार से स्तन पान कराता है, वह देवलोक को जाता है, इसलिए अपनी यथा, शक्ति देवता, ऋषि, पितर और मनुष्य ॥१५॥ तथा भूतों का पोषण करना चाहिए, इसलिए स्नान से पवित्र होकर सावधान चित्त से देवतर, पितर, ऋषि ॥१६॥ और प्रजापति का उदकदान पूर्वक तर्पण करे यथा चन्दन, गंध और धूपादि के द्वारा देवार्चन करे ॥१७॥ फिर अग्नि तर्पण करके बलि प्रदान करे, घर में ब्रह्म और विश्वेदेवा को ॥१८॥ तथा धन्वन्तरि को पूर्व और उत्तर दिशा में बलि दे, इन्द्र को पूर्व में, यम को दक्षिण में ॥१९॥ वरुण को पश्चिम में और सोम को उत्तर में बलि देनी चाहिए तथा गृह द्वार में धाता और विधाता को बलि दे ॥२०॥ अर्यमा

को घर की बाहरी भाग में सब ओर से बलि दे तथा निशाचर और भू तों के लिए आकाश मार्ग में बलि दे ।।२१।।

पितॄणांनिर्वपेच्चैवदक्षिणाभिमुखःस्थितः ।
गृहस्थस्तत्परेभूत्वासुसमाहितमानसः ।२२
तथस्तोयमुपादायतेषामाचमनायवै ।
स्थानेषुनिक्षिपेत्प्राज्ञस्तास्ताउद्दिश्यदेवताः ।२३
एवगृहबलिंकृत्वागृहेगृहपतिःशुचिः ।
आप्ययनायभूतानाकुर्यादुत्सगमादरात् ।२४
श्वभ्यश्चश्वपचेभ्यश्चवयोभ्यश्चावपेद्भुवि ।
वैश्वदेवहिनामैतत्सापंप्रातरुदाहृतम् ।२५
आचम्यचततःकुर्यात्प्राज्ञोद्वारावलोकनम् ।
मुहूर्तस्याष्टमंभणमुदीस्यौहनातिथिर्भवेत ।।२६
अतिथितत्रसंप्राप्तमन्नाद्यनोदकेनचः ।
संपूजयेद्यथाशक्तिगंधपुष्पादिभिस्तथा ।२७

पितरों के निमित्त बलि प्रदान करने के लिए गृहस्थ को दक्षिण की ओर मुख करके बैठना चाहिए.फिर सावधानी से एकाग्रचित्त होकर।।२२।। आचमनके लिए जल लेकर उस-उस स्थानमें उस-उस देवताके निमित्तजल दे।२३।गृहस्वामी इसप्रकार सेबलि दे और पवित्र भाव से भूतों कीतृप्तिके लिये आदरपूर्वक उत्सर्ग कार्य को सम्पन्न करे।२४।श्वान,श्वपच और पक्षी के लिए भूमिमें बलि दे,यही वैश्वदेव बलि कही गई है,यह बलि प्रातःकाल और सायंकाल देनेकाविधान हैं ।।२ ।।इसप्रकार गृहस्थ वैश्वदेवबलिःदेकर आचमनकरे औरफिर द्वारको देखे तथा मुहूर्त के आठवें भागतक अतिथिकी प्रतीक्षा करे ।।२६।। अतिथि के आगमन पर यथाशक्ति अन्न, जल, गंध पुष्पादि से उसका सत्कार करे।।२७।।

नमित्रमतिथिंकुर्यान्नैकग्रामनिवासिनम् ।
अज्ञातकुलनामानंतत्कालसमुपस्थितम् ।२८

बुभुक्षुमागतंश्रान्तंयाचमानमकिंचनम् ।
ब्राह्मणंप्राहुरतिथिंसपूज्यःशक्तितो बुधैः ।२९
नपृच्छेद्गोत्रचरणंस्वाध्यायंचापिपीडतः ।
शोभनाशोभनाकारंतंमन्येतप्रजापतिम् ।३०
अनित्यंहिस्थितोयस्मात्तस्मादतिथिरुच्यते ।
तस्मिंस्तृप्तेनृयज्ञोत्थाहृणान्मुच्येद्गृहाश्रमी ।३१
तस्यादत्वातुयोभुक्ते स्वयंकिल्बिषभुङ् नरः ।
सपापंकेवलंभुक्तपुरीषंचान्यजन्मनि ।३२
अतिथिर्यस्यभग्नाशोगृहात्प्रतिनिवर्तते ।
सदत्वादुष्कृतंतस्मैपुण्यमादायगच्छति ।३३
अप्यं बुझाकदानेनयच्चाप्यश्नातिसस्वयम् ।
पूजयेत्तनरःशक्त्यातेनैवातिथिमादरात् ।३४
कुर्याच्चाहरहःश्राद्धमन्नाद्येनोदकेनच ।
पितृनुद्दिश्यविप्रांश्चभोजयेद्विप्रमेवबा ।३५

अपने मित्र अथवा ग्राम में रहने वाले को अतिथि न माने, जो पुरुष उसी समय आया हुआ हो और जिसका कुल, गोत्र, नाम इत्यादि ज्ञात न हो ।२८। और यथार्थ रूप से भोजन की इच्छा से आया, हो जिसके पास कुछ भी न हो, श्रम से थका हुआ हो, ऐसा हीं ब्राह्मण अतिथि कहा गया है, ऐसे ही अतिथि का यथाशक्ति पूजन करे ।२९। बुद्धिमान् गृहस्थ उस अतिथि का गत्रो, वेद, स्वाध्याय आदि किसी भी विषय का प्रश्न न करे, वह सुन्दर या कुरूप जैसा भी हो उसे साक्षात् प्रजापति स्वरूप ही समझे ।३०। नित्य न रहने वाले को अतिथि की तृप्ति न करने पर गृहस्थ नृयज्ञ के ऋण से नहीं छूटता ।३१। इसलिए जो गृहस्थ अतिथि को भोजन कराये बिना, स्वय ही भोजन कर लेता है वहपापका भोगने वाला होता है. अन्य जन्म में भोजन के निमित्त विष्ठा की प्राप्ति होती है ।३२। जिसके गृहस्थ के घर से जो अतिथि विमुख लौटताहै, वह उस गृहस्थ के पुण्य को लेकर अपने पाप को उसे दे जाता है ।३३।अतिथि को जल,शाकादि जोस्वय भोजन, करे वह सम्मान करये उसकाआदरसहित

पूजन करे ॥३४॥ नित्य प्रति अन्न जल आदि केद्वारा पितरों के निमित्त श्राद्ध करे और एक अथवा अनेक विद्वान् ब्राह्मणों को भोजन करावे ॥३५॥

अन्नस्यग्रं तदुद्धृत्यब्राह्मणायोपपादयेत् ।
भिक्षाचयाचितांदद्यात्परिव्राट्ब्रह्मचारिणाम् ॥३६
ग्रासप्रमाणाभिक्षास्यादग्रं ग्रासचतुष्टयम् ।
अग्रं चतुर्गुणांप्राहुर्हन्तकारद्विजोत्तमाः ॥३७
भोजनंहन्तकारं वाअग्रं भिक्षामथापि वा ।
अदत्त्वातूनभोक्तव्ययथाविभावमात्मनः ॥३८
पूजयित्वातिथिमिष्टात्ज्ञातीन्बंधूंस्तथार्थिनः ।
विकलान्बालवृद्धांश्चभोजयेच्चातुरांस्तथा ॥३९
वांछतेक्षुत्परीतात्मायच्चान्योन्नमकिंचनः ।
कुटुंबिनाभोजनीय-स्वसमविभवेसति ॥४०
श्रीमंतंज्ञातिमासाद्ययोज्ञातिरवसीदति ।
सीदतायत्कृतंतेनतत्पापससमश्नुते ॥४१
सायच्चैषविधिःकार्यं पूर्वोक्तं तत्रचातिथिम् ।
पूजयेच्चयथाशक्तिशयनासनुभोजनैः ॥४२

अन्न का अग्रभाग तोड़ कर ब्राह्मण को दे तथा परिव्राजक और ब्रह्मचारी के याचक होने पर उन्हें भीख दे ॥३६॥ एक ग्रास को भीक्षा कहते हैं, चार ग्रास को अग्र और चार चतुष्टय अर्थात् सोलह ग्रास को हन्तकार कहा गया है ॥३७॥ यथा वैभव हन्तकार अथवा अग्र और यह भी न बने तो भिक्षा अवश्य दे, इसके बिना कभी भोजन न करे ॥३८॥ अतिथि कासत्यकार करने के पश्चात् जाति बन्धु, याचक, विकल, बालक वृद्ध और आतुर इनको भोजन करावे ॥३९॥ अन्य कोई अकिंचन व्यक्ति भूखा हो तो उसके द्वारा याचना करने पर उसे भी भोजन दे अथवा जो कुछ बन पड़े वही प्रदान करे ॥४०॥ धनवान् होते हुए भी जिसकी जाति दुःखित हो तो उस जाति का मनुष्य विवश होकर जो पाप करता है, उसका पापांश उस धनवान् को प्राप्त होता है ॥४१॥ संध्या समय में भी

इसी विधि को करे और सायंकाल में आने वाले अतिथि को यथाशक्ति आसन शय्या और भोजनादि द्वारा उसे संतुष्ट करे ।।४२।।

एवमुद्वहतस्तातगार्हस्थ्यभारमास्थितम् ।
स्कंधेविधातादेवाश्चपितरश्चमहर्षयः ।।४३
श्रेयोभिवर्षिणःसर्वेभवंत्यतिथिबांधवाः ।
पशुपक्षिमृगास्तृप्तायेचान्येसूक्ष्मकीटकाः ।।४४
गाथाश्चात्रमहाभागस्वयमत्रिरगायतः ।
ताःशृणुष्वमहाभागगृहस्थाश्रममंस्थिता ।४५
देवान्पितृश्चातिथीश्चतद्वत्संपूज्यबांधवान् ।
जामयश्चगुरुश्चैवगगृहस्थोविभवेसति ।।४६
श्वभ्यश्चश्वपचेभ्यश्चवयोभ्यश्चावपेद्भुवि ।
वैश्वदेवंहिन.मेतत्कुर्यात्सायतथादिने ।.४७

हे पुत्र ! इस प्रकार गृहस्थ अपने कन्धे पर रखे हुए गार्हस्थ्य रूपी भार को वहन करके विधाता, देवता, पितर, महर्षि ।।४३।। अतिथि, बांधव, पशु, पक्षी कीटादि सभी को प्रसन्न करके अपना कल्याण-साधन करते हैं ।।४४।। हे महाभाग उस विषय में महर्षि अत्रि ने जो कथा गायी है उस गृहस्थाश्रम वाली कथा को सुनो ।।४५।। यदि धन हो तो देवता पितर, अतिथि, बंधु, जाति और गुरु का पूजन करके श्वान, श्वपच और पक्षियों के लिए पृथिवी में अन्न प्रदान करे, इस वैश्यदेव नामक बलि कर्म को पूर्वाह्न और सायंकाल में करे ।।४६-४७।।

२७--सदाचार वर्णन

एवंपुत्रगृहस्थेनदेवताःपितरस्थता ।
सपूज्यहव्यकव्याभ्यामन्नेनातिथिबांधवाः ।।१
भूतानिभृत्याविकलाःपशुपक्षिपिपीलिकाः ।
भिक्षवोयचमानास्तुायेचान्येवगताग्रहे ।.२

सदाचारवतातातसाधुनागृहमे धिनः ।
पापंभुक्तेसमुल्लंघ्यनित्यंनै मित्तिकोः क्रियाः ३
सदाचारमहंश्रोतुमिच्छामिकुलनं दिनि ।४
यकुर्वन्सुखमाप्नोतिपरत्रेहचमानवः ।
गृहस्थेनसदा कार्यमाचारपरिपालनम् ।
नह्याचारविहीनस्यसुखमत्रपरत्रवा ।६
यज्ञदानतपाँसीहपुरुषस्यनभूतये ।
भवितियःसदाचारसमुल्लघ्यप्रवर्त्तते ।७

मदालसा ने कहा—हे पुत्र ? गृहस्थ को सदाचार परायण होकर हव्य कव्य और अन्नदान करते हुए पितर,देवताअतिथि और बांधवों का पूजन करने वाला होना चाहिए ।।१।।इनके अतिरिक्त भूत, भृत्य, पशु, पक्षी, पिपीलिका, भिक्षुक,याचक या पर,अपर जो कोईभी जैसी प्रार्थना करे।२। उन-उन का वैसेही सत्कार करे. गृहस्थी यदि नित्य नैमित्तिक क्रियाका उल्लंघन करेतो उसे पाप-भागी होना पड़ता है।।३।।अलर्क बोला-हे माता। तुमने मुझसे नित्य नैमित्तिक आदि पुरुषोचित कर्म-विषय का यथा प्रकार वर्णन किया ।।४।। जिसके अनुष्ठान से मनुष्य इहलोक और परलोक दोनों में सुखी होता है, उसी सदाचार को सुनने की मेरी इच्छा हुई है ।।५।। मदालसा ने कहा—गृहस्थ को सदैव ही सदाचार का पालन करना चाहिये, आचरहीन पुरुष को लोक में कभी भी सुख नहीं मिल सकता, जो पुरुष सदाचार को छोड़ कर संसार मार्ग में प्रवृत होता है, उसके द्वारा किये हुए यज्ञ, दान और तपस्या आदि सभी अमंगलजनक होते हैं ।।६-७।।

दुराचारोहिपुरुषोनेहायुर्विदतेमहत् ।
कार्योयत्नःसदाचारोआचारोहत्यलक्षणम् ।८
तस्यस्वरूपं वक्ष्यामिसदाचारस्यपुत्रक ।
समाहितमनाःश्रुत्वातथं वपरिपालय ।९
त्निवर्गसाधनेयत्नःकर्त्तव्योगृहमेधिनः ।
तत्ससिद्धौगृहस्थस्यसिद्धिरत्रपरत्रच ।१०

पादेनार्थस्यपारत्र्यंनुर्यात्सञ्चयमात्मवान् ।
अर्धंनचात्मभरणंनित्यनैमित्तिकान्वितम् ।११
पादंचात्मार्थमायस्यमूलभूतंविवर्द्धयेत् ।
एवमाचरतःपुत्रअर्थःसाफल्यमृच्छति ।१२
तद्वत्पापनिषेधार्थं धर्मः कार्योविपश्चिता ।
परत्राथतथाचान्यःकास्योत्रैवभलप्रदः ।१३

दुराचार में प्रवृत्त मनुष्य दीर्घजीवि कदापि नहीं हो सकता, इस लिये सदाचार में ही प्रवृत होवे, सदाचार से बुरे लक्षण नष्ठ हो जाते हैं ॥८॥ अब मैं उस सदाचार के स्वरूप को कहती हूँ तुम उसे एकाग्र चित्त से सुनो और तदनुरूप कार्य करो ॥९। गृहस्थ को त्रिवर्ग साधन में प्रवृत्त होना चाहिये त्रिवर्ग के सिद्ध होने पर उसे इह लोक और परलोक दोनों की सिद्धि होती है ॥१०॥ गृहस्थ को उपार्जन किये हुए धन का चतुर्थ भाग धर्म के लिये सञ्चित करना चाहिए, आधे भाग से अपना पोषण और नित्य नैमित्तिक कार्य करे ॥११॥ और शेष भाग की मूल धन के रूप में वृद्धि करे, इस प्रकार के आचरण से ही सफलता है ॥१२॥ धन के उपार्जन में जैसा आचरण करे, वैसा पाप को नष्ट करने के लिए धन सञ्चय करने में करे, धर्म काम्य और निष्काम भाव से दो प्रकार का है—काम इहलोक में फल-प्रकाश करता है और निष्काम परलोक में फल देता है ॥१३॥

प्रत्यवायभयात्कामस्तथान्यश्चाविरोधवान् ।
द्विधाकामोनिगदितस्त्रिवर्गोस्यविरोधतः ।१४
परस्परानुबंधांश्चसर्वानेतान्विचिंतयेत् ।
विपरीतानुबंधांश्चधर्मादींस्तान्छृणुष्वमे ।१५
धर्मोधर्मानुबंधार्थोधर्मोनात्मार्थ बाधकः ।
उभाभ्यांचद्विधाकामस्तेनतौत्रद्विधापुनः ।१६
ब्राह्मेमुहूर्त्तेबुध्येतधर्मार्थौथानुचिंतयेत् ।
कायक्लेशांश्चतन्मूलान्वेदतत्वार्थमेवत ।१७

उत्थायावश्यकं कृत्वा कृतशौचः समहितः ।
समुथ्थाय तथाचम्य प्राङ्मुखो नियतः शुचिः ॥१८
पूर्वां संध्यां सनक्षत्रां पश्चिमां सदिवाकराम् ।
उपासीत यथान्याय्यं नैनां जह्यादनापदि ॥१९
असत्प्रलापमनृतं वाक्पारुष्यं च वर्जयेत् ।
असच्छास्त्रामसद्वादमसत्सेवां च पुत्रक ॥२०
सायंप्रातस्तथा होमं कुर्वीत नियतात्मवान् ।
नोदयास्तमये बिम्बमुदीक्षेत विवस्वतः ॥२१

विघ्न तथा व्यय के होने से काम्य और निस्काम दोनों धर्मोंको करे, त्रिवर्ग भेद से काम्य भी दो प्रकार का है॥१४॥धर्म, अर्थ और काम यह त्रिवर्ग परस्पर बँधेहुए हैं,वैसे ही उन्हें परस्पर बंधन-रहित भी समझे,अब मैं इनके अनुबन्धादि का वर्णन करती हूँ॥ १५॥धर्म तथा धर्मके अनुबंध के लिए वह धर्मआत्मा को बाधा नहीं पहुँचाता,जैसे काम दो प्रकार का है. वैसे ही काम के द्वारा धर्म और अर्थ को भी दो भागों में विभक्त समझो ॥१६॥ ब्राह्ममूहूर्त्त में उठकर गृहस्था कोधर्म अर्थ, कायक्लेश और वेद-तत्त्वार्थ का चिन्तन करना चाहिए ॥१७॥ फिर शय्या से उठ कर आच-मन करे और नियत तथा पवित्र भाव से पूर्वाभिमुख बैठे ॥१८॥ और नक्षत्र के स्थित रहते हुए ही संध्या करे, इसी प्रकार सायंकालीन संध्या भी सूर्य के स्थित रहते में ही करे, आपत्तिकाल को छोड़ कर नित्य संध्योपासक विधि सहित करना चाहिए ॥१९॥ असत्‌मिथ्या और कठोर वचनों का त्याग करे तथा असत् शास्त्र, असत् वाद और असत् सेवा का भी परित्याग कर दे ॥२०॥ नियतात्मा होकर प्रातः सायं हवन करे, सूर्य के उदय और अस्तकाल में सूर्य बिम्ब को न देखे ॥२१॥

केशप्रसाधनादर्शदर्शनं दंतधावनम् ।
पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानां च तर्पणम् ॥२२
ग्रामावसथतीर्थानां क्षेत्राणां चैव वर्त्मनि
न मूत्रमनुतिष्ठेत न कृष्टे न च गोव्रजे ॥२३

नग्नांपरस्त्रियंनेक्षेन्नपश्येदात्मनःशकृत् ।
उदक्यादर्शनंनस्पर्शोंवर्ज्यंसम्भाषणतथा ॥२४
नाप्सुमूत्रंपुरिषंवानिष्ठीवंनसमाचरेत् ।
नाधितिष्ठेच्छन्कमूत्र केशभस्मकपालिकाः ॥२५
तुषांगारास्थिचूर्णानिरजोवस्त्राणिकानिचित् ।
नाधितिष्ठेत्तयाप्राज्ञःपथिपत्राणिवाभुवि ॥२६
पितृदेवमनुष्याणांभूतानांचतथाचंनम ।
कृत्वाविभवतःपश्चाद्गृहस्थोभोक्तुमर्हति ॥२७
गदङ्मुखप्राङ्मुखोवास्वाचांतोवाग्मतःशुचि ।
भूञ्जतान्नंचतच्चित्तोह्यन्तर्जानुःसदानरः ॥२८

केशविन्यास, दन्तधावन, दर्पण में सम्मुख दर्शन और देव तर्पण कार्य पूर्वाह्न में करे ॥२२॥ ग्राम, निवास, तीर्थ शेक्ष मार्ग जुता खेत गोओं के स्नान में मल,मूत्र का त्याग न करे ॥२३॥ पर नारी को नंगी न देखे, अपने मल को भी न देखे, ऋतुमती स्त्री को देखना, स्पर्श करना या उससे वार्तालाप करना अनुचित है ॥२४॥ जल में मल-मूत्र का त्याग औरमैथुन कर्म न करे, मल-मूत्र बाल, भस्म, कपाल तुष, अंगार, अस्थि, रजी, वस्त्रादि मार्ग की मिट्टी के ऊपर कभी न बैठे ॥ २५-२६॥ अपने वित्तानुसार सर्व प्रथम पितर देवता, मनुष्य, भूत आदि का पूजन कर फिर स्वयं भोजन करे ॥२७॥ आचमन के अन्त में वाणी संयम पवित्रता और अन्तर्जानु से पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठकर एकाग्र चित्त से भोजन करे ॥२८॥

उपघातमृतेदोषंनात्रस्योदीरयेद्बुधः ।
प्रत्यक्षंलवणंवजमन्नामत्युष्णमेवच ॥२९
नगच्छन्नं वतिष्टान्वैविण्मूत्रोत्सर्गमाचरेम् ।
कुर्वीतनेवचाचामेन्नकिंचिदपिभयेत् ॥३०
उच्छिष्टोनालपेत्किंचित्स्वाध्यायंचविवर्जयत् ।
गांब्र हृणंतथाचाग्निस्वमर्धानंचनस्पृशेत् ॥३१

नचपश्येद्रविंविनेन्दुं ननक्षत्राणिकामतः ।
भिन्नासनंतथाशय्यांभाजनंचविवर्जयेत् ।३२
गुरुणामासनंदेयमभ्युत्थानादिसत्कृतम् ।
अनुकूलंतथालापमभिवादनपूर्वकम् ।३३
तथानुगंनकुर्यात्प्रतिकूलंनसंलपेत् ।
नैकवस्त्रश्चभुञ्जीतनकुर्याद्देवतार्चनम् ।३४
नागर्हयेद्द्विजान्नाग्नौमेहं कुर्वीतबुद्धिमान् ।
नस्नायीमनरोनग्नोनशयीतकदाचन ।३५

किसी प्रकार का अनिष्ट या उत्तेजन करने वाले व्यक्ति के दोषों को न खोले, अधिक नमक या अत्यन्त गरम अन्न का भोजन न करे ।।२९।। चलते हुए या बैठेहुए मल-मूत्र का त्याग न करे,आचमन करके फिरकिंचित भी अन्न न खाये।३०।उच्छिष्ट देहसे किसीसे बात न करे तथा इस अवस्था में वेदाध्ययन न करे तथा गो,ब्राह्मणअग्नि और अपने मस्तकका स्पर्श न करे।।३२।। उच्छिष्ट देह से सूर्य चन्द्रमा और नक्षत्र का दर्शनभी स्वेच्छासे न करे,टूटे आसन, टूटी शय्या और टूटे पात्रको त्याग दे।।३२।।गुरुको देख कर उठकर खडे होने इत्यादि से सत्कारपूर्वक आसन दे और प्रणाम करके अनुकूल वार्तालाप करे।।३३।।उनके गमन समय उनके पीछे चले, प्रतिकूल वचन न कहे,एकही वस्त्र से भोजन और देवपूजन न करे।।३४।।द्विजाति की निन्दा न करे, अग्नि में मूत्रादि न छोडे, नग्न होकर स्नान अथवा शयन न करे ।।३५।।

नपाणिभ्यामुभाभ्यांचकण्डूयेतशिरस्तथा ।
नचाभीक्ष्णशिरःस्नानंकार्यंनिष्कारणनरैः ।३६
शिरःस्नातश्चतैलेननाङ्गंकिञ्चिदपिस्पृशेत् ।
अनध्यायेषुसर्वेषुस्वाध्यायंचविवर्जयेत् ।३७
ब्राह्मणानलगोसूर्यान्निमेहेतकदाचन ।
उदङ्मुखोदिवारात्रावुत्सर्गंदक्षिणामुखः ।३८

आबाधासुयकथाकामंकुर्यान्मूत्रपुरीषयो: ।
दुष्कृतंनगुरोर्ब्रूयात्क्रुद्धंचैनंप्रसादयेत् ।३९
परीवादनश्रवणुयादन्येषामपिकुर्वताम् ।
पन्थादेयोब्राह्मणानांराज्ञोदु:खातुरस्यच ।४०
विद्याधिकस्युगुर्विण्याभारार्त्तस्ययवीयस: ।
मूकान्धबधिराणांचमत्तस्योन्मत्तकस्यच ।४१
पुंश्चल्याकृतवैरस्यबालस्यपतितस्यच ।
देवालयंचैत्यतरुंतथैवचचतुष्पथम् ।४२
विद्याधिकंगुरुंचैवबुध:कुर्यात्प्रदक्षिणम् ।
उपानद्वस्त्रमाल्वादिधृतमन्यैर्नधारयेत् ।४३

दोनों हाथों से मस्तक न खुजावे, अकारण स्नान तथा सदैव शिर से स्नान न करे ।।३६।।शिर से स्नान करने के अन्त में किसी अंग में तेल न लगावे, अनध्यायन के दिनों से वेदाध्ययन को न करे ।।३७।। गो ब्राह्मण, सूर्य और अग्नि के सामने मल मूत्र का त्याग न करे, दिन में उत्तर की ओर मुख करके तथा रात्रि में दक्षिण की ओर मुख करके ।।२८।।निर्विघ्न स्थान मल मूत्र का त्याग करे, गुरु के दुष्कर्म को किसी प्रकार प्रकट न करे तथा उनके कुपित होने पर उन्हें प्रसन्न करे ।।३९।। यदि कोई अन्य उनकी मिथ्या निन्दा करे तो उसे न सुने, ब्राह्मण, राजा दु:ख से आतुर ।।४०।। अपने से विद्वान्, गर्भिणी नारी, भयातुर युवक, गूंगा, अन्धा, बहरा, मत्त, उन्मत्त ।।४१।। पुंश्चली, बैरी बालक और पतित इनको मार्ग, देवालय, चैत्य, चोराहा ।।४२।। अपने से अधिक विद्या वाला, गुरु, देवता तथा बुद्धिमान् की परिक्रमा करे, किसी के पहिने हुए जूता, वस्त्र और माला आदि को धारण न करे ।।४३।।

उपवीतमलंकारंकरकंचैववर्जयेत् ।
प्रशस्तानिचकर्माणिकुर्वीणादीर्घजीविन: ।४४
चतुर्दश्यांतथाष्टम्यांपञ्चदश्यांचपर्वसु ।
तैलाभ्यङ्गंतथाभोगंयोषितश्चविवर्जयेत् ।४५

नक्षिप्तपादजङ्घश्चप्राज्ञास्तिष्ठेत्कदाचन ।
नचापिविक्षिपेत्पादंपादेननाक्रमेत् ॥४६
मर्माभिघातमाक्रोशपैशुन्यंचविवर्जयेत् ।
दम्भाभिमानतैक्ष्ण्यानिनकुर्वीतविचक्षणः ।४७
मूर्खोन्मत्तव्यसनिनोविरूपान्मायिनस्तथा ।
न्यूनाङ्गांश्चाधिकाङ्गांश्चनोपहासे नदूषयेत् ।
परस्यदण्डंनोद्यच्छेच्छिक्षार्थंपुत्रशिष्ययोः ॥४८
तद्वन्नोपविशेत्प्राज्ञपादेनाक्रम्यचासनम् ॥४९

दूसरे का पहिना हुआ जनेऊ विभूषण और कमण्डलु ग्रहण न करे, जो प्रशस्त कर्म करता है, वही दीर्घजीवी होता है ॥४४॥ चौदश, पंद्रस, अष्टमी और पर्व दिवस में तेल न तले तथा स्त्री संग भी न करे ॥४५॥ पर या जांघ फैल कर न बैठे, पैर पर पैर मारना और लात मारना भी अनुचित हैं ॥४६॥ किसी के मर्म को व्यथित न करे, किसी को न कोसे चुगली न करे दम्भ अभिमान और तीखे व्यवहार को छोड़ दे ॥४७॥ मूर्ख उन्मत्त, दुःखी आपद्ग्रस्त, विरूप, मायावी, अङ्गहीन अथवा अधिकांग को हँसी उड़ाकर न छेड़े, दूसरे के प्रति दण्ड का प्रयोग न करे, परन्तु पुत्र या शिष्य को उपदेश देने के लिए आवश्यक हो तो दण्ड का प्रयोग करे ॥ ८॥ पाँवों से आक्रमण करता हुआ आसन पर न बैठे, केवल उदर पूर्ति के लिए भोजन करे ॥४९॥

सायंप्रातश्चभक्तव्यंकृत्वाचातिथिपूजनम् ।
उदङ्मुखःप्राङ्मुखोवायतोदन्तधावनम् ॥५०
कुर्वीतसततवत्सवर्जयेद्वर्ज्यवीरुधः ।
नोदक्छिराःस्वपेज्जातुनचप्रत्यक्छिरानरः ॥५१
शिरस्यगस्त्यमास्थायसुयीताथपुरन्दरम् ।
ननुगन्धवधीष्वन्सुस्नायीतनतथानिशि ॥ २
उपरागेपरस्नानमृतेदिनमुदाहृतम् ।
अपमृज्यान्नचास्नातोगात्राण्यम्बरपाणिभिः ।५३

नचापिधूनयेत्केशन्वाससीनचधूनयेत् ।
नानुलेपनाम्भादद्यादस्नातःकर्हिचिद्बुधः ॥५४
नचापिरक्तवासाःस्याच्चित्रासितवरोऽपिवा ।
नचकुर्याद्विपर्याद्विपर्यासंवाससोर्नापिभूषणे ॥५५

प्रात-सायं अतिथि का पूजन करके स्वयं भोजन करे तथा वाणी को रोककर पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख बैठ कर दाँतुन करे ॥५०॥ वर्जित काष्टादि का दाँतुन में प्रयोग न करे, उत्तर अथवा पश्चिम को शिर करके न सोवे ॥५१॥ दक्षिण या पूर्व की ओर शिर करके सोवे' दुर्गंधित जल अथवा रात्रि के समय स्नान न करे ॥५२॥ रात्रि स्नान ग्रहण काल में ही करे, स्नान के पश्चात् वस्त्र या हाथ से शरीर का मार्जन न करे ॥५२॥ गीले केश या गीले वस्त्र को न फटकारे, बिना स्नान किये चन्दनादि धारण न करे ॥४४॥ लाल, काले या चित्रित वस्त्र न पहिने, उत्तरीय वस्त्र या भूषण आदि को विपरीत ढ़ङ्ग से न पहिने ॥५५॥

वर्ज्यंचविदशंवस्त्रमत्यन्तोपहृतंचयत् ।
केशकीटावपन्न्चक्षुण्णश्चभिरवेक्षितम् ॥५६
अवलीढ़ापन्नंचसारोद्धारषद्दूषितम् ॥५७
नभक्षयीतसततप्रत्यक्षालवणानिज ।
वर्ज्यंचिरोषितंपुत्रभक्तं पर्येषितचयत् ॥५८
पिष्टशाकेक्षुपयसाँविकारान्पनदेन्न ॥५९
उदयास्तमनेभानोःशयनवविवजयेत् ।
नास्नोतोर्न वसविष्टोनचैवान्यमनानरः ॥६०
नचैवशयनेनोर्व्यामुपविष्टोशब्दवन् ।
नचैकवस्त्रोनवदन्प्रेक्षतामप्रदायच ॥६१
भुंजीतपुरुषस्नातःसायप्रातर्यथाविधि ।
परदारानगन्तव्यःपुरुषेणविपश्चिता ॥६२
इष्टापूर्त्तायुषांहन्त्रीपरदारगतिन्णाम् ।
नहीदृक्षमनायुष्पंलोकेकिंचनविद्यते ॥६३

याद्दशंपुरुषस्येहपरदाराभिमर्शनम् ।
देवार्चनाग्निकार्याणितथागुर्वभिवादनम् ।६४

दशाशून्य, जीर्ण एवं छिन्न वस्त्रों का सर्वथा त्याग करे, बाल या कीड़े से युक्त, श्वान द्वारा देखा हुआ ।५६। अथवा चाटा हुआ या सार निकाला हुआ अन्न ।५७ तथा प्रत्यक्ष रूप से नमक कभीन खाय बहुत दिनों का रखा हुआ अथवा बासी अन्न का भी भोजन न करे ।५८। हे पुत्र ! पिट्टी, शाक, ईख, और दूध के विकार को त्याग दें ।।५ ।। सूर्योदय या सूर्यास्त के समय न सोवे अथवा दूसरी ओर मन लगा कर भी शयन न करे ।।६०।। शय्या में या भूमिका में 'हा' कहकर न बैठे उत्तरीय उतार कर एक वस्त्र से भोजन न करे, बात करते हुए भी भोजन न करे, जो सामने बैठा होउसे खिलाये बिना स्वयं न खाय ।६१। प्रातः साय विधी सहित स्नान करके ही भोजन करे, परनारी गमन कभी न करे, ।६२। क्योंकि परनारी गमन से इष्टापूर्त्त नष्ट होता है और दीर्घायु का ह्रास होता, है इस लोकमें इस पापके समान कोईपाप नही है देव-पूजन, अग्निकार्य औरगुरुजनोंको प्रणाम सदा कर्त्तव्य है।।६३.६४।।

कुर्वीतसम्यगाचम्य तद्वदन्नभुजिक्रियाम् ।
अफेनाभिरगन्धाभिरद्भिरच्छाभिरादरात् ।६५
आचामेत्पुत्रपुण्याभिःप्राङ्मुखोवाप्युदङ्मुखः ।
अन्तर्जलादावसथाद्वल्मीकान्मूषिकस्थलात् ।६६
कृतशोचावरूष्टाचचवर्जयेत्पञ्चवैमृदः ।
प्रक्षाल्यहस्तौपादोचसमभ्युक्ष्यसमाहितः ।६७
अन्तर्जानुस्तथाचामेत्त्रिश्चतुर्वापिवेदपः ।
परिमृज्यद्विरास्यान्तखानिमूर्धानमेवच ।६८
सम्यगाचम्यतोयेनक्रियांकुर्वीतवेशुचिः ।
देवतानामृषीणांचपितृणांचपितृणांचैवयत्नतः ।६९
समाहितमनाभूत्वाकुर्वीतसततंनरः ।
क्षुत्वानिष्ठीव्यवासश्चपरिधायाचमेद्बुधः ।७०

भले प्रकार आचमन करके अन्न भोजन कार्य को सम्पूर्ण करे । फेन-

रहित, गन्ध-रहित स्वच्छ और पवित्र जल लेकर ।६५। पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर आचमन करे, जल के भीतर की, निवास गृह की, बाँबी की चूहे के बिल की ।।६६।। तथाशौच क्रिया से बची हुई मिट्टी को न ले, एकाग्र मन से हाथ पाँव धोकर शौच करे ।६७। दोनों जानु समेट कर बैठे तीन-चार बार जलपान सहित आचमन करे दो बार मुख के इधर-उधर तथा मुख में दो बार मस्तक और इन्द्रिया द्वार को माँजते हुए ।६८। भले प्रकार आचमन करके क्रिया का अनुष्ठान करे तथा सदैव एकाग्र मन से देव, ऋषि और पितरों का ।६९। कार्य करे, हिचकीया खखार केपश्चात् आचमन करना चाहिये और वस्त्र पहिनने के पश्चात्भी आचमन करना उचित है ।७०।

क्षुतेऽवलीढेवान्तेचतथानिष्ठीवनादिषु ।
कुर्यादाचमनंस्पर्शंगोपृष्ठस्यार्कदर्शनम् ।७१
कुर्वीतालम्बनंचापिदक्षिणश्रवणश्रवणस्यवै ।
यथाविभतोह्येनस्पूर्वाभावेततःपरम् ।७२
अविद्यमानेपूर्वोक्ते उत्तरप्राप्तिरिष्यते ।
नकुर्याद्दन्तसघर्षनात्मनोदेहताडनम् ।७३
स्वप्नाध्य पनभोज्यानिस्वाध्यायंचविवर्जयेत् ।
सन्ध्यायांमैथुनं चापितथाप्रस्थानमेवच ।७४
पूर्वाह्णे तातदेवानांमनुष्याणांचमध्यमे ।
भक्त्यातथापरोह्णे चकुर्वीतपितृपूजनम् ।७५
शिरःस्नातश्चकुर्वीतदैवंपैत्र्यमथापिवा ।
प्राङ्मुखोदङ्मुखोवापिश्मश्रुकर्मचकारयेत् ।७६
व्यङ्गांविवर्जयेत्कन्याप्रकुलांचापिरोगिणाम् ।
विकृतांपिंगलां विवचायांसर्वंदूषिताम् ।७७

छींक, वमन, निष्ठीवन अथवा किसी वस्तुके चाटनेपर भी आचमन करे, गोपृष्ठका अवलोकन या सूर्यका दर्शन ।७१।अथवा अपने दक्षिण श्रोत्र का स्पर्श करे। उनमें क्रमशः पहिलेके अभाव में दूसरे को करे ।७२। क्योंकि पहिलेका अभाव होनेपर दूसरेका ग्रहणही श्रेष्ठ कहाहै दाँतसे दाँत को न

घिसे तथा अपने शरीर का ताड़न न करे ।।७३।। प्रातः संध्या या सायं संध्या के समय शयन अध्ययन और भोजन न करे संध्याकाल में मैथुन अथवा प्रस्थान का निषेध है।।७४।। पूर्वाह्न में देवताओं का मध्याह्न में मनुष्यों का एवं अपराह्न में पितरों का पूजन करे ।।७५। शिर से स्नान करके पितरों या देवताओं के अनुष्ठान में प्रवृत्त हो, पूर्वाभिमुख या उत्तराभिमुख होकर क्षौर कर्म न करावे ।।७६।। रोगिणी, विकलांगी, पिंगल वर्ण वाली, वाचाल अथवा दूषित कन्या चाहे सद्वंश में ही उत्पन्न क्यों न हुई हों, उसे गृहण न करे ।।७७।।

अव्यगांगीसौम्यकानींसर्वलक्षणलक्षिताम् ।
तादृशीमुद्वहेत्कन्यांश्रेयःकामोनरःसदाः ।।७८
उद्वहेत्पितृमात्रोश्जसप्तमींपचमीतथा ।
रक्ष द्दारान्त्यजेयेदीर्षादिवाचस्वप्नमैथुने ।।७९
परोपतापककमंजन्तुपीडांचवर्जयेत् ।
उदक्याःसववर्णानांवर्ज्यांरात्रिचतुष्टयम् ।।८०
स्त्रीजन्मपरिहारार्थंपंचमोमपिवजयेत ।
ततःपष्ठचांव्रजेद्रात्र्यांश्रेष्ठायुग्मसुपुत्रक ।।८१
पर्वाणिवयेन्नित्यमृतुकालेपियोषितः ।
तस्मान्नित्यंनरोगच्छेषयुग्मासुपुत्रक ।।८२
युग्मासुयुत्राजायन्तेस्त्रियोऽयुग्मासुरात्रिषु ।
तस्माद्युग्मासुपुत्रार्थीसबिशेतसदानरः ।।८३

कल्याण के इच्छुक पुरुष को सर्वांगपूर्ण, सुधार नासिका एवं सब सुलक्षणों से युक्त कन्या से विवाह करना चाहिये।।७८।।पिता या माताकी सात अथवा पांच पीढ़ी छोड़करही परस्पर विवाहकरे पुरुषका कर्त्तव्यहैकि स्त्री की रक्षा करे और ईर्ष्याका त्याग करे दिनमें शयन या मैथुन न करे ।।७९।।दूसरों को संताप देनेवाले या प्राणियोंको क्लेशप्रद कार्योंको न करे सभी वर्णो को ऋतुमयी स्त्री का चारदिन सङ्गत्याग करना चाहिये ।८०। जोपुरुष कन्याका जन्म नहीं चाहता वह पाँचवी रात छोड़कर छटवीं रातमें स्त्री संग करे,क्योंकि इसके लिए युग्म रात्रि ही श्रेष्ठ मानी गयी है।।८१।

ऋतुकाल के दिन चौदस, अमावश, अष्टमी अथवा संक्राति काल में नारी समागम न करे ।८२। युग्म रात्रि के संगम से पुत्र और अयुग्म रात्रि के समागन से कन्या की उत्पत्ति होती है इसलिऐ पुत्रेच्छुओं को युग्म रात्रि में सङ्ग करना चाहिए ।८३।

विधर्मिणोऽह्निपूर्वाख्येसंध्याकालेचषण्ढकाः ।
क्षुरकर्मणिवान्तेचस्त्रीसभोगेचपुत्रक ।८४
स्नायीतचैलवान्प्राज्ञः कटभूमिमुपेत्यचा।
देववेदद्विजातीनांसाधुसत्यमहात्मनाम् ।८५
गुरोः पतिव्रतानांचतथायज्वितपस्विनाम् ।
परीवादंनकुर्वीतपरिहासचप.त्रक ।८६
कुर्वतामविनीतानां नश्रोतव्यंकथंचन ;
देवपित्र्यातिथेयाश्चक्रिया कुर्वीतवैबुधः ।८७
स्वाध्यायंवापि कुर्वीतयथाशक्त्याह्यतन्द्रित : ।
नोत्कृष्टशय्यासनमोन्नापकृष्टस्तचारुहेत् ।८८
नचामङ्गल्यवेषः स्यान्नचामङ्गल्यवाग्भवेत् ।
धवलाम्बरसंवीत् सितपुष्पविभूषितः ८९
नोद्धतोन्मत्तमूढैश्च नाविनीतैश्चपण्डितः ।
गच्छेन्मैत्रीनचाशीलैर्नचचौर्यादिदूषितैः ।९०
नवातिव्ययशीललैश्चनलुब्धैर्नापिवैरिभि ।
नानृतकैस्तथाक्रूरैः सहासीतकदाचन ।
नबन्धकीभिर्न न्यूनैर्बन्धीपतिभिस्तथा ।९१
सार्द्धंनवालभिः कुर्यान्नचन्यूनैर्निन्दितैः ।
नसर्वशङ्किभिर्नित्यंभचदैवपरैर्नरैः ।९२

पूर्वाह्न में नारी सङ्ग से विधर्मी और सायकाल में सङ्ग करने से नपुंसक पुत्र की उत्पति होती है और कर्म वमन और स्त्री संग के पश्चात् ।८४। तथा श्मशान भूमि में जाने पर वस्त्र सहित स्नान करे। देवता वेद ब्राह्मण सत्य निष्ठ--महात्मा ।८५। गुरजन पतिव्रता यज्ञ और

तप परायण पुरुष इनकी हंसी न उड़ावे ।८६। यदि कोई अविनय वाला पुरुष इनकी निन्दा करे तो उत्तर प्रदान न दे, देवता, पितर और अतिथि पूजन सदा करे ।८७। सावधान चित्त से वेदाध्ययन करे, अपने श्रेष्ठ या निम्न मनुष्य की शय्या अथवा आसन पर न बैठे ।८८। अमङ्गल वेश न धारे, अमङ्गल वचन न कहे, श्वेत वस्त्र और सित पुष्प धारण करे ।८९ उद्धत, उन्मत्त, मूर्ख, विनय-रहित, चोर-धर्म से दूषित ।९०। अपरिमित व्यय करने वाला लुब्ध शत्रु, व्यभिचारिणी का पति ।९१। नीचाशय निन्दित, सदा शका युक्त, इनके साथ कभी मित्रता न करे ।९२।

कुर्वीतसाधुभिर्मैत्रीसदाचारावलम्बिभिः ।
प्रज्ञैरपिशुनैः शक्तैः कर्मण्युद्यागभागिभिः ।९३
वेदविद्याव्रतस्नातैः सहासीतससदाबुधः ।
सुहृद्दीक्षितभूपालस्नातकश्वशुरैः सह ।
ऋत्विगादीन्षर्घ्यदिर्चयेच्चगृहागतान् ।९४
यथाविभवतः पुत्रद्विजान्सवत्सरोषितान् ।
अर्चयेन्मधुपर्केणयथाकालमतन्द्रितः ।९५
तिष्ठेच्चशासनेतेषांश्रेज्ञस्कामोद्विजोत्तमः ।
नचतान्विवदेद्धीमानाक्रुष्टश्चापितैः सदा ।९६
सम्यग्गृहार्चनं क्रत्वायथास्थानमनूक्रमात् ।
संपूजयतेत्ततोवह्लिदद्याच्चैवाहुतीः क्रमात् ।९७

सदाचारी साधु मनुष्यों के साथ ही मित्रता करे, बुद्धिमान् उद्योगी को मित्र बनावे।९३।वेदज्ञान से युक्त, विद्वान, व्रत पराय और स्नातकका संग करे सुहृद,दीक्षित,राजा स्नातक श्वशुर तथा ऋत्विक् यहछैओंअर्घ्य देने के लिए उपयुक्त पात्र हैं जब यह घर पर आवें तों इनका पूजन करे ।९४। हे पुत्र!उपयुक्त छः जनो केआगमन पर यदि वे सवत्सर के व्यतीत होने पर आवें तो मधुपर्क से उनका पूजन करे ।९५। यदि कल्याण चाहे तो उनकी, आज्ञा का पालन करे और 'उनके द्वारा क्रोध व्यक्त करने पर

उनसे विवाद न करे ।९६। भले प्रकार गृह पूजन करके अग्नि का पूजन करे और आहुति दे ।९७।

प्रथमांब्रह्मणेदद्यात्प्रजानांपतयेततः ।
तृतीयांच्वगुह्येभ्यः कश्यपायतथापराम् ।९८
ततोऽनुमतयेदत्वादद्याद्गृहवलिततः ।
पूर्वख्यातोमया यस्तेनित्यकर्मक्रियाविधिः ।९९
वैश्वदेव ततः कुर्याद्बलयस्तत्रमेश्रृणु ।
यथास्थानविभागंतुदेवानुद्दिश्यवैपृथक् ।१००
पर्जन्यादूभचोधरित्र्यैचदद्याच्चमणिकेत्रयम् ।
तयोर्धातुर्विधातुश्चदद्याद्द्वारेगहृस्यस्तु ।
वायवेचप्रतिदिशदिग्भ्य प्राच्यादितःक्रमात् ।१०१
ब्रह्मणेचान्तरिक्षायसूर्यायचयथाक्रमम् ।
विश्वेभ्यचैवदेवेभ्योविश्वभूतेभ्य एवच ।१०२
उषसेभूतयेदद्याच्चोत्तरतस्ततः ।
स्वधानमइतीत्युक्त्वापितृभ्यश्चापिदक्षिणे ।१०३
कृत्वाऽसव्यं वायव्यां यक्ष्मैतत्ते तिभाजनात् ।
अन्नावशेषमिच्छन्वैतोयंद्याद्यथाविधि ।१०४
ततोन्नाग्रंसमुद्धृत्यहन्तकारोकल्पनम् ।
यथाविधि यथान्यायंब्राह्मणयोपपादयेत् ।१०५

प्रथम आहुति ब्रह्माजी के निमित्त दूसरी आहुति प्रजापति की तीसरी गुह्यकगण को और चौथी आहुति कश्यप को ।९८। फिर पाँचवीं आहुति अनुमति के उद्देश्य से दे और फिर जिस नित्य कर्मका वर्णन किया जा चुकाहै, उसीके अनुसार गृहवलि प्रदान करे।९९।फिर वैश्वदेव बलि,प्रदान करे उसक नियमयह हैकिस्थानविभाग केअनुसार देवताओं के लिये प्रथक् पृथक बलि प्रदान करे ।१००।फिर पर्जन्य अन्न और पृथिवीतीनबलितथा वायु को भी बलि दे तथा पूर्वादि के क्रमसे प्रत्येक दशा मेंबलि दे,।१०१। फिरउत्तरदियामें ब्रह्माअन्तरिक्ष में सूर्य,विश्वेदेवा व विश्वभूतगण ।१०२।

उषा और भूतपति के निमित्त बलि देकर स्वधा नमः उच्चारण करके दक्षिण में पितरों के लिए बलि दे ।१०३। फिर अन्नावशेष की कामना करे और अपसव्य होकर मैं 'यक्ष्मैतत्ता' इत्यादि मन्त्र पढ़कर जलाधार से जल लेकर विधिवत् जल दे ।१०४। फिर अन्न के अग्र भाग को तोड़े और हन्तकार की कल्पना कर ब्राह्मण को दे ।१०५।

कुर्यात्कर्माणितीर्थनस्वनेस्वनयथाविधि ।
देवादीनांतथाकुर्यात्ब्राह्मेणाचमनक्रियाम् ।१०६
अंगुष्ठोत्तरतोरेखापाणेर्यादक्षिणस्यतु ।
एतद्ब्राह्ममितिख्यातंतीर्थमाचमनायवै ।१०७
तर्जन्यङ्गुष्ठयोरन्तः तत्र तीर्थंनुदाहृतम् ।
पित्रणांतेनतोयादिदद्यान्नान्दीमुखादृते ।१०८
अंगुल्यग्रेतथादैवंतेनदिव्यक्रियाविधिः ।
तीर्थंकनिष्ठकामूलेकायंतेनप्रजापतेः ।१०९
एवमेभिः सदातीर्थैर्देवानांपितृभिः सह ।
सदाकार्याणिकुर्वीतनान्यत्तीर्थैनकर्हिचित् ।११०
ब्राह्मेणाचमनं शस्तंपित्र्यं पैत्रेणसर्वदा ।
देवतीर्थेनदेवानांप्राजापत्यंनिजेनच ।१११
नान्मीमुखानांकर्वीतप्राज्ञः पिण्डोदकक्रियाम् ।
प्राजापत्येनतीर्थेनयच्चकिंचित्प्रजापतेः ।११२

फिर स्वीय तीर्थ योग में विधान के अनुसार कर्म करे और देवतादि के निमित्त ब्राह्मतीर्थ द्वारा आचमन करे ।१०६ दक्षिण हाथ के अंगुष्ठ की उत्तर दिशा में जो रेखा है, वही ब्राह्मतीर्थ है, इस तीर्थ के द्वारा आचमन का विधान है ।१०७। तर्जनी और अगूंठा मध्य स्थल पितृतीर्थ है, नान्दीमुख के अतिरिक्त अन्याय सब क्रियाओं में पितरों के निमित्त इसी पितृतीर्थ से जलादि से ।१०८। अंगुली के अग्र भाग में देवतीर्थ है, उसी के द्वारा देवक्रिया की विधि का समापन करे, कनिष्ठा के मूल में काय नामक तीर्थ हैं उसके द्वारा प्रजापति का कार्य करना चाहिए ।१०९। इस प्रकार इन सब तीर्थों द्वारा

सदैव देवता और पितरों की क्रिया करे, अन्य तीर्थ के द्वारा कभी न करे ।११०। ब्रह्मतीर्थ द्वारा ही आचमन करने का विधान है, पितृ तीर्थ द्वारा पितृकार्य, देवतीर्थ द्वारा देवकाय और कायतीर्थ द्वारा प्रजापति का कार्य करना चाहिए ।१११। जिस प्रकार कायंतीर्थ अर्थात् प्राजापत्य तीर्थ द्वारा प्रजापति का कार्य करने का विधान है, उसी प्रकार कायतीर्थ द्वारा ही नान्दीमुख पिण्डीदक कर्म करना चाहिए ।११ ।

युगपज्जलमग्निचबिभ्रूयान्नविचक्षण ।
गुरुदेवान्प्रतितथानचापादौप्रसारयेत् ।११३
नाचक्षीतधयन्तीगांजलंनाञ्जलिनापिवेत् ।
शौचकालेषुसर्वेषुगुरुष्वल्पेषुवापुनः ।११४
नविलम्बेशौचार्थंनमुखेनानलंधमेत् ।
तत्रपुत्रवस्तव्त यत्रनास्तिचतुष्टयम् ।११५
ऋणप्रदातः वैद्यश्चश्रोत्रियः सजलानदी ।
जितामित्रोनृपोयत्र बलवान्धर्म तत्परः ।११६
तत्रनित्यंवसेत्प्रायः कुतः कुनृपतः सुखम् ।
यत्राप्रधृष्योनृपतिर्यत्रसस्यवतामही ।११७
पौरा. ससंयता यत्रसततन्यायवर्त्तिनः ।
यत्रामत्सरिणोलोकास्तत्रवासः सुखोदयः ।११८
यस्मिन्कृषीवलाराष्ट्रे प्रायशोनातिभोगिनः ।
यत्रौषधान्यशेषाणिवसेत्तत्रविचक्षणः ११९
तत्र पुत्र नवस्तव्ययत्रैतत्त्रितयंसदा ।
जिगीषुपूर्ववैरश्चजनश्चसततोत्सवः ।१२०
वसेन्नित्यं सुशीलेषुमहवासिषुपण्डितः ।
इत्येतत्कथितंपुत्रमयातेहितकाम्यया ।१२१

एक साथ ही जल और अग्नि का धारण करना अनुचित है, गुरु या देवता के सामने पैर फैलाना भी निषिद्ध है।११३। बछड़े को दूध पिलाने में लगी हुई गौ को न बुलावे और अञ्जलि से जल न पीवे, अधिक अथवा न्यून

११४। सब प्रकार की शौच किया शीघ्रता से करे तथा मुख की फूंक से अग्नि को प्रज्वलित न करे तथा जहाँ येह चार वस्तु न हों, वह न रहे ।११५।ऋण देने वाला, वैद्य, श्रोत्रिय तथा जल वाली नदी । जिसस्थान पर शत्रु विजेता बली एवं धर्मज्ञ राजा रहता हो ।११६। उस स्थान में सदा रहे, क्योंकि कुराजा के राज्य में सुख नहीं हो सकता । जिस देश का राजा दुर्धर्ष है तथा जहाँ की भूमि धान्य से परिपूर्ण है ।११७ जहाँ के पुरवासी नियमों का पालन करते और न्याय मार्ग पर चलते हैं, जहाँ के मनुष्यों में मात्सर्य नहीं है, वहाँ निवास करने से सुख का उदय होता है ।११८। जहाँ के किसान अति भोग वाले नहीं है. और जहाँ असंख्या-संख्य औषधियाँ प्राप्त होती है उसी स्थान में निवास करना चाहिए। ।११९। जहाँ जिगीषा युक्त, पूर्व शत्रु और उत्सवोन्मत्त मनुष्य रहते हों वहाँ कभी न रहे ।१२०। सुशील मनुष्यों का निवास हो वहाँ रहना चाहिये, यह सब मैंने तुम्हारे हित के लिए ही कहा है ।१२१।

२८—अलर्क को शासन युक्त अंगूठी की प्राप्ति

सएवमुनिशिष्टः सन्मात्रासम्प्राप्ययोवम् ।
ऋतध्वजसुतश्चक्रे सम्यग्दारपरिग्रहम् ।१
पुत्रांश्चोत्पादयामातयज्ञैश्चाप्ययणद्विभुः ।
पितुश्पसर्वकालेषुचकाराज्ञानुपालनम् ।२
ततःकालेमहत सम्प्राप्यचरमंवयः ।
चक्रेऽभिषेकं पुत्रस्यतस्यराज्येऋतध्वजः ।३
भार्ययासहधर्मात्मायियायुसुस्तपसेवनम् ।
अवतीर्णोमपीरक्षोमहाभागोमहीपतिः ।४
मदालसावतनयाप्राहेदंपश्चिमंवचः ।
कामोपभोगसंसर्गप्राहाणाथसुतस्यवै ।५

यदादु खमसह्यन्तेप्रियबन्धुवियोगजम् ।
शत्रुबाधोद्भवं वापिवित्तनाशात्मसम्भवम् ।६
भवेत्तत्कुर्वतोराज्यगृहधर्मावलम्बिनः ।
दुःखायतनभूतोहिममत्वालम्बनोगृही ।७
तदास्मात्पुत्रनिष्कृष्यमद्दत्तादगुलीयकात् ।
वाच्यं तेशासनं पटटेसूक्ष्माक्षरनिवेशितम् ।८
इत्युक्त्वाप्रददौतस्मैसौवर्णं सांगुलीयकम् ।
आशिषश्चापियायोग्याः पुरुषस्यगृहेसतः ।९
ततः कूवचलाश्वोऽसौसाचदेवीमदालसा ।
पुत्रायदत्वातद्राज्यं तपसेकाननङ्गतौ १०

जड़ ने कहा—माता ने इस प्रकार उपदेश देने पर ऋतध्वज के पुत्र ने युवावस्था प्राप्त होने पर विधि पूर्वक विवाह किया और पुत्रोत्पादन और विविध यज्ञों का अनुष्ठान करते हुए पिता की आज्ञा के अनुवर्ती हुए ।१-२। फिर बहुत काल व्यतीत होने पर धर्मात्मा राजा ऋतध्वज ने पत्नी सहित बन में जाने की इच्छा से पुत्र को राज्यपद में अभिषिक्त किया ।३-४। तब पुत्र को भोगादि से निवृत्त करने के विचार से मदालसा ने इस प्रकार कहा—जब तुम्हारे समक्ष किसी प्रिय अथवा बन्धु का वियोग, शत्रु बाधा या धननाश का दुःख उपस्थित हो ।५-६। क्योंकि गृहस्थ सदा ममता परायण है अतः स्वाभाविक रूप से ही आपद् काल आने तो मेरे द्वारा प्रदत्त इस अंगुलीय से पत्र बाहर निकालकर मध्यग्रस्थ सूक्ष्म अक्षरों में लिखे शासन का पाठ करना । ७-८। जड़ बोला—इस प्रकार कहती हुई मदालसा ने अपनी स्वर्ण की अंगूठी देते हुए अपने पुत्र को गृहस्थोचित्त आशीर्वाद दिया ।९। अपने पुत्र को राज्य देकर कुवलयाश्व तप करने के लिए मदालसा के सहित वन को गये ।१०।

२९-अलर्क को आत्म विवेचन

सोऽप्यलर्को यथान्यायंपुत्रवन्मुदिताः प्रजाः ।
पालयामासधर्मात्मास्वेकर्मण्यवस्थिताः ।१
दुष्टेषुदंडंशिष्टेषुसम्यक्चपरिपालनम् ।
कुर्वन्परांमुदलेभेइयाजचमहामखैः २
अजायन्तसुश्चास्यमहाबलपराक्रमाः ।
धर्मात्मानोमहात्मानोविमार्गपरिपन्थिनः ।३
चकारसोऽर्थंधर्मेणधर्मंमर्थेनवापुनः ।
तयोश्चैवाविरोधेनबुभुजेविषयानपि ।४
एवंबहूनिवर्षाणितस्यपालयतोमहीम् ।
धर्मार्थकामसक्तस्यजग्मुरेकमयर्थथा ।५
वैराग्यंनास्यसंजज्ञेभुञ्जतोविषयान्प्रियान् ।
नचाप्यलमभूत्तस्तधर्मार्थोपार्जनंप्रति ६
ततथाभोगसवंप्रमत्तमजितेन्द्रियम् ।
सुबाहुर्नामशुश्रावभ्रातातस्ययनेचरः ।७

जड़ बोला धर्मात्मा अलर्क ने न्याय पूर्वक प्रजा का पुत्र के समान पालन किया. इस प्रकार आनन्दको प्राप्त होतेहुए वे अपने नियतकार्यानुष्ठान में लगे ।१। उन्होंने दुष्टों को दण्डऔर शिष्टपुरुषों की रक्षा करतेहुएअत्यन्त आनन्द पूर्वक अनेक यज्ञ किये ।३। समय नुसार उनके अनेक पुत्र हुए वे सब बली, पराक्रमी धर्मज्ञ, महात्मा और कुमार्गके नाशक थे।३।आत्मवान हुए अलर्क धर्मसे अर्थ और अर्थसे अर्थकी रक्षा नथाधर्मऔरअर्थ के द्वारा विषयों का उपभोग करने लगे ।४। इस प्रकार धर्म अर्थ, काम रूप त्रिवर्ग में प्रवृत्त होकर पृथिवी का पालन करतेहुए बहुत वर्ष,एकदिनकेसमान ही व्यतीत होगये।५।प्रिय विषयोंका भोग करकेभी उनके चित्त में वैराग्यऔर धर्म,अर्थके उपार्जनमें उदासीनता उत्पन्न नहुई।६।अलर्क का एकभाईसुबाहु

पहिले से ही बनवास करता था, उसने अलर्क के विषय भोग में लगे रहने की वार्त्ता सुनी ।७।

तत्सम्बुबोधयिषुः सोऽथचिरं ध्यात्वामहामतिः ।
तद्वैरिसंश्रयन्तस्यश्रेयोऽमन्यतभूपतेः ।८
ततःसकाशिभूपालमुदीर्णबलवाहनम् ।
स्वराज्यमाप्तमागच्छद्बहुशः शरणंकृती ।९
सोऽपिचक्रेबलोद्योगमलर्कं प्रतिपार्थिवः ।
दूतंचप्रेषयामासराज्यमस्मैप्रदीयताम् ।१०
सोऽपनैच्छत्तदादातुमाज्ञापूर्वं स्वधर्मवित् ।
प्रत्युवाचचदूतमलर्कः काशिभूभृतः ।११
मामेवाभ्येत्यहार्दैनयाचतांराज्यमग्रजः ।
नाक्रांत्यासंप्रदास्यामिभयेनाल्पामपिक्षितिम् १२
सुबाहुर्नापियोऽश्वांचकारममिमांस्तदा ।
नधर्मक्षत्रितस्येतियाञ्चवीर्यधनोहिसः ।१३
ततः समस्तसैन्येनकाशीशः परिवारितः ।
आक्रान्तुमभ्यगाद्राष्ट्रमयर्कस्यमहीपतेः ।१४

अपने भाई को तत्वज्ञान हो सके इसके लिए उस महामति ने बहुत समय तक विचार किया और अन्त में शत्रु के आश्रय में जाना ही उचित समझा ।८। फिर चतुर सुबाहु राज्य लाभ की इच्छा करके काशी नरेश की शरण में अनेक बार गया ।९। काशी नरेश ने भी अलर्क की प्रतिकूलता के लिए उनके पास दूत द्वारा संदेश भेजा कि सुबाहु को राज्य दे दो ।१०। क्षात्रधर्मज्ञाता अलर्क ने इसे इसे स्वीकार न करके दूत को उत्तर दिया ।११। मेरे बड़े भाई मेरे पास आकर कहें, आक्रमण से डर कर तो मैं एक कण मात्र पृथ्वी भी नहीं दे सकता ।१२। महापंडित सुबाहु ने उनसे विनती नहीं की क्योंकि क्षत्रियों का एक मात्र धर्म ही है ।१३। तब काशी नरेश ने सेना से सुसज्जित होकर राजा अलर्क के राज्य पर आक्रमण किया ।१४।

यनन्तरैश्चसंश्लेषमभ्येत्यतदनन्तरम् ।
तेषामन्यतमैभृत्यैः समाक्रम्यानयद्वशम् ।१५
अपीडयश्चसामतांस्तस्यराष्ट्रोपरोधनैः ।
तथादुर्गांतपालांश्चचक्रे चाटविकान्वमे ।१६
कांश्चिच्चोपप्रदानेनकांश्चिभेदेनपार्थिवान् ।
साम्नैवान्यान्वशंनिन्ये निभृतास्तस्ययेऽभवन् ।१७
ततःसोऽल्पबलोराजापरचक्रावपीडितः ।
कोशक्षयमवापोच्चैपुरंचारुध्यातारिणा ।१८
इत्थंसंपीड्यमानस्तुक्षीणकोशोदिनेदिने ।
विषादमागात्परमंव्याकुलत्वंचचेतसः ।१९
आर्तिसपरमांप्राप्यतत्सस्मारांगुलीयकम् ।
यदुद्दिश्वपुराप्राहमातातस्यमदालसा ।२०
ततःस्नाताशुचिर्भूत्वावाचयित्वाद्विजोत्तमान् ।
निष्क्रष्यशासनंतस्याददृशेप्रस्फुटाक्षरम् ।२१

अपने सामन्त राजाओं से युक्त होकर आक्रमण के पश्चात् उन्होंने अलर्क को वश में कर लिया ।१५। उन्होंने अलर्क के सामन्तों को पीडित किया और दुर्ग रक्षक तथा वनवासियों को वशीभूत किया ।१६। किसी को धन से, किसी को भेद से तथा किसी को दण्ड से अधीन कर लिया ।१७। इस प्रकार परचक्र से पीडित हुए अलर्क का कोष खाली हो गया और नगर भी शत्रु द्वारा घेर लिया गया ।१८। इससे अलर्क अत्यन्त विषाद को प्राप्त हुआ और उसका चित्त भी व्याकुल हो उठा ।१९। फिर अत्यन्त आर्त्त हो गये, तब उन्हें अपनी माता मदालसा के वचन और वह अंगूठी याद आई ।२०। तब उन्होंने स्नान करके स्वस्ति वाचन कराके बन्धे हुऐ शासन को बाहर निकाल कर देखा तो वह स्पष्ट अक्षरों में लिखा हुआ था ।२१।

तत्रैवलिखितंमात्रावाचयामासपार्थिवः ।
प्रकाशपुलकांगोऽसौप्रहर्षोत्फुल्ललोचनः ।२२

संगःसर्वात्मनात्याज्यः सचेत्मक्तुं नशक्यते ।
ससद्भिः सहकर्त्तव्यः सतांसंगोहिभेषजम् ।२३
कामः सर्वात्मननाहेयोहातु चेच्छाक्यतेनसः ।
मुमुक्षांप्रतितत्कार्यं सैवतस्यापिभेषजम् ।२४
वाचयित्वातुबहुशोनृणां श्रेयः कथत्विति ।
मुमुक्षयेतिनिश्चित्यसाचत्तत्सङ्गीतोयतः ।२५
ततः ससाधुसम्पर्कं चिन्तयन्पृथिवीपतिः ।
दत्तात्रेयं महाभागामच्छत्परमार्तिमान् ।२६
तंसमेत्यमहात्मानमलकमषमसङ्गिनम् ।
प्रणिपत्याभिसम्पूज्ययथान्यायमभाषत ।२७

माता द्वारा लिखे उस शासन के पढ़ते ही उनका देह पुलकित हो गया और दोनों नेत्र आनन्द से फूल गये।२२। शासन में लिखा था 'काम को सर्वान्तःकरण से त्याग दे' यदि संग का त्याग न कर सके तो साधु सग करे, क्योंकि साधु-संगही विश्व का औषधि स्वरूप हैं ।२३।काम का सर्वान्तःकरण से त्याग करने में समर्थ न हो तो मोक्ष की कामना के लिए ही करे, क्योंकि मोक्ष का वही महान् उपाय है ।२४। इस प्रकार माता प्रदत्त शासन का पाठ करके, मनुष्य का कल्याण कैसे हो, मोक्ष की कामना ही उसका उपाय है और सत्संग ही उसका साधन है ।२५। ऐसा सोचकर अलर्क साधु संग के लाभ का विचार करने लगे, अत्यन्त भाव में आतुर होकर अन्त मे वह दत्तात्रेयजी की शरण में गयेऔर उन को प्रणाम करके पूजन किया और न्यायानुसार निवेदन किया ।२६-२७।

ब्रह्मन्कुरुप्रसादमेशरण्यः शरणार्थिनाम् ।
दुःखापहारकुरुमेदुःखार्त्तस्यातिकामिनः ।२८
दुःखापहारमद्यैवकरोमितवपार्थिव ।
सत्य ब्रूहिकिमर्थंतेदुःखंतत्पृथिवीपते ।२९
कस्यत्वकस्यवादुःखं तत्त्वमेन विचार्यताम् ।
अंगान्यगीन्निरंगचससर्वागानिविचितय ।३०

इत्युक्तश्चिन्तयामास राजा तेन धीमता ।
त्रिविधस्यापि दुःखस्य स्थानमात्मानमेव च ।
स विमृश्य चिरं राजा पुनः पुनरुदारधी ।
आत्मानमात्मना धीरः प्रहस्येदमथाब्रवीत् ।३२
नाहमुर्वी न सलिलं न ज्योतिर्मिर्रनिलो न च ।
नाकाशं किन्तु शारीरं समेत्य सुखमिष्यये ।३३
न्यूनातिरिक्ततां यानि पञ्चके ऽस्मिन्सुखासुखम् ।
यदि स्यान्मम किन्न स्यादन्यस्थे ऽपि हितं मयि ।३४

हे ब्रह्मन ! प्रसन्न हो, शरण आने वालों के लिए ही आश्रय स्वरूप हैं, मैं विषय भोगों में लिप्त होकर दुःखसे अभिभूत होगया हूँ, उससे आप मुझे छुड़ाइये ।२८। दत्तात्रेयजी ने कहा—हे राजन ! मैं तुम्हारे दुःखको अवश्य दूर करूँगा, तुम मुझे बताओ कि तुम्हें किस प्रकार से दुःख प्राप्त हुआ है ? ।२९। प्रथम यह विचार करोकि तुम किसके हो ? दुःख किस का है ? अंग अंगी भाव और निरंग इन सबका विचार करो ।३०। जड़ ने कहा--दत्तात्रेयजी के इस प्रश्न से राजा तीन प्रकार के दुःख का स्थान एवं आत्मा इन दो विषयों का चिन्तन करने लगे ।३१ राजा ने बारम्बार आत्मा द्वारा आत्म विचार करते हुए हँसकर कहा । ।३२। मैं पृथिवी, जल, ज्योति, वायु आकाश आदि में से कुछ भी नहीं हूँ किन्तु देह का आश्रय करता हुआ सुख चाहता हूँ ।३३। इस पाँच भौतिक देह में सुख-दुःख उत्पन्न होकर न्यूनाधिक्यकी प्राप्ति होती है ।३४।

नित्यप्रभूतसद्भावे न्यूनाधिक्यान्नतोन्नते ।
तथा च मतात्यकोविशेषेणोपलभ्यते ।३५
तन्मात्रावस्थिते सूक्ष्मे तृतीयांशे च पश्यतः ।
तथैवभूतसद्भावशारीरे किं सुखासुखम् ।३६
मनस्यवस्थितं दुःखं सुखं वा मानसं चयत् ।
यतस्ततो न मे दुःखं सुखं वा न ह्यहं मनः ।३७
नाहङ्कारो न च मनो बुद्धिर्नाहं यतस्ततः ।
अन्तःकरणजं दुःखं पारक्यं मम तत्कथम् ।३८

नाहं शरीरं नमनायतोऽहं पृथक्छरीरान्मनसस्तथाहम् ।
तन्सन्तु चेतस्यथवापिदेहे सुखानिदुःखानिचकिंममात्र ।३९
राज्यस्यवांछांकुरुतेऽग्रजोस्यदेहस्यचेत्पञ्चमयोहिराशिः ।
गुणप्रवृत्याममकिंनुतत्रात्स्थःसचाहंचाशरीरतोऽन्यः ।४०
नयस्यहस्तादिकष्यशेषमांसंनचास्थोनिशिराविभागः ।
कस्तस्यनागाश्वरथादिकोशैःस्वल्पोपिसम्बन्धइहास्तिपुंसः ४१
तस्मान्नमेऽरिर्नचमेऽस्तिदुःखनमेसुखंनापिपुरंनकोशम् ।
नचाश्वगागादिवलंनतस्यनान्यस्यवांकस्यचिद्वाममास्ति ।४२
यथाघटीकुम्भकमण्डलुस्थमाकाशमेकवहुधाहिदृष्टम् ।
तथासुबाहुःसचकाशिपोऽहमन्येचदेहेषुशरीरभेदः ४३

इस प्रकार होने पर भी मेरी क्या हानि है ? क्योंकि वह देह नहीहै, स्वतन्त्र भावसे देहमें अवस्थान करताहूं,मेरे घटने-बढने की सम्भावना नही हैं, मुझे !नित्य प्रभूतसद्भावकी प्राप्ति है।न्यूनाधिक्य के कारण नीचाऊंचा भीहोताहूँ इसलिए ममताको छोड़करज्ञान प्राप्तकरना चाहिए, मैं तन्मात्रा में तथा सूक्ष्म तृतीयांश में अवस्थित हूँ मेरा देहमें भूत सद्भावयुक्तहैअतः सुख दुःख की सम्भावना कदापि नहीं है ? ।३५-३६। सुख दुःख का मन धर्म होने से मनमें ही रहते हैं, जब मैं वह मनभी नहींहूं तो मुझे सुखदुःख भी नही है ।३७। जब मैं अहङ्कार,मन,वुद्धिआदि मसे भी कुछ नहीं हूं तो मुझमें अन्तकरण से उत्पन्न पारक्य ही कैसे सम्भव है ?।३८।मैं शरीर नहीं,मन नहीं तथा इन दोनों से ही पृथक् हूँ. इसलिए सुख मनमें याशरीर में कहीं भी रहे, उसमें मेरा क्या?उसमें मेरी हानि या लाभ नहींहै । ३९। इसी शरीर केवड़ेभाईराज्यचाहते हैंऔर यदि यहशरीरपांच भौतिक है तो उसकी गुण-प्रवृत्तिमें मेरा क्याहोगा? बड़ा भाई अथवा मैं,दोनों ही देह से पृथक् वस्तुहै ।४०।जिनकेहस्तादि अंग,मांस, अस्थि और शिरा आदि कुछ नहीं उसको अश्व गज, रथ, कोष आदि मैंक्या आवश्यकता ?आत्माका इससे कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता ।४१। इस प्रकार मेरा कुछनहीं है, शत्रु मेरे अग्रज अथवा अन्यायपुरुष या शत्रुका भी सुख,दुःख नगर कोष

सैन्यादि नहीं है ।४२। जैसे घटी, कुम्भ और कमण्डलु के भेद से एक आकाश ही अनेक दिखाई देता है, वैसे ही आत्मा एक होकर भी काशीराज, सुबाहु तथा मेरे इस प्रकार के भेद से अनेक दिखाई देता है ।४३।

३० दत्तात्रय से अलर्क की योग जिज्ञासा

दत्तात्रेयंततोविप्रंप्रणिपत्यसपार्थिवः ।
प्रत्युवाचमहात्मनंप्रश्रयावनतोवचः ।१
सम्यक्प्रपश्यतोब्रह्मन्ममदुःखंनकिंचन ।
असम्यग्दर्शिनोमग्नाः सर्वदैवासुखार्णवे ।२
यस्मिन्यस्मिन्ममत्वेनबुद्धिपुंसः प्रजायते ।
ततस्तःसमादायदुःखान्यवप्रयच्छति ।३
मार्जारभक्षितेदुःख यादृशंगृहकुक्कुटे ।
नतादृङ्ममताशून्येकलविङ्केऽथमूषिके ।४
सोऽहंनदुःखीनसुखीयतोऽहप्रकृतेःपर ।
योभूताभिभवीभूतैः सुखदुःखात्माकोहिसः ।५
एवमेवन्नरव्याघ्रयथैतद्वयाहृतत्वया ।
ममेतिमूलंदुःखस्यनममेतिचनिर्वृतिः ।६
मत्प्रश्नादेवतेज्ञानमुत्पन्नमिदमुत्तमम् ।
ममेतिप्रत्ययोयेनक्षिप्ता शाल्मलितूलवत् ।७

जड़ बोला--इसके पश्चात् राजा ने विनय पूर्वक महर्षि दत्तात्रेयजीसे प्रणाम पूर्वक कहा।१।हे ब्रह्मन!मुझेभलेप्रकार दृष्टि प्राप्त होते से अब कुछ भी दुःख नहीं रहा है, क्योंकि असम्यक् दृष्टि वाले पुरुष ही दुःखसागर में डूबते हैं।२। मनुष्य की बुद्धि जिस-जिस विषयमें आसक्त होती है,उस-उस से ही दुख की उत्पत्तिहोती है।३।घरमें पाले हुए कुक्कुट के बिल्ली द्वारा भक्षित होने पर जो दुःख उदय होता है,वह दुःख,ममता न होने कारण

चूहे के भक्षित होने पर नहीं होता।४। मैं न सुखी हूँ न दुःखी हूं क्योंकि प्रकृति के परे हूँ क्योंकि संसार में आसक्ति वाले को ही सुख-दुःख होता है।५। दत्तात्रेयजी ने कहा—हे राजन ! तुम्हारा कथन सत्य है ममता ही दुःख का कारण और ममता ही उसे निवृत्ति करने वाली है।६।मेरे प्रश्न करते ही तुम्हारे हृदय मे सर्वोत्कृष्ट ज्ञान उदित हुआ है और उसज्ञान के बल से ही तुम्हारी ममता जैसे उड़ जाती है वैसे ही उड़ गई है।७।

अहमित्यंकुरौत्पन्नोममेतिस्कन्धवान्महान् ।
गृहक्षेत्रोच्चशाखश्चपुत्रदारादिपल्लवः ।
धनधान्यमहापत्रोनैककालप्रवर्धितः ।
पुण्यापुण्याग्रपुष्पश्चसुखदुःखमहाफलः।६
अपवर्गपथव्यापीमूढ़सम्पर्कसेचनः ।
विधित्साभृङ्गमालाढयोऽकृत्यंज्ञानमहातरुः।१०
संसाराध्वजपरिश्रान्तायेतच्छायांसमाश्रिताः ।
भ्रातिज्ञानसुखाधीनास्तेषामात्यन्तिकंकुतः।११
यैस्तुसत्सगपाषाणशितेनममतातरुः ।
छिन्नोविद्याकुठारेणतेगतास्तेनवर्त्मना।१२
प्राप्यब्रह्मवनंशीतनोरजस्कमकण्टकम् ।
प्राप्नुवन्तिपराप्राज्ञानिवृंतिवृंत्तिवर्जिताः।१-
भूतेन्द्रियमयस्थूलं नत्वराजन्नचाप्यहम् ।
नतन्मात्रमयाच्यंनैवान्तःकरणात्मकौ।१४

अहङ्कारी रूप अंकुर न हो अज्ञान रूपी महावृक्ष को उत्पन्न कर दिया घर और खेत उसकी ऊँची शाखाएं तथा स्त्री-पुत्रादि उसकी पत्तियां हैं।८। धन धान्य उसके बड़े पत्ते पुण्यापुण्य उसके पुष्प और दुःख उसके महाफल हैं।९। मोह से अभिभूत समान सम्बन्ध इसका थ बला है यह वृक्ष दिनोंदिन वृद्धि को प्राप्त हैं तथा मोक्ष मार्ग को ढक कर खड़ा है।१०। भ्रान्ति से जो सुख मान कर इस वृक्ष का आश्रय लेते हैं उन्हें किस प्रकार मोक्ष की प्राप्ति होगी ?। ११ । जो पुरुष विद्या रूपी कुठार को सत्सङ्ग रूपी पत्थर से तीक्ष्ण

करके, मके द्वारा ममता रूपी इस मह वृक्ष को काटने में समर्थ होते ।१८। वही उस मार्ग में ब्रह्म रूपी वन को प्राप्त हो सकते हैं, यह वन अत्यन्त शीतल, धूलि रहित तथा निष्कंटक है, इसमें पहुँचने से निवृत्ति युक्त परमबुद्धि का लाभ होता है ।१३। हे राजन्! तुम भी भूतेन्द्रिय युक्त या स्थूल नहीं हो, मैं भी नहीं हूँ, हम दोनों में कोई भी तन्मात्रिक या अन्ताकरण त्मक नहीं है ।१४।

कवापश्यामिराजेन्द्रप्रधानमिदमावयोः ।
यतः पहाह्रिक्षेत्रज्ञसंघातोहिगुणात्मकः ।१५
मशकोदुम्बरेषीकामुञ्जमत्स्याम्भसांयथा ।
एकत्वेऽपिपृथग्भावस्ताक्षेत्रात्मनोनृप ।१६
भगवंस्त्वत्प्रसादेनममाविभूतमुत्तमम् ।
ज्ञानं प्रधानचिच्छक्तिविवेककरमीदृशम् ।१७
किन्त्वत्राविषयाक्रान्तेस्गैर्य्यं वत्वनचेतसि ।
नचापिवेद्मिमुच्येयकथं प्रकृतिबन्धनात् ।१८
कथनभूयांभूयश्चकथंनिर्गुणतामियाम् ।
कथं चब्रह्मणैकत्वं व्रजयेयशाश्वतेनवै ।१९
तत्मेयोगंतथाब्रह्मन्प्रणतायाभियाचते ।
सम्तग्ब्रूहिमहाप्राज्ञसत्सङ्गोह्य पकृन्नृणाम् ।२०

हम मैं से किसी को भी तुम प्रधान से युक्त देखते हो ? क्योंकि क्षेत्रज्ञ पुरुष प्रकृति के परे तथा पंचभौतिक पदार्थगुणात्मकऔर प्रधानात्मकहै।१५ हे राजन्! मच्छर गूलर में सींक मूंज में और मछली जलमें एकीभावसे रहकर भी पृथक्-पृथक् हैइसीप्रकार क्षेत्रऔर आत्माकोभी पृथक्-पृथक समझो ।१६।अलर्क,बोला-हे प्रभो! मुझे आपके प्रसाद से विवेक उत्पन्न करने वाले ज्ञानकी प्राप्तहुईहै ।१७।परन्तु मेरा चित्तविषयोंमें आकर्षित है इसलिये वह स्थिर नहीं हो सकता,अतः प्रकृति के बन्धन सेकैसेमुक्तहो सकूंगा, यह नहीं जानता ।१८। पुनर्जन्म किस प्रकार बचा जाय! क्या करनेसे शाश्वत ब्रह्मसे एकी भावकी प्राप्ति हो ।१९।ऐसे योग का उपदेश

मेरे प्रति कीजिये मैं प्रार्थी होकर आपके समीप प्रार्थना करता हूं सत्संग से ही मनुष्य का उपकार सिद्ध हो सकता है ।२०।

३१—योगाध्याय

ज्ञानपूर्वोवियोगोयोऽज्ञानेनसहयोगिनः ।
सामुक्तिर्ब्रह्मचैक्यमननैक्यप्राकृतैर्गुणैः ॥१

योगेचशक्तिर्विदुषांयेनश्रेयःपरंभवेत् ।
मुक्तिर्योगःत्तथायोगःसम्यग्ज्ञानान्महीपते ।
सगदोषोद्भवंदुःखंममत्वासक्तचेतसाम् ॥२

तस्मात्सङ्गंप्रयत्नेनमुमुक्षुःसंत्यजेनरः ।
सङ्गाभावेममेत्यस्याःख्यातेर्हानिः प्रजायते ॥३

निर्ममत्वंमुखायैववैराग्याद्दोषदर्शनम् ।
ज्ञानादेवचवैराग्यंज्ञानंवैराग्यपूर्वकम् ॥४

तद्गृहंयत्रवसतिस्तद्भोज्यंयेनजीवित ।
यन्मुक्तयेतदेवोक्तंज्ञानमज्ञानमन्यथा ॥५

उपभोगेनपुण्यानामपुण्यानाचपार्थिव ।
कर्त्तव्यमितिनित्यानामकामकरणत्तथा ॥६

असंचयादपूर्वस्यक्षायात्वपूर्वार्चितस्यचः ।
कर्मणोवन्धमाप्नोतिशरीरंचपुनः पुनः ॥७

कर्मणामोक्षमाप्नोतिवैपरीत्येनतस्तु ।
एतत्ते कथितंज्ञानंयोगचेमंनिबोधमे ।
यंप्राप्यब्रह्मणोयोगीशाश्वतान्नाध्यतांव्रजेत् ॥८

दत्तात्रेय बोले-योनमें आरूढ़ पुरुषोंका ज्ञान प्राप्तिके पश्चात्अज्ञान सेजो वियोग होता है वही मोक्ष कहा जाता है तथा प्राकृतिक गुणोंसे पृथक्ता ही ब्रह्मकी एकता कही गई है । १ । हे राजन् ! ममता में आसक्त

चित्त से दुःख, दुखसे सम्यक ज्ञान् ज्ञानसेयोग और योगसे मोक्ष की प्राप्ति होती है ।२। इसलिए मुमुक्षु को संग का त्याग करना चाहिये,विषयों से आसक्ति दूर होने ही यह मेरा है, ऐसा ज्ञान नहीं रहता ।३। ममता के त्याग में ही सुख है, वैराग्य होने पर ही संसार के सब दोष स्पष्ट हृदयं-गय होते हैं, जैसे ज्ञान से वैराग्य होता है वैसे ही वैराग्य से ज्ञान की उत्पत्ति होती है ।४। जहाँ रहें वहीं जिससे जीवन धारण हो वहीं भोज्य, जिससे मोक्ष मिले वही ज्ञान है तथा इसके विपरीत को अज्ञान कहते हैं ।५। पुण्यापुण्य के उपभोग से कामना- रपित नित्य कर्भ करने पर ।६ः पूर्वोपार्जित कर्मों के क्षीण होने पर और नवीन कर्मों का संचय न होने पर देह के वन्धन को प्राप्त नहीं होता, हे राजन्! तुमसे जो कहा है, वही योग है, इसे पाकर योगीजन शाश्वत ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य किसी का अश्रय नहीं लेते ।७-८।

प्रागेवात्मात्मनाजेयोगिनांसहिदुर्जयः ।
कुर्वीततज्जयेयत्नंतस्योपायंश्रृणुष्वमे ।।९
प्राणायामैर्दहेद्दोषान्धारणाभिश्चकिल्विषम् ।
प्रत्याहारेणविषतान्ध्यानेनानीश्वरान्गुणान् ।।१०
यणापर्वतधातूनांध्मातानांदह्यतेमलम् ।
तथेन्द्रियकृतादोषादह्यन्तेप्राणनिग्रहात् ।।११
प्रथमंशाघनंकुर्यात्प्राणायामस्ययोगवित् ।
प्राणापाननिरोधस्तुप्राणायामउदाहृतः ।।१२
लघुमध्योत्तरीयाख्यःप्राणायामस्त्रिधीदितः ।
तस्यप्रमाणंवक्ष्यामितदलर्कश्रृणुष्वमे ।।१३
लधुर्द्वादशमात्रस्तुद्विगुणःसतुमध्यमः ।
त्रिगुणाभिस्तुमात्राभिरुत्तमःपरिकीर्त्तितः ।।१४

सर्व प्रथम आत्मा से आत्मा को जीते क्योंकि आत्मा ही योगियों के लिए कठिनता से जीता जाने वाला है, आत्मा को किस प्रकार जीतना चाहिए,वह भी कहता हूँ ।९। प्राणायाम से कोषों को, धारणा से पापों को, प्रत्याहार से विषयो को ओर ध्यान से अनीश्वर गुणों को भस्म करे ।१०। जैसे अग्नि में पड़ कर सब धातु दोष-रहित होती हैं,

वैसे ही प्राणवायु के निग्रह से इन्द्रियों के सब दोप नष्ट होते हैं ।११। योगज्ञाता प्रम प्राणायाम का साधन करे, प्राणापान के निरोध को प्राणायाम कहते हैं ।१२। प्राणायाम के तीन प्रकार हैं— लघु, मध्यम और उत्तरीय, अब इनका प्रमाण कहता हूँ ।१३। लघु प्राणायाम द्वादश मात्रा वाला, मध्यम प्राणायाम उससे दुगुना औदे उत्तरीय उससे तिगुना मात्रा में कहा गया है ।१४।

निमेषोन्मेषणेमात्राकालोलघ्वक्षरस्तथा ।
प्रथमेनजयेत्स्वेदमध्यमेतचवेपथुम् ।
विषादंहितृतीयेनजयेद्दोषाननुक्रमात् ॥१६
मृदुत्वसेव्यमानास्तुसिंहशार्दूलकुञ्जराः ॥१७
वश्यमर्त्ययथेच्छातोनागनयनिहस्तिपः ।
तथवयोगीछन्देनप्राणंनयतिसाधितम् ॥१८
यथाहिसाधितःसिंहीमृगान्हंतिनमानवान् ।
तद्विन्निःपिद्धपवनःकिल्विषनन्नृणांतनुम् ॥१६
तस्माद्युक्तःसदायोगीप्राणातामपरोभवेत् ।
श्रूयतांमुक्तिफलदंतस्यावस्थाचतुष्टयम् ॥२०
ध्वस्तिःप्राप्तिस्तथासंचित्प्रसादश्चमहीपते ॥
स्वरूपश्रृणचैतेषांकथ्यमानमनुक्रमात् ॥२१

निमेष और उन्मेप का समय हीमात्रा है ऐसी बारह मात्रा होने पर लघु प्राणायाम होता है ।१५। पहले प्राणायाम होता हैं ।१५। पहले प्राणायाम से स्वेद, दूसरे से कम्प और तीसरे ने विपयादि दोषों को जीते ।१६। जैसे सेवा के द्वारा सिंह, व्याघ्र और हाथी भी कोमल स्वभाव हो जाहे हैं, वैसे ही प्राणायाम द्वारा योगियों को प्राण को वश करने की सामर्थ्यप्राप्त होती है १७। जैसे हाथी का स्वामी मत हाथी को व करके इच्छानुसार चलाता है, वैसे ही योगिजन प्राण के द्वारा ही इच्छानुसार कार्य करने में समर्थ होते हैं ।१८। जैसे पाला हुआ सिंह मृगों को मारता है, मनुष्यादि की हिंसा नहीं करता, वैसे साधिक प्राणवायु के द्वारा पाप नष्ट होते हैं, देह नष्ट नहीं होता ।१६।

इसलिये योगियों को प्राणायाम परायण होना चाहिये प्राणायाम की अवस्था चार प्रकार की है जिससे मोक्षफल की प्राप्ति होमी है अब इसका वर्णन करता हूँ ।२०। हे राजन्! प्राणायाम के ध्वस्ति प्राप्ति संवित् और प्रसाद यह चार भेद हैं। अब इनके स्वरूप को क्रमशः बताता हूं ।२१।

कर्म्मणामिष्टदुष्टानांजायतेफलसंक्षयः ।
चेतसोऽपकषायत्वंयत्रसाध्वस्तिरुच्यते ।२२।
ऐहिकामुष्मिकान्कामांल्लोभमोहात्मकान्स्वयम् ।
निरुध्यास्तेसदायोगीप्राप्तिःसासार्वकालिकी ।२३।
अतीतानागतानर्थान्विप्रकृष्टतिरोहितान् ।
विजानातीन्दुसूर्य्यर्क्षग्रहाणांज्ञानसम्पदा ।२४।
तुल्यप्रभावस्तुयदायोगीप्राप्नोतिसंविदम् ।
तदासम्विदितिख्याताप्राणायामस्यासास्थितिः ।२५।
यान्तिप्रसादयेनास्यमनःपञ्चचवायवः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्चसप्रसादइतिस्मृतः ।२६।
शृणुष्वचमहीपालप्राणायामस्यलक्षणम् ।
युञ्जतश्चसदायोगंसादृग्विहितमासनम् ।२७।
पद्ममर्द्धासनंचपितथास्वस्तिकसासनम् ।
आस्थाययोगयुञ्जीतकृत्वाचप्रणवंहृदि ।२८।

ध्वस्ति उसे कहते हैं जिससे दूषित अदूषित कर्मों का फल क्षीण हो और चित्त की मलीनता नष्ट हो ।२२। प्राप्ति वह अवस्था कही गयी है जिसमें योगीजन लोभ मोहात्मक समस्त कामको स्वयं ही निरुद्धकरते हैं ।२३।जिस अवस्थामें चन्द्रमा सूर्य ग्रह और नक्षत्र के समान ज्ञान शक्तिको प्राप्त हुएयोगीजन ।२४। अतीत अनागत और तिरोहित इनसब विषयोंको जानलेते है वह अवस्था सवित् कही गईहै ।२५। जिस व्यवस्था द्वारा पञ्चवायु इन्द्रिय और उसके विषयों से योगीका चित्त शुद्ध होजाता है वह व्यवस्था ही प्रसाद कही जाती है ।२६। हे राजन्! अब प्राणायाम के लक्षण और योगारम्भ में जिस आसन का अनुष्ठानउचित है उसे सुनो ।२७। पद्मासन अर्द्धासन स्वस्तिकासन इत्यादि का

अवलम्बन करके हृदय में प्रणव का जप करता हुआ योगानुष्ठान में लगे ।२८

समःसमासनोभूत्वारंहृत्यचरणाबुभौ ।
संवृतास्यस्तथैवोरूसम्यग्विष्टभ्यचाग्रतः ।२९।
पार्ष्णिभ्यांलिङ्गवृषणावस्पृशन्प्रथतःस्थितः ।
किंचिदुन्नायितशिर दन्तैर्दन्तान्नसंस्पृशेत् ।३०।
सपश्यन्नसिकाग्रं स्वंदिशश्चानवलोकयन् ।
रजसातमसोवृत्तिसत्वेनरजसस्तथा ।३१।
संश्छाद्यनिर्मलेसत्वेस्थितोयुञ्जीतयोगवित् ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थभ्यःप्राजादीन्मनएवच ।३२।
निगृह्यसमवायेनप्रत्याहारमुपक्रमेत् ।
यस्तुप्रन्याहरेत्कामान्सर्वाङ्गानीवकच्छपः ।३३।
सदात्मरतिरेकस्थःपश्यस्यात्मानमात्मनि ।
सवाह्याभ्यन्तरं शौचंनिष्पाद्याकण्ठनाभितः ।३४।
पूरयित्वाबुधोदेहप्रत्याहारमुपक्रमेत् ।
प्राणायामादशद्धोचधारणाभिधीयते ।३५।

सरल चित से सब आसन में बैठें दोनों पावों को सकोड़ कर मुख बंद करे तथा अग्र भाग में दोनों उरु स्तब्ध करे ।२९।तथासंयुक्त मन से इस प्रकार बैठेंजिससे उपस्थ और अण्ड कोष का हाथ से स्पर्श नहो शिरकुछ ऊपर की ओर उठावे तथा दाँत से दाँत का स्पर्श न होने दे ।३०।अपनी नासिका के अग्रभागमें दृष्टिरखे दूसरी ओर न देखे। इसी अवस्थामें रजोगुणसे तमोगुण और सत्वगुण से रजोगुण को । नष्ट करके केवल निर्मल तत्वमें अवस्थान करता हुआ योगाभ्यास करे इन्द्रियके विषयसेमनप्राणादि को।३२।निवृत्त करके जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है वैसे ही प्रत्याहार में प्रवृत्त हो ।३३।इस प्रकार आत्मामें आशक्त रहनेपर आत्मा के द्वाराही आत्माका प्रदर्शन होताहै कण्ठसे नाभि तक बाह्वाभ्यन्तरशुद्धि

करता हुआ ।३४। देहको परिपूर्ण कर प्रत्याहारका साधन करे । प्राणा-याम के दश प्रकार और धारणा के दो प्रकार कहे गये हैं ।३५।

द्वे धारणेस्मृ योगेयोगिभिस्तत्वदृष्टिभिः ।
तथावैयोगयुक्तस्ययोगिनोनियतात्मनः ॥३६
सर्वेदोषाःप्रणश्यन्तिस्वस्थश्चैवोपजायते ।
वीक्षतेचपरंब्रह्मप्राकृतांश्चगुणान्पृथक् ॥३७
व्योमादिपरमाणूंश्चतथात्मानमकल्मषम् ।
इत्थयोगीयथाहारःप्राणायामपरायणः ॥३८
जितां जतांशनैर्भूमिमारोहेतयथागृहम् ।
दोषव्याधीस्तथामोहमाक्रान्ताभूरिनिर्जिता ॥३९
विवर्धयतिनारोहेत्तस्माद्भूमिमनिर्जिताम् ।
प्राणानामुपसंरोधात्प्राणायामइतिस्मृतः ॥४०

तत्वदर्शी योगीजनों ने दो प्रकार ही धारणा वतायी हैं नियतात्मा होकर साधन करने पर । ३६ । योगी के सभी दोषों का शमन होता है और शान्ति मिलती है तथा सभी प्राकृत गुण और परब्रह्म का पृथक् रूप से दर्शन प्राप्त होता है ।३७। तथा आकाशादि परमाणु एवं विशुद्ध आत्मा से साक्षात्कार होता है, इस प्रकार नियताहार करता हुआ योगी प्राणायाम-परायण हो । ३८ । धीरे-धीरे योगभूमि की जीत कर घर के समान उसी में आरूढ़ रहे यदि भूमि न जीती जाय तो उससे कामादि व्याधियों की । ३९ । और मोह की वृद्धि होती है, इसलिए विना जीती हुई भूमि पर आरूढ़ न हो, जिससे पञ्चप्राण संयत हों, वही प्राणायाम है । ४० ।

धारणेत्युच्यतेचेयंधार्य्यतेयन्मनोयया ।
शब्दादिभ्यःप्रवृत्तानियदक्षाणियतात्मभिः ॥४१
प्रत्याह्रियन्तेयोगेनप्रत्याहारस्ततःस्मृत ।
उपायश्चत्रकथितोयोगिभिःपरमर्पिभिः । ४२
येनव्याध्यादयोदोषानजायन्तेहियोगिनः ।
यथातोयार्थिनस्तोयंयन्त्रनालादिभिःशनैः ॥४३

आपिवेयुस्तथावायु ंपिवेद्योगीजितश्रमः ।
प्राङ् नाभ्यांहृदयेचाथतृतीयेचथोरसि ।।४४
कण्ठमुखेनासिकाग्रे नेत्रभ्रूमध्यमूर्द्ध सु ।
किञ्चतस्मात्परस्मिश्चधारणापरमास्मृता ।।४५
दशैताधारणाःप्राप्यप्राप्नोत्यक्षरसाम्यताम् ।
नाध्मात क्षुधितःश्रान्तोनचश्याकुलचेतनः । ४६
युञ्जीतयोगराजेन्द्रयोगीसिद्धयर्थमादृतः ।
नातिशीतेनजोष्णेवैमद्वन्देनानिलात्मके ।।४७
कालेऽष्वेतेषुयुञ्जातनयोगध्यानतत्परः ।
सशब्दान्निजलाभ्याशेजीर्णगोष्ठे चतुष्पथे ।।४८
शुष्कपर्णंचयेनद्याँश्मशानेससरीसृपे ।
सभयेकूपनीरेवाचैत्यवल्मीकसंचये ।।४९
देशेष्वतेषुतत्वज्ञोयोगाभ्यासंविवर्जयेत् ।
सत्वस्यानुपपत्तौचदेशकालविवर्जयेत् ।।५०

जिससे मन का धारण हो, वह धारणा है तथा जिस अवस्था में इन्द्रियों को अपने-अपने विषय से नियतात्मा पुरुष ।४१। प्रत्याहरण करते हैं, वही त्याहार है, योग सिद्ध ऋषियों ने इस विषय से जो उपाय कहा है ।४२। उससे योगी के देह में व्याधियों का आक्रमण नहीं हो सकता । पिपासु जैसे पात्रादि से धीरे-धीरे जल पीते हैं ।४३। वैसे ही श्रम को जीत कर योगीजन धीरे-धीरे वायु का पान करते हैं, पहिले नाभि में, फिर हृदय में, फिर वक्ष स्थल में ।४४। फिर कण्ठ वदन, नासाग्र, नेत्र भौं, ऊर्ध्व प्रदेष और अन्त में परब्रह्म में धारणा करनी उचित है ।४५। इस दश प्रकार से धारणा का निर्देश हुआ है, इसकी सिद्धि से ब्रह्म सारूप्य की प्राप्ति होती हैं, योगी जन सिद्धि प्राप्त करने के लिए अति भाषण,क्षुधा, श्रम एव चित्तकी चञ्चलता को ।४६। हटाकर प्रयत्न पूर्वक योगाभ्यास करते हैं, अति शीत, अति ग्रीष्म या अत्यन्त वायु चलता हो उस समय ।४७। ध्यान में तत्पर होकर योगाध्यास करनेका निषेध हैं, शब्द युक्त स्थान, अग्नि और जल के समीप, प्राचीन गोशाला या

चौराहा ।४८। शुष्क पत्रोंसे युक्त स्थान नदी तट, श्मशान, सर्पादि वाले स्थान, कुएं के किनारे अश्व जहाँ सात्विक पदार्थ उपलब्ध न हों, उन सब स्थानों का परित्याग करे ।४९-५०।

नासतोदशर्नयोगेतस्मात्तत्परिवर्जयेत् ।
दोषानेताननादृत्यमूडत्वाद्योयुनक्तिवै ।।५१
विघ्नायतस्यवैदोषाजायन्तेतन्निवोधमे ।
वाधिर्य्यंजडतालोपःस्मृतेर्मूकत्वामन्धता ।।५२
ज्वरश्चजायतेसस्रस्तत्तज्ज्ञानयोगिनः ।
प्रमादाकागिनोदोषायद्यतेस्युश्चिकित्सितम् ।।५३
तेषांनाशायकर्त्तव्यंयोगिनांतन्निवोधमे ।
स्निग्धांयवागूमत्युष्णांभुक्त्वातत्रैवधारयेम् ।।५४
वातगुल्मप्रशान्त्यथमुदावर्त्ततथोदरे ।
यावागूंवापिपवनंवायुग्रन्थिप्रतिक्षिपेत् ।।५५
यद्वत्कपेमहाशैलंस्थिरमनसिधारयेत् ।
विघातेवचमीवाचवाधिर्य्येश्रवणेन्द्रियम् ।।५६
यथैवाम्रफलंध्यायेत्तृष्णार्तोरसनेन्द्रियम् ।
यस्मिन्यस्मिन्नुजादेहेतस्मिंस्तदुरकारिणीम् ।।५७

असत् बातों को न देखे, जो मूर्खतासे इन सब बातोंका विचार न कर के योगाभ्यास करता है ।५१। उसके कार्यमें सब दोष उत्पन्न होकर विघ्न रूप हो जाते हैं, उसे वधिरता, जड़ता, मूकता, अन्धता, स्मृति लोप ।५२। या ज्वार की उत्पत्ति होती है, यदि प्रमाद वस यह दोष उत्पन्न हो जाँय तो उनकी शान्ति के लिये जो चिकित्सा करनी चाहिए ।५३। उसे भी सुनो, भले प्रकार पकायी हुई खिचड़ी स्निग्ध करके भोजन करे ।५४। वात गुल्म, अफरा अथवा उदर रोगों के शमनार्थ खिचड़ी अवश्य खाय, इससे वायु रोग तथा वायु ग्रंथि रोग भी दूर हो जाता है ।५५। कम्प के उत्पन्न होने पर मन अत्यन्त भारी पर्वत का धारण करें, वाणी के विलुप्त होने पर वाक्य धारण करे और श्रवण शक्ति नष्ट होजायतो ।५६। जैसे प्यासा मनुष्य जिभ्य से हीं लाभ चिंतन

करता है, वैसे ही श्रवणेन्द्रिय की धारणा करनी चाहिए इसी प्रकार जिस-जिस अंग में जो व्याधि हो जाय उस-उस अङ्ग का उपकार करने वाली क्रिया को करे ।५७।

धारयेद्धारथमुष्णेशीतांशीतेचदाहिनीम् ।
कीलंशिरसिमंस्थाप्यकाष्ठंकाष्ठेनताडयेम् ।।५८
लुप्तस्मृतेस्मृतिःमद्योयोगिनस्तेनजायत् ।
द्यावापृथिव्यौवाव्यग्नीव्यापिनावपिधारयेत् ।।५९
अमावृशात्सप्वजाद्वावाथास्त्विर्तिचिकित्सितम् ।
अमानुषंसत्वमन्तर्योगिनंप्रशेविद्यदि ।६०
वायत्वग्निधारणेनैनदेहसंस्थंविनिर्दहेत् ।
एवंसर्वात्मनारक्षाकार्य्यंतोगविदानृपः ।।६१
धर्मार्थकाममोक्षाणांशरीरंसाधनंयतः ।
प्रवृत्तिलक्षणाख्यानाद्गोगिनोविस्मयात्तया ।
विज्ञानविलयंयातितस्माद्गोप्याःप्रवृत्तयः ।।६२
अलौल्यमारोग्यमनिष्ठुरत्वंगन्धशुभीसूत्रपुरीषमत्पम् ।
कान्तिःप्रसादाःस्वरसौम्यताचयोगबृत्तोःप्रथमंहिचिह्नम् ।।६३
अनुरागंजनोय तिपरोक्षेगुणकीर्त्तनम् ।
नविभ्यतिचसःवानिसिद्धेर्लक्षणणमूत्तमम् ।।६४
शीतोष्णादिभिरत्युग्रैयंयबाधानविद्यते ।
नभोतिमेतिचान्येभ्यस्तस्यसिद्धिरूपस्थिता ।।६५

उष्ण में शीतल ओर शीतल में उष्ण धारणा करे शिर में सूक्ष्मकाल को स्थितकर काष्ठसे उसे ठोके तो उससे ।५८। रोगीकी लुप्तस्मृति तुरन्त उदित हो जातीहै अशवास्मृति नष्टहोने पर आकाश,पृथिवी,वायुऔरअग्नि की धारणा करनीचाहिए ।५९।अमानुष सत्व से उत्पन्न विघ्नोंमेंइसप्रकार उपचारकरे योगियोंकेहृदय में अमानुष सत्वके प्रवेशकरने पर वहाँ ।६०। उसे वायु और अग्निकी धारणासे जावे इस प्रकार सर्वांतःकरण से अपने देह की रक्षा करना योगज्ञानियों काकर्तव्यहै।६१।क्योंकिधर्म, अर्थ, काम

मोक्ष की प्राप्ति का मूल देह ही है, प्रवृत्ति रूप वर्णन और विस्मय से ही योगी के विज्ञान का नाश होता है, इसलिए प्रवृत्ति को गुप्त ही रखे ।६२। अचंचलता, आरोग्य, अनिष्ठुरता, देह में सुगन्धित का संचार मूत्र-पुरीष की न्यूनता, कान्ति, प्रसाद और स्वर माधुर्य यह सब योग प्रवृत्ति के प्राथमिक लक्षण हैं ।६३। जिस अवस्था के प्राप्त होने पर मनुष्य पीछे से उसका गुणगान करें और सब जीव जिससे निर्भय रहें, वही सिद्धि का श्रेष्ठ लक्षण है ।६४। जिसके लिए अत्युग्र शीत उष्णता आदि बाधक न हो सकें और जिस किसी अन्य को भय न हो, उसी को सिद्धि प्राप्त हुई समझो ।६५।

३२—योगसिद्धि

उपसर्गाःप्रवर्तन्तेदृष्टेह्यात्मनियोगिनः ।
येतांस्तेसंप्रवक्ष्यामिसमासेननिबोधमे ।।१
काम्याःक्रियास्तथाकामान्मानुषानभिवाञ्छति ।
स्त्रियोदानफलंविद्यांमयाँकुप्यंधनंदिवम् ।।२
देवत्वममरेशत्वंरसायनवयःक्रियाम् ।
मरुत्प्रपतनयज्ञंजलाग्न्यावेशनतथा ।।३
श्राद्धानांसर्वदानानांफलानिनियमाँस्तथा ।
तथोपवासःत्पूर्त्ताच्चदेवताभ्यर्चनादपि ।।४
तेभ्यस्तेभ्यश्चकर्मभ्यउपसृष्टोऽभिवाञ्छति ।
चित्तमित्थवर्तंप्रानंयत्नाद्योगीनिवर्तयेत् ।।५
ब्रह्मसङ्गिमनःकुर्वन्नुपसर्गात्प्रमुच्यते ।
उसर्गैर्जितैरेभिरुपसर्गैस्ततःपुनः ।।६

दत्तात्रेय बोले आत्म दर्शन होने पर जो उपसर्ग योगियों को उत्पन्न हो जाते हैं, उन्हें संक्षिप्त रूप से कहता हूँ ।१। उस समय विभिन्न प्रकार की काम्य क्रिया और अनेक प्रकार के भोगों के उपभोग की इच्छा होती है, स्त्री, दान,

फल, विद्या, माया, कुए का जल, धन, स्वर्ग ।२। देवत्व, अमरत्व रसायन, वायु युक्त स्थान में कूदना, तज्ञ, जल तथा अग्निमें प्रविष्ट होना।३। सब श्राद्धों और दानों का फल एवं नियम इत्यादि में योगी कीं इच्छा का उदय होता है, उस समय उपवास, पूर्तादि, देव-पूजन । ४ । आदि उस उस कर्म से जब जब युक्त होने की इच्छा हो,तब-तब उस-उस विषय से यत्न पूर्वक निवृत्ति प्राप्त करे ।"। इस प्रकार विषयों से निवृत्ति लाभ करके ही ब्रह्म साक्षी करते हुए उपसर्ग से बचा जा सकता है ।६।

योगिन संप्रवर्तन्तेसात्वराजसतामसाः ।
प्रातिभःश्रव्रणोदैवोभ्रमावर्त्तौतथापरौ ।।७
पञ्चैतेयोगिनांयोगविघ्न ायकटुकोदयाः ।
वेदार्थाःकाव्यशास्त्रार्थाविद्याशिल्पान्यशेषतः ।।८
प्रतिभान्तियदस्येतिप्रातिभःसतुयोगिनः ।
शब्दार्थानखिलात्वेत्तिशब्दंगृह्णातिचैवयत् ।।९
योजनानांससस्रेभ्यःश्रावणःसोऽभिधीयते ।
समन्ताद्वीक्षतेचाष्टोसयदादेवयोनयः ।।१०
उपसर्गंतमप्याहुर्दैवमुन्मत्तावद्बुधाः ।
भ्राम्यतेयन्निरालम्बमनोर्दोषेणयोगिनः ।।११
समस्ताचारविभ्रंशाद्भ्रमासपरिकीर्तितः ।
आवर्तइवतोयस्यज्ञानावर्त्तोयदाकुलः । १२
नाशयेच्चित्तमावर्तउपसर्ग सउच्यते ।
एतैर्नाशितयोगास्तुसकलादेवयोनयः ।।१३
उपसर्गैर्महाघोरैरावर्तन्तेपुनःपुनः ।
प्रावत्यकम्बलशुक्लयोगीतस्मान्मनोमयम् ।।१४

इन सब उपसर्गों पर विजय कर लेने पर योगी के समक्ष सात्विक, राजसिक और तामसिक भेद से अपरापर विघ्न आक्रमण करते हैं उनमें प्रातिभ, श्रावण, दैत्य, आवर्त्त ।७। यह उपसर्ग भयङ्कर रूप से योग में विघ्न उपस्थित करने के लिए प्रस्तुत होते हैं, जिससे वेदार्थ, काव्य, शास्त्रार्थ, विद्या और शिल्प

का ।८। योगी के मन में प्रतिभात हो वही प्रतिमा ही है जिसने सम्पूर्ण शब्द का अर्थ ज्ञात हो जाय ।६। हजार-हजार योजन दूर का शब्द भी सुनाई पड़े वही श्रावणी है जिसके द्वारा देवता के समान हुआ योगी उन्मत्त के समान आठों दिशाओं को देखता है ।१०। उसे पंडितोंने दैव उपसर्ग कहा है जिससे योगीका चित्त आचार भ्रष्टता और मनके दूषित होने से निराश्रय रूप से भ्रमण करता है ।११।वही 'भ्रम' कहा जाता है जिसके प्रभाव से ज्ञानावर्त के समान आकुल होकर ।१२। चित्त को विनिष्ट करता है वही आवर्त उपसर्ग कहा गया है इन सब उपसर्गों के प्रभाव से योगी सम्पूर्ण देवयोनि ।१३। तथा योग से भ्रष्ट होकर संसार चक्रमें वारंवार घूमते हैं इसलिएसबके निर्मितश्वेतकम्वलसेआवृतहो।'४

शरीरमडलेदृष्ट्वागुरुज्ञानंतयोहियत् ।
ज्ञानपूर्वोपियोयोगोज्ञातव्योगैविपश्चिता ॥१५
चिन्तयेत्परमंब्रह्मकृत्वातत्प्रवणंमनः ।
योगयुक्तःसदायोगोलघ्वाहारोजितेन्द्रियः ॥१६
सूक्ष्मास्तुधारणाःसप्तभूराद्यामूर्ध्निधारयेत् ।
धरित्रींधारद्योगीतत्सौक्ष्मंप्रतिपद्यते ॥१७
आत्मानंमन्यतेचीर्वीतद्गंधंचजहातिसः ।
तथैवाप्सुरसंसूक्ष्मंतद्वद्रुपंचतेजसि ॥१८
स्पर्शवायौतथाद्वद्विभ्रतस्यधारणम् ।
व्योम्तःसूक्ष्मांवृत्तिचशब्दंतद्वज्जहातिसः ॥१६
मनसासर्वभूतानांमनस्याविशतेयदा ।
मानसीं धापणांविभ्रन्मनःसूक्ष्मंचजायते ॥२०
तद्वद्बुद्धिमशेषाणांसत्वानामेत्ययोगवित् ।
परित्यजतिसम्प्राप्यबुद्धिसौक्ष्म्ममनुसत्तमम् ॥२१

शरीर मंडल में गुरु ज्ञान का दर्शन करे क्योंकि ज्ञानसे योग करना सीखना चाहिए ।१५। मनमें परब्रह्म का चिंतन और उन्हींका ध्यान करे निरन्तर जितेन्द्रिय अल्प भोजी तथायोग युक्तहोकर।१६।मस्तकमेंभूरादि

सात प्रकारकी सूक्ष्म धारणा धारण करनेसे उसे उसका सूक्ष्म ज्ञात होगा ।१७। इस प्रकार आत्म चिंतन करने से पृथिवी के बन्धन को काटने में समर्थ होगा इसी प्रकार जल में सूक्ष्म रस तेजमें रूप ।१८। वायुमें स्पर्श और आकाशमें सूक्ष्मा प्रवृत्ति तथा शब्द धारणपूर्वक परित्यागकरे।१९। मनके द्वारा समस्त भूतके मनमें प्रवेशकरके मानसी धारणा करने से ही सूक्ष्म मन उत्पन्न होताहै ।२०। इस प्रकार योगी समस्त भूतकी बुद्धि में प्रवेश करके अनुत्तमा सूक्ष्म बुद्धिरूपका लाभ करके उसे छोड़ताहै ।२१।

परित्यजतिसूक्ष्माणिसप्तत्वेतानियोगवित् ।
सम्यग्विज्ञाययोऽलर्कतस्यावृत्तिर्नविद्यते ।।२२
एतासांधारणानातुसप्तानांसौक्ष्म्यमात्मवान् ।
दृष्टत्राहृष्ट्वाततःसिद्धित्पक्त्वात्यक्त्वापरांव्रजेत् ।।२३
यस्मिन्यस्मिश्चकुरुतेभूतेराग महीपते ।
तस्मिस्तस्मिन्समासक्तिसंप्राप्यसविनश्यति ।।२४
तस्माद्विदित्वासूक्ष्माणिसंसक्तानिपरस्परम् ।
परित्यजतियोदेहीसपरप्राप्नुयात्पदम् ।।२५
एतान्येवतुसंधायसप्तसूक्ष्माणिपार्थिव ।
भूतादीनांविनाशोऽत्रसद्भावज्ञस्यमुक्तये ।।२६
गन्धादिषुसमासक्तिसम्प्राप्यसविनयश्यति ।
पुनरावर्त्ततेभूपसब्रह्मापरमानुपम् ।।२७
सप्तैताधारणायोगासमतीत्ययदिच्छति ।
तस्मिस्तस्मिंल्लयंसूक्ष्मेभूतेयातिनेश्वर ।।२८
देवानामसुराणांवागन्धर्वोरगरक्षसाम् ।
देहेषुलयमायातिसंग नाप्नोतिचक्वचित् ।।२९

जो योगी सात प्रकार इन सूक्ष्म भावों को जानकर छोड़ता है उसे पुनर्जन्म नहीं लेना होताहै।२२।आत्मवान् योगी सातप्रकारकी धारणाओं के सूक्ष्मत्वको बारम्बार देखकर बारम्बार सिद्धिका विसर्जन करता हुआ परमगतिपाकर।२३।जिसजिसभूतमें अनुरागी होताहै उसी-उसीमेंआशक्ति

को प्राप्त होता हुआ विनष्ट हो जाता है ।२४। इसलिए परस्पर सशक्त भूतोंको जानकर जो उनका परित्याग करदेता है उसी को परमपद की प्राप्ति होती है ।२५। यह सात प्रकार के सूक्ष्म संधान पूर्वक भूतादि में राग छोड़ कर ही सद्भाव को जानकर मोक्ष करता है ।२६। हे भूपते ! गन्धादि में आशक्ति ही नाश का कारण है उसीसे उसका संसार चक्र में पुनरावर्त्तन होता है ।२७। योगी इन सात प्रकार की धारणाओ का अतिक्रमण करके उस-उस भूत में लीन होजाता है और देव, दानव, गन्धर्व, नाग राक्षस आदिके देहमें लीन होकर भी किसीमें आशक्त नहीं होता।२८-२९।

अणिमालधिमाचैवमहिमाप्राप्तरेवच ।
प्राकाम्यंच्चतथेशित्वं वशित्वंचतथापरम् ।।३०
यत्रकामवसायित्वगुण नेतांस्तथैश्वरान् ।
प्राप्नोत्यष्टौनरव्याघ्रपरनिर्वाणसूचकान् ।।३१
सूक्ष्मात्सूक्ष्मतमोऽणीयाञ्छीघ्रत्वंलधिमागुणः ।
महिमाशेषपूज्यत्वात्प्राप्तिर्नाप्राप्यमस्यत् ।।३२
प्राकाम्यमस्यव्यापित्वादीशित्वचेश्वरोयतः ।
वशित्वाद्वशिमानामयोगिनःसप्तमोगुणः ।।३३
यत्रेच्छास्थामप्युक्तंयत्रकामावसायिता ।
मेश्वर्यंकारणरेभिर्योगिन प्रोक्तमष्टधा ।।३४
मुक्तिसंसूचकंभपपरंनिर्वाणमात्मनः ।
ततोनजायतेनेवद्धंतेनविनश्यति ।। ३५

वह अणित, लघिमा महिमा, प्राप्ति प्रकाम्य ईशित्व वशित्व और काम वसायित्व इस आठ प्रकार के निर्वाण प्रदायक ऐश्वर्यात्मक गुणों को प्राप्त करता है।३०-३१।जिसके द्वारा सूक्ष्मसे भी सूक्ष्म होसके वह अणिमा है, जिसके द्वारा सब कार्योंमें शीघ्रता उत्पन्न हो सके वह लघिमा है जिसके द्वारासब का पूजनीय होसके वह महिता है जिसके द्वारा समस्त इच्छितकी प्राप्ति होसके वह प्राप्तिहै।३२।जिसके द्वारा वह व्यापकशक्ति उत्पन्नहोसके वह प्राकाम्यहै जिसकेद्वारा ईश्वरकी प्राप्ति हो वह ईशित्व है जिसकेंद्वारा

सब वशीभूत हो सके, वह वशित्व है यह वशित्व ही योगियों का सातवाँ गुण है ।३३। जिसके द्वारा स्वेच्छानुसार गमन कर सके और स्वेच्छानु-सार कार्य सिद्ध हो सके वह कामावसायित्वहै इन आठ प्रकार के गुणोंसे ईश्वर के सब कार्य करने में समर्थ हो जाता है।३४। यह सब गु मोक्ष के सूचक हैं इनके मिलने पर मुक्तिकाल उपस्थित समझे फिर इसे जन्म ग्रहण, वृद्धि और मरण के चक्र में नहीं पड़ना होगा ।३५।

नापिक्षयसवाप्नोतिपरिणामंनगच्छति ।
छेदंक्लेदतथादाहशोभूरादितोनच ।।३६
भूतवर्गादवाप्नोतिशब्दाद्यैर्ह्रियतेनच ।
नचास्यासन्तिशब्दाद्यास्तद्भोक्तातैंनंयुज्यते ।।३७
यथाहिकानकखण्डपद्रव्यवदग्निा ।
दग्धदोषंद्वितोयेनखण्डेनैक्यं व्रजेग्नृप ।।३८
नविशेवमवाप्नोतितद्वद्योगाग्निनायतिः ।
निर्दग्धदोषस्तोनैक्यप्रयातिब्रह्मणासह ।।३९
यथाग्निरग्नोसंक्षिप्तःसमानत्वमवजेत् ।
तदाख्यस्तान्मयोभूोतनगृह्येताविशेषतः ।।४०
परेणब्रह्मणातद्वत्प्राप्यैक्यंदग्धकिल्बिषः ।
योगीयतिपृथग्भावंनकदाचिन्महीपते ।।४१
यथाजलंजलेनैक्यंनिक्षिप्तमुपगच्छति ।
तथात्मासाम्यावभ्येतियोगिनःपरमात्मनि ।।४२

उसको क्षय की प्राप्ति कभी नहीं होगी, उसे कभी भूतादि भूतों से छिन्न-भन्न, क्लिन्न, दग्ध अथवा शुष्क नहीं करना पड़ेगा ।३६। शब्द दि उसे अपहृत न कर सकेंगे विषयों केसाथ उसका कोई सम्बन्ध न रहेगा, वह भोक्ता भी न होगा तथा उनसे उसका स्पर्श भी न ही सकेगा ।३७। हे राजन् ! जैसे स्वर्ण के टुकड़े को अपद्रव्य के समान अग्नि में तपा कर दोष रहित करने पर एक निर्मल स्वर्ण खण्ड का संयोग होता है ।३८। किसी प्रकार का प्रभेद उसमें नहीं दीखता, वैसे ही योगाग्नि में रागद्वेषादि दोषों को तपाने से योगी भी ब्रह्म के

साथ संयोग प्राप्त करता है ।३९। जैसे अग्निमें अग्नि डालें तो वह अभेद होती है तथा तदात्म हो जाती है ।४०। वैसे ही दोषों के जल जाने पर योगीभी ब्रह्म से तदात्म रूप को प्राप्त होता है उसका पृथक् भाव नहीं रहता ।४१। जिस प्रकार जलमें गिराहुआ जल समभाव होता है वैसे ही योगियों का आत्मा भी ब्रह्म में समभाव हो जाता है ।४२।

३३—योगचर्या

भगवन्योगिनश्चर्य्यांश्रोतुमिच्छामितत्वतः ।
ब्रह्मवर्त्मन्यनुसरन्यथायोगीनसीदति ।।१

मानापमानौयावेत्तौप्रत्युद्वेगकरौनृणाम् ।
तावेवविपरीतार्थौ योगिनःसिद्धिकारकौ ।।२

मानापमानौयावेतौतावेवाहुर्विषामृते ।
अपमातोऽमृततत्रमानस्तुविषमंविषम् ।।३

चक्षूःपूतंन्यसे पादवस्त्रपूतंजलंपिवत् ।
सःपूतांवदेद्वाणींबुद्धिपूतचचिन्तयेत् ।।४

आतिथ्यंश्राद्धयज्ञेषुदेवयात्रोत्सवेषुच ।
महाजनेषुसिद्धयर्थंनगच्छेद्योगवित्क्वचित् ।।५

व्यस्तेविधूमेव्यङ्गावेसर्वंस्मिन्भुक्तवज्जने ।
अटेतयोगविद्भक्ष्यंनतुतेष्वेवनित्यशः ।।६

यथेवमवमन्यतेजनतपरिभवन्तिच ।
तथायुक्तश्चरेद्योगीसतांवर्त्मनदूषयन् ।।७

अलर्क बोले—हे भगवन् ! योगियों के जिस आचरण से ब्रह्मपथ के अनुगामी होकर नाशको प्राप्त नहीं होना होता है उसे मैं यथार्थ रूप से सुनना चाहता हूँ ।१। दत्तात्रेयजी बोले-मान अपमान ही प्रीत औरउद्वेग केकार० हैं,यदियोगी इनदोनोंको विपरीतार्थक अर्थात्मानको अपमानऔर

अपमान को मान समझले तो यह सिद्धि देने वाले होते हैं ।२। मान अपमान ही अमृत और विष है, मान को विष और अपमान को अमृत माने ।३। जल को वस्त्र से छान कर पीवे, सत्य से पवित्र हुए वचन ही बोले तथा बुद्धि पूर्वक विचार कर ही चिन्तन करे ।४। आतिथ्य, श्राद्ध, यज्ञ, यात्रा और महोत्सव में कभी न जाय तथा सिद्धि के लिए महाजनों के पास भी गमन न करे । ५ । जब गृहस्थ के गृह की भी अग्नि शान्त हो जाय, सब मनुष्य भोजन करके निश्चन्त हो लें, उसी समय योगी को भिक्षा के लिए जाना चाहिए ।६।जिससे मनुष्य अपमान करें, ऐसी चेष्टा करता हुआ, साधुत्व को कभी दूषित न करता हुआ ही विचरण करे ।७।

भैक्ष्यचरेद्गृहस्थेषुयायावरगृहेषुच ।
श्रेष्ठातुप्रथमाचेतिवृत्तिरस्यपदिश्यते ।।८
अथनित्यगृहस्थेषुशालीनेषुचरेद्यतिः ।
श्रद्दधानेषुदान्तेषुश्रोत्रियेषुमहात्मसु ।।९
अतऊर्ध्वंपुनश्चापिअदुष्ठापतितेषुच ।
भैक्ष्यचर्याविवर्णेषुजघन्यावृत्तिरिष्यते ।।१०
भलंमूलंप्रियंगुंवाकणपिण्याकसक्तवः ।।११
इत्येतेचशुभाहारयोगिनांसिद्धिकारकाः ।
तत्प्रयुज्यान्मुनिर्भक्त्यापरमेणससमाधिना ।।१२
अपःपूर्वंसक्त्प्राश्यतूष्णींभूत्वासमाहितः ।
प्राणायेतिततस्तस्यप्रथमाह्यहुतिःस्मृताः ।।१३
अपानायद्वितीयातुसमानायेतिचापरा ।
उदानायचतुर्थीस्याद्व्यानायेतिचपंचमी ।।१४

गृहस्थों अथवा यायावर पुरुषों के घर से ही भिक्षा ले, उसमें प्रथम वृत्ति ही प्रधान मानी गयी है ।८। जो गृहस्थ लज्जावान्, श्रद्धावान्, चतुर, श्रोत्रिय, महात्मा, निर्दोष तथा अपतित है, उसीके घर भिक्षा माँगे, विवर्ण पुरुषों के यहाँ से भिक्षा लेने को जघन्य वृत्ति कहा गया है ।९-१०। यवागू, मट्ठा, दूध, यावक कुलथी, फल, मूल, प्रियगु, कण, पिण्याक, सत्त इनकी

भिक्षा ले ।११। यह वस्तुएँ कल्याण करने और सिद्धि देनेवाले आहारके रूपमें निर्दिष्ट है, इसलिए सावधानी पूर्वक यह वस्तु उपभोग करे ।१२। भोजन के पहिले मौन रहकर एकबार जलपीकर प्राणाय स्वाहा कहता हुआ आहार करे, योनियोंकी यही प्रथम आहुति मानी गयी है ।१३। फिर 'अपानाय' कहकर दूसरी, 'समानाय' कहकर तीसरी, उदानाय' कहकर चौथी और 'व्यानाय' कहकर पाँचवीं आहुति दे ।१४।

प्राणायामैःपृथक्कृत्वाशेषंभुञ्जीतकामतः ।
अपःपुनःसकृत्प्राश्यआचम्यहृदयंस्पृशेत् ।।१५
अस्तेयंब्रह्मचर्यंचत्यागाऽलोभस्तथवच्च ।
व्रतानिपंचभिक्षूणामहिंसापरमाणिवै ।।१६
अक्रोधोगुरुशुश्रूषाशौचमाहारलाघवम् ।
नित्यस्वाध्यायइत्येतेनियमाः परिकीर्तितः ।।१७
सारभूतमुपासीतज्ञानंयत्कार्यसाधकम् ।
ज्ञानानांवहुतायेयोगविघ्नकरोहिसा ।।१८
इदंज्ञेयमिदंज्ञेयमितियस्तृषितश्चरेत् ।
अपिकल्पसहस्रेषुनैवज्ञेयमवाप्नुयात् ।।१९
त्यक्तसङ्गोजितक्रोधोलघ्वाहारीजितेन्द्रियः ।
पिधायबुद्धचाद्वाराणिमनोध्यानेनिवेशयेत् ।।२०
शून्येष्वेवावकाशेषुतहारुवनेषुच ।
नित्ययुक्तःसद योगाध्यानंसम्यगुपक्रमेत् ।।२१

फिर प्राणायाम द्वारा पृथक् करते हुए स्वेच्छानुसार शेष भोजन करे, फिर एकबार जल पीकर आचमन करे और हृदयको स्पर्श करे।१५।'अस्तेय ब्रह्मचर्य,त्याग,अलोभ,अहिंसा यह पांच परम व्रत भिक्षुकके लिए कहे गये हैं।१६।तथा अक्रोध गुरु सेवा,शौच'लघु,आहार और नित्य स्वाध्याय यह पाँच नियम वतायेहैं।१७।कार्य सिद्धि वाले साररूपी ज्ञानकी ही आलोचना करे क्योंकि अनेक प्रकार की ज्ञान विषयक चर्चा से योग में विघ्न पड़ता है ।१८। जो योगी ज्ञेय पदार्थकी जिज्ञासा करते हुए तृषित चित्तसे भ्रमते हैं

उनको हजार कल्पमें भी ज्ञेय पदार्थकी उपलब्धि नहीं हो सकती।१९। संग का परित्याग करता हुआ अक्रोधी, लघुभोजी और जितेन्द्रिय होकर बुद्धियोग से विधान कर के चित्त को ध्यान मग्न करे।२०। निर्जन स्थान गुफा तथा वन में जाकर सदा सम्यक विधानपूर्वक ध्यान रत हो।२१।

वाग्दण्डःकर्मदण्डश्चमनोदण्डश्चतेत्रयः।
यस्यैतेनियतादण्डाःसत्रिदण्डोमहायतिः ॥२२
सर्वमात्ममयंयस्यासदसज्जगदीदृशम्।
गुणागुणमयंतस्याकःप्रियःकोनृपाप्रियः ॥२३
विशुद्धबुद्धिःसमलोष्टकाञ्चनःसमस्तभूतेपुसमःसमाहितः।
स्थानपरंशाश्वतमव्ययंचयातिर्हिगत्वानपुनःप्रजायते ॥२४
वेदाच्छेष्ठाःसर्वयज्ञक्रियाश्चयज्ञाज्जाप्यंज्ञानमार्गश्चजप्यात्।
ज्ञानाद्ध्यानंसंगरागव्यपेतंतस्मिन्प्राप्तेशाश्वतस्योपलब्धिः।२५
समाहितोब्रह्मपरोऽप्रमादीशुचिस्तथैकान्तरतिर्यतेन्द्रियः।
समाप्नुयाद्योगमिमंमहात्माविमुक्तिमाप्नीतिततःस्वयोगत.२६

वाग्दंड, कर्मदण्ड और मनोदण्ड को वश में रखने वाला त्रिदण्डीही महायती कहा जाता है।२२। इस सत्-असत्, गुण,अगुण युक्तदिखाई पड़ने वाले विश्वको जो योगी आत्मय मानते हैं, उनके लिए कौनप्रिय और कौन अप्रिय हैं ? ।२३। जो विशुद्ध बुद्धिसे लोहा और सुवर्ण को समान मानते तथा समस्त भूतमें समाहित होकर सर्वाधार,शाश्वत एवं अव्यय ब्रह्मको सर्वत्रविद्यमान देखतेहैं,उन्हें पूर्वजन्म नहीं धारण करना होता।२४।निखिल वेद और सब प्रकारकी यज्ञ क्रिया उत्कृष्ट है,उस यज्ञसे जप श्रेष्ठहै, जपसे ज्ञानमार्ग और ज्ञानमार्गसे निःसंग और रागहीन ध्यान श्रेष्ठहैं,क्योंकि इस ध्यान योगके द्वाराही शाश्वत ब्रह्मकी प्राप्ति होती है।२५।जो सावधानी से ब्रह्मपरायण,प्रमाद रहित,एकान्तवासी और जितेन्द्रिय होकर योगसाधन करते हैं,वे आत्मामें आत्माके संयोगको पाकर मोक्ष लाभ करते हैं।२६।

३४—ओंकार स्वरूप कथन

एवंयोत्रत्त तेयोगीसम्यग्योगव्यावस्थित: ।
नसव्यावर्तितु शक्योजन्मान्तरशतैरपि ॥१
दृष्ट्वाचपरमात्मानप्रत्यक्षंविश्वरूपिणम् ।
विश्वपादशिरोग्रींविश्वेशंविश्वभावनम् ॥२
तत्प्राप्तयेमहत्पुण्यमोमित्यकाक्षरंजतेत् ।
तदेत्राध्ययनंतस्यस्वरूपश्रृण्वत:परम् ॥३
अकारश्चतथोकारामकारश्चाक्षरत्रयम् ।
एतास्तिस्रास्मृतामात्रा:सात्त्वराजसतामसा: ॥४
निर्गुणायोगिगम्याच्याचाधर्ममात्रोर्व्वसंस्थिता ।
गान्धारीतिचविज्ञयागान्धारस्वरसंश्रया ॥५
पिपीलिकागतिस्पर्शाप्रयुक्तामूर्ध्निलक्ष्यते ।
यथाप्रयुक्तओङ्कार:प्रतिनिर्य्यातिमूर्द्धनि ॥६
तथोङ्कारमयोयोगीत्वक्षएत्वक्षरोभवेत् ॥
प्राणोधनु:शरोह्यात्माब्रह्मवेध्यमनुत्तमम् ॥७

दत्तात्रेयजी बोले—जो योगी इस प्रकार सम्यक् विधानपूर्वक योगयुक्त होतेहैं,वह सौ-सौ जन्मान्तर में भी अपने पद से निवृत्त नहीं होते ।१। जो विश्वस्वरूप,विश्वेश्वर और विश्वभावनहैंतथा विश्वही जिनके पाद,ग्रीवा और मस्तक हैं उन्हीं परब्रह्म को प्रत्यक्ष करके योगी ।२। उनको पाने के निमित्त 'ॐ' इस एकाक्षर मन्त्रका जप करे, यही उनका स्वाध्याय है,इसी ओंकर स्वरूपका श्रवण करना चाहिए।३।अकार,उकार और मकार यही तीन अक्षर ओंकर स्वरूप हैं,इन्हें तीन मात्रा समझो यही मात्राके क्रमसे सात्विक,राजसिक और तामसिक होतेहैं।४।तथा ओंकारमें एक अर्द्ध मात्रा और है,वह तीनों गुणोंसे परे हैं, ऊर्ध्व में अवस्थित योगियों को गम्य हैं, इसमें गांधार स्वरका आश्रय होनेसे यह गाँधारी नामसे प्रसिद्धहै ।५।यह मात्रा चींटीके समान गतिऔर स्पर्श वालीहै यह शिरोभागमें दिखाई देती

है, तथा जिस प्रकार ओंकार प्रयुक्त यह शिरोभाग मे जाती है ।६। वैसे ही योगी अक्षर-अक्षर में ओंकार युक्त होता है, प्राण को धनुष रूप, आत्मा को वाण रूप और ब्रह्म को लक्ष्य रूप जाने ।७।

अप्रमत्तोनवेद्धव्यंशरवत्तान्मयोभवेत् ।
ओमित्येतत्त्रयोवेदास्त्रयोलोकास्त्रयोऽग्नयः ॥८
विष्णुर्ब्रह्माहारश्चैवऋक्सामानियजूंषिच ।
मात्राःसार्द्धाश्चतिस्रश्चविज्ञेयाःपरमार्थतः ॥९
तत्रयुक्तस्तुयोयोगीसतल्लयमवाप्नुयात् ।
अकारस्त्वथभूर्लोकउकारश्चोच्यतेभुवः ॥१०
सव्यञ्जनोमकारश्चस्वर्लोकःपरिकल्प्यते ।
व्यक्तातुप्रथमामात्राद्वितीयव्यक्तसंज्ञिता ॥११
मात्रातृतीयाचिच्छक्तिरर्धमात्रापरंपदम् ।
अनेनैवक्रमेणैताविज्ञेयायोगभूमयः ॥१२

प्रमाद रहित होकर वाण के समान ब्रह्म को विद्ध करने में तन्मय हो सकता हैं ओंकार ही त्रिवेद त्रैलोक्य और तीनों अग्नि ।८। ब्रह्मा, विष्णु शिव तथा ऋक्,यजुः, साम स्वरूप हैं, परम अर्थ से ओंकर की साढ़ेतीन मात्रा है ।९। इस ओंकर में मिलकर योगी उसमें लीन होते हैं, अकार भूलोंक उकार भुवर्लोक ।१०। तथा व्यञ्जन मुक्त मकार स्वर्लोक कहा गया है, उसके प्रथम मात्रा व्यक्ता, द्वितीय अव्यक्ता ।११। तृतीय चिच्छक्ति और चतुर्थ परमपद है, इस प्रकार क्रम पूर्वक इसे योग भूमि समझो ।१२।

ओमित्युच्चारणात्सर्वंगृहीतंसदसद्भवेत् ।
ह्रस्वातुप्रथमामात्राद्वितीयादैर्घ्यसंयुता ॥१३
तृतीयाचप्लुतार्धाख्यावचसःसानगोचरा ।
इत्तेतदक्षरंब्रह्मपरमोंकारसंज्ञितम् ॥१४
यस्तुवेदनरःसम्यक्तथाध्यायतिवापुनः ।
संसारचक्रमुत्सृज्यत्यक्तत्रिविधबन्धनः ॥१५

प्राप्नोतिब्रह्मणिलयंपरमेपरमात्मनि ।
आक्षीणकर्मबन्धश्चज्ञात्वामृत्युमरिष्टतः ।।१६
उत्क्रान्तिकालेसंस्मृत्यपुनर्योगित्वमृच्छति ।
तस्मादसिद्धयोगेनसिद्ध योगेनवापुनः ।
ज्ञेयान्यारिष्टानिसदायेनोत्क्रांतौनसीदति ।।१७

केवल ॐ का उच्चारण करतेही सदैव सत्-असत् का ग्रहण होजाता है प्रथम मात्रा ह्रस्व और द्वितीय मात्रा दीर्घ है ।१३। तृतीय मात्रा प्लुत स्वरूप है और अर्द्ध मात्रा का तो स्वरूप वर्णन ही नहीं किया जा सकता, इस प्रकार जो योगी ओंकार स्वरूप अक्षर परब्रह्म को । १४ । जानकर उनका ध्यान करते हैं वह संसार चक्र का अतिक्रमण करते हुए तीनों बंधनों को छोड़ कर ।१५। उस परब्रह्म में ही लीन हो जाते हैं, यदि उनके कर्म-बंधन क्षीण न हों तो वह अरिष्ठ द्वारा मृत्यु काल को जानकर ।१६। उस समय स्मृति लाभ पूर्वक योगित्व को पुनः प्राप्त होते हैं, इसलिए सिद्ध या असिद्ध कैसाभी योगी हो, अरिष्ट का ज्ञान होना ही चाहिये, क्योंकि अरिष्ट के ज्ञान से मरण काल में दुःखकी प्राप्ति नहीं होती ।१ ।

३५—अरिष्ट कथन

अरिष्टानिमहाराजश्रृणुवक्ष्याभितानिपे ।
येषामालोकनान्मृत्युं जिंजानातियोगवित् ।।१
देवमार्गंध्रुवंशुक्रंसोमच्छयामरुन्धतीम ।
योनपश्येन्नजोयेत्सनरःजंवत्सात्परम् ।।२
अरश्मिबिम्बंसूर्य्यंस्यावह्निंनचैवांशुमालिनम् ।
दृष्टवैकादशमासेभ्योनरोनोर्ध्वंतुजोवति ।।३
वान्तेमूत्रपरीषेवयःस्वर्णरजतंतथा ।
प्रत्यक्षकुरुतेस्वप्नेजीवेत्सदशमासिम् ।।४

दृष्ट्वाप्रेतपिशाचादीन्गधर्वंनगराणिच ।
सुवर्णवर्णान्वृक्षाश्चनवमासान्सजीवति ॥५
स्थलःकृशःकृशःस्थूलोयोऽकस्मांदेवजायते ।
प्रकृतेश्चनिवर्तततस्यायुश्चाष्टमासिकम् ॥६
खण्ड यस्यपदपार्ष्ण्यांपादस्याग्रे चवाभवेत् ।
पांशुकर्दमयोर्मध्येसप्तमासान्सजीवति ॥७

दत्तात्रेयजी बोले— हे राजन् ! अब तुम्हारे प्रति समस्त अरिष्ट का वर्णन करता हूँ, श्रवण करो, इन्हें देखकर योगी अपना मृत्यु काल समझले ।१। देवमार्ग, ध्रुव, शुक्र, चन्द्र, स्वच्छया और अरुन्धती इनको जो नहींदेख सकता वह सम्वत्सर के पश्चात् ही मृत्यु को प्राप्त होता है ।२। सूर्य का बिम्ब रश्मियों से रहित तथा अग्नि की किरणों युक्त जोदेखे, वह ग्यारह मास से अधिक जीवित नहीं रहता ।३। स्वप्नावस्थामें मूत्र पुरीष और वमनमें जिसे स्वर्ण अथवा चाँदी दिखाई दे, वह दश महीनेसे अधिक नहीं जीता ।४। जो प्रेत, पिशाच, गंधर्वनगरअथवा स्वर्णिम वृक्षको देखताहै वह नौ मास ही जीवितरहता है ।५। जो सहसा स्थूल होकर कृश होजा और पुनः कृश से स्थूल होजाय वह आठ महीने ही प्राण धारण करता है ।६। रेत अथवा कीचड़ में पाँव जमाने पर जिसकी एड़ी या पाँव के अगले भाग काचिह्न खडित दिखाई पड़े उसकी परमायु सात महीने ही समझो ।७।

गृध्रकपोत·काकोलोवायसोवापिमूर्द्धनि ।
क्रव्यादोवाखगोलीनःषण्मासायुःप्रदर्शकः ॥८
हन्यतेकाकपंक्तीभिःपांशुवर्षेणवानरः ।
स्वांच्छायामन्यथादृष्ट्वाचतुपंचसजीवति ॥९
अनभ्रे विद्यु तंदृष्ट्वादक्षिणांदिशमाश्रिताम् ।
रात्राविन्द्रधनुश्चापिजीवतंहित्रिमासिकम् ॥१०
घृततैलेतथादर्शेतोयेवानात्मनस्तनुम् ।
यःपश्येदशिरस्कांवामासादूर्ध्वंनजीवति ॥११

यस्यवस्तसभोगन्धोगात्रेशवसमोऽपिवा ।
तत्यार्द्धमासिकंज्ञेययोगिनोनृपजीवितम् ॥१२
यस्यवैस्नातमात्रस्यहृत्पादमवशुष्यते ।
पिवतश्चजलंशोषोदशाहंसोऽविजीवति ।।१३
संभिन्नोमारुतोयस्यमर्मस्थानानिकृन्तति ।
हृष्यतेनाम्वसंस्पर्शात्तस्यमृत्युरुपस्थितः ॥ १४

गृद्ध, उलूक, काक अथवा क्रव्याद या अन्य कोई कीलवर्ण का हिंसक पक्षी उड़कर सिर पर आ वैठे तो छः मास ही जीवन रहता है ।८। जो काल पंक्ति से अथवा धूधिकी वर्षामे आहत होजाय तथा जो अपने देहकी छायाको विपरीत देखे वह चार या पाँच माससे अधिक जीवित नहीं रहता ।९। विना मेघके दक्षिण दिशा में जिसे विजली चमकती दिखाई पड़े अथवा रात्रिके समय इन्द्रधनुप दिखाई दे वह दो तीन मास तक ही जीवनधारण करता है ।१०। जिसे घृत, तेल, दर्पण और जलमें अपना स्वरूप दिखायी न पड़े अथवा अपने शरीरही मस्तकरहित देखे, वह एक माससे अधिक जीवित नहीं रहता ।११। जिसके शरीर से मृतक शरीर जैसे गन्ध निकलती हो वह एक पक्ष ही जीवित रहता है ।१२। जिसका हृदय और पाँव स्नान करते ही सूखजाय अथवा जल पीतेही पुनः प्यास से कण्ठ सूखने लगे वह दश दिनही जीवित रहता है ।१३। जिसके मर्म स्थानको वायु छिन्न-भिन्न कर दे तथा जल के स्पर्श से जिसे रोमाँच नहो, उसका मृत्यु कालही उपस्थित समझें ।१४।

ऋक्षवानरयानस्थोगायन्योदक्षिणांदिशम् ।
स्वप्नेंयथातितस्यापिनमृत्युकालमिच्छति ॥१५
रक्तकृष्णाम्वरधरागायन्तीहसतीचयम् ।
दक्षिणाशानयेन्नारीस्वप्नेसापिनजीवति ॥१६
नग्नंक्षपणकंस्वप्नेहसमानंमहावलम् ।
एवंसंवीक्ष्यवल्गन्तविद्यान्मृत्युमुपस्थितम् ।१७
आमस्तकतलाद्यस्तुनिमग्नपङ्कसागरे ।
स्वप्नेपश्यत्यथात्मानंसद्यस्म्रियतेनरः ॥१८

केशाङ्गारांस्तथाभस्मभुजङ्गान्निर्जलांनदीम् ।
दृष्ट्वास्वप्नेदशाहात्तु मृत्युरेकादर्शदिने ।।१९
करालैर्विकटैःकृष्णैपुरुषरुद्यतायुधैः ।
पाषाणैस्ताडितःस्वप्नेसद्योमृत्युं लभेन्नरः ।।२०
सूर्योदयेयस्याशिवाक्राशन्तीयातिमुखम् ।
विपरीतंपरीतंवासद्योमृत्युमृच्छति ।।२१

जो स्वप्नास्था में रीछ या वन्दर के यान में चड कर गाता हुआ दक्षिण दिशा की तरफ जाय उसका मृत्युकाल आयासमझें ।१५। जिसे लाय काले वस्त्र पहिने हुए हास्य मुख से गाती हुई स्त्री स्वप्न में दक्षिणदिशा में ले जाय उसकी भी मृत्यु शीघ्र होती है ।१६। स्वप्नमें महावस्त्र, नग्न क्षपणक सन्यासी को एकाकी हंसता हुआ जाता देखे तो मृत्युकाल समीप जानें ।१७। तथा जिसे श्वप्नमें अपना शरीर मस्तकतक कीचड़ में घुसा हुआ दिखाई दे, उसका मरणकाल भी निकट समझें ।१८। स्वप्न में केश, अङ्गार भस्म, सर्पः शुष्क नदी दिखाईदेतो ग्यारवें दिन उसकी मृत्यु होती है । १९। स्वप्न में जिसे कराल तथा विकट आकार वाले कृष्णवर्ग पुरुष सशस्त्र आकर पत्थर में मारें, उसकी मृत्यु शीघ्र होने वाली समझो ।२०। जिसके सामने, पीछे अथवा चारों ओर सूर्योदय काल में गीदड़ी जाय वह शीघ्र ही मरता है ।२१।

यस्यवैभुक्तमात्रस्यहृदयंबाध्यतेक्षुधा ।
जायतेदन्तघर्षश्चसगतायुर्नसंशयः । २२
दीपगन्धनयोवेत्तित्रस्यत्यह्नितथानिशि ।
नात्मानंपरनेत्रस्थंवीक्षतेनसजीवति ।।२३
शक्रायुधचार्द्धरात्रेदिवाग्रहतारांस्तथा ।
दृष्ट्वामन्येतसंक्षीणमात्मजीवितमात्मवित् ।।२४
नासिकावक्रतामेतिकर्णयोर्नमनोन्नती ।
नेत्रंचव मंस्रवतियस्यतस्यायुरुद्गतम् ।।२५

आरक्ततामेतिमुखंजिह्वावाश्याभतांयदा ।
तदाप्राज्ञोविजानीयान्मृत्पुमासन्नमात्मकः । २६
उष्ट्रारासभयानेनयःस्वप्नेदक्षिणांदिशम् ।
प्रयातितंचजानीयात्सद्योमृत्युं नरेश्वर ।।२७
पिधायकर्णौनिर्घोषंनश्रृणोत्यात्मसम्भवम् ।
नश्यग्गेच्चक्षुषोर्ज्योतिर्यस्यसोऽपिनजीवति ।।२८

भोजन करके उठते ही जो तुरन्त भूख से व्याकुल होजाय तथा दन्त घर्षण होने लगे, उसकी आयु समाप्त ही समझो ।२२।जिसको नासिका को दीप गन्ध का ज्ञान न हो, जो दिन या रात्रि भयको प्राप्त हो तथा जो अपने प्रतिबिम्ब को दूसरेके नेत्रमें न देखसके उसकी भी आयुसमाप्त हुई समझो ।२ । यदि आधी रातमें इन्द्रधनुष और दिनमें तारे दिखाई दें तो उसकी भी आयु को नि शेष हुआ समझे।२४। जिसकी नाक टेढ़ा होजाय, दोनों कान ऊँचे नीचे प्रतीतहों अथवा बायें नेत्रसे आँसू गिरते हों,उसकी आयुभी सम्पूर्ण हुई समझिये ।२५। मुख लाल जिह्वा श्याम हो जाय तो अपना काल समीप समझे।२६। स्वप्नमें ऊँट या गधेके यान में चढ़कर दक्षिणकी ओर जाय तो शीघ्र ही मृत्युको प्राप्त होताहै ।२७ दोनों कान ढक लेने पर अपना शब्द सुनाई न पड़े अथवा जिसके नेत्रों से कुछ दिखाई न पड़े वह शीघ्र ही मरता है ।

पततोयस्यवैगर्तेस्वप्नेद्वारंपिधीयते ।
नचोत्तिष्ठतियःश्वभ्रात्तदन्नंतस्याजीवितम् ।।२९
ऊर्ध्वाचदृष्टिर्नसंप्रतिष्ठा रक्तापुनःसंपरिवर्तमाना ।
मुखस्याचोष्माशिशिराचनाभिःशंसंतिपुंसामपरंशरीरम् ।।३०
स्वप्नेऽग्निंप्रविद्यस्तुनचनिष्क्रमतेपुनः ।
जलप्रवेशादपिवातदन्तंतस्यजीवितम् ।।३१
यश्चाभिहन्यतेदुष्टैर्भूतैरात्रावथोदिवः ।
समृत्युंसप्तरात्रान्तेनरःप्राप्नोयसंशयम् ।।३२

स्वदस्त्रममलशुक्लं रक्तं पश्यत्यथोसितम् ।
यःपुमान्मृत्युमासन्नं तस्यापिहिविनिर्दिशेत् ॥३३

स्वभाववपरीत्यंतुप्रकृतेश्चविपययः ।
कथयन्तिमनुष्याणांसमासन्नौयमान्तकौं ॥३४

स्वप्न में जो गढ़े में गिरकर उससे निकलने का मार्ग न पा सके या गिरकर उठनेमें असमर्थ हो तोभी उसकी आयु निःशेष समझो ।२९। जिसकी दृष्टि ऊर्ध्व भागमें नहीं जमती, लाल रङ्गको होकर बारम्वार घूर्णित या चंचल हो जाय, तथा जिसका मुख उष्णतासे युक्त औरनाभि विस्तृत हो जाय वह शरीर त्यागकर अन्य देह धारण करता है ।३०। स्वप्नमें जो अग्नि या जल में घुसकर फिर वाहर न निकले उसका जीवन समाप्त समझो।३१। जो दिन अथवा रात्रिमें दुष्ट भूतोंसे ताड़ित हो वह सात दिनमें मर जाताहै।३२। जो अपने पहिने हुए श्वेत वस्त्रों को लाल या काले रङ्ग के देखताहै,उसका मरण काल समीप समझो । स्वभाव के विपरीत होने तथा प्रकृति का विषमय होने से यम और अन्तक उस पुरुष के समीप होते हैं ।३४।

येषांविनीतःसततंयेऽस्यपूज्यमामताः ।
तानेवचावजानातितानेवचविनिन्दति ॥३५

देवान्नार्चयतेवृद्धान्गुरून्विप्रांश्चनिन्दति ।
मातापित्रोर्नसत्कारंजामातृणांकरातिच ॥३६

योगिनांज्ञानविदुषामन्येषांचमहात्मनाम् ।
प्राप्तेतुकाले पुरुषस्तद्विज्ञेयंविचक्षणैः ॥३७

योगिनांसततंयत्नादरिष्टान्यवनीपते ।
संवत्सरान्तेतज्ज्ञेयंफलदनिशिवासरम् ॥३८

विलोक्याविशदाचैषांफलपंक्ति सुभीषणा ।
विज्ञायकार्योमपुसिसचकालोनरेश्वर ॥३९

ज्ञात्वाकालंचतंसम्यनभःस्थानंसमाश्रितः ।
युञ्जीतयोगीकालोऽसौयथानास्याफलोभवेत् ॥४०

दृष्ट्वारिष्टं तथायोगीत्यक्त्वामरणजभयम् ।
तत्स्वभावंतदालोक्यकालोयावद्विपाकदः ॥४१
तस्यभागेतथैवाह्लोयोगयुञ्जीतयोगवित् ।
पूर्वाह्णेचापराह्णेचमध्याह्नेचावितद्दिने ॥४२
यत्रवारजनीभागेतदरिष्टंनिरीक्षितम् ।
तत्रैवतावद्युञ्जीतयावत्प्राप्तंहितद्दिनम ॥४३

काल के प्राप्त होने परही मनुष्य पूजानीय पुरुषोंका निरादर तथा निंदा करता है।१५. देव पूजन से विमुख होता वृद्धों और विप्रोंकी निंदा करता तथा माता पिता और जामाता का सत्कार।३६ नहीं करता और योगी ज्ञानी तथा अन्य साधु-सन्तो के सत्कार से विमुख होता है, उसकी भी आयु निःशेष समझें ३७ हे राजन्! योगियों को यह ज्ञान रखना चाहिए कि यह सभी अरिष्ठ संवत्सर के अन्तमें रात्रिहो या दिन फल देते है।३८। इन सभी भीषण फलों पर दृष्टि रखे, इनका ज्ञान सहज में ही होजाता हैं इन्हें भले प्रकार जानकर उनके उपस्थित-कालका ध्यान रखे।३९।उसके उपस्थित का को जानकर भय रहित स्थान का आश्रय लेकर योग में निमग्न हो, जिससे कालका वश न चल सके।४०।अरिष्टको देखकर उससे होनेवाले मृत्यु भयको त्यागकर अरिष्टके स्वभावपर विचार करेऔर जब वहसमय उपस्थित हो।४१। दिन के उसी भागमें योगी योग निमग्न हो, रात के पूर्वाह्न अथवा अपराह्नमें।४२। अथवा रात्रि में, जिससमय भी अरिष्ट दिखायी पड़ा' उसी समय योग मग्न होना चाहिए जब तक वह मृत्यु का दिन न आवे, तब तक इसी प्रकार योग क्रियामें लगा रहे।४३

ततस्त्यक्त्वाभतसर्वंजित्वातंकालमात्मवान् ।
तत्रैवावसथेस्थित्वायत्रवास्थैर्यमात्मनः ॥४४
युञ्जीतय गर्निजित्यत्रीन्गुणान्परमात्मनि ।
तन्मयश्चात्मनाभूत्वाचिद्वृत्तिमपिसंत्यजेत् ॥४५
ततःपरमनिर्वाणमतीन्द्रियमगोचरम् ।
यद्बुद्धेयन्नचाख्य तुंशक्यतेतत्समश्नुते ॥४६

एतत्सर्वंसमाख्यातंतवालर्कंयथार्थवत् ।
प्राप्स्यसेयेनवद्ब्रह्मसंक्षेपात्तन्निबोधमे ।।४७
शशाङ्करश्मिसंयोगाच्चन्द्रकान्तमणिःपय ।
समुत्पृजतिनायुक्तःसोपमायोगिनस्मृता ।।४८
यथार्कंरश्मिसंयोगादर्ककान्तोहुताशनम् ।
आविष्कारोतिनैःसन्नुपमासापियोगितः ।।४६

वह आत्मावन् होकर संपूर्ण भय को छोड़कर और उस समय को जीतकर उसी गृहमें या जहाँभी मन स्थिर रहसके ।४४। निवास करता हुआ तीनों गुणों पर विजय प्राप्तकरके, एकाँतिक चित्तसे योगयुक्त हो कर परब्रह्ममें अभिनिविष्ट हो तथा आत्माकी तन्मयता पूर्वक चित्त वृत्ति का सर्वथा त्याग करे ।४५। ऐसा करकेही वह इन्द्रियातीत,बुद्धि द्वारा अगम्य और वाणीद्वारा अकथनीय परम निर्वाण को प्राप्त कर सकते हैं ।४६। यह सब यथार्थ रूपसे मैंने तुम्हें बताया है, अब जिसप्रकार ब्रह्म पदार्थ को उपलब्धि होसकती है, उसे संक्षिप्त रूप से कहता हूँ, श्रवण करो ।४७। चन्द्रमा की किरणों के संयोग से ही चन्द्रकान्त मणिसे जल निकलता है योगियों की योग सिद्धि का उपाय भी यही है अर्थात योग में मन न लगाने से आनन्द का सन्चार कभी नहीं हो सकता ।४८। सूर्य रश्मियों के संयोग से चन्द्रकान्तमणि से जैसे अग्नि निकलती है, वैसे ही योग युक्त न होने से ब्रह्मका साक्षात्कार संम्भव नहीं ।४६।

पिपीलिकाखुनकुलगृहगोधाकपिंजलाः ।
वसन्तिस्वामिवद्गेहेध्वस्तेयान्तिततोऽन्यतः ।।५०
दुखंतुस्वामिनोध्वसेतस्यतेषानकिंचन ।
वेश्मनोवत्रराजेन्द्रसोपमायोगसिद्धगे ।।५१
मुद्देहिकाल्पदेहापिमुखाग्रेणाप्यणीयसा ।
करोतिमृत्त्काचयमुपदेशःसयोगिनः ।।५२
पशुपक्षिमनुष्याद्यैःपत्रपुष्पफलान्वितम् ।
वृक्षविलुप्यमानंतुदृष्ट्वासिध्यन्तियोगिनः ।।५३

रुरुशावविषाणाग्रमालक्ष्यतिलकाकृतिम् ।
सहतेनविवर्द्धन्तंयोगीसिद्धिमवाप्नुयात् ॥५४
द्रवपूर्णमुपादायपात्रमारोहतोभुवः ।
तुङ्गं विलोक्योच्चैर्विज्ञातंकियोगिना ॥५५
सर्वस्वेजीवनायालनिखाते पुरुषस्यया ।
चेष्टांतांतत्त्वतोज्ञात्वायोगिनःकृतकृत्यता ॥५६

चींटी, मूषक, नकुल, गोधा, कपिञ्जल और कपोत यह सब गृहस्वामी के समान ही वहाँ रहते हैं और घर के नष्ट होने पर ही अन्यत्र जाते हैं ॥५०॥ गृहस्वामी के न रहने से उन्हें कुछ प्रयोजन नहीं है इसी प्रकार स्वभाव से ही देह के पीछे देह का आविर्भाव और तिरोभाव होता है, इसलिए उसके प्रति ममता के वश में नहीं पडना चाहिये, ऐसा जानकर सब छोड़कर योग-साधन में ही चित्र लगावे ॥५१॥ सूक्ष्म शरीर वाली चींटी अपने अत्यन्त सूक्ष्म मुख से ही सञ्चय करती है, योगियों के लिए यह भी एक दृष्टान्तहै कि ब्रह्म साधन जैसा कठिनकार्य योगरूप साधारण उपाय से वश में कर लिया जाता है ॥५२॥ पशु, पक्षी, मनुष्यादि फल, पुष्प पत्र से युक्त वृक्ष को नष्ट कर देते हैं, उसी प्रकार काल के हाथ से सबको नष्ट होना पड़ता है यह जानकर योग-साधन पूर्वक मोक्ष लाभ करे ॥५३॥ रुरु मृग के बालक के सींग का अग्र भाग तिलक के आकार का होकर भी उसी के साथ बढ़ता है, इसी प्रकार योगी की कठिन योगचार्या भी अभ्याससे सुलभ होजातीहै ॥५४॥ जब मनुष्य द्रव से भरा हुआ पात्र हाथ में लेकर ऊँचे स्थान में चढ़ता है, उस समय उसके अंग पर दृष्टि डालने से योगी को कोई बात अज्ञात नहीं रहती ॥५५॥ मनुष्य जीवन के लिए जो अपने सर्वस्व को नष्ट करने में लगा है, उसे भले प्रकार जानकर योगी कृतकृत्य हो जाता है ॥५६॥

तद्गृहयत्रवसतितद्भोज्यंयेनजीवति ।
येनसम्पद्यतचार्थस्तत्सखंममतात्रका ॥५७
अभ्यर्थितोऽपितैःकार्यंकरोतिकरणैर्यथा ।
तथाबुद्ध्यादिभिर्योगीपारक्यैःसाधयेत्परम् ॥५८

ततःप्रणम्यात्रिपुत्रमलर्कःसमहोपतिः ।
प्रश्नयाव तोवाक्यमुवाचातिमुदान्वितः ।।५६
दिष्टयदेवेरिदन्नह्मन्पराभिभवसम्भवम् ।
उपपादितमत्युगं प्राणसंदेहदंभः म् ।।६०
दिष्टयाशाशिपतेर्भूरिनलसम्पत्पराक्रमः ।
यदुच्छेदादिहायातःसयुष्मत्सङ्गमोमम ।।६१
दिष्ट्यामंदवलश्चाहदिष्ट्याभृत्याश्चनेहताः ।
दिष्ट्याकोषःक्षयंतातोदिष्ट्याहंभीतिमागततः ।।६२
दिष्ट्यात्वत्पादयुगुलंममस्मृतिपथंगतम् ।
दिष्ट्यात्वदुक्तयःसर्वाममचेतसिसस्थिताः ।।६३

जहाँ निवास करे वही गृह, जिससे प्राण धारणा हो वह भोज्य और जिससे विषयकी निष्पत्ति हो वही सुखहै, इसलिए, इस विषयमें ममता क्यों करे ? ।।५७।। जिस प्रकार कारणसे कार्यसिद्ध होताहै, उसी प्रकार योगी पारलौकिक वुद्धि आदि कारण रूप से ब्रह्मकी सिद्धि लाभ करतेहैं ।।५८।। जड़ बोला—इसके पश्चात् राजा अलर्क विनयपूर्वक झुककर दत्ता-त्रेयजी को प्रणाम करते हुए आनन्द सहित बोले ।५९। हे ब्रह्मन् ! मुझे सौभाग्य से अत्युग्र प्राणों को संशयप्रद एवं भयदायक तिरस्कार शत्रु से मिला है ।।६०।। सौभाग्यसे ही काशीराज इतने समृद्धशील हुए, जिसके कारण मैं आपके सत्संग का लाभ कर सका ।।६१।। सौभाग्यसे ही मेरा वल क्षीण होगया, सौभाग्य से ही मेरे भृत्य मारेगये हैं और सौभाग्य से ही मेरा कोष नष्ठ होगया और भयका संचार हुआ ।।६२।। सौभाग्य से ही आपके दोनों चरण मेरे स्मृति मार्ग में उदय हुए हैं तथा आपके वचन मेरे हृदय में निवास प्राप्त कर सके हैं ।।६३।।

दिष्ट्य ज्ञानंममोत्पनभवतश्चसमागमात् ।
भवताचंवकारुण्यंदिष्ट्याब्रह्मन्कृतंमयि ।।६४
अनर्थोऽप्यर्थतांयातिपुरुषस्यशुभोदये ।
तथेदमपकारायव्यसनसगमात्तव ।।६५

सुवाहूरुपकारीमेसचकाशिपतिःप्रभो ।
तयाःकृतेऽहंसंप्राप्तोयोगीशभभवतोऽन्तिकम् ।।६६
सोऽहंतवप्रसादाग्निर्दग्धाज्ञानकिल्बिषः ।
तथायतिष्येयेनेहङ्नभूयोदुःखभाजनम् ।।६७
परित्यज्ष्येगार्हस्थ्यमार्तिपादपकावनम् ।
त्वत्तोऽनूज्ञांसमासाद्यज्ञानदातुर्महात्मनः ।।६८
गच्छराजेन्द्रभदंतेयथातेकथितमया ।
निर्ममोनिरहङ्कारस्तथाचरविमुक्तये ।।६९

सौभाग्य ही आपका समागम पाकर ज्ञान का मुझमें उदय हुआ है और सौभाग्यसे ही आपने मुझपर दयाकी है ।६४। शुभ दय हो तो अनर्थ भी अर्थ होजाताहै,इस भांपण विपत्तिने आपसे मिलाकर मेरा उपकारही कियाहैं ।६५। हे प्रभो ! मैं जिनके लिए यहां आयाहूँ वह सुवाहु और काशी नरेश दोनों ही मेरे लिए परोपकारी सिद्ध हुए हैं ।६६। आपकी कृपा रूप अग्नि ने मेरे अज्ञान रूपी पापोंको भस्मकर दिया है, जिसे ऐसे दुःखोंकी प्राप्ति पुनः न हो सके,अव मैं उसीके अनुष्ठानमें लगूँगा ।६७। आप ज्ञान दाता महात्माहै,आपकी अनुमति पाकरहीमैं गृहस्थआश्रमको छोड़ूँगा,क्योंकि यह आश्रम दुःख रूपी वनही है ।६८। दत्तात्रेयजीने कहा हे राजन् ! तुम जाओ तुम्हारा कल्याण हो,मैंने तुम्हें जो आदेश दियाहै,ममता और अहंकार छोड़कर मोक्ष लाभार्थ उसी पर चलो ।।६९।।

एवमुक्तःप्रणम्यनमाजगामत्वरान्वितः ।
यत्रकाशिपतिर्भ्रातासुबाहुश्चास्यसोऽग्रजः ।।७०
समुत्पत्यमहावाहुंसोलर्कःकाशिभूपतिम् ।
सुवाहोरग्रतोवीरमुवाचप्रहसन्निवः ।।७१
राज्यकामुककाशीशभुज्यतांराज्यमूर्जितम् ।
यथाचरोचततद्वत्सुबाहोःसंप्रयच्छवा ।।७२
किमलर्कपरित्यक्तंराज्यंतेसंयुगंविना ।
क्षत्रियस्यनधर्मोऽयंभवांश्चक्षत्रधर्मवित् ।।७३

निर्जितामात्यवर्गस्तुत्यक्त्वामरणजभयम् ।
संदधोतशरंजालक्ष्यमुद्दिश्यवैरिणम् ।।७४
तज्जित्वानृपतिर्भोगान्यथाभिलषितान्वरान् ।
भुञ्जीतपरमसिद्धयैयजेतचमहामखः ।।७५
एवमीदृशकवीरममाप्यासीन्मनःपुरा ।
साम्प्रतविपरीतार्थंश्रृणुचाप्यत्रकारणम् ।।७६

जड़ ने कहा-दत्तात्रेयजी की यह आज्ञा सुनकर अलर्क ने उन्हें प्रणाम किया और शीघ्रता से अपने भाई सुबाहु और काशी नरेशके पास पहुँचे ।७०। उन्होंने काशी नरेश के समीप जाकर सुबाहु के सामने हंसते हुए कहा ।७१। हे काशिराज ! तुमने राज्य की अभिलाषा की है, इसलिए इस समृद्धशाली राज्य का उपभोग करो या सुबाहु को दे दो, जो चाहो, वही करो ।७२। काशिराज बोले—हे अलर्क ! तुम युद्ध के बिना राज्यको क्यों छोड़ते हो, तुम तो क्षात्रधर्म-विशारद हो, यह क्षत्रियों का धर्म नहीं है ।७३। अमात्यों को वश में रखकर राजा मृत्यु के भय को छोड़-कर शत्रु को लक्ष्य बनाकर बाण संधान करे ।७४। तथा शत्रु को जीत कर सिद्धि के लिए इच्छित भोगों का उपभोग करते हुए श्रेष्ठ यज्ञ का अनुष्ठान करे ।७५। अलर्क बोले-हे वीर ! मैं भी पहिले यही सोचता था, किन्तु अब उसके विपरीत सोचता हूँ, उसका कारण सुनो ।७६।

यथायंभौतिकःसंघस्तथान्तःकरणंनृणाम् ।
गुणास्तुसकलास्तद्वदशेषेष्वेवजन्तुषु ।।७७
चिच्छक्तिरेकएवायंयदानान्योऽस्मिकश्चन ।
तदाकानृपतेज्ञानान्मित्रारिप्रभुभृत्यता ।।७८
तन्मयादुःखमासाद्यत्वद्दयोद्भवमुत्तमम् !
दत्तात्रेय प्रसादेनज्ञानप्राप्तंनरेश्वर ।।७९
निर्जितेन्द्रियवर्गस्तुत्यक्त्वासंगमशेषतः ।
मनोब्रह्माणिसंधास्येतज्जयेपरभोजयः ।।८०

संसाध्यमन्यत्तत्सिद्धयैयत:किंचिन्नवद्यिते ।
इन्द्रियाणिचसयम्यततःसिद्धिनियच्छति ।।८१
तोह्नतेऽरिर्नममासिशत्रुसुवाहुरेषोनममापकारी ।
दृष्टंमयासर्वमिदंयथात्माअन्विष्यतांभूपरिपुस्त्वयान्यः ।।८२
इत्थंसतेनाभिहितोनरेन्द्रोहृष्टःसमुत्थायतत.सुब्राहुः ।
दिष्टयेतितंभ्रातरमाभिनन्द्यकाशाश्वरंवाक्यमिदवभाषे। ।८३

जैसे मनुष्य मात्र का संग भौतिक है, उसी प्रकार उनका अन्त-करण और गुणागण भी भूत की समष्टि है । ७७ । हे राजन् ! केवल चिच्छक्ति रूप ब्रह्म ही सत्य है, अन्य सव असत्य है ऐसा ज्ञान मुझे मिला है तव शत्रु, मित्र, प्रभु या भृत्य की कल्पना ही कैसी ? ।७८। हे नरेश्वर ! तुम्हारे भय से अत्यन्त दु:खित होकर दत्तात्रेयजी की कृपा से यह ज्ञान प्राप्त कर सका हूँ ।७९। अव जितेन्द्रिय होकर समस्त संग का त्याग करके केवल परब्रह्म में ही मन को लगाऊँगा, ब्रह्म के जीतते ही सव कुछ जीत लिया समझो ।८०। एकमात्र वही विद्यमान हैं उसके लिए अन्य साधना उचित नहीं है, जितेन्द्रिय हुए विना सिद्धि लाभ नहीं हो सकता ।८१। हे राजन् न मैं तुम्हारा शत्रु हूं, न तुम मेरे शत्रु हो, सुबाहु ने भी मेरा कोई अपकार नहीं किया इसलिए अव दूसरे शत्रु की खोज करो ।८२। अलर्क के इन वचनों से काशिराज अत्यन्त सन्तुष्ट हुए और सुवाहु भी हर्ष से परम सौभाग्य, कहते हुए उठकर भाई को अभिनन्दन करते हुए काशिराज से वोले ।८३।

३६—अलर्क की योगसिद्धि

यदर्थंनृपशार्दूलत्वामहशरणंगतः ।
तन्मयासकलप्राप्तंयास्यामित्वसुखीभव ।।१
किंनिमित्तंभवान्प्राप्तोनिष्पन्नाऽर्थश्चकस्तव ।
सुवाहोतन्ममाचक्ष्वपरंकौतूहलहिमे ।।२

समाक्रान्तमलर्केणपितृपैतामहंमहत् ।
राज्यंदेहीतिनिर्जित्यत्वयाहमभिचोदितः ॥३

ततोमयासमाक्रम्यराज्यमस्यानुजस्यते ।
एतत्तेवलमानीततद्भुङ्क्षस्वकुलोचितम् ॥४

काशिराजनिवोधस्त्वंयदर्थममयमृद्यमः ।
कृतोमयाभवाश्चवकारितोऽत्यन्तमुद्यमम् ॥५

भ्रातामम।यंग्राम्येषुतत्वचित् ? भोगतत्परः ।
विमूढौत्रीधवन्तौचभ्रातरावग्रजौमम ॥६

ततोममचयन्मात्राबाल्येस्तन्ययथामुखे ।
तथाववोधोविन्यस्तःकर्णयोरवनीपते ॥७

तयोर्ममचविज्ञया:पदार्थयेमतानृभिः ।
प्रकाश्यमनसोनीतास्तेमात्रानास्यपार्थिव ॥८

सुवाहु ने कहा—हे नृपशार्दूल ! जिस लिए मैं आपकी शरण में गया था,वह सब मुझे मिल गया,अव मैं जाता हूँ,आप भी सुखी रहें।१। काशी-नरेशने कहा हे सुवाहो!आप मेरी शरण में किसलिए आये थे और आपका कौनसा कार्य संपादित होगया,वह बताओ, इसके प्रति मुझे अत्यंतकुतूहल हुआ है।२।अलर्क अपने परंपरागत राज्य को भोगता था,आपने उस राज्य को जीतने के लिए मुझे उत्तेजित किया था ।४। सुवाहु वोला-हे काशि-राज ! मैंने उद्यम पूर्वक आपको इस कार्य में क्यों प्रवृत्त किया, उसे सुनो ।५। मेरे यह छोटे भ्राता तत्वज्ञानी होकर भी भोगों में आसक्त थे तथा मेरे दो अग्रज विमूढ़ होते हुए भी तत्वज्ञानी हुए हैं।६। हे राजन् ! मेरी माता ने शिशुकाल में जैसे हमको दूध पिलाया था, वैसे ही हमारे कानों में तत्वज्ञान का उपदेश किया था ।७। मनुष्यों के लिए जो-जो विषय ज्ञातव्य हैं, वह सभी हमारी माता ने हम सब भाइयों के हृदय-गत कर दिये थे, किन्तु अलर्क उन्हें भूल गया ।८।

यथैकमर्थेयातानामेकस्मिन्नवसीदति ।
दुखंभवतिसाधूनांतथास्माकंमहीपते ॥९

गार्हस्थ्यमोहमामपन्ने सीदत्यस्मिन्नरेश्वर ।
सम्बन्धिन्यस्यदेहस्य विभ्राति भ्रातृकल्पनाम् ॥१०
ततोमयाविनिश्चित्यदुःखाद्वैराग्यभावना ।
भविष्यतीत्यस्यभवानित्युद्योगायसंश्रितः ॥११
तदस्यदुःखाद्वैरभ्यसंबोधादवनीपते ।
समुद्भूतकृतंकार्यं भद्रंतेस्तुव्रजाम्यम् ॥१२
उष्ट्वामदालसागर्भेपीत्वातस्यास्तथास्तनम् ।
नान्यनारीसुतैर्यातंवर्त्मयात्वितिपार्थिव ॥१३
विचार्य्यतन्मयासर्वंयुष्मत्संश्रयपूर्वकम् ।
कृतंतच्चापिनिष्पन्नंप्रयास्येसिद्धयेपुनः ॥१४

हे राजन् ! जैसे एक साथ जालों में एक मनुष्य के दुःखित होने से सभी साथी दुःखित होते है, वैसे ही मेरी अवस्था थी ।९। क्योंकि अलर्क से मेरा संबंध बधुत्व का है और यह गृहस्थी के मोह में पड़ कर दुःखित हो रहे थे ।१०। इसलिए दुःख होने पर ही विरक्ति होगी, ऐसा विचार करके ही मैंने आपकी शरण ग्रहण की थी ।११। हे राजन् ! उससे वह दुःखी हुआ और उसी दुःख से उसमें तत्वज्ञान की उत्पत्ति हुई और विरक्ति का उदय हुआ इसलिए अब मैं अपने कार्य में सफल हो गया हूँ, आपका मंगल हो, मैं जाता हूं ।१२। यह अलर्क मदालसा के गर्भ से उत्पन्न है उसी का इसने दूध पिया है, इसलिए अन्य नारीसे उत्पन्न पुत्र जिस मार्ग से नहीं जा पाते, यह उस श्रेष्ठ मार्ग पर चले ।१३। यही विचार कर मैंने आपका आश्रय लिया और तदनुरूप कार्य किया मेरा कार्य पूरा हो गया अब पुनः सिद्धि की प्राप्ति के लिए जा रहा हूँ ।१४।

उपेक्ष्यतेसीदमानःस्वजनोबान्धवःसुहृत् ।
यनरेन्द्रनतान्मन्येसेन्द्रियाविकलाहिते ॥१५
सुहृदिस्वजनेबन्धौसमर्थेयोऽवसीदति ।
धर्मार्थकाममोक्षेभ्योगर्ह्यास्तेनवैनरैः ॥१६

एतत्वत्सङ्गमाद्भूपमयाकार्यमहत्कृतम् ।
स्वस्तितेऽस्तुगमिष्यांमज्ञानभाग्भवत्तम ।।१७
उपकारस्त्वयासाधोरलर्कस्यकृतोमहान् ।
ममोपकारायथनंकरोषिस्वमानसम् ।।१८
फलदायीसतांसद्भिसंगमोनाफलोयतः ।
तस्मात्त्वसश्रएाद्युक्तामयाप्राप्तासमुन्नतिः ।।१९
धर्मार्थकाममोक्षाख्यपुरुषार्थचतुष्टयम् ।
तत्रधर्मार्थकामास्तेसकलोहीयतेऽपरः ।।२०
तत्तेसंक्षेपतोवक्ष्येतदिहेकामनाःशृणु ।
श्रुत्वाचसयगालोच्यतेथाःश्रेयसेनृप ।।२१

हे राजन् ! स्वजन, सुहृदुजन बाँधवों के दुःखित होने पर, उनके प्रति उपेक्षा करनेवाला मनुष्यमेरे विचारमेंविकलेन्द्रिय है ।१५।तथास्वजन सुहृद्जन और बाँधवजन के समर्थ होते हुए भी जो दुःख पाता है, उससे स्वजनादि निन्दनीय एवं धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष से वंचित होते हैं ।१६। आपके संग-लाभसे मैंने इस महान् कार्यको सम्पन्न किया है, आपका कल्याण हो और ज्ञान मार्ग पर चलने वाले हों, मैं अब गमन करता हूँ ।१७। काशिराज बोले- आपने अलर्क का अत्यन्त उपकार किया है, परंतु मेरा उपकारकरनेसे विमुख क्यों हैं?।१८ साधु-संग या सत-मिलन फल देने वाला होताहै, इस लिये आपका सत्संग होने में मेरी भी उन्नति ही होगी ।१९।सुबाहुबोले- धर्म,अर्थ काम, मोक्ष वह चार पदार्थ पुरुषार्थ कहे गये हैं इनमें धर्म, अर्थ काम की सिद्धि तोआपको हो चुकी है, केवल मोक्षका हीं अभाव है ।२०। इसलिए आपसे जो कहता हूँ उसे एकाग्र मन से श्रवण करो उस पर भले प्रकार विचार करके अपने कल्याणार्थ प्रयत्नशील होओ ।२१।

ममेतिप्रत्ययोभूपनकार्य्योऽहमितित्वया ।
सम्यगालोच्यधर्मोहिधर्माभावनिराश्रयः ।।२२
कोवाहमितिसंज्ञेयमित्यालोकच्यत्वयात्मना ।
बाह्यान्तर्गतमालोच्यमालोच्यापररात्रिषु ।।२३

अव्यक्तादिविशेषान्तमविकारमचेतनम् ।
व्यक्ताव्यक्तंत्वयाज्ञेयंज्ञाताश्चाहमित्युत ॥२४
एतस्मिन्नेवविज्ञाते विज्ञातमखिलंत्वया ।
अनात्मन्यात्मविज्ञानमस्वेस्वमितिमूढता ॥२५
सोऽहंसर्वंगते भूपलोकसव्यवहारतः ।
मयेदमुच्यतेसर्वंत्वयापृष्टोव्रजाभ्यहम् ॥२६
एवमुक्त्वाययौधीमान्सुबाहुःकाशिभूमिपम् ।
काशिराजोऽपिसंपूज्यसौऽलर्कंस्वपुरययौ ॥२७
अलर्कोऽपिसुतंज्येष्ठमभिषिच्यनराधिप ।
वनंजगामसन्त्यक्तसर्वसङ्गस्वसिद्धये ॥२८

हे राजन् ! यह मेरा है, यह मैं हूँ इत्यादि ममता और अहंकार पूर्ण विचार के वश में न पड़ना और भले प्रकार धर्म की आलोचना करना क्योंकि धर्म नहीं तो आश्रय भी नहीं मिलता ।२१। विचार करने पर ही 'मैं किसका हूँ' इसका ज्ञान होता हैं, रात्रि के शेष भाग में इस पर भले प्रकार विचार करो ।२३। अव्यक्त से प्रकृति तक विकार रहित, चेतना-रहित, और व्यक्त-अव्यक्त जो कुछ है उसे जानते हुए, ज्ञाता ज्ञेय और अपने विषय में भी जाने ।२४। इसके जान लेने पर ही आप सब कुछ जान लेंगे शरीरादि आत्मा से पृथक् वस्तु में आत्मबोध तथा पराये का अपना मानना ही मूर्खता है ।२५। हे राजन् ! 'वही मैं' साँसारिक ज्ञान में सम्पन्न हूं, जो आपने प्रश्न किया, उसका समाधान कर चुका, अब मैं गमन करता हूँ ।२६। मेधावी सुवाहु ऐसा कह कर चले गये तब काशि-राज ने अलर्क का भले प्रकार पूजन किया और अपने नगर को गये ।२७। अलर्क ने अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य देकर समस्त संग परित्याग करके आत्म सिद्धि के लिए वनवास किया ।२८।

ततःकालेनमहतानिर्द्वन्द्वो निष्परिग्रहः ।
प्राप्ययोगर्द्धिमतुलांपरंनिर्वाणमाप्तवान् ॥२९
पश्यञ्जगदिदसर्वंसदेवासुरमानुषम् ।
पाशैर्गुणमयैर्बद्धंवध्यमनचनित्यशः ॥३०

पूत्रादिभ्रातृपुत्रादिस्वपारक्यादिभवान्वितैः ।
आकृष्यमाणंकरणैर्दुःखार्त्ताभिन्नदर्शनम् ।।३१
अज्ञानपङ्कगर्भस्थमनुद्धारंमहामतिः ।
आत्मानंचसमुत्तीर्णगाथामेतामगायत ।।३२
अहोकष्टंयदस्माभिःपूर्वराज्यमनुष्ठितम् ।
इतिपश्चान्मयाज्ञातंयोगान्नास्तिपरंसुखम् ।।३३
तातैनंत्वंसमातिष्ठ।मुक्तयेयोगमुत्तमम् ।
प्राप्स्यसेयेनतद्ब्रह्मयत्रगत्वानशोचसि ।।३४
ततोऽहमपियास्यामिकिंयज्ञैःकिंजपेनमे ।
कृतकृत्यस्यकरणंब्रह्मभावायकल्पते ।।३५
ततोऽनुज्ञामवाप्याहंनिर्द्वन्द्वोनिष्परिग्रहः ।
प्रयंतिष्पेतथामुक्तौयथायामिनिर्वृतिम् ।।३६

फिर बहुत समय व्यतीत होने पर उन्होंने अतुलित योग ऐश्वर्य को प्राप्त कर परम मोक्ष का लाभ किया ।२९। सुर, असुर, मनुष्यादि से परिपूर्ण यह विश्व गुणमय पाश से बद्ध होकर नित्य ही बध्यमान रहता है ।३०। यह पाश पुत्र आदि, भ्रातृ-पुत्रादि अपने पराये के मोह से बनी हुई है, भिन्न दिखायी पड़ने वाला विश्व उसी पाश में आकृष्ट होकर दुःख में डूब रहा है ।३१। इस पर भी अज्ञान रूपी पंक में फँसने पर मुक्ति का उपाय नहीं है, बुद्धिमान् अलर्क ने इस पर विचार करके 'मेरा उद्धार हो गया' इस प्रकार गाथा का गान किया ।३२। 'अहो कैसा कष्ट है ? पहिले में राज्य भोगता था, परन्तु अन्त में मुझे ज्ञान हो गया कि योग की अपेक्षा अन्य कोई परम सुख नहीं है ।३३। पुत्र ने कहा - हे तात ! मोक्ष लाभ के लिए आप उस श्रेष्ठ योग का आचरण करें तो ब्रह्म को प्राप्त हो सकेंगे क्योंकि ब्रह्म को प्राप्त होकर पुनः शोक में नहीं पड़ना होगा, अब मैं भी जाऊँगा।३४। मुझे यज्ञ या जप की आवश्यकता नहीं है, कृतकृत्य मनुष्य का कार्य तो ब्रह्म प्राप्ति के लिए ही है ।३५। इसलिए आपकी आज्ञा पाकर मैं द्वन्द्व और परिग्रह का त्याग कर मोक्ष लाभ के लिए सम्यक प्रयत्न करूँगा ।३६।

एवमुक्त्वासपितरप्राप्य नुज्ञांततश्वज्ञः ।
ब्रह्मञ्जगामेधावीपरित्यक्तपरिग्रहः ।।३७
सोऽपितस्यपितातद्वत्क्रमेणसुमहामतिः ।
वानप्रस्थंसमास्तथायचतुर्थाश्रममभ्यगात् ।।३८
तत्रात्मजंसमासाद्यपित्वावन्धगुणादिकम् ।
प्रापसिद्धिपरांप्राज्ञस्तत्कालोपात्तसन्मतिः ।।३९
एतत्तेकथितंब्रह्मन्यत्पृष्टाभवतावयम् ।
सुविस्तरंयथावच्चकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छासि ।।४०
यश्चैतच्छृणुयाद्विप्रपठेदासुसमाहितः ।।४१
यदश्वमेधावभृथस्तातःप्राप्नोतिवैंफलम् ।
सकलंतदवाप्नोतिश्रुत्वैतन्मुनिसत्तम ।।४२
एतत्संसारभ्रमणपरित्राणमनुत्तमम् ।
अलकात्रेयसंवादमशुभान्मुच्यतेनरः ।।४३

पक्षियो ने कहा-हे ब्रह्मन् ! वह महामति जड़ अपने पितासे ऐसाकह कर और उनकी आज्ञा लेकर परिग्रह रहित होकर चला गया ।३७। उसके पिता ने भी वानप्रस्थ आश्रम का आश्रम लेते हुय चतुर्थ आश्रम में प्रवेश किया ।३८। वह पुत्र की संगति से गुणादि बन्धन को त्याग कर तत्काल उत्पन्न हुई बुद्धि के वल से परम सिद्धि को प्राप्त हुए ।३९। हे विप्र! आपका पूछा हुआ सभी विस्तार पूर्वक कह दिया अव और क्या सुनना चाहते हो, सो वताओ ।४०। हे ब्रह्मन्! इस वार्ता को जो सावधानी से पढ़ता अथवा श्रवण करता है ।४१। वह अश्वमेध के अवभृथ स्नान के फल को पाता है, हे मुनीश्वर ! इसके श्रवण से ही सव कुछ प्राप्त होता है ।४२। संसार में विचरण करने वालों की श्रेष्ठ रक्षा यही है, इस अलर्क-दत्तात्रेय संवाद को श्रवण करके मनुष्य अशुभ से मुक्त हो जाता है ।४३।

३७—ब्रह्माण्ड और ब्रह्मोत्पत्ति

सम्यगेतन्ममाख्यातंभवद्‌भिर्विजसत्तमाः ।
प्रवृत्तंचनिवृतंचद्विविधंकर्मवैदिकम् ।।१
अहोपितृप्रसादेनभवतांज्ञानमीदृशम् ।
येनतिर्यक्त्वमप्तेतत्प्राप्यमोहरिस्कृतः ।।२
धन्याभवन्तःसंसिद्धयैप्रागवस्थास्थितयतः ।
भवतांविषयोद्‌भुतेर्नमोहैश्चल्यतेमन ।।३
दिष्टयाभगवतातेनमार्कण्डेयनधीमता ।
भवन्तोवैसमाख्याताःसवसन्देहृतमाः ।।४
संसारेऽस्मिन्मनुष्याणांभ्रमतासतिसंङ्कटे ।
भवद्विधैःसमंसङ्गोजायतेनातपस्विनीम् ।।५
यत्तहसङ्कमासाद्यभवद्‌भिज्ञानदृष्टिभिः ।
नस्यांकृतार्थस्तन्नूनंमेष्न्यत्रकृतार्थता ।।६
प्रवृत्तोचनिवृत्तेचभवतांज्ञानकर्मणि ।
मतिमस्तमलाँमन्येयथानान्यस्यकस्यचित् ।।७

जैमिनी बोले—हे श्रेष्ठ द्विजो! वैदिक कर्म प्रवृत्ति और निवृत्ति भेद से दो प्रकार का है आपने वह सब मेरे प्रति भले प्रकार कहा है ।१। आपने पिता के अनुग्रह से ऐसा ज्ञान पाया है, उसी ज्ञान के प्रभाव से: तिर्यक, योनि को पाकर भी आपका मोह नष्ट हो चुका है ।२। आपका मन सिद्धि लाभ के लिये पूर्वावस्था में स्थित रहताहै, अतः आप धन्य हैं, आपके मन को विषयों से उत्पन्न मोह चल यमान नहीं कर सकता ।३। महामति मार्कण्डेयजी ने सौभाग्यसे ही आपका वृत्तान्त कहा था, आप सब सन्देहों को दूर करने वाले हैं ।४। इस सङ्कटप्य विश्व में जो भ्रमते हैं, उनके भाग्य ने आप जैसे तपस्वियों से मिलना दुर्लभ ही है ।५। आप ज्ञानदृष्टा हैं, यदि आपके सङ्ग लाभ से भी मेरा मनोरथ पूर्ण न हुआ तो अन्यत्र कहीं भी हो सकता ।६। आपको प्रवृत्ति और निवृत्ति के ज्ञान और कर्म में जो विश्व बुद्धि प्राप्त हुई हैं, वह मेरे विचार में अन्य किसी को नहीं हो सकती ।७।

यदित्वनुग्रहवतीत्वयिबुद्धिर्द्विजोत्तमाः ।
भवतांतत्समाख्यातुमर्हतेदमशेषतः ॥८
कथमेतत्समुद्भुतंजगत्स्थावरजङ्गमम् ।
कथंचप्रलयंकालेपुनर्यास्यतिसत्तमाः ॥९
कथंचवंशादेवर्षिपितृभूतादिसम्भवाः ।
मन्वन्तराणिचकथंवंशानुचरितंचयत् ॥१०
यावत्यःसृष्टयश्चैवयावन्तःप्रलयास्तथा ।
यथाकल्पविभागश्चयाचमन्वन्तरस्थितः ॥११
यथाचक्षितिसस्थानंयत्प्रमाणंचवै भुवः ।
यथास्थितिसमुद्राद्रिनिम्नागाःकाननानिच ॥१२
भूर्लोकादिश्चलोकानांगणःपातालसंश्रयः ।
गतिस्तथार्कसोमादिग्रहर्क्षज्योतिषामपि ॥१३
श्रोतुमिच्छाम्हंसर्वमेतदाभुतसंप्लवम् ।
उपसंहृतेचयच्छेषजगत्यस्मिन्भविष्यति ॥१४

हे श्रेष्ठ द्विजो ! यदि आपकी मति मेरे प्रति अधिक अनुग्रह वाली हुई है, तो मेरे प्रश्न का विस्तार सहित समाधान करिये । ८ । इस स्थावर जंगम युक्त विश्व की सृष्टि किस प्रकार हुई और यह प्रलय काल में किस प्रकार लीन होगी ? ।९। देव, ऋषि, पितर,भतादि की उत्पत्ति किस प्रकार होती है, और मन्वन्तरों का प्राकट्य कैसे होता है ? ।१०। सम्पूर्ण सृष्टि, समस्त प्रलय, कल्प का तिभाग, मन्वन्तरों की स्थिति।११। पृथिवी का संस्थान और परिमाण पर्वत, शैल, सरिता और वनों का विवरण ।१२। मर्त्यलोक, स्वर्ग और पाताल का विवरण तथा सूर्य, चंद्र ग्रह, नक्षत्र इत्यादि की गति ।१३। इन सबका प्रलय पर्यन्त वर्णन सुनने की अभिलाषा है तथा प्रलयकाल में उपसंहृति होने पर जो जगत् अवशिष्ट रहता है, वह सुनना चाहता हूँ ।१४।

प्रश्नभारोऽयमतुलोयास्त्वयामुनिसत्तम् ।
पृष्टस्तंतेप्रबक्ष्यामस्तच्छणुष्वेहजैमिने ॥१५

मार्कण्डेयेनकथितंपुराक्रौष्टुकयेयथा ।
द्विजपुवायशान्तायव्रतस्नातायधीमते ॥१६
मार्कण्डेयमहात्मानमुपासीनंद्विजोत्तमैः ।
क्रौष्टुकिःपरिपप्रच्छयदेतत्पृष्टवान्प्रभो ॥१७
तस्यचाकथयत्प्रीत्यांयन्मुनिभृगुनन्दनः ।
तत्तोप्रकथयिष्यामःश्रृणुत्वद्विजसत्तमा॥१८
प्रणिपत्यजगन्नाथपत्मयान्तिपितामहम् ।
जगद्योनिस्थितंसृष्टोस्थितौविष्ङस्वरूपिणम् ।
प्रलयेचान्तकर्त्तारंरौद्रंरुद्रस्वरूपिणम् ॥१९
उत्पन्नामात्रस्यपुराव्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
पुराणमेतद्वेदाश्चमुखेभ्योऽनुविनिः सता ॥२०
पुराणसंहिताश्चक्रुर्बहुलाःपरमर्षयः ।
वेदानांप्रविभागश्चक्रुतस्तैस्तुसहस्रशः ॥२१

पक्षियों ने कहा—हे जैमिने ! आपने यह अत्यन्त प्रश्न भार हम पर डाला है,फिर भी हम उसका वर्णन करते हैं, सुनो ।१५। मार्कण्डेयजी ने जिस प्रकार क्रौष्टुकी के प्रति कहा था, उसे ही कहते हैं ।१६ आपने जो प्रश्न किया, वही क्रौष्टुकी ने मार्कंडेयजी से किया था ।१७। हे द्विजवर ! भृगुपुत्र ने प्रसन्न चित्त से जो कुछ कहा था, वही सब कहते हैं सुनो ।१८। जगत् के कारण कमलयोनि पितामह स्वरूप से जो इस संसार को उत्पन्न करते हैं, विष्णु रूपसे स्थित करते और रौद्र रूप से प्रलय काल में संहार करते हैं, उन्हीं जगन्नाथको प्रणाम पूर्वक हम सब कहते हैं ।१९। मार्कण्डेयजी ने कहा पुराकाल में ब्रह्माजी के उत्पन्न होने पर उनके चार मुखी से वेद-पुराण प्रकट हुए ।२०। उस पुराण संहिता ऋषियों ने अनेक अंश में विभाजित किया तथा वेद के भी हजार विभाग किये ।२१।

धर्मज्ञ नंचवैराग्यमैश्वायंचमहात्मनः ।
तस्योपदेशेनविनानहिसिद्धंचतुष्टयम् ॥२२

वेदान्सप्तर्षंप्रस्तस्माज्जगृहुस्तस्यमानसाः ।
पुराणंजगृहुश्चाद्यामुनयस्तस्यमानसाः ॥२३
भृगोःसकाशाच्चयवनस्तेनोक्तंचद्विजन्मनाम् ।
ऋषिभिश्चापिदक्षायप्रोक्तमेतन्महात्मनिः ॥२४
दक्षेणचापिकथितमिदतासीत्तदामम ।
तत्तुभ्यंकथयाम्यद्यकलिकल्मषनाशनम् ॥२५
सर्वमेतन्महाभागश्रूयतामेसमाधिना ।
यथाश्रुतंमयापूर्वंदक्षस्यगदतोमुने ॥२६
प्रणिपत्यजगद्यानिमजमव्ययमाश्रयम् ।
चराचरस्यजगतोधातारंपरमंपदम् ॥२७
ब्रह्माणमादिपुरुषमुत्पत्तिस्थितिसंयमे ।
यत्कारणमनौपम्यंयत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ॥२८

उनके उपदेश बिना धर्म ज्ञान, वैराग्य और ईश्वरीय भाव सिद्ध हो सकते।२२। उनके मनसे सप्तर्षियों की उत्पत्ति हुई जिनके समस्त वेद पुराण उनके मानसोत्पन्न अन्य ऋषियों ने ग्रहण किए ।३। भृगुसेउस पुराण को लेकर च्यवन ऋषि ने अन्य ऋषियों पर प्रकट किया औरउन ऋषियों ने उसे दक्ष के प्रति कहा।२४। दक्ष ने ही उसे हमें प्रदान किया है, तभीसे यह हमारे पास है,इसके प्रभाव से कलियुगमें पाप नष्टहोजाते हैं, उसीको तुमसे कहते हैं:२५।हे मुने ! हमने दक्षसे जो सुना, वही दत्त-चित्त होकर हमसे सुनो ।२६। जो जगत् कारण,अजामा,अव्यय, चराचर विश्व के एक मात्र आश्रय,धाता एवं परमपद रूपहैं ।२ । जो सृष्टिस्थिति और प्रलय के कारण,आदि पुरुष,अनुपम हैं तथा सब कुछ उन्हींमें प्रति-ष्ठित रहता है ।२८।

तस्मैहिरण्यगर्भायलोकतन्त्रायधीमते ।
प्रणम्यसम्यग्वक्ष्यामिभूतवर्गमनुत्तमम् ॥२९
महदाद्यंविशेषान्तंमवैरूप्यंसक्षणम् ।
प्रमणैपंचभिगंभ्यस्रोतोभिःमुङ्भिरन्वितम् ॥३०

पुरुषाधिष्ठितं नित्यमनित्यमिवचस्थितम् ।
तच्छूयतांमहाभागपरमेणसमाधिना ।।३१
प्राधानंकारणंयत्तदव्यक्ताख्यमहर्षयः ।
यदाहुःप्रकृतिसूक्ष्मांनित्यांसदसदात्मिकाम् ।।३२
ध्रुवमक्षय्यमजरममेयंनान्यसंश्रयम् ।
गन्धरूपरसैर्हीनंशब्दस्पर्शविवर्जितम् ।।३३
अनाद्यन्तजगद्योनित्रिगुणप्रभवाप्ययम् ।
असाम्प्रतमविज्ञार्यंब्रह्माग्रे समवर्त्तत ।।३४
गुणसाम्यात्ततस्तस्मात्क्षेत्रज्ञाधिष्ठितान्मुने ।।३५

उन्हीं हिरण्य गर्भ को प्रणाम करके अनुपम प्रपंच को कहते हैं।२९। महत् से विशेष पर्यन्त जो भी भौतिक सृष्टि के विकार और लक्षण हैं उन सभीको पाँच प्रकार के प्रमाण और षट्स्रोत सहित कहेगे ।३०। पुरुष से अधिष्ठित होने के कारण यह भूत सृष्टि नित्य होकर भीअनित्य के समान अवस्थान करती है, उसे भी कहते हैं, सावधान चित्त से सुनो ।३१। सत्-असत् वाली अव्यक्त कही जाने वालीको महर्षियों ने नित्य सूक्ष्मा प्रकृति कहा है ।३२। जो नित्य अक्षय, अजर, अपरिमेय, अनाश्रित, निर्गंध तथा रूप, रस शब्द और स्पर्श से परे हैं ।३३। जो अनादि अनन्त एव विश्व के उत्पत्ति स्थान हैं जिनसे तीनों गुणों की उत्पत्ति हुई है, जो अविनाशी, अविज्ञेय,सदा विद्यमान और सर्वकारण है, वही प्रधान स्वरूप ब्रह्म सबके समक्ष विराजमान रहकर ।३४। प्रलय के पश्चात् अखिल विश्व को प्राप्त करके स्थित रहते हैं, उन्हीं में परस्पर अनुकूल और अव्याहत रूपसे तीनों गुण विद्यमान रहते है ।३५।

गुणभावात्सृज्यमानात्सर्गकालेत्ततःपुनः ।
प्रधानतत्त्वमुद्भूतंमहान्तंतत्समावृणोत् ।।३६
यथाबीजंत्वचातद्वदव्यक्तेनावृतीमहान् ।
सात्त्विकोराजसश्चैवतामसश्चत्रिधोदितः ।।३७

ततस्तस्मादहङ्कारस्त्रिविधोवैऽभ्यजायत ।
वैकारिकस्तैजश्चभूत दिश्चसतामसः ॥३८
महताचावृतःसोऽपियथाव्यक्तेनवैमहान् ।
भूतादिस्तुविकुर्वाणःशब्दतन्मात्रकततः ॥३९
ससर्जशब्दतन्मात्रादाकाशंशब्दलक्षणम् ।
आकाशंशब्दमात्रन्तुभूतादिश्चावृणोत्ततः ॥४०
स्पर्शतन्मात्रमेवेहजायतेनात्रसंशयः ।
बलवान्जायतेवायुस्तस्यस्पर्शगुणोमतः ॥४१
वायुश्चापिविकुर्वाणोरूपमात्रससर्जह ।
ज्यातिरुत्पद्यतेवायोस्तद्रूपगणमुच्यते ॥४२

सृष्टिकाल में क्षेत्रज्ञ के अधिष्टानसे इनके इसी-इसी गणकीसहायता से प्रधान तत्व प्रकट होकर महत्तत्व को ढक लेता है ।३६। जैस बीज त्वचा द्वारा ढ़का रहता है, वैसे ही प्रधान से महत्तत्व ढका रहता है, वह महत्तत्व सात्विक, राजसिक और तामसिक के भेद से तीन प्रकार का हैं ।३७। उस महत्तत्व से अहङ्कार उत्पन्न होता है, वैकारिक, तेजस् और तामस के भेद से अहङ्कार भी तीन प्रकार का है, तामस अहङ्कार ही भूतादि संज्ञक है ।३८। जिस प्रकार प्रधान से महत्तत्व ढका है, वैसे ही महत्तत्व से अहङ्कार ढका हैं और इसीके प्रभाव से विकारको प्राप्त होकर शब्द तन्मात्राकी सृष्टि है ।३९। शब्दात्मक आकाश इस शब्द तन्मात्र से ही प्रकट होता है, तब तामस अहङ्कार से शब्द रूप आकाश ढक जाता हैं ।४०। इससे स्पर्श तन्मात्र की उत्पत्ति होती है, तब स्पर्श गुण वाला अत्यन्त बलवान् वायु उत्पन्न होता है ।४१। शब्द मात्र आकाश से स्पर्श मात्र ढका रहता है, इससे वायुके विकृत होने से रूप मात्र की उत्पत्ति होती है, वायु से रूप गुणात्मक ज्योति प्रकट हुई ।४२।

स्पर्शमात्रस्तुवैवायूरूपमात्रंसमावृणोत् ।
ज्योतिश्चापिविकुर्वाणरसमात्रंससर्जह ॥४३

सम्भवन्तितततोह्यापश्चासन्वैतारसात्मिकाः ।
रसमान्त्रन्तुताह्यापोरूपमावंसमावृणोद् ॥४४
अपश्चापिविकुर्वन्त्योगन्धमात्रंससर्जिरे ।
संघातोजायतेतस्मात्तस्यन्धोगुणोमतः ॥४५
तस्मिंस्तस्मिंस्तुतन्मात्रतेनतन्मात्रतास्मृता ।
अविशेषवाचकत्वावविशेषास्ततस्चते । ४६
नशान्तानापिघौरास्तेनमूढश्चाविशेषतः ।
भुततन्मात्रसर्गोष्यमहङ्कारात्तु तामसात् ॥४७
वैकारिकादहंकारान्सवीद्रिक्तात्तु सात्विकात् ।
वैकारिकःससर्गस्तुयुगपत्सप्रवर्त्तते ॥४८

स्पर्श मात्र वायु से रूपमात्र ढका रहता है, इससे ज्योति के विकृत होने पर रसमात्र की उत्पत्ति होती है।४२। इसी के द्वारा रसात्मक जल उत्पन्न होता है जो रूपमात्र से ढका रहता है।४४ फिर रसमात्र जल की विकृति से गन्धमात्र को उत्पत्ति होती है, उसी से गन्धात्मिका पृथिवी उत्पन्न होती है।४५। इसी प्रकार जिस-जिस पदार्थ में जो तन्मात्र है, उस-उस के द्वारा ही तन्मात्र की गणना होती है इसके लिए कोई विशेष वाचक नहीं होता, इसलिए यह भी अविशेष है।४६। अविशेष होने के कारण वह शान्त,घोर अथवा मूढ़ नहीं हैं, इस प्रकार भूत तन्मात्र की उत्पत्ति अहङ्कार से ही होती हैं।५८। सात्विक और वैकारिक अहङ्कार से एक संग ही वैकारिक सृष्टि की प्रवृत्ति है।४८।

बुद्धीन्द्रियाणिपञ्चैवपंचकर्मेन्द्रियाणिच ।
तैजसानीन्द्रियाण्याहुर्देवावैकारिकादश ॥४९
एकादशंमनस्तत्रदेवावैकारिकाःस्मृताः ।
श्रोत्रत्वक्चक्षुषीजिह्वानासिकाचैवपंचमो ॥५०
शब्दादीनामावाप्त्यर्थंबुद्धियुक्तानिवक्ष्यते ।
पादौपायुरूपस्थश्चहस्तौवाक्पंचमीभवेत् ॥५१

गतिर्विसर्गोह्यानन्दः शिल्पवाक्यंचकर्मतत् ।
आकाशंशब्दमात्रंतुस्पर्शमात्रसमाविशत् ॥५२
द्विगुणोजायतेवायुस्तस्यास्पर्शोगुणोमतः ।
रूपतथंत्राविशतःशब्दस्पर्वगुणावुभौ ॥५३
त्रिगुणास्तुतश्चाग्निःसशब्दस्पर्शरूपवान् ।
शब्दःस्पर्शश्चरूपंचरसमात्रंसमाविशत् ॥५४
तस्माच्चतुर्गुणाह्यापोविज्ञयास्तारसात्मिकाः ।
शब्दःस्पर्शश्चरूपचरसोगन्धंसमाविशत् ॥५५
संहतागन्धमात्रेणआवृण्वस्तेमहीमिमाम् ।
तस्मात्पंचगुणाभूमःस्थलाभूतेषुदृश्यते ॥५६

पंच ज्ञानेन्द्रिय और पंच कर्मेन्द्रिय तैजस इन्द्रिय कही गई हैं, यह वैकारिक दश देवता होते हैं ।४९। ग्यारहवाँ मन मिलाकर ग्यारहदेवता हुए, श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और नासिका ।५०। इनसे शब्दादि का वोध होता है, इसलिए इन्हें बुद्धीन्द्रिय कहा गया हैं, चरण, गुद, उपस्थ हाथ और जिह्वा ।५१। इत्यादि कर्मेन्द्रिय कही गई हैं, इनके द्वारा चलना, मल त्यागना, मैथुन, शिल्प और कथन यह कार्य होते हैं, शब्द मात्र आकाश, स्पर्श मात्रमें समाविष्ट होकर ।५२। द्विगुण वायुको उत्पन्न करताहै, उसका विशेष गुण वायु ही हैं, शब्द और स्पर्श यह दोनों गुण रूप में समाविष्ट होकर ।५३। त्रिगुण अग्नि की उत्पत्ति करते हैं, यह अग्नि, शब्द और रूप गुण से युक्त है, शब्द, स्पर्श और रूप रस-मात्रमें समावेश करके । ४। चतुर्गुण रसात्मक जल की सृष्टि करते हैं और अन्त मे शब्द, स्पर्श, रूप और रस के गन्धमात्र में समावेश करने से ।५५। उनके साथ मिलकर इस पृथिवीकी आवृत्ति करते हैं,इसीलिए भूतोंमें पञ्चगुणात्मिका स्थूलाकार वाली पृथ्वी दिखाई देती है ।५६।

शान्ताघोराश्चमूढाश्चविशेषास्तेनतेस्मृताः ।
परस्परानुप्रवेश द्धासयन्तिपरस्परम् ॥ ७
भूमेरन्तस्त्विमंसर्वंलोकं घनावृतम् ।
विशेषा... ॥५८

गणंपूर्वस्यपूर्वस्यप्राप्नुवन्त्युत्तरोत्तरम्!
नानावीर्य्याःपृथग्भूताःसप्ततेसंहतिंविना ।।५९
नाशक्नुवन्प्रजाःस्त्रष्टुमसमागम्यकृत्स्नशः!
सयेत्यान्योन्यसंयोगमन्योन्याश्रविणश्चते ।।६०
एकसंघातचिह्नाश्चसंप्राप्यैक्यमशेषतः ।
पुरुषाधिष्ठितत्त्वाच्चअव्यक्तानुग्रहेणच ।।६१
महदाद्याविशेषान्ताह्यण्डमुत्पादयन्यिते ।
जलवुद्बुदत्तत्क्रमाद्वै वृद्धिमागतम् ।।६२]
भूतेभ्योऽण्डंमहावुद्धे बृहत्तदुदकेशयम् ।
प्रकृतेऽण्डेविवद्धःसन्क्षेत्रज्ञोब्रह्मसंज्ञितः ।।६३

इसी कारण वह शान्त, घोर मूढ़ कहे गये हैं, वह परस्पर एक दूसरे को धारण करते हैं ।५९। यह सभी लोकालोक भूमि के अन्तर में निविष्ट रहकर नियतत्व के कारण इन्द्रिय ग्राह्य 'विशेष' कहेगयेहैं ।५८। पहिले पहिले के गु उत्तरोत्तरमें प्रविष्ट होते हैं, जब तक यह अनेक वीर्यवाले सात पदार्थ परस्पर नहीं मिलते, ।५९। तव तक सृष्टि करने में समर्थ नहीं होते, जब यह परस्पर मिलकर एक दूसरे के अवलम्बन से।६०। भले प्रकार से एकता को पाते हैं और जब पुरुष का अधिष्ठान और प्रकृतिका अनुग्रह प्राप्त करते हैं ।६१। तभी महत् से विषय तक इन सब में अण्ड की उत्पत्ति करते हैं यह अण्ड जलमें रहकर ही क्रमशः बढ़ता रहता है ।६२। जल में स्थित यह अण्ड भूतों से वृहत् है, ब्रह्म संज्ञा वाले क्षेत्रज्ञ भी उस प्राकृत अण्ड में बढ़ते हैं ।६३।

सवैशरीरीप्रथमःसवैपूरुषउच्यते ।
आदिकर्त्ताचभूतानांब्रह्माग्रेसमवतत ।।६४
तेनसर्वमिदंव्याप्तं त्रैलोक्यसचराचरम् ।
मेरुस्तस्यानुसंभूतोजरायुश्चापिपर्वताः ।।६५
समुद्रागर्भसलिलंतस्याण्डस्यमहात्मनः ।
तस्मिन्नण्डेजगत्सर्वंसदेवासुरमानुषम् ।।६६

द्वीपाद्यद्रिसमुद्राश्चसज्योतिर्लोकसंग्रहः ।
जलानिलानलाकाशैस्ततोभूतादिनावाहुः ॥६७
वृतमण्डं दशगणैरेकत्वेनतै पुनः ।
महतातत्प्रमाणेनसहैवानेनवेष्ठितः ॥६८
महांस्तैसंयुतःसर्वैरव्यक्तेनसमावृतः ।
एभिरावरणैरण्डंसप्तभिःप्रकृतंवृंतम् ॥६९

वही प्रथम देह और पुरुष नाम वाले हैं, वही भूतों के आदिकर्त्ता ब्रह्मा हैं, वही सबसे आगे प्रतिष्ठित होते हैं।६४। वही चराचर तीन लोकों को व्याप्त कर रहे हैं, उस वृहद् अण्ड मेरु पर्वत जरायु।६५। और समुद्र गर्भजल है, सुर असुर, मनुष्यादि से परिपूर्ण सम्पूर्ण विश्व उस अण्ड में है।६६। द्वीप, पर्वत, समुद्र, ज्योति आदि के सहित सभीलोक उसमें स्थित हैं, जल, वायु, अग्नि और आकाश भूतादि के सहित।६ । प्रत्येक ही उत्तरोत्तर दशगुण के नियम से वाहर के भागमें उस अण्डको घेरे रहते हैं, इसके अतिरिक्त महत्तत्व ने इसी प्रमाणसे उनके साथ अण्डका आच्छादन किया हुआ है।६८। इस महतत्व के सहित अण्ड को ढक कर सुशोभित होती है, इस प्रकार सात प्राकृतिक आवरणों द्वारा वह अण्ड ढका हुआ है, ।६९।

अन्योन्यमावृत्यचताअष्टौप्रकृतयःस्थिताः ।
एषासाप्रकृतिर्नित्नातदन्तःपुरुषश्चसः ॥७०
ब्रह्माख्यकथितोयस्तेसमाच्छ्र यतांपुनः ।
यथःमग्नोजलेकश्चिदुन्मज्जञ्जलसम्भवम् ॥७१
वलयंक्षिपतिब्रह्मासतथाप्रकृतीर्विभुः ।
अव्यक्तंक्षेत्रमुद्दिष्टंब्रह्माक्षेत्रज्ञउच्यतेः ॥७२
एतत्समस्तंजातीयात्क्षेत्रज्ञलक्षणम् ।
इत्येषप्राकृतःसर्गंक्षेत्रज्ञाधिष्ठितस्तुसः ।
अबुद्धिपूर्वःप्रथमःप्रादुर्भूतस्तडिद्यथा ॥७३

इसी प्रकार आठ प्रकृति परस्परको ढककर विद्यमान है इस प्रकृतियों को नित्य स्वरूप समझो, इनके अन्त में वह पुरुष विद्यमान है।७०। तुमसे

जिस ब्रह्म संज्ञक पुरुष का वर्णन किया, उसका विषय अब संक्षित रूपसे कहता हूँ जल में डूबा हुआ मनुष्य जैसे जल में से उठने समय जल में प्रकट ।७१। द्रव्य को फेंकता है, उसी प्रकार ब्रह्मा को प्रकृति का स्वामी समझो, क्योंकि प्रकृति क्षेत्र और ब्रह्मा क्षेत्रज्ञ हैं ।७२। क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ के लक्षण यही हैं, इसी प्रकार क्षेत्रज्ञ से अधिष्ठित प्राकृत सृष्टि अबुद्धि सहित प्रथम विद्युत् के समान प्रकट हुई ।७३।

३८—ब्रह्माजी की आयु का परिमाण

भगवंस्त्वण्डसंभूतिर्यथावत्कथितामम ।
ब्रह्माण्डेब्रह्मणोजन्मथाचोक्तंमहात्मनः ॥१
एतदिच्छाम्यहंश्रोतुंत्वत्तोभृगुलोद्भव ।
यदानसृष्टिर्भूतानामस्तिकिंनुनचास्तिवा ।
कालेवेप्रलयस्यान्तेसर्वस्मिन्नुपसंहृते ॥२
यदातुप्रकृतौयातिलयंविश्वमिदजगत् ।
तदोच्यतेप्राकृतोऽयंविद्वद्भिःप्रतिसंचरः ॥३
स्वात्मन्यवस्थितेऽव्यक्तेविकारेप्रतिसंहृते ।
प्रकृतिःपुरुषश्चैवसाधर्म्येणावतिष्ठतः ॥४
तदातमश्चसत्वंचसमत्वेनगुणौस्थितौ ।
अनुद्रिक्तावनूनौचओतप्रोतौपरस्परम् ॥५
तिलेषुवायथातैलंघृतंपयसिवास्थितम् ।
तथातमसित्वेचरजोऽप्यनुसृतंस्थितम् ॥६

कौष्टुकि ने कहा—हे भगवान् ! आपने अणु की सृष्टि और ब्रह्माण्डमें ब्रह्माजी के जन्म को यथावत् कहा है।१। हे भृगुवंशोत्पन्न ! जब प्रलय के अवसान में नष्ट हुई अविद्यमान थी, तब फिर भूतोंकी उत्पत्ति किसप्रकार हुई? वही सब सुनना चाहता हूँ ।२। मार्कण्यजी ने कहा—जब यह संसार

प्रकृति में लीन हो जाताहै,उसी अवस्थाको विद्वानों ने प्रलय कहा है ।३। जब आत्मा में अवस्थित हो जाती है तब सब पदार्थ अदृश्य होजाते हैं, जब प्रकृति-पुरुष दोनों साधर्म्यमें प्रतिष्ठित होते हैं।४।उससमय सत्व और तम दो ही गुण समान भावसे अधिष्टान करतेहैं,उससमय उनमें से कोई बढ़ता या घटता नहीं, वे दोनों ताने बाने के समान समभावसे परस्पर संयुक्त अधिष्ठित रहते हैं ।५। जैसे तिल में तेल और दूध में घी विद्यमान है, वैसे ही सतोगुण और तमोगुण में रजोगुण विद्यमान रहता है ।६।

उत्पत्तिर्ब्रह्मणोयावदायुर्वैद्विपरार्द्धिकम् ।
तावद्दिनपरेशस्यतत्समासंयमेनिशा ।।७
(अष्टौयुगसहस्राणिअहोरात्रंप्रजापतेः ।
अनेवैवतुमानेनशतंब्रह्मासजीवति ।
पितामहशतेनैवविष्णोर्मानंविधीयते ।
निमेषार्धेनशंभोस्तुसहस्राणिचतुर्दश ।
विनश्यंतितथाविष्णोरसंख्याताःपितामहाः ।।
अहमुखेप्रबुद्धस्तुजगदादिरनादिमान् ।
सर्वहेतुरचिन्त्यात्मापरःकोऽप्यपरक्रियः ।।८
प्रकृतिपुरुषंचैवप्रविश्याशुजगत्पतिः ।
क्षोभयामासयोगेनपरेणपरमेश्वरः ।।९
यथामदोनवस्त्रीणां यथावाधवानिलः ।
अनुप्रविष्टःक्षोभायतथासोयोगमूर्त्तिमान् ।।१०
प्रधानेक्षोभ्यमाणेतुदेवोब्रह्मसंज्ञितः ।
समुत्पन्नोऽण्डकोषस्थोयथातेकथितमया ।।११
सएवक्षोभकःपूर्वंसक्षोभ्यःप्रकृतेःपतिः ।
ससंकोचविकाशाभ्यांप्रधानत्वेऽपिसंस्थितः ।।१२
उत्पन्नःसजगद्योनिरगुणोऽपिरजोगुणम् ।
भुञ्जन्प्रवर्ततेसर्गेब्रह्मत्वंसमुपाश्रितः ।।१३।

ब्रह्माजी की आयुका परिमाण द्विपरार्द्ध पर्यन्तहै,जो परिमाण उनके दिन का है,उतना ही उनकी रात्रि का है ।७। (आठ हजार का प्रजापति का एक अहोरात्र होता हैं, इसी परिमाण से ब्रह्माजी की आयु सौ वर्ष की है,ब्रह्माजी की सौ आयुधों के बराबर विष्णुकी आयु होती है, शिवके अर्द्ध निमेषमें चौदह हजार विष्णु होजाते हैं ब्रह्मा कितने होने हैं? इसकी संख्या नहींहै)वह विश्वके आदि हैं,उनका आदि नहीं, वह सबके कारण, अचिन्त्यात्मा परमेश्वर और क्रियातीत हैं ।८। वह जगदीश्वर परम योग के निमित्त प्रकृति और पुरुष में प्रवेश करके उनका विक्षोभ करतेहैं।९। जिसप्रकार मद अथवा वसंत समीर नवयुवतियोंके हृदयको क्षोभित करते हैं,वैसे ही ब्रह्माजी प्रकृति और पुरुषको क्षोभित करते हैं ।१०। प्रकृति को क्षोभित कर ब्रह्मा संज्ञक देव अण्डकोषमें स्थित होकर समुत्पन्न होते हैं, यह मैंने तुम्हारे प्रति वर्णन किया है।११। पहिले तो वे क्षोभित करते हैं फिर प्रकृति के स्वामी होकर स्वयं क्षोभित होते हैं, इस प्रकार संकोच और विकास से वह प्रकृति में प्रतिष्ठित रहते हैं ।१२। वह जगद्योनि निर्गुण होते हुए भी प्रकट होकर रजोगुण के अवलम्ब से ब्रह्मा के रूप में आविर्भूत होकर सृष्टिके उद्यम में लगते हैं ।१३।

ब्रह्मत्वेसप्रजा सृष्ट्वाततःसत्त्वातिरेकवान् ।
विष्णुत्वमेत्यधर्मेणकुरुतेपरिपालनम् ।।१४

ततस्तमोगुणोद्रिक्तोरुद्रत्वेचाखिलंजगत् ।
उपसंहृत्यवंशशेतेत्रैलोक्यंत्रिगुणोऽगुणः ।।१५
यथाप्रग्व्यापकःक्षेत्री पालकोलावकस्तथा ।
तथाससंज्ञामाप्नोतिब्रह्मविष्णुहरात्मिकाम् ।।१६

ब्रह्मत्वेसृजतेलोकान्रुद्रत्वेसंहरत्यपि ।
विष्णुत्वेचाप्युदासीनस्तिस्रोऽवस्थाःस्वयम्भुवः ।।१७

रजोब्रह्मातमोरुद्रोविष्णुःसत्त्वजगत्पतिः ।
एतएवत्रयोदेवाएतएवत्रयोगुणाः ।।१८

अयोन्यमिथुनानाह्येतेअन्योन्याश्रयिणस्तथा ।
क्षणंवियोगोनह्येषांनत्यजन्तिपरस्परम् ।।१९
एवंब्रह्माजगत्पूर्वोदेवदेवश्चतुर्मुखः ।
रजोगुणंसमाश्रित्यस्रष्टत्वेसव्यवस्थितः ।।२०

ब्रह्मा रूप सृजन कार्य करके सतोगुणके आधिक्य से विष्णु रूप होकर प्रजा-पालन करते हैं ।१४। फिर तमोगुण का उद्वेग होने पर रूप धारण कर संहार करके शयन करते हैं,इस प्रकार वह निर्गुण ब्रह्म तीनों काल में तीनों गुणों का अवलम्बन करते हैं ।१५। सर्व जनक, सर्वव्यापी ईश्वर इस प्रकार, सृष्टि, स्थिति और प्रलय करने के कारण ही उनकी संज्ञा ब्रह्मा, विष्णु और शिव होती है ।१६। वह ब्रह्म रूपमें सब लोकों को उत्पन्न रुद्र रूप में संहार और विष्णु रूप में उदासीन होकर रहतेहैं, स्वयंभू भगवान् की यह तीन अवस्था हैं ।१७। ब्रह्मा रजोगुण रुद्र तमोगुण और विष्णु सतोगुण हैं ।१८। यह त्रिदेव तीन गुण रूपमें परस्पर के आश्रय पूर्वक स्थित रहते हैं,यह क्षण भर को भी विमुक्त नहीं होते।१९। इस प्रकार जगत् के आदि देव चतुर्मुखी ब्रह्मा रजोगुण के आश्रय में सृष्टि कार्य में प्रवृत्त होते हैं ।२०।

हिरण्यगर्भोदेवादिनादिरुपचारतः ।
भूपद्मकर्णिकासंस्थोब्रह्माग्रेसमजायतः ।।२१
तस्यवर्षशतंत्वेकंपरमायुर्महात्मनः ।
ब्राह्म्येणैवहिमानेनततस्यसंख्यांनिवोधमे ।।२२
निमेषदंशभिःकाष्ठातथापञ्चभिरुच्यते ।
कलास्त्रिशच्चवैकाष्ठामुहूर्त्तंत्रिशदेवताः ।।२३
अहोरात्रंमुहूर्त्तानांनृणांत्रित्तुवैस्मृतम् ।
अहोरात्रैश्चत्रिद्भिःपक्षौद्वौमास उच्यते ।।२४
तेःषड्भिरयनंवर्षंद्वेयनेदक्षिणोत्तरे ।
तद्देवानामहोरात्रदिनंतत्रोत्तरायणम् ।।२५
दिव्यैवर्षसहस्रैस्तुकृतत्रेतादिसंज्ञितम् ।
चतुर्युगद्वादशभिस्तद्विभागंश्रृणुष्वमे ।।२६

चत्वारितुसहस्राणिवर्षाणांकृतमुच्यते ।
शतानिसन्ध्याचत्वारिसन्ध्याशश्चतथाविधः ।
त्रेतात्रीणिसहस्राणिदिव्याब्दानांशतत्रयम् ।
तस्यसन्ध्यासमाख्यातामध्यांशश्चतथाविधः ।।२८

वह देवताओं के आदि रूप हिरण्य गर्भ एक प्रकार से आदि रहित हैं ।२१। वह भूपद्मकर्णिका का आश्रय करके सब से पहिले प्रकट होते हैं ।२८। उनकी परमायु ब्राह्म मान से सौ वर्ष की है, उनकी संख्या का वर्णन करता हूँ, सुनो ।२२। पन्द्रह निमेष की काष्ठा, तीस काष्ठा की एक कला, तीस कला का एक मुहूर्त ।२३। और तीस मुहूर्त का मनुष्यों का एक अहोरात्र होता है, तीस अहोरात्र अथवा दो पखवारों का एक मास होता है ।२४ ।छः मास का एक अयन और दो अयन का एक वर्ष होता है, दक्षिणाय और उत्तरायण के भेद से अयन दो प्रकार का है, इस प्रकार मानव-मान से एक वर्ष का देवताओं का एक अहोरात्र होता है, उसमें उत्तरायण देवताओं का दिन है ।२५। देवताओं के परिमाण से बारह वर्ष की एक चतुर्युगी होती है, अब उन चारों युगों का विभाग वर्णन करता हूँ ।१६। चार हजार दिव्य वर्षों का सत्ययुग तथा उसकी संध्यांश के चार चार सौ वर्ष होते हैं ।२७। तीन हजार दिव्य वर्षों का त्रेतायुग और उसकी सायं तथा संध्यांश के तीन-तीन सौ वर्ष होते हैं ।२८।

द्वापरंद्वेसहस्रेतुवर्षाणांद्वेशततथा ।
तस्यसन्ध्यासमाख्याताद्वेशताब्देतदंशकः ।।२९
कलिःसहस्रंदिव्यानामब्दानांद्विजसत्तम ।
सन्ध्यासन्ध्यांशकश्चैवशतकौसमुदाहृतौ ।।३०
एषाद्वादशसाहस्रोयुगाख्याकविभिःकृताः ।
एतत्सहस्रगुणितमहोब्राह्ममुदाहृतम् ।।३१
ब्रह्मणोदिवसेब्रह्मन्मनवःस्युश्चतुर्दश ।
भवन्तिभागशस्तेषांसहस्रंतद्विभज्यते ।३२

देवा:सप्तर्षय:सेन्द्रामनुस्तत्सनवोनृपाः ।
मनुनासहसृज्यन्तेसंह्रियन्तेचपूर्ववत् ।।३३
चतुर्युगानांसंख्यातासाधिकाह्येकसप्ततिः ।
मन्वन्तरतस्यसंख्यांमानुषाब्दैर्निबोधमे ।३४
त्रिंशत्कोटचस्तुसम्पूर्णासंख्याताःसंख्ययाद्विज ।
सप्तषष्टिस्तथान्यानिनियुतानिचसंख्यया ।।३५
विंशतिश्चसहस्राणिकालोऽयसाधिकंविना ।
एतन्मन्वन्तरंप्रोक्तंदिव्यैर्वर्षैर्निबोधमे ।३६

दो हजार दिव्य वर्षों का द्वापर, उसकी सन्ध्या-सन्ध्यांश के दो-दो सौ वर्ष होते हैं ।२९। एक हजार दिव्य वर्षका कलियुग तथा उसकी संध्या-संध्यांश के एक एक सौ वर्ष होते है ।३०। इस प्रकारसे चारों युग का परिमाण कवियोंने बारह हजार दिव्य वर्षोंमें विभक्त कियाहै, इसको सहस्रगुणा करने पर जो समय होता है, वही ब्रह्मा का एक दिन कहा गया है ।३१ ब्रह्माके इस एक दिनमें चौदह मनु हो जाते है उसका सहस्र विभाग कहा गया है ।३२। इन्द्रादि देवा सप्तर्षि, मनु और मनुपुत्र राजा मन्वन्तर सहित उत्पन्न होते और पहिले से समान नष्ट होजाते हैं ।३३। इकहत्तर चतुर्युगियों का एक मन्वन्तर होता है इसकीसंख्या मानव मान के अनुसार कहता हूं ।३४। तीस करोड़ सड़सठ लाख बीस हजार मानव वर्ष का एक मन्वन्तर होता हैं, अब दिव्य मान के अनुसार सुनो ।३५-३६।

अष्टौवर्षसहस्राणिदिव्यासंख्ययायुतम् ।
द्विपञ्चाशत्तथान्यानिसहस्रंण्यधिकानितु ।।३७
चतुर्दशगुणोह्येषकालोब्राह्मचमहःस्मृतम् ।
तस्यान्तेप्रलय:प्रोक्तोब्राह्मोनैमित्तिकोबुधैः ।।३८
भूर्लोकोऽथभुवर्लोक:स्तन्निवासिनः ।
तदाविनाशमायांतिमहर्लोकश्चतिष्ठति ।।३९
तद्वासिनोऽपितापेनजनलोकंप्रयान्तिवै ।
एकार्णवेत्रैलोक्येब्रह्मास्वपितिवैनिशि ।।४०

तत्प्रमाणैवसारास्त्रिस्तदन्तेसृज्यतेपुनः ।
एवंतृन्नह्मणोतर्षमेकंवर्षशततुतत् ।।४१
शतंहितस्यवर्षाणांपरमित्यभिधीयते ।
पच शद्भिस्तथावर्षैं परार्द्ध मितिकीर्त्यते ।।४२
एकमस्यपरार्द्ध तुव्यतीतंद्विजसत्तम ।
यस्यान्तेऽभन्महाकल्प पाद्मइत्यभिविश्रुतः ।।४३
द्वितीयस्यपरार्द्ध स्यवर्त्त मानस्यवैद्विज ।
वाराहइतिकल्पोऽयंप्रथमःपरिकल्पितः ।।४४

आठ लाख बावन सहस्र दिव्य वर्षका परिमाण एक मन्वन्तरको होता है ।३७। इतने काल को चौदह गुणा करनेपर एक करोड़ उन्नीस लाख अटा- ईस हजार दिव्य वर्षोंका ब्रह्मा का एकदिन होता है, इस ब्रह्म दिवस के अन्त में जो प्रलय होता है, उसी को ज्ञानीज्ञन नैमित्तिक प्रलय कहते है, ।३८। भूर्लोक भुवर्लोक और स्वर्लोक में निवास करने वाले जीव, इन लोकोंके नष्ट होनेपर महर्लोकमें जाकर निवास करते हैं।३९-४१ जो परिमाण ब्रह्माजी केदिन का है, उतना ही उनका रात्रि का है रात्रिके अन्त में सृजन कार्य का पुनरारम्भ होता है इस प्रकारसे ब्रह्मा का एक वर्ष होता है ।४१। एक सौ वर्ष का पर और पांच सौ वर्ष का एक परार्द्ध होता हैं ।४२। हे द्विजोत्तम ! इस प्रकार ब्रह्म जी का एक परार्द्ध बीत चुका है, उसी के अन्त में पाद्म, संज्ञक महाकल्प उपस्थित हुआ था ।४३। अब यह 'वाराह कल्प' नामक द्वितीय परार्द्ध हैं, यही प्रथम कल्प कहा गया हैं ।४४।

३९—प्राकृत और वैकृत सृष्टि

यथाससर्जवैब्रह्माभगवानादिकृत्प्रजाः ।
प्रजापतिःपतिर्देवस्तन्मेविस्तरतोवद ।।१
कथयाम्येषतेब्रह्मन्ससर्जभगवान्यथा ।
लोकक्चच्छश्वःकृत्स्नंजगत्स्थावरजगमम् ।।२

पाद्मावसानसमयेनिशासुप्तोत्थितःप्रभुः ।
सत्त्वोद्रिक्तस्तदाब्रह्माशून्यंलोकमवैक्षत ।।३
इमंचोदाहरन्त्यत्रश्लोकंनारायणप्रति ।
ब्रह्मस्वरूपिणंदेवजगतःप्रभवाप्ययम् ।।४
आपोनाराइतिप्रोक्ताआपोवैनरसूनवः ।
तासुशेतेसयस्माच्चतेननारायणःस्मृतः ।।५
विबुद्धःसलिलेतस्मिन्विधायान्तर्गतांमहीम् ।
अनुमानात्समुद्धारकर्तुं कामस्तदा क्षतेः ।।६
अकरोत्सतनूरन्याःकल्पादिषुयथापुरा ।
मत्स्यकूर्मादिकास्तद्वद्वाराहंवपुरास्थितः ।।७

क्रोष्टुकि बोले—जिस प्रकार आदि स्रष्टा ब्रह्माजी ने प्रजा की उत्पत्ति की, वह मुझे विस्तार पूर्वक सुनाइये ।१। मार्कण्डेयजी ने कहा —अनादि भगवान् श्री ब्रह्माजी ने इस स्थावर जगतमय विश्व की जिस प्रकार रचना की वह आपके प्रति वर्णनकरताहूँ ।२। पाद्म नाम प्रलयके अवसान होने पर सत्वगु उद्रेक वाले ब्रह्माजी रात्रि के व्यतीत होने पर शयन से जाग्रत हुए तब उन्होंने सम्पूर्ण भुवन शून्य देखा ।३। उस समय जगत्करण नारायण के विषय में यह क ा जाता है ।४। जल शब्द को नार कहा गया है, उस में यह शयन करते हैं, इसलिये वह नाराय कहे जाते हैं ।५। नारायण ने जाग कर पृथिवी को जल में डूबा हुआ जाना और निकालने की इच्छा से ।३। पूर्व कल्पों में मत्स्य या कूर्म आदि के समान वाराह रूप धारण किया ।७।

वेदयज्ञमयंदिव्यवेदयज्ञमयोविभुः ।
रूपंकृत्वाविवेशाप्सुसर्वसम्भवः ।।८
समुद्धृत्यचपातालान्मुमोचसलिलेभुवम् ।
जनलोकस्थितैःसिद्धैश्चिन्त्यमानोजगत्पत्तिः । ९
तस्योपरिजलौघस्यमहतीनौरिवस्थिता ।
विस्तृतत्वात्तु देहस्यनमहीय तिसंप्लवम् ।।१०

ततःक्षितिसमीकृत्यपृथिव्यांसोऽसृजद्गिरीन् ।
प्राक्सर्गेदह्यमानेतुतदासंवर्तकाग्निना ।।११
तेनाग्निनाविशीर्णास्तेपर्वताभुविसर्वशः ।
शैलाएकार्णवेमग्नावायुनापस्तुसंहृता ।।१२
निषक्तायत्रयत्रासस्तत्रतत्राचलाभवन् ।
भूविभागंततःकृत्वासप्तद्वीपोपशोभितम् ।।१३
भूराद्यांश्चतुरोलोकान्पूर्ववत्समकल्पयत् ।
सृष्टिंचिन्तयतस्यकल्पादिषुयथापुरा ।।१४

वह वेदमय प्रभु दिव्य वेदमय स्वरूप को धारण करके वाराह रूप से जल में घुसे।८। और पाताल से निकाल कर पृथिवी को जल पर स्थापित किया और फिर देखने लगे।९। कि वह नौका के समान जल पर डोलती है, विस्तृत होने के कारण स्थिर नहीं होती।१०। फिर उन्होंने पृथिवी को समान करके पर्वतों की रचना की, पहिले सृष्टि को सम्वर्तक अग्नि से दग्ध किया था ११। वह सभी पर्वत उस अग्नि के ताप से विशीर्ण हो कर समुद्र में मग्न हो गये थे उस समय वहां का जल भी वायु के द्वारा एकत्र हो गया था।१२। इस लिये पर्वत जहां पड़े थे, वही-वहीअचल हो गये, फिर सप्त द्वीप के रूप में पृथिवी को विभक्त करके।१३। पहिले के समान भूर्लोक आदि चार लोकों का विभाग किया और पूर्व कल्पों के समान ही सृष्टि विषयक विचार करने लगे।१४।

अबुद्धिपूर्वकस्तस्मात्प्रादुर्भूतस्तमोमयः ।
तमोमोहोमहामोहस्तामिस्त्रोह्यन्धसंज्ञितः ।।१५
अविद्यापंचपर्वैषाप्रादुर्भूतामहात्मनः ।
पंचधावस्थितःसर्गोध्यायतोऽप्रतिबोधवान् ।१६
वहिरन्तश्चाप्रकाशःसंवृतात्मानगात्मकः ।
मुख्यानगातश्चोक्तामुख्यसर्गस्तमस्त्वयम् ।।१७
तंदृष्ट्वासाधकंसर्गममन्यदपरंपुनः ।
तस्याभिध्यायतः सर्गंतिर्यक्स्रोतोह्यवर्तत ।।१८

यस्मात्तिर्यक्प्रवृत्तिःसातिर्यक्स्रोतस्ततःस्मृतः ।
पश्वादयस्तविख्यातास्तमः प्रायाह्यवेदिनः ।।१९

उत्पथग्राहिणश्चैवतेऽज्ञानेज्ञानमानिनः ।
अहंकृता अहंमानाअष्टाविंशद्विधात्मिकाः ।।२०

तव तमोयुक्त तम, मोह तमिस्र अन्धतामिस्र नामक ।१५। पांच अविद्या उनके उत्पन्न हुई, उस प्रकारके चिन्तन से अप्रतिबोध वाली सृष्टि की पाँच प्रकार से स्थिति हुई ।१६। वह संवृतात्मक और पर्वत स्वरूप अपने भीतर वाहर सर्वत्र अप्रकाशित थी, पर्वत प्रधान होने के कारण वह सृष्टि मुख्य सर्ग संज्ञा वाली कही गई है ।१७। इस असाधक सृष्टि को देखकर उन्होंने अन्य सृष्टिकी इच्छा की तो उनके ध्यानसे तिर्यक्स्रोतकी प्रवृत्तिहुई ।१८। उस तिर्यक्स्रोत के प्रवाहित होने से इसके द्वारा अधिक तमोगुणीं सृष्टि अर्थात् पशु आदि अज्ञानी उत्पन्न हुए ।१९। वह उन्मार्गी अज्ञान को ही ज्ञान मानने लगे अहंकारी अहमानी वे अठ्ठाईस के हुए ।२२

अन्तःप्रकाशास्तेसर्वेआवतास्तुपरस्परम् ।
तमप्यासाधकंमत्वाघ्मायतोऽन्यस्ततोऽभवत् ।।२१

ऊर्ध्वस्रोतस्तृतोयस्तुसात्त्विकोदूर्ध्वमवर्तत ।
तेसुखप्रीतिबहुलावहिरन्तस्त्वनावृताः ।।२२

प्रकांशावहिरन्तश्चऊर्ध्वस्रोतः समुद्भवः ।
तुष्टात्मनस्तृतीयस्तुदेवसर्गोहिस स्मृतः ।।२३

तस्मिन्सर्गेऽभवत्प्रीतिर्निष्पन्ने ब्रह्मणस्तदा ।
ततोऽयंसतदादध्यीसाधकंसर्गमुत्तामभ् ।।२४

तथाभिध्यायतस्तस्तस्यसत्याभिध्यायिनस्ततः ।
प्रादुर्वभौतदाव्यक्तादर्वाक्स्रोतस्तुसाधकः ।।२५

यस्मादर्वाग्व्यवर्तन्ततोऽर्वाक्स्रोतसस्तुते ।
तेचप्रकाशबहुलास्तमोद्रिक्तारजोऽधिकाः ।।२६

तस्मात्ते दुःखवहुलाभूयोभूयश्चकारिणः ।
प्रकाशवहिरन्तश्चमनुष्याःसाधकाश्चते ।।२७

पचमोऽनुग्रहः सर्गःसचतुर्द्धाव्यवस्थितः ।
विपर्ययेणसिद्धयाचशान्त्यातुष्टयातथैवच ।।२८

यह सब अन्त: प्रकाश और एक दूसरे को ढकक र स्थित हैं: इससृष्टि को उन्होंने असाधक समझकर और चिन्तन किया तो।२१।ऊर्ध्व पथगामी तृतीय स्रोत प्रवाहित होने लगा जिससे जिनकी उत्पत्तिहुई,वह सुख और प्रीति की अधिकता वाले तथा बाहर और अन्तर में असावृत्त ।२२। वाह्याभ्यंतर में प्रकाश वाले और तुष्टात्मा थे यह तीसरी सृष्टि देवसर्ग कही गई ।२३। इस सृष्टिको उत्पन्न करके ब्रह्माजी अत्यंत संतुष्टहुए और फिर उन्होंने श्रेष्ठ साधक सर्गका चिन्तन किया ।२४। उनके चिन्तन करने पर अव्यक्त से अर्वाक्स्रोत नामक साधक सर्गकी उत्पत्ति हुई।२५। ऊर्ध्व से उग्र होने के कारण ही इस अर्वाक्स्रोत सर्ग कहा गयाहै, इनमें प्रकाश की अधिकता,तम की न्यूनता तथा रजोगुणका आधिक्य है ।२६। इसलिए इनमें दु:ख की अधिकता है, यह वारम्बार कार्य वाले तथा वाह्याभ्यांतरमें प्रकाश वाले साधक मनुष्य रूप हैं ।२७। फिर अनुग्रह नामकी पाँचवीं सृष्टि हुई यह विपर्यय, सिद्धि, शान्ति और सृष्टि चार भागों में विभाजित है ।२८।

निवृत्तं वर्तमानंचतेऽर्थंजानन्तिवैपुन: ।
भूतानिकानांभूतानांषष्ठःसर्गःसउच्यते ।।२६
तेपरिग्रहिणःसर्वेसंविभागरतास्तथा ।
चोदनाश्चाप्यशीलाश्चज्ञयाभूतादिकाश्चते ।।३०
प्रथमोमहतःसर्गोविज्ञेयोब्रह्मणस्तुसः ।
तन्मात्राणांद्वितीयस्तुभूतसर्गःसउच्यते ।।३१
वैकारिकस्तृतोयस्तुसयश्चैन्द्रियकःस्मृतः ।
इत्येषप्राकृतःसर्गःसंभूतोबुद्धिपूर्वकः ।।३२
मुख्यःसर्गश्चतुर्थस्तुमुख्यावैस्थावराः ।
तिर्तक्स्रोतस्तुयः प्रोक्तस्तिर्यग्योन्यःसपञ्चमः ।।३३
पथोर्द्ध्वस्रोतसांषष्ठोदेवसर्गस्तुसस्मृतः ।
ततोर्वाक्स्रोतसांसर्गःसप्तमःसतुमानुषः ।।३४

अष्टमोऽनुग्रहः सर्गःसात्विकस्तामस चसः ।
पंचैवेकृताःसर्गाःप्राकृतास्तुव्यःस्मृताः ॥३५
प्राकृतोवैकृतश्चवकौमारोनधमःस्मृतः ।
इत्येतेवैसमाख्यानानवसर्गाःप्रजापतेः ॥३६
प्राकृतावैकृताश्चैवजगतोमूलहेतव ।
सृजतोजगदीशस्यकिमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥३७

भूत और वर्तमान के सब अर्थ को जानने वाले भूतादि तथा अन्य समस्त भूतों की सृष्टि षष्ठ सर्ग कही गई हैं।२६। वह सभी स्त्री युक्त, विषय में लगे हुए, प्रेरणा में निपुण, अशील स्वभाव के भूतादि कहे जाते हैं।३०। जिससे ब्रह्माजीका अविर्भाव होता है, यह प्रथम महत्व सृष्टि है, ब्रह्मा द्वारा होने वाली सृष्टि द्वितीय है, वह भूत सर्ग कहीजाती है।३१। ऐन्द्रिक वैकारिक जो तृतीय सृष्टि है, वह प्राकृत सर्ग बुद्धि पूर्वक माना गयाहै।३२। चतुर्थ सर्ग मुख्य है, स्वथावरों को मुख्य कहा है, तिर्यक् योनि रूप तिर्यक् स्रोत जो कहा गया है वह पञ्चभ सर्ग है। ।३३। ऊर्ध्वं स्तोत्र की छठी सृद्धि देव सर्ग कही जाती है, इसके पश्चात् सप्तम सृष्टि अर्वाक् स्तोत्र मानवी सृष्टि है।३४। आठवाँ अनुग्रह सर्ग सात्विक और तामसिक दो प्रकार का है, यह पाँच वैकृत सर्ग और पहिले कहे हुए तीन प्राकृत सर्ग हैं।३५। प्राकृत और वैकृत संयुक्त एक नवम सृष्टि कौमार नाम की है, इस प्रकार प्रजापति की यह नौ सृष्टि कही गई हैं।३६। यह प्राकृत और वैकृत ही संसार के मूल कारण हैं, जिनकी रचना जगदीश्वर ने की हैं, अब और क्या सुनना चाहते हो ?।३७

४०—देवादि की सृष्टि

समासात्कथितासृष्टिःसम्यग्भगवतामस ।
देवादीनांभवब्रह्मन्विस्तरात्तु्ब्रवीहिमे ॥१
कुशलाकुशलैर्ब्रह्मन्भावितापूर्वकर्मभिः ।
ख्यात्यातयाह्यनिर्मुक्ताःप्रलयेह्य पसंहृताः ॥२

देवाद्याःस्थावरान्ताश्चप्रजा·ह्यांश्चचतुर्विधाः ।
ब्रह्मणःकुर्वतःसृष्टिजज्ञिरे मानसास्तदा । ३
ततोदेवासुरपितॄन्मानुषांश्चचतुष्टयम् ।
सिसृक्षुरम्भस्येतानिस्वमात्मानमयूयुजत् ।।४
युक्तात्मनस्तमोमात्राउद्रिक्ताभूत्प्रजापतेः ।
सिसृक्षोर्जंघनात्पूर्वंमसुराजज्ञिरेततः ।।५
उत्ससर्जततस्तांतुतमोमात्रात्मिकांतनुम् ।
सापविद्धातनुस्तेनसद्योरात्रिरजायत ।।६
अन्यांतनुमुपादायसिसृक्षुःप्रीतिमापसः ।
सत्वोद्रेकास्ततोदेवामुखतस्तस्यजज्ञिरे ।।७
उत्ससर्जचभूनेशस्तनुं तामप्यसौविभुः ।
साचापविद्धादिवसंसत्वप्रायमजायत ।।८

क्रौष्टुकि बोले हे प्रभो ! आपने जिस प्रकार से सृष्टि प्रकरण कहा वह अति सँक्षिप्त हैं,इसलिए अब देवता आदि की उत्पत्ति विस्तार पूर्वक वर्णन कीजिये ।१। मार्कण्डेयजी ने कहा—हे विप्र ! पूर्व जन्म के शुभाशुभ कर्म से ही उत्पत्ति होती है, क्योंकि वह प्रलय में लीन होते हैं, मुक्त नहीं होते ।२। देवतादि से स्थावर तक चार प्रकार की प्रजा जब प्रलय काल में नष्ट हो गई तब ब्रह्माजी ने उसकी सृष्टि की पुनः इच्छा की और अपने मन से ।३। सुर, असुर, पितर और मनुष्य की सृष्टि की इच्छा से उन्होंने अपने अंश को जल में डाला ।४। सृष्टिकामी ब्रह्माजी में तमोगुण का उद्रेक होने से, उनकी जंघा से प्रथम असुरों की उत्पत्ति हुई।५। इसीलिए उन्होंने उन असुरों को तमोगुणी शरीर दिया, वही शरीर त्यागा जाकर तमोगुणात्मिका रात्रि के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।६। फिर ब्रह्माजी ने दूसरा शरीर धारण किया, उससे वे प्रसन्न हुए, उसमें सतोगुण का उद्रेक होने से उनके मुख से देवताओं की उत्पत्ति हुई । ७ । उनको सात्विक शरीर दिया, वही व्यक्त देह सत्वगुणात्मक दिवस नाम से प्रसिद्ध हुआ ।८।

सत्वमात्रात्मिकामेवतयोऽन्यांजगृहेतनुम् ।
पितृवन्मन्यमानस्य षितरस्तस्यजज्ञिरे ॥९
सृष्ट्वापितृनुत्ससर्जतनुं तामपिसप्रभुः ।
स चोत्सृष्ठाभवत्सन्ध्यादिननक्तान्तरस्थिता ॥१०
रजोमात्रात्मिकामन्यांतनुं भेजेऽथसवभुः ।
ततोमनुष्याःसम्भूतारजोमात्रसमुद्भवाः ॥११
सृष्ट्वामनुष्यान्सविभृरुत्ससर्जतनुं ततः ।
ज्योत्स्नासमभवत्साचनक्तांतेऽहमुं खेचया ॥१२
इत्येतास्तनवस्तस्यदेवदेवस्यधीमतः ।
ख्याताराद्यहनीचैवसध्याज्योत्स्नाचवैद्विज ॥१३
ज्योत्स्नासन्ध्यातथैवाहःसत्वमात्रात्मकत्रयम् ।
तमोमात्रात्यिशारात्रिःसावैतस्मात्तमोधिका ॥१४

फिर उन्होंने अन्य सत्वमय शरीर धारणकर पितरों की सृष्टि की।९। पितरोंको शरीरदेने पर वह व्यक्त शरीर दिवस रात्रिके भीतर स्थितसंध्या रूपात्मक हुआ ।१०। इसके पश्चात् रजोगुण युक्त अन्य देह धारण करके उन्होंने रजोगुणकी अधिकता वाले मनुष्यों को उत्पन्नकिया ।११। मनुष्यों को उत्पन्न करके उस शरीर का भी परित्याग करदिया, वह व्यक्त शरीर ज्योत्स्ना हुआ, रात्रिके शेष में और दिवस से प्रथम भागमें आविर्भूत होती है ।१२। हे द्विज ! मेधावी देवदेव के यह सब विग्रहही दिवस, रात्रि, संध्या और ज्योत्स्ना के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं ।१३। ज्योत्स्ना, संध्या और दिवस यह तीन सतोगुणी हैं और रात्रि तामसिक होने से अन्धकार मयी है ।१४।

तस्माद्देवादिवारात्रावसुरास्तुबलान्विताः ।
ज्योत्स्नागमेचमनुजास्यन्ध्यायांपितरस्तथा ॥१५
भवन्तिबलिनोऽधृष्याविपक्षाणांनसंषयः ।
तद्विपर्ययमासाद्यप्रयान्तिचविपर्ययम् ॥१६
ज्योत्स्नाराद्यहनीसन्ध्याचत्वार्येतानिवैप्रभोः ।
ब्रह्मणस्तुशरीराणित्रिगुणोपसृतानितु ॥१७

चत्वार्येतान्यथोत्पाद्यतनुमन्यांप्रजापतिः ।
रजस्तमोसयींरात्रौजगृहेक्षुत्तृडन्वितः ॥१८
तदन्धकारेक्षुत्क्षामामगृह्णाद्भगवानजः ।
विरूपाञ्छमश्रुलानत्तुमारब्धास्तेचत्तांतनुम् ॥१९
रक्षामइतितेभ्योऽन्येतउचुस्तेतुराक्षसः ।
खादामइतियेचोचुस्तेयक्षायक्षणाद्द्विज ॥२०
तान्दृष्ट्वाह्यप्रियेणास्यचेशाःशीर्यन्तवेधसः ।
समारोहणपीनाश्चशिरसोब्रह्मणस्तुते ॥२१
सर्पणात्तेऽभवन्सर्पाहीनत्वारहयःस्मृताः ।
सर्पान्दृष्ट्वातनःक्रोधात्क्रोधात्मानोविनिर्ममे ॥२२

पूर्वोक्त गुणों की अधिकता से दिन में देवता, रात्रिमें असुर, ज्योत्स्ना में मनुष्य और संध्या काल में पितर ।१ । अधिक वलवान् हो र शत्रुओं द्वारा नहीं जीते जाते, इस प्रकार विपरीत काल में विपरीत् वलवान् हो जाते हैं ।१६। प्रजापति ने दिवस, रात्रि, संध्या और ज्योत्स्ना रूप जो चार प्रकारके देह उत्पन्न किये, वही ब्रह्माजी का त्रिगुणात्मक देह है ।१७। चारों देहों को प्रजापति ने उत्पन्न करके क्षुधा पिपास्य से युक्त रज-तम युक्त रात्रि को ग्रहण किया ।१८। उस अंधेरे में ब्रह्माजी ने क्षुधा से कृश हुए विरूप दाढ़ी मूँछ वालों की रचना की तब वे उस देह को भक्षण करने को ही प्रवृत्त हुए ।१९। जब वह उस देह को भक्षण करने को उद्यत हुए तब जिन्होंने 'रक्षा करो' कहा वे राक्षस और जिन्होंने 'खाऊँगा' कहा वह यक्ष कहे गये ।२०। उन्हें देख कर अप्रसन्नता उत्पन्न हुई इससे ब्रह्माजी के सब केश मस्तक से पतित हुए ।२ । और विचरण करने से सर्प संज्ञक हुए, हीन होने से यह अहि भीं कहे जाते हैं सर्पों को देख कर क्रोधयुक्त होने से उन्हें क्रोधात्मा वनाया ।२२।

वर्णेनकपिलेनोग्रास्तेभूताःपिशिताशनाः ।
ध्यायतोगाततस्तस्यगन्धर्वाजज्ञिरेसता ॥२३
जज्ञिरेपिततोवाचाँगन्धर्वास्तेनतेस्मृताः ।
अष्टास्वेतांसुसृष्टासुदेवयोनिषुसप्रभुः ॥२४

ततःस्वदेहतोऽन्यानिवयांसिपशोऽवसृजत् ।
मुखतोऽजाःससर्ज्जायवक्षसश्चवयोऽसृजत् ।।२५
गाश्चवैवोदरतोब्रह्मापार्श्वाभ्यांचविनिर्ममे ।
पद्भयांचाश्वान्समातङ्गान्रासभाञ्छशकान्मृगान् ।।२६
उष्ट्रानश्वतरांश्चैवनानारूपाश्चजातयः ।
औषध्यःफलमूलिन्योरोमभ्यतस्यजज्ञिरे ।।२७
एवंपश्वोषधाःसृष्ट्वाह्ययजच्चाध्वरेविभुः ।
तस्मादादौतुकल्पस्यत्रेतायुगमुखेतदा ।।२८

कपिल वर्ण से प्रकट कर्कश स्वभाव वाले आमिष भोजी गणों की उत्पत्ति हुई, गौ का चिन्तन करते समय गंधर्व उत्पन्न हुए ।२३। वाक्य को ग्रहण करते करते उत्पत्ति को प्राप्त होनेसे उनका नाम गंधर्व हुआ, उस प्रकार आठ प्रकार की देवयोनि को प्रकट करके ।२४। अपने शरीर से अन्य सभी पशु-पक्षी प्रकट किये, मुख से बकरा और हृदय से पक्षी उत्पन्न किये ।२५। उदर और पार्श्व से गौ दोनों चरणों से अश्व, हाथी, गधा, खरगोश, मृग ।२६। ऊँट और खच्चर उत्पन्न किये तथा रोम से फल मूल युक्त विभिन्न प्रकार की औषधियाँ उत्पन्न कीं ।२७। इस प्रकार त्रेतायुग के आरम्भ में ब्रह्माजी पशु और औषधियों की रचना करके यज्ञ सृजन में लगे ।२८।

गौरजःपुरुषोमेषोअश्चवाश्वतरगर्दभाः ।
एतान्ग्राम्यान्पशुनाहुराण्यांश्चनिबोधमे ।।२९
श्वापदद्विखुरंहस्तीवानराःपक्षिपञ्चमाः ।
औदकाःपशवःषष्ठाःसप्तमास्तुसरीसपाः ।।३०
गायत्रीश्चतृचंचैवत्रिवृत्सामरथन्तरम् ।
अग्निष्टोमंचयज्ञानांनिर्ममेप्रथमान्मुखात् ।।३१
यजूंषित्रैष्टुभंछन्दःस्तोमंपचदशतथा ।
बृहत्सामतथोक्थंचदक्षिणादसृजन्मुखात् ।।३२
सामानिजगतीच्छन्दःस्तोमंपंचदशंतथा ।
वैरूप्यमतिरात्रंचनिर्ममेपश्चिमान्मुखात् ।।३३

एकविंशमथर्वाणमाप्तोर्यामाणमेवच ।
आनुष्टुभंसवैराजमुत्तरादसृजन्मुखात् ॥३४
विद्युतोऽशनिमेघाश्चराहितन्द्रधनूंषिच ।
वयांसिवसर्ज्जादौवलपस्यभगवान्विभुः ॥३५

गौ, बकरा, भैंसा, मेंढ़ा, घोड़ा, खच्चर और गधा इन पशुओं को ग्राम्य कहा गया है, अब आरण्य पशुओं का वर्णन करता हूँ ।२६। श्वापद, द्विखुर, हाथी, बन्दर पक्षी, जल के जीव, पशु और सर्पादि यह सात आरण्य अर्थात् वन के जीव कहे गये हैं ।३०। ब्रह्मा ने पहिले अपने मुख से गायत्री, त्रिवृत्ः साम रथन्तर और अग्निहोष्टम की उत्पत्ति की ।३१। दक्षिण मुख से यजुर्वेद, त्रैष्टुभ छंद, पंचदश स्तोम, बृहत् साम और उक्थ को प्रकट किया ।३२। पश्चिम मुख से सामवेद, जगती चन्द, पंचदय स्तोम, वैरूप और अतिरात्र को प्रकट किया ।३३। उत्तर मुख के द्वारा इक्कीस अथर्व, आप्तोर्याम, आनष्टुभ और वैराज की उत्पत्ति की ।३४। उन विभु ने कल्प के प्रथम विद्युत, वज्र, मेघ, रोहित इन्द्र धनुष और पक्षियों को उत्पन्न किया ।३५।

उच्चावचानिभूतानिगात्रेभ्यस्तस्यजज्ञिरे ।
सृष्ट्वाचतुष्टयंपूर्वंदेवासुरपितॄन्प्रजाः ॥३६
ततोऽसृजत्जभूतानिस्थावराणिचराणिच ।
यक्षान्पिशाचान्गन्धर्वांस्तथैवाप्सरसांगणान् ॥ ७
नरकिन्नररक्षांसिवयःपशुमृगोरगान् ।
अव्ययचव्ययंचैवयदिदंस्थाणुजङ्गमम् ॥३८
तेषांयेयानिकर्माणिप्राक्सृष्टेःप्रतिपेदिरे ।
तान्येवप्रतिपद्यन्तेसृज्यमानाःपुनःपुनः ॥३६
हिंस्राहिंस्रमृदुक्रूरेधर्माधर्मावृतानृते ।
तप्रभाविताःप्रपद्यन्ततस्मात्तत्तस्यरोचते ॥४०
इंद्रियार्थेषुभूतेषुशरीरेषुशरीरेषुचसप्रभुः ।
नानात्वविनियोयंचधातैवव्यदधात्स्वयम् ॥४१

नामरूपंचभूतानांकृत्यानांचप्रपंचनम् ।
वेदशब्देभ्यएवादौदेवादीनांचकारसः ।।४२
ऋषीणांनामधेयानियःश्चद्वेषुसृष्टयः ।
शर्वर्यन्तेप्रसूतानामन्येषांचददातिसः ।।४३
यथार्त्तावृतुलिङ्गानिनानारूपाणिपर्यये ।
दृश्यन्तेतानितान्येवतथाभावयुगादिषु ।।४४
एवंविधाःसष्टयस्तुब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
शर्वर्यन्तेप्रबुद्धस्यकल्पेकल्पेभवन्तिवै ।।४५

फिर सुर, असुर, पितर मनुष्य उत्पन्न करके विभिन्न प्रकार के अन्य प्राणियों को उत्पन्न किया।३६। फिर स्थावर,जंगम,भूतगण,यक्ष,पिशाच, गंधर्व और अप्सराएँ।३७। नर, किन्नर,राक्षस, पशु,पक्षी,मृग, तथा नाग इत्यादि सब नाशवान् और स्थायी स्थावर जगम पदार्थोंकी उत्पत्ति हुई।३८। सृष्टि के प्रथम ही जिनका जो कर्म है, वह निर्दिष्ट हो गया, इस-लिए वह वारंवार उत्पन्न होकर भी अपने नियत कर्मों को प्राप्त होते हैं।३९। पूर्व जन्म में जीव जिस अहिंसा, मृदुता क्रूरता, धर्म, सत्य, मिथ्या आदि का आश्रय लेता है, उसे परजन्म में उसी की प्राप्ति होती है।४०। जीवों में इन्द्रियों के विषय और देहोंमें इन्द्रियाँ उनके कर्मानुसार ही उन विभु ब्रह्माजी ने निर्मित की हैं।४१। उनके नाम, रूप, कृत्य, अकृत्य, प्रपंच और देव-कर्म आदि का निर्माण वेद शब्द से किया।४२। प्रलय के पश्चात् पहिले के समान ही उन्होंने ऋषियों के नाम और देवताओं की रचना की।४३। जैसे ऋतु परिवर्तन के समय उसके लक्षण दिखाई देने लगते हैं, वैसे ही युग-युग में उनके आगामी लक्षण प्रकट होने लगते हैं।४४। अव्यक्त जन्मा ब्रह्माजी प्रलयान्त के समय इसी प्रकार सृजन कार्य करते है।४५।

१४—मिथुन सृष्टि और स्थान कथन

अर्वाक्स्रोतस्तुकथितोभवतायस्तुमानुषः ।
ब्रह्मन्विस्तरतोब्रूहिब्रह्मासमसृजद्यथा ।।१

यथाच्चवर्णानसृजद्यद्गुणांश्चमहामते ।
यच्चयेषांस्मृतंकर्मविप्रादीनांवदस्वतत् ॥२
ब्रह्मणःसृजतःपूर्वंसत्याभिध्यायिनस्तथा ।
मिथुनानांसहस्रंतुमुखात्सोऽथासृजन्मुने ॥३
जातास्तुह्युपपद्यन्तेसत्वोद्रिक्ताःस्वतेजसः ।
सहस्रमन्यद्वक्षस्तोमिथुनानांससर्जह ॥४
तेसर्वेरजसोद्रिक्ताःशुष्मिणश्चाप्यमर्षिणः ।
ससर्जान्यत्सहस्रंतुद्वंद्वानामरुतःपुन ॥५
रजस्तमोभ्यामुद्रिक्ताईहाशीलास्तुते स्मृताः ।
पद्मयांसहस्रमन्यच्चमिथुनानांससर्जह ॥६
उद्रिक्तास्तमसासर्वेनिःश्रीकाह्यल्पतेजसः ।
ततःसंघर्षमाणास्तेद्वन्द्वोष्पन्नास्तुप्राणिनः ॥७

क्रौष्टुकि बोले—हे भगवान् ! आपने अर्वाक्स्रोत वाले मनुष्यों का जो वर्णन किया, उसी विषय को विस्तार पूर्वक कहिये ।१। हे महामते ! गुण वाली सब वर्णोंकी सृष्टि जिस प्रकार हुई तथा ब्राह्मणादिका जो-जो कर्तव्य है, वह सभी मुझे बताइये ।२। मार्कण्डेयजी ने कहा—सृष्टि के पहिले ही ध्यानशील ब्रह्माजी के मुख से सहस्र मिथुन की सृष्टि हुई थी ।३। यह सब तेजस्वी तथा सतोगुणकी अधिकता वाले हुए उनके वक्षस्थल से और दूसरे सहस्र मिथुन उत्पन्न हुए ।४। वह सब क्रोधमय स्वम वके तथा रजोगुणी थे, उनके ऊरुदेश से जो सहस्र मिथुन उत्पन्न हुऐ ।५। वह रजोगुण और तमोगुण के उद्रेक से युक्त, ईर्ष्यावान् हुए तथा जो सहस्र मिथुन दोनों चरणों से उत्पन्न हुए ।६। वह लक्ष्मीहीन तमोगुणी तथा तेजहीन हुए, तदनन्तर संघर्षण से जो द्वन्द्वरूप जीव उत्पन्न हुए ।७।

अन्योन्यंहृच्छयाविष्टामैथुनायोपचक्रमुः ।
यतःप्रभृतिकल्पेऽस्मिन्मिथुनानांहिसंभवः ॥८
मासिमास्यार्तवंयत्तुनतदासीत्तुयोषिताम् ।
तस्मात्तदानसुषुवुः सेवितैरपिमैथुनैः ॥९

आयुषोनप्रसूयन्तेमिथुनान्येवतपसक्‍त् ।
(कुलिकंकुलिकाचैव उत्पद्य तेमुमूर्षतां) ।
ततःप्रभृतिकल्तेऽस्मिन्मिथुनानांहिसम्भवः ।।१०
ध्यानेनमनसातासांप्रजानांजायतेसकृत् ।
शब्दादिविषयःशुद्धःप्रत्येकंपंचलक्षणः ।।११
इत्येषामानुषीसृष्टिर्यापूर्वंवैप्रजापतेः ।
तस्यान्ववायसम्भूतायैरिदंपूरितंजगत् ।।१२
सरित्सरःसमुद्रांश्चसेवन्तेपर्वतानपि ।
तास्तदाह्यल्पशीतोष्णायुगेपर्स्मिश्चरन्तिवै ।।१३
तृप्तिस्वाभाविकींप्राप्ताविषयेषुमहामते ।
नतासांप्रतिघातोऽस्तिनद्वेषोनापिमत्सरः ।।१४
पर्वतोदधिसेविन्योह्यनिकेतास्तुसर्वशः ।
तावैनिष्कामचारिण्योनित्यंमुदितमानसाः ।।१५

वह द्वन्द से उत्पन्न प्राणी प्रसन्नचित्त से मैथुन में प्रवृत्त हुए इस प्रकार इस कल्प में मिथुनों की सृष्टि हुई ।८। पूर्वकाल में स्त्रियों को मासिक रजोधर्म का अभाव था, इसलिए वह अन्य समय में मैथुनकरके भी ।९। सन्तति उत्पादन में समर्थ नहीं थी केवल अवस्था के अन्त में एकही बार सन्तति होती थी (अन्त अवस्था में ही कुलिक और कुलका उत्पन्न होते थें)तव से इसी प्रकार इस कल्प में मिथुनकी उत्पत्ति होती आई है ।१०। ब्रह्माजी ने जब प्रजा का चिन्तन किया, तव उनके मनसे पंच महाभूत और शब्दादि विषय एक साथ उत्पन्न हुए ।११। यही प्रजापति की मानसी सृष्टि कही जाती है, इस समय यह विश्व उसी सृष्टि से परिपूर्ण हो रहा हैं ।१२। पहिले युग में अल्प शीतोष्ण हुए प्रजागण सरित, सरोवर और समुद्र के निकट अथवा पर्वतोंमें घूमते थे ।१३। हे महामते ! वह उपभोग में स्वाभाविक रूपसे तृप्त रहते थे, उनमें किसी भी प्रकार का विघ्न, द्वेष और मत्सर नहीं था ।१४। वह पर्वत में या समुद्र के किनारे रहते हुए सदा कामना रहित आचरण करते थे और प्रसन्न चित्त रहते थे ।१५।

पिशाचोरगरक्षांसितषामत्सरिणोजनाः ।
पशवःपक्षिण.श्चैवनक्रामत्स्याःसरीसृपाः ॥१६
अवारकाह्यण्डजावातेह्यधर्मप्रसूतयः ।
नमूलफलपुष्पाणिनार्तवावत्सराणिच ॥१७
सर्वकालसुखःकालोनात्यर्थंधर्मशीतता ।
कालेनगच्छतातेषांपित्रासिद्धिरजायत ॥१८
ततश्चतेषांपूर्वाह्णेमध्याह्ने नत्रितृप्तता ।
पुनस्तथेच्छतांतृप्तिरनायासेनसाभवत् ॥१९
इच्छताचतथायाथासोमनसःसमजायत ।
अपांसौक्ष्म्यततस्तासांसिद्धिर्नाम्नारसोल्लसा ॥२०
समजायतचैवान्यासर्वकामप्रदायिनी ।
असंस्कार्यैःशरीरैश्चप्रजास्ताःस्थिरयौवनाः ॥२१

पिशाच, उरग राक्षस,मत्सर युक्त मनुष्य पशु, पक्षी, नक्र, मत्स्य, बिच्छू।१६। अवारक और अण्डज प्राणियों की उत्पत्ति अधर्म से हुई हैं, उस समय मूल, फल, पुष्प ऋतु और वर्ष इत्यादि कुछ भी अहीं था। ।१७। उस समय उष्णता शीत भी नहीं था, सब काल अत्यंत सुख ही था,कालक्रम से उन्हे अद्भुत सिद्धिप्राप्त थी।१८। पूर्वाह्न या मध्याह्न में उनको तृप्तिनहीं होती थी तो वह इच्छा करके सहज मेंही तृप्तिकोप्राप्त कर लेते थे।१९।तथा इच्छा करते ही जल के सूक्ष्म होने के कारण उनकी निभिन्न प्रकारकी रस और उल्लास वाली अन्य सिद्धि ।२०। उपस्थित होकर सब इच्छा पूर्ण कर देती, वह संस्कार-हीन होते हुएभी स्थिर यौवनसे सम्पन्न थे ।२१।

तासांविनातुसंकल्पंजान्तेमिथुनाःप्रजाः ।
समंजन्मचरूपंचम्रियन्तेचैवताःसमम् ।२२
अनिच्छाद्वेषसंयुक्तावर्तन्तेतुपरस्परम् ।
तुल्यरूपायुषःसर्वाअधमोत्तामतांविना ॥२३
चत्वारितुसहस्राणिवर्षाणांमानुषाणितु ।
आयुप्रमाणंजीवन्तिनचक्लेशाद्विपत्तयः ॥२४

क्वचित्क्वचित्पुनःसाभूत्क्षितिर्भाग्येन सर्वशः ।
कालेनगच्छतानाशामृपयान्तियथाप्रजाः ॥२५
तथाताःक्रमशोनाशंजग्मुःसर्वत्रसिद्धयः ।
तासुसर्वासुनष्टासुनभसःप्रच्युतारसाः ॥२६
पयसःकल्पवृक्षास्तेसंभूतागृहसंस्थिताः ।
सर्वेंप्रत्युपभोगाश्चतासांतेम्यःप्रजापते ॥२७
वर्तयन्तिस्मतेभ्यस्तास्त्रेतायुगमुखेतदा ।
ततःकालेनवैरागस्तथासामाकस्मिकोऽभवत् ॥२८

बिना संकल्प ही उनकी मिथुन प्रजा जैसे एक साथ उत्पन्न होती वैसे ही रूप आदि में समता प्राप्त करके एक साथ ही मृत्यु को प्राप्त होती थी ।२२। उनमें पारस्परिक इच्छा या द्वेष न था, सभी समान भाव से समय को व्यतीत करते थे, उनमें कोई ऊँच-नीच भी न था, क्योंकि सभी आयु और रूपादि में समान होते थे ।२३। यह मिथुन सृष्टि चार हजार मानवी वर्ष तक जीवित रहती थी और बिना विरक्ति अथवा क्लेश के ही प्राण छोड़ती थी ।२४। कहीं-कहीं पृथिवी दैववशात् ऐसी हो जाती थी, जिसके कारण प्रजा को क्रमानुसार जीवन समाप्त करना होता था ।२५। वह सभी सिद्धियाँ क्रमानुसार नाश को प्राप्त हो गयीं और उनके समाप्त होने ही आकाश से रस बरसने लगे ।२६। तब जल और दुग्ध की प्राप्ति हुई, गृहों में कल्पवृक्षों की उत्पत्ति हुई और उन कल्पवृक्षों से ही सम्पूर्ण भोगों की उपलब्धि होने लगी ।२७। त्रेता के प्रारम्भ मे अपने जीवन का निर्वाह मनुष्य इस प्रकार किया करते थे, फिर समय पाकर उनमें आकस्मिक राग की उत्पत्ति हुई ।२८।

मासिवास्यार्तवीत्पत्यागर्भोत्पत्तिःपुनःपुनः ।
रागीत्पत्यात्ततस्तासांवृक्षास्तेगृहसंस्थिताः ॥२९
प्रणेशुरपरेचासंश्चतुःशाखामहीरुहाः ।
वस्त्राणिचप्रसूयन्ते फलेष्वाभरणानिच ॥३०
तेष्वेवजायतेतेषांगन्धवर्णरसान्वितम् ।
अमक्षिकंमहावीर्यंपुटकेपुटकेमधु ॥३१

तेनतावर्तयन्निस्ममुखेत्रे तायुगस्यवै ।
ततःकालान्तरेणैवपुनर्लोभान्वितास्तुताः ।।३२
वृक्षास्ताःपर्यंगृह्णन्तममत्वाविष्टचेतसः ।
नेशुस्तेनापचारेणतेहितासांमहीरुहाः ।।३३
(मूलेषुचापरंवासंक्रुःशालामहीरुहाम् ।)
ततद्वन्द्वान्यजायन्तशीतोष्णक्षुन्मुखानिवै ।
तास्तद्द्वन्दापघातार्थंचक्रुःपूर्वपुराणितु ।।३४

इस प्रकार रागके उत्पन्न होने से ही मासिक ऋतुकाल और वारंबार गर्भधारणादि होने लगा और उनके गृहमें स्थित कल्पवृक्ष भी रागयुक्त हो गये ।२९। इससे वह कल्पवृक्ष नाशको प्राप्त हुए और चार शाखों वाले अन्य वृक्षों की उत्पत्ति हुई, उनके फलोंमें वस्त्राभरण प्रकट होते थे ।३०। फलों के प्रत्येक पुट में श्रेष्ठ गन्ध और वर्ण वाला वलप्रद मधु मक्खियों के बिना ही उत्पन्न होता था ।३१। त्रेता के प्रारंभ काल की प्रजा इस मधु को पीकर ही जीवन धारणा करती थी, फिर वह कालक्रमसे लोभान्वित होकर ।३ । ममता वाले मनसे उन वृक्षोंके ग्रहण किये जानेके करण सभी वृक्षनष्ट हो गये ।३३। (वृक्षों की निवास योग्य शाला वनाली थी) फिर शीत उष्णता क्षुधा आदि सभी द्वन्द्व उत्पन्न हुए, तव उन्हें निवारण करने के लिए पुरों का निर्माण किया ।३४।

मरुधन्वसुदुर्गेषपर्वतेयुदरीषुच ।
संश्रयन्तिचदुर्गाणिवार्क्षपार्वतमौदकम् ।।३५
कृत्रिमंचतथादुर्गमित्वामित्वात्ननोंऽगुलेः ।
मानार्थानिप्रमाणानितास्तुपूर्वंप्रचक्रिरे ।।३६
परमाणुःपरंसूक्ष्मंत्ररेणर्महीरजः ।
वालाग्रंचैवलिक्षांचययुकाचाथयत्रोपरस् ।।३७
क्रमादष्टगुणान्याहुर्यवानष्टौतथांगुलम् ।
षडंगुलंपर्दतच्चवितस्तिर्द्विगुणंस्मृतम् ।।३८

द्वे वितस्मीतथाहस्तोब्राह्म्चतीर्थादिवेष्टितः ।
चतुर्हस्तधनुर्दण्डोनाडिकायुगमेवच ।।३९
क्रोशोधनुःसहस्रे द्वौगव्यूतिस्तच्चतुर्गुणम् ।
प्रोक्तं चयोजनंप्राज्ञैःसंख्यानार्थमिदंपरम् ।।४०
चतुर्णामथदुर्गाणांस्त्रसमुत्थानित्रीणितु ।
चतुर्थंकृत्रिमंदुर्गंतच्चक्रुर्यत्नतस्तुवै ।।४१

तब मरुभूमि, पर्वत, गुफा इत्यादि में दुर्ग आदि के बनने पर वह उन वृक्षों, पर्वतों और जल आदिमें बने दुर्गों में रहने लगे ।३५। तथा अपनी अँगुली आदिके परिणामसे सब कृत्रिम दुर्ग बनाकर परिणाम निश्चित करने के लिए प्रमाण बनाया।३६। अति सूक्ष्म प्रमाण के लिए परमाणु जाली के छेदोंमें किरण पड़ने से सूक्ष्म रज दिखाई देतीहै, उसके तृतीयाँशको परमाणु कहते हैं,त्रसरेणु और धूल तथा स्थूल प्रमाणके लिए केशाग्र,लिक्ष,यूका और यव निश्चित किया ।३७। आठ यव में एक अंगुल,छः अंगुल में एक पद, दो पद में एक वितस्ति ।३८। दोवितस्ति में एक हाथ, ब्राह्मतीर्थ तक एक चार हाथ में धनुर्दण्ड अथवा नाड़िका युग ।३९। दो हजार धनु में एक गव्यूति और चार गव्यूतिमें एक योजन होता है,संख्यानिरूपणार्थ पंडितजनों ने इस प्रकार निर्धारित किया है ।४०।पहिले कहे हुए चार प्रकार के दुर्ग में तीन स्वाभाविक और अन्य कृत्रिम है, दुर्ग कर्म यही है ।४१।

पुरंचखेटकंचैवतद्वद्द्रोणीमुखंद्विज ।
शाखानगरकंचापितथाखर्वटकंद्रदमी ।।४२
ग्रामसंघोषविन्यासं तेषुचावसथान्पृथक् ।
सोत्सेधवप्रणारंचसर्वतःपरिखावृतम् ।।४३
योजनार्द्धार्द्ध विष्कम्भमष्टममायतंपुरम् ।
प्राणुदक्त्वप्रणंशस्तशुद्धवंशबहिर्गमम् ।४४
तदर्द्धेनतथाखेटंतत्पादेनचखर्वटम् ।
न्यूनंद्रोणीमुखंस्मादष्टभागेनचोच्यते ।।४५

प्राकारपपिखाहीनंपुरंखर्वंटमुच्यते ।
शाखानगरंकंचान्यन्मन्त्रिसामन्तभुक्तिमत् ॥४६
तथाशूद्रजनप्राया:स्वसमृद्धकृषीवला: ।
क्षेत्रोपभोग्यभूमध्येवसतिग्रांमसंज्ञिता ॥४७
अन्यस्मान्नगरादेर्यांकार्यंमुद्दिश्यमानवै: ।
क्रियतेवसति: सावैविज्ञेयावसतिर्नरै: ॥४८
दुष्टप्रायोविनाक्षेत्र:परभूमिचरोबली ।
ग्रामएवद्रमीसंज्ञाराजवल्लभसंश्रय: ॥४९

फिर उन्होंने उन स्थानों में पुर, खेटक,द्रोणीमुख, शाखानगर, खर्वटक, द्रमी ।४२। ग्राम संघोष की रचना की और उनमे पृथक्-पृथक् आवास गृह बनाये, जिनके चारों ओर प्राचीन खाइयाँ थीं ।४३।लम्बाई में दो कोश और उसके अष्टांश चोड़े को पुर कहते हैं, इसका पूर्व और उत्तर भाग जल प्लावित होने के कारण उसमें बाहर जाने का मार्ग (पुल) होता चाहिए ।४४। पुर के अर्धं लक्षण वाले को खेटक, उससे अर्धं लक्षण वालेको खर्वटक तथा पुरके अष्टमांश लक्षण वालेको द्रोणमुखी कहते है ।४५। जिस पुरमें दीवार तो है परन्तु खाई नहीं है, उसे खर्वट कहा गया है;जिसमें मन्त्रिगण और सामन्तादि रहते हों, उस विभिन्न प्रकार के भोग पदार्थ वाले को शाखानगर कहते हैं ।४६। जहाँ शूद्र अथवा अपनी-अपनी समृद्धि वाले कृषक रहते हों और जिसके चारों ओर खेत आदि हैं, उसे ग्राम कहा गया है ।४७। किसी कार्यसे अन्यान्य नगरादि से जहाँ आकर लोग रहते है, उसे वसति कहते हैं ।४८। जिस ग्राम के मनुष्य दुष्ट प्रकृति के बलवान् और अपना खेत न होने पर पराये खेत पर अधिकार कर लेते हैं और जहाँ राजा के प्रिय लोग रहते हैं, वह ग्राम द्रमी कहा गया है ।४९।

शकटारूढभाण्डैश्चगोपालैर्विपणंविना ।
गोसमूहैस्तथाघोषत्रेच्छाभूमिकेतन: ॥५०
तएवंनगरादींस्तुकृत्वावासार्थमात्मन: ।
निकेतनानिद्वंद्वानांचक्रुश्चोपशमायवै ॥५१

गृहकाराग्रथापूर्वंतेषामासन्महीरुहाः ।
तथासंस्मृत्यतत्सर्वंचक्रुर्वेश्मानिताःप्रजाः ॥ २
वृक्षस्यस्यंवङ्गता शाखास्तथैवंचपरागता ।
नताश्र्चेवोन्नताश्चैवतदच्छाखाःप्रचक्रिरे ॥५३
याःशाखाःकल्पवृक्षाणांपूर्वमासन्द्विजोत्तम ।
ताएत्रशांखागेहानांशालास्वतेनतासुतन् ॥५४
कृत्वाद्वंद्वोपघातंतेवार्तोपायमचिंतयन् ।
नष्टेषुमधुनासार्द्धंक पवृक्षेष्वशेषतः ॥५५

जहाँ ग्वाले अपने वर्तन आदिको गाड़ी पर लाद कर रखते हैं, जहाँ गौएँ अधिक रहती हैं, जहाँ बाजार न हो और भूमि धन के बिना ही मिल जाती हो, उसे घोष कहते हैं। ०। इस प्रकार इन्होंने अपने निवासार्थ स्थान वनाकर द्वन्द्वोंका शमन करने और व्यापार आदि के लिए गृहों का निर्माण किया, पहिले जो वृक्ष घरों के समान थे, उन्हीं के आधारपर घर वनायेगये।५१।-५२। जैसे वृक्ष की शाखएँ एकके पीछे दूसरीतथा ऊँची-नीची होतीहैं, उसी प्रकार घरों कीरचनागई।५३पहिले जो कल्प वृक्षकी शाखएँ थी, उन शाखाओं ने सब घरों का शालात्व प्राप्त किया।५४। जब पन शालाओं द्वारा उनके शीत उष्ण आदि दुःख नष्ट हुए, तब वह अपनी जीविका के निर्वाहार्थ चिन्ता करने लगे, उस समय मधु के सहित सब कल्पवृक्ष नष्ट हो गये।५५।

त्रिपादव्याकुलास्तावैप्रजास्तृष्णाक्षुधार्दिताः ।
ततःप्रादुर्बभौतासांसिद्धिस्त्रेतामुखेतदा ॥५६
वार्त्तास्त्रसाधिताह्यन्यावृष्टिस्तासांनिकामतः ।
तासांवृष्टयुदकानीहयानिनिनिम्नगताविधौ ॥५७
वृष्टयावरुद्धैरभवन्स्रोतःखातानिनिम्नगाः ।
गेपुरस्तादयांस्तोकाआपन्नाःपृथिवीतले ॥५८
ततोभूमेश्चसंयोगादोषध्यस्तादाभवन् ।
अफालकृष्टाश्चानुमाग्राम्यारण्णश्चतुर्दश ॥५९

ऋतुपुष्पफलाश्चैववृक्षागुल्माःचजज्ञिरे ।
प्रादुर्भावस्तुत्रेतयामाद्योऽयंमौषधयस्तु ।।६०
तेनौषधेनवर्तन्तेप्रजास्त्रेतायुगेमुने ।
रातलोभौसमासाद्यप्रजाश्चाकस्मिकोतदा ।।६१
ततस्ताःपर्यगृह्णंतनदीक्षेत्राणिपर्वतान् ।
वृक्षगुल्मौषधीश्चैवमात्सर्याच्चयथाबलम् ।।६२
तेनदोषेणतानेशुरोषध्योमिषतांद्विज ।
अग्रसद्भूयुगपत्तास्नदौषध्योमहामते ।।६३

तत्र वह सम्पूर्ण प्रजा निषाद और क्षुधा, पिपासा से अत्यन्त व्याकुल होगई, क्योंकि त्रेताके प्रारम्भ में ही उनमें इसप्रकार की सिद्धि थी ।५६। उस समय उनके इच्छा करतेही वृष्टि होती और वर्षाका जलनीचेको गमन करता था ।५७। वर्षा का रुका हुआ जल स्रोत द्वारा गहराई करता हुआ नदी स्वरूप होगया तथा प्रथम जो सामान्य जल पृथिवीमें गिरा ।५८। उस समस वह जल मिट्टी से मिलकर निर्दोष होगया, इसमें ग्राम्य और आरण्य जो चौदह वृक्ष थे, वे सभी स्वर उत्पन्न हुए थे ।५६। वह सब ऋतुमें फल, पुष्प उत्पन्न करते थे इस प्रकार त्रेता के प्रारम्भ में सब औषधियाँ उत्पन्न हुई ।६०। हे मुने ! अकस्मात् राग और लोभ से युक्त हुए प्रजागण उन औषधियों से उत्पन्न हुए पदार्थों से ही त्रेता के प्रारम्भ में जीवन धारण करने थे ।६१। फिर जिससे देह अधिक बलशाली हो सकें, इसलिए नदी, खेत, पर्वत, वृक्ष, गुल्म एवं सब औषधियों का अवलम्बन करने लगे ।६२। इसी दोष के कारण वह सभी औषधियाँ नष्ट हो गईं अर्थात् एक समय में ही वह सब औषधियाँ पृथिवी द्वारा ग्रास कर ली गईं ।६३।

पुनस्तासुप्रणष्टासुविभ्रान्तास्ततःप्रजाः ।
ब्रह्मांणंशरणंजग्मुक्षुधार्त्ताःपरमेष्ठिनम् ।।६४
सचापितत्वतोज्ञात्वातदाग्रस्तांवसुन्धराम् ।
वत्संकृत्वासुमेरुंतुदुदोहभगवान्विभुः ।।६५

दुग्धेयंगौस्तदातेनसस्यानिपृथिवीतले ।
जज्ञिरेतानिबीजानिग्राम्यारण्यास्तुताःपुनः ॥६६
ओषध्यःफलपाकान्तागणाःसप्तदशस्मृताः ।
व्रीहयश्चयवाश्चंवगोधूमाअणवस्तिलाः ॥६७
प्रियङ्गवःकोविदाराःकोरदूषासतीनका ।
माषामुद्गामसूराश्चनिष्पावा सकुलत्थकाः ॥६८
आढक्यश्चणकाश्चैवशरणःसप्तदशस्मृता ।
इत्येताओषधीनांतुग्राम्याणांजतयःपुरा ॥६९

इस प्रकार सब औषधियों के ग्रसित होने पर सम्पूर्ण प्रजा भ्रांतहुई और क्षुधातुर होकर ब्रह्माजीकी शरणमें गयी ।६४। तब उन ब्रह्माजी ने पृथिवीको ग्रास करनेवाली जानकर सुमेरु पर्वतको बछड़ा बनाकर दोहन किया.६५। तब पृथिवी अपने तलमें समस्त धान्योंको दोहन करानेलगी, उससे सबबीजोंकी उत्पत्तिहुई और ग्रास तथा यवनके वृक्षउत्पन्नहुए।६६। फल पकनेपर सूखनेवाली सत्रहप्रकारकी औषधियाँ उत्पन्नहुई उनकेनाम ब्रीहि,जौ,गेहूँ,तिला,कोदों ।६७। प्रियंगुफल,राई,कोविदार,लच कचनार, मटर, उड़द, मूँग, मसूर,लोबिया, कुलथी ।६८। अरहर और चना इन सत्रह जातियों की यह ग्राम्यौषधि उत्पन्न हुईं ।६९।

औषध्योयज्ञियाश्चैयग्राम्यारण्याश्चतुर्दश ।
व्राहयश्चयवाश्चंवगोधूमाअणवस्तिलाः ॥७०
प्रियंगुषष्ठावैह्येतेसप्तमास्तुकुलत्थकाः ।
श्यामाकास्त्वथनीवारःयत्तिलाःसगवेधुकाः ॥७१
कुरुविन्दामर्कटकास्तथावेणुयथाश्चये ।
ग्राम्यारण्याःस्मृताह्येताओषध्यश्चचतुर्दश ॥७२
यदाप्रसृष्टाओषध्योनप्ररोहन्तिताःपुनः ।
ततःसतासांबृद्धचर्थवार्त्तोपायचकारह ॥७३
ब्रह्मास्वयंभूर्भगवान्हस्तसिद्धिचकर्मजाम् ।
ततःप्रभृत्यथौषध्यःकृष्टपच्यास्तुजज्ञिरे ॥७४

संसिद्धायांतुवार्त्तायांततस्तासांस्वयंप्रभुः ।
मर्यादांस्थापयामासयथान्यायंयथागुणम् ।।७५
वर्णानामाश्रमाणांचधर्मान्धिर्मभृतांवर ।
लोकानांसर्ववर्णानांसम्वन्धमर्थिपालिनाम् ।।७६

जो चौदह प्रकार की ग्राम्य और आरण्यक औषधियाँ हैं, वह यज्ञमें व्यवहृत होती हैं व्रीहि, जौ, गेहूँ, अणु, तिल ।७०। प्रियंगु, कुलथी, श्यामक, अलसी, तिल तथा गवेधुक ।७१। कुलथी, मर्कटक, वेणु, यव, चावल यह चौदह प्रकारकी औषधियाँ ग्राम्यारण्यक मानी गईहैं।७२।इस प्रकार जव उन श्रेष्ठ औषधियों का उत्पादन रुक गया तब ब्रह्माजी ने उनके जीवन यापनका उपाय सोचने लगे ।७३। तब उन्होंने कर्म द्वारा सिद्ध होनेवाली हस्त-सिद्धिको उत्पन्न किया, तभी से जोतने से उत्पन्न होने वाली औषधियोंकी उत्पत्ति हुई ।७४। इस प्रकार उनके जीवन का साधन हो जाने पर स्वयं ब्रह्मा जी ने न्याय और गुण के अनुसार उनकी मर्यादा वनायी ।७५। उस समय सब वर्णाश्रमों का धर्म तथा धर्म और अर्थ का पालन करने वाले लोक-धर्म का निरूपण किया ।७६।

प्राजापत्यंब्राह्मणानांन्मृतंस्थानंक्रियावताम् ।
स्थानमैन्द्रंक्षत्रियाणांसंग्रामेष्वपलाविनाम् ।।७७
वैश्यानांमारुतस्थानंस्वधर्ममनुवतताम् ।
गन्धर्वंशूद्रजातीनांपरिचर्यानुवर्तिनाम् ।।७८
अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम् ।
स्मृततेषान्तुयत्स्थानंतदेवगुरुवासिनाम् ।।७९
सप्तर्षीणांतुयत्स्थानंस्मृतंतद्वै वनौकसाम् ।
प्राजापत्यंगृहस्थानांन्यासिनांब्रह्मणःक्षयम् ।
योगिनाममृतस्थानमितिवैस्थानकल्पना ।।८०

कर्मवान् ब्राह्मणोंके लिये उन्होंने प्राजापत्य स्थानकी कल्पना की और युद्धसे विमुख न होने वाले क्षत्रियोंके लिये ऐन्द्र स्थान नियत किया ।७७। स्वधर्म परायण वैश्योंके लिए मारुतस्थान और सेवा करनेवाले शूद्रोंकेलिए

गाँधर्व स्थान बनाया ।७८। अट्ठासी सहस्र ऊर्ध्वरेता ऋषियों के लिए जो स्थान नियत किये गये, वही स्थान गुरु-गृह में निवास करने वाले ब्राह्मणों के लिये निश्चित हुये ।७६। सप्तऋषियों के लिये जिन स्थानों की कल्पना हुई वही स्थान वनवासियों के लिए नियत किये गये, गृहस्थ के लिए प्रजापत्य, सन्यासियों के लिए अक्षय ब्राह्मपद तथा योगियों को अमृत स्वरूप मोक्ष स्थान कल्पित किया गया ।८०।

४२—यक्षानुशासन

ततोऽभिध्यायस्तस्यजज्ञिरेमानसीःप्रजाः ।
तच्छीपसमुत्पन्नैःकार्यैस्तैःकारणैःसह ।।१
क्षेत्रज्ञाःसमवर्तन्तगात्रेभ्यस्तस्यधीमतः ।
तेसर्वेसमवर्त्तन्तयेमयाप्रागुदाहृताः ।।२
देवाद्याःस्थावरांताश्चत्रैगुण्यविषयाःस्मृता ।
एवंभूतानिसृष्टानिस्थावरःणिचराणिच ।।३
यदास्यताःप्रजाःसर्वानव्यवर्द्धतधीमतः ।
अथान्यान्मानमान्पुत्रान्सदृशानात्मनोऽसृजत् ।।४
भृगुं पुलस्त्यपुलहंक्रतुमङ्गिरसंतथा ।
मरीचिदक्षामत्रिचवसिष्ठचैवमानसम् ।।५
नवब्रह्मणइत्येतेपुराणेनिश्चयङ्गताः ।
ततोऽसृजत्पुनर्ब्रह्मारुद्रंक्रोधात्मसम्भवम् ।।६
सङ्कल्पचैवधर्मचपूर्वेषामपिपूर्वजम् ।
सनन्दनादयोयेचपूर्वसृष्टाःस्वयंभुवा ।।७
नतेलोकेषुसज्जन्तौनिरपेक्षाःसमाहिताः ।
सर्वेतेऽनागतज्ञानवीतरागाविमत्सराः ।।८

मार्कण्डेयजी ने कहा—फिर ब्रह्माजी के द्वारा चिंतन करने पर उन के देहसे कार्य कारण वाली मानसी प्रजाकी उत्पत्ति हुई।।१।।उन ब्रह्माजी के शरीरसे सब क्षेत्रज्ञ उत्पन्न हुए और ओइनके अतिरिक्त उत्पन्नहुए उनका उल्लेख पहिलेही किया जा चुकाहै।।२।। देवताओंसे स्थावर तक सभी जीव त्रिगुणात्मक हैं,इस प्रकार स्थावर जंगम चराचर प्राणियों की ब्रह्माजी ने उत्पत्ति की ।।३।। परन्तु जब ब्रह्माजी ने अपनी समस्त प्रजाकी वृद्धि होती हुई न देखी,तब उन्होंने अपने जैसेही मानस पुत्रोंकी सृष्टि की।।४।।उन्होंने भृगु,पुलस्त्य,पुलह,क्रतु अंगिरा, मरीचि,दक्ष, अत्रि और वसिष्ठ इन मानस पुत्रोंको, उत्पन्न किया।।५।।ब्रह्माजी के यह नौ मानस पुत्र माने गये हैं,फिर उन्होंने क्रोधात्मक रुद्रकी उत्पत्ति की।।६।।फिर सङ्कल्प और धर्मको उत्पन्न कियाजो कि पहिले से ही प्रकट हैं,उन्होंने पूर्व सृष्टिमें ही सनन्दनादि तथा स्वायंभुवको उत्पन्न किया।।७।।यह सभी भविष्यक जानने वाले,राग-रहित मात्सर्यहीन,निरपेक्ष और समाधि युक्तहोकर प्रजा सृजनके विषयमें लगे।८।

तेष्वेवनिरपेक्षेषुलोकसृष्टौमहात्मनः ।
ब्रह्मणोऽभून्महाक्रोधस्तत्रोत्पन्नोऽर्कसन्निवः ।९
अर्द्धनारीनरवपुःपुरुषोऽतिशरीरवान् ।
विभजात्मानमित्युक्त्वासतदान्तदधेततः ।१०
सचोक्तोवैंपृथक्स्त्रीपुरुषत्वंतथाकरोत् ।
विभेदपुरुषत्वचदशधाचकधातुसः ।११
सौम्यासौम्यैस्तथाशान्तै.पुंस्त्वस्त्रीत्वचसप्रभुः ।
विभेदबहुधादेवःपुरुषैरमितैःशितैः ।१२
ततोब्रह्मात्मसम्भूतपूर्वंस्वायम्भुवप्रभुः ।
आत्मनःसदृशंकृत्वाप्रजापाल्यमनुंद्विज ।१३
शतरूपांचतांनारींतपोनिर्धूतकल्मषाम् ।
स्वायम्भुवोमनुर्देवःपत्नीत्वेजगृहेविभुः ।१४

सृष्टि कार्य में उनके इस प्रकार लग जाने पर ब्रह्माजी अत्यंत क्रोधित हुए और उस क्रोधसे सूर्यके समान तेजस्वी एक पुरुष आविर्भूत हुआ।९।

उसके शरीर का अर्द्धांङ्ग पुरुष और अर्द्धाङ्ग स्त्री था, फिर ब्रह्माजी उस से अपने देह को विभाजित कर' कहते हुए अन्तर्धान हो गए।१०। ब्रह्मा जी की ऐसी आज्ञा पाकर उस पुरुष ने अपने शरीर के दो भाग किये, जिससे स्त्रीत्व और पुरुषत्व पृथक्-पृथक् हो गये, उसमें पुरुषाकार भाग को सौम्य, असौम्य, शान्त, असित, सित आदि के भेद से ग्यारह भागों में बांटा।११-१२। फिर ब्रह्माजी ने अपने समान पूर्वोत्पन्न उस पुरुष का नाम स्वायंभुव मनु रखा और उसे प्रजापालक बताया।१३। और जिस स्त्री ने तप के द्वारा अपने पापों का क्षय किया था, उसका नाम 'शत-रूपा' रखा, तब देव एवं विधु स्वायंभुव मनु से उस शतरूपा को अपनी भार्या बनाया।१४।

तस्माच्चतपुत्रौशतारूपान्यजायतः।
प्रियव्रतोत्तानपादौख्यातवात्मकर्मभिः।१५
कन्येद्वेचतथाकूतिप्रसूतिचततः पिता।
ददौप्रसूतिंदक्षायतथाकूतिं रुचेःपुरा।१६
प्रजापतिः सजग्राहतयोयज्ञ सदक्षिणः।
पुत्रोजज्ञमहाभागदम्पतीमिथुनततः।१७
यज्ञस्यदक्षिणायान्तुपुत्राद्वादशजज्ञिरे।
यामाइतिसमाख्यातादेवाः स्वायंभुवेऽन्तरे।१८
तस्यपुत्रास्तुयज्ञस्यदक्षिणायांसुभास्वराः।
प्रसूत्यांचतशादक्षश्चतस्र विंशतिस्तथा १९
ससज्ज कन्यास्तासांचम्यङ्नामानिमेशृणु।
श्रद्धालक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधाक्रियातथा।२०
बुद्धिर्लज्जावपुशान्तिः सिद्धिकीर्तिस्त्रयोदशी।
पत्न्यर्थं प्रपिजग्राहधर्मो दाक्षायणीः प्रभुः।२१

उस पुरुष के द्वारा शतरूपा के दो पुत्र हुए, उनमें से एक का नाम प्रियव्रत और दूसरे का नाम उत्तानपादहुआ,इनदोनों की प्रसिद्ध अपने-अपने कर्म से हुई।१५।और शतरूपाके दो कन्याएँ आकूती और प्रसूती नाम की हुईं, स्वयंभुव मनु ने प्रसूतीको दक्ष के लिए और आकूतीतो प्रजापतिरुचि

के लिये।१६। अर्पण कर दिया, उनके एक पुत्र और एक पुत्री हुई उनका नाम यज्ञ और दक्षिणा रखा गया वे दोनों 'दाम्पत्य सूत्रमें बँध गये ॥१७। उस दक्षिणा से यज्ञके जिन बारह पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई, वह स्वायंभुव मन्वन्तर में यातम' देवता के नाम से प्रसिद्धहुए।१८। उसी दक्षिणा से भावस्वर आदि अन्य अनेक पुत्र उत्पन्न हुये थे, उधर दक्ष ने प्रसूती के गर्भसे चौबीस ।१९।कन्याएँ उत्पन्न कीं, उनके नाम सुनो—श्रद्धा, लक्ष्मी, धृति, तुष्टि, पुष्टि, मेधा, क्रिया ॥२०। बुद्धि, लज्जा, वपु, शान्ति, सिद्धि इन तेरह दक्ष-सुताओं को धर्म ने अपनी पत्नी बना डाला ॥२१॥

ताभ्य:शिष्टायवीयस्यएकादशसुलोचना: ।
ख्याति:सत्यथसम्भूति:स्मृति:प्रीतिस्तथाक्षमा ॥२२
सन्ततिश्च नसूयाचऊर्जास्बाहास्वधातथा ।
भृगुर्भवोमरीचिश्चतथाचैवाङ्गिरामुनि: ॥२३
पुलस्त्यपुलहश्चं वक्रतुश्चऋषयस्तथा ।
वसिष्ठोऽत्रिस्तथावह्निपितरश्चयथाक्रमम् ॥२४
ख्यात्याद्याजगृहु:कन्यामुनियोमुनिसत्तमा: ।
श्रद्धाकामंश्रीश्चदर्पनियमंधृतिरात्मजम् ॥२५
सन्तोषचतथातुष्टिर्लोभंपुष्टिरजायत ।
मेधाश्रुतक्रियादण्डनयोवनयमेबच ॥२६
वोधबुद्धिस्तथालज्जाविनयवपुरात्मजम् ।
व्यवसायप्रजज्ञवैक्षेमंशान्तिरसूयत ॥२७
सुखंसिद्धिर्यश:कीर्तिरित्येतेधर्मयोनय: ।
कामादतिमुदहषधर्मंपौमसूयत ॥२८

और ग्यारह-ख्याति, सती, सम्भूति, स्मृति, प्रीति, क्षमा॥२२॥सान्तति अनसूया, ऊर्जा, स्वाहा और स्वधा नाम से प्रसिद्ध थीं, उन्हें भृगु इत्यादि ने क्रमशः ग्रहण किया ॥२३॥ भृगु, शङ्कर मरीचि अङ्गिरा, पुलस्त्य, पुलह, क्रतु, वसिष्ठ, अत्रि वह्नि और पितरगण॥२४॥इन मुनियों, मुनिसत्तमों और ऋषियोंनेख्याति इत्यादि ग्यारह दक्षसुताओंको यथाक्रम ग्रहण

किया, श्रद्धा ने काम को उत्पन्न किया लक्ष्मी ने दर्प को,धृतिने नियम को ॥२५॥ तुष्टि ने सन्तोष को,पुष्टिने लोभको मेधा ने श्रुत को.क्रिया ने दण्ड को।२६।बुद्धि ने बोध को लज्जा ने नियम को,वपु ने व्यवसाय को,शान्ति क्षेम को॥२७॥सिद्धिने सुखको और कीर्ति ने यश को जन्म दिया,धर्म की यही सन्तान है काम से हर्ष नामक धर्म के पौत्र की उत्पत्ति हुई ॥२८॥

हिंसाभार्यात्वधर्मस्य तस्यांजज्ञतथानृतम् ।
कन्याचनिर्ऋ तिस्तस्यांसुतौद्वौनरकभयम् ।२९
मायाचवेदना चैवमिथुनं द्वयमेतयोः ।
तयोर्जज्ञेऽथवैमायामृत्युभूतापहारिणम् ।३०
वेदनात्मसुतंचापिदुःखजज्ञेऽथरौरवात् ।
मृत्योर्व्याधिजराशोकतृष्णाक्रोधश्चजज्ञिरे ।३१
दुःखोद्भवाःस्मृताह्येतेसर्वेवाधमलक्षणाः ।
नैषांभार्यास्तिपुत्रोवासर्वतेह्यूर्ध्वरेतसः ।३२
निर्ऋतिश्चतथाचान्यामृत्योर्भार्याभवन्मुने ।
अलक्ष्मीर्नामतस्यांचमृत्योःपुत्राश्चतुर्दश ।३३
अलक्ष्मीपुत्रकाह्येतेमृत्योरादेशकारिणः ।
विनाशकालेषुनरान्भजन्त्येतेश्शृणुष्वतान् ।३४

अधर्म की पत्नी का नाम अहिंसा हुआ, उससे अनृत की उत्पत्ति हुई, अनृत ने निर्ऋत नामकी पत्नीकेगर्भ से दो पुत्र उत्पन्न किये,जिनके नाम 'नरक' और 'भय'हुए॥२९॥तथा माया और वेदना नामक दो कन्याएं हुई इन पुत्र पुत्रियोंमें परस्पर मिथुन भावकी सृष्टि हुई,माया के गर्भसे जीवोंका संहारक 'मृत्यु' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ३०।तथा वेदना के गर्भ से नरकने दुःखनामक पुत्र उत्पन्न किया,मृत्यु से व्याधि,जरा शोक तृष्णा और क्रोध की उत्पत्ति हुई।३१।दुःख के यह सभी पुत्र महाअधर्मी हुए, सब यह ऊर्ध्व रेता हैं,इसलिये इनके पत्नी या पुत्र नहींहैं।३२।हे मुने ! मृत्युकी निर्ऋति नामक जोपत्नी थी वह अलक्ष्मी भी कही जाती है,उससे मृत्युने चौदहपुत्रों की उत्पत्ति की ॥३३॥मृत्यु की आज्ञामें रहने वाले सब पुत्र 'अलक्ष्मी'ही

कहे जाते हैं, मृत्यु के समय यह मनुष्यों के जिस-जिस अंग में स्थित रहते हैं, उनके नाम बताता हूं ॥३४॥

इन्द्रियेषुदशस्वेतेतथैवमनसिचस्थिताः ।
स्वेस्वेनरस्त्रियादि विषयेयोजयन्तिहि ॥३५
अथेन्द्रियाणिचाक्रम्यरागक्रोधादिभिर्नरान् ।
योजयन्तियथाहानियान्त्यधर्मादिभिर्द्विज ॥३६
अहङ्कारगताश्चान्येतथान्येबुद्धिसस्थिताः ।
विनाशायनरस्त्रीणांयतन्तेमोहसंश्रिताः । ३७
तथैवान्योगृहेपुंसांदुःसहोनामविश्रुतः ।
क्षुत्क्षामोऽधोमुखोनग्नश्चीरीकाकसमस्वनः ।३८
ससर्वान्खादितुं सृष्टोब्रह्मणातमसोनिधः ।
दंष्ट्राकरालमत्यर्थविवृतास्यसुभैरवम् ॥३९
तमस्तुकाममाहेदं ब्रह्मालोकपितामहः ।
सर्वब्रह्ममयःशुद्धःकारणं जगतोऽव्ययः ।४०
नात्तव्यंतेजगदिदंजहिकोपंशमंव्रज ।
त्यजैकातामसीवृत्तिमपास्यरजसःकलाम् ॥४१
क्षुत्क्षामोऽस्मिजगन्नाथपिपासुश्चातिदुर्बलः ।
कथंतृप्तिर्भवेन्नाथभवेयबलवान्कथम् ।
कश्चाश्रयोममाख्याहिवर्तेयंयत्रनिर्वृतः ।४२

इनमें से प्रथम दश तो दसों इन्द्रियोंमें निवास करते हैं तथा ग्यारहवां मन के ऊपर रहता है और स्त्री-पुरुषों को अपने-अपने विषयमें संयुक्त करताहै ॥३४।फिर रागादि के द्वारा सब इन्द्रियों को आक्रान्त कर अधर्म आदिसे मिला देता है,जिससे उनकी अत्यंत हानि होती है॥३६॥मृत्यु का बारहवां पुत्र अहंकारमें रहताहै,तेरहवां पुत्र जीवोंकी बुद्धिपर रहताहै इससे मोहित हुए मनुष्य स्त्रियों को नष्ट करने का प्रयत्न करते है॥३७॥ और चौदहवां अलक्ष्मी-पुत्र जिसे दुःसह कहते हैं यह घर-घरमें रहकर सदा क्षुधातुर,अधो-मुख, नग्न चीरवासी और कौवेके समान शब्द करता है।३८।प्रतीत होता है

कि ब्रह्माजी ने इस तपोनिधि को सर्व पदार्थों का भक्षण करने के लिए ही उत्पन्न किया है, फिर उस दुःसह को कराल दंष्ट्रा, फैले हुए मुख से भयङ्कर शब्द करते हुए ।३९। तथा सबको भक्षण करने के लिए तत्पर देखकर जगत् के कारण रूप अविनाशी पितामह ब्रह्माजी बोले ।४०। ब्रह्माजी ने कहा—हे दुःसह ! संसार को भक्षण करना तुम्हारे लिए अनुचित है, तुम क्रोध को छोड़कर शान्त होओ, इस तमोगुणी वृत्ति और रजोगुण के अंश का परित्याग करो ।४१। दुःसह ने कहा--हे जगन्नाथ ! मैं क्षुधा के कारण अत्यन्त कृश और पिपासा के कारण दुर्बल हो गया हूँ, मैं किस प्रकार तृप्त, तथा बलवान् होऊँ और जिसके आश्रय में सुख पूर्वक रहूँ, यह कृपा पूर्वक बताइये ।४२।

तवाश्रयोगृहं पुंसांजनश्चाधार्मिकोबलम् ।
पुष्टिर्नित्यक्रियाहान्याभवान्यत्सगमिष्यति ।४३
लूताः स्फोटाश्चतेवस्त्रम हारंचददामिते ।
क्षुतकीटापन्नंचतथाश्वभिरवेक्षितम् ।४४
भग्नभाण्डगतंद्वन्मुखवातोपशामितम् ।
उच्छिष्टापक्कमस्विन्नमवलीढमसंस्कृतम् ।४५
भग्नासनास्थतंभुंक्तमासन्नगतमेवच ।
विदिङ्मुखसन्ध्यवोश्चनृत्यवाद्यस्वनाकुलम् ।४६
उदक्यापहृतमुक्तमुदक्यादृष्टमेवज ।
यच्चपधातवत्किंचिद्भक्ष्यपेयमथापिवा ।४७
एतानितवपुष्ट्यर्थमन्यच्चापिददामिते ।
अश्रद्धयाहुतंदत्तमस्नातैर्यदवज्ञा ।४८
यन्नाम्बुपूर्वकंक्षिप्तमनात्मीकृतमेवच ।
त्यक्तुमाविष्कृतयत्तु दत्तंचवातिविस्मयात् ।४९

ब्रह्माजी ने कहा--हे वत्स ! पुरुषों का घर तुम्हारा आश्रय स्थान, अधर्मी मनुष्य तुम्हाराबल तथा नित्यकर्मकी हानिहीतुम्हारे लिएपुष्टिहोगी ।४३ मकड़ी के जाले और सय स्फोट तुम्हारे वस्त्र हैं, अब मैं तुम्हेंआहार देता हूँ, जिस [illegible] कीड़े [illegible] ने देखलियाहै,ऐसे

व्रण का स्वामी तुम्हारे आहार स्वरूप हैं ।।४४।। फूटे पात्र में रखा हुआ पदार्थ अथवा जो पदार्थ अथवा मुख की फूँक से ठंडा किया गया हो, उच्छिष्ट या कच्चा अथवा संस्कार रहित हो ।।४५।। अथवा जो मनुष्य फटे आसन पर बैठकर या अतिथि को भोजन दिये बिना अथवा दक्षिण की ओर मुख करके या संध्या के समय नृत्य के समय गायन-वादन के समय जो पदार्थ खाया जाया ।।४६।। अथवा रजस्वला स्त्री द्वारा देखा या छुआ, किसी का झूठा अथवा दोष युक्त पका हुआ भोजन ।।४५।। यह सब पदार्थ तुम्हारे खाने के योग्य और पुष्टि करने वाले होंगे, तुम्हार पुष्टि के लिए और भी प्रदान करता हूं, जो स्नान किये बिना अश्रद्धा से हवन किया जा या अज्ञानी मनुष्यों के द्वारा दान किया जाय ।।४८।। जो वस्तु जल स्पर्श के बिना दी गयी हो। व्यर्थ पड़ी हुई हो, जो विस्तार की गयी हो या भय से दी गयी हो ।।४९।।

दुष्टंक्रुद्धार्तदत्तंचयक्षमन्प्राप्स्युसतत्फलम् ।
यच्चपौनर्भवःकिंचित्करोत्यामुष्मिकंक्रमम् ।।५०
यच्चपौनर्भवायोसित्तद्यक्षमतवतृप्तये ।
कन्याशुल्कापधानायसमुपास्तेवनक्रियाः ।।५१
तथवक्ष्यमयुद्यर्थंमसच्छास्त्रक्रियाश्चयाः ।
यच्चार्थनिर्वृत्तौकिंचिदधीतयन्नसत्यतः ।।५२
तत्सर्वंतवकामांश्चददामितवसिद्धये ।
गुर्विण्यभिगमेसन्ध्यानित्यकार्यव्यतिक्रमे ।।५३
असच्छास्त्रक्रियालापदूषितेषुचदुःसह ।
तवाभिभवस मर्त्तंभधिष्यानिसदानृषु ।।५४
पङ्क्तिभेदेवृथापाकेपाकभेदेतथाकृते ।
नित्यचगेहकलहेभविताावसतिस्तव ।।५५
अपोष्यमाणेचतथाभृत्यगोत्राहनादिके ।
असन्ध्याभ्युक्षितागारेकालेत्वत्तोभयनृणाम् ।।५६

दुष्ट,क्रोधित या आर्त्त मनुष्यों द्वारा दी गयी हो ऐसी सब वस्तुओं का भोग करो;हेयक्ष,! यह तुम्हारे वश में की गयीं, जो कार्य दूसरीबार विवाहित

हुई स्त्री के पुत्र द्वारा परलोक की सिद्धि के लिए किया गया हो ॥५०॥ अथवा दूसरीवार विवाहित स्त्री जो कर्म करे, उससे तुम्हारी ही तृप्ति होगी अथवा जो कन्या पर द्रव्य लेने में जो धर्म-कार्य किया जाय ॥५१। या जो क्रिया मिथ्या धर्मशास्त्र द्वारा संपादन की जाय, वह भी तुम्हारी ही पुष्टि के लिये दिया, असत्यता से पढ़ा हुआ अर्थ प्राप्ति के लिए जो कार्य हैं ॥५२॥ वह भी तुम्हारी पुष्टि का कारण बनेगा, अब तुम्हारी सिद्धि का समय कहता हूँ—जब गर्भवती नारी से समागम किया जाता है, तब संध्या और नित्य कर्म का व्यतिक्रम होता है ॥५३॥ तथा जब मिथ्या शास्त्र द्वारा कहे गये कार्य द्वारा मनुष्य दोष युक्त होते हैं, तब उनका तिरस्कार करने में तुम समर्थ होगे ॥५४॥ जहाँ पंक्तिमें भेद किया जाय, जहाँ वृथा पाक बनाया जाय और जहाँ सदैव क्लेश रहता हो तुम्हारा निवास वहीं होगा ॥५५॥ जिन गृहों में गौ अश्वादि अन्न तृण के बिना भूखे बंधे रहते हैं और सूर्यास्त से पहिले बुहारी नहीं लगती, उन घरों के मनुष्य तुमसे डरेंगे ॥५६॥

नक्षत्रग्राहपीडासुणिविधोत्पातदर्शने ।
अशान्तिकपरान्यक्षमन्नरानांभभविष्यसि ॥५७
वृथोपवासिनोमर्त्याद्यूतस्त्रीषुसदारताः ।
त्वद्भाषणोपकर्त्तारोबैडालव्रतिकाश्चये ॥५८
अब्रह्मचारिणाधीतमिज्याचाविदुषाकृता ।
तपोवनेग्राम्यभुजातथवानिर्जितात्मनाम् ॥५९
ब्राह्मणक्षत्रियविशांशूद्राणांचस्वकर्मतः ।
परिच्युतानांयाचेष्ठापरलोकार्थमीप्सताम् ॥६०
तस्वाश्चयत्फलसर्वंतत्ते यक्षमन्भविष्यति ।
अन्यच्चतेप्रयच्छामिपुष्ट्यर्थंसंनिबोधतत् ॥६१
भवतोवैश्वदेवान्तेनामाच्चारणपूर्वकम् ।
एतत्तवेतिदास्यन्तिभवतोबलिमूर्ज्जितम ॥६२
यःसंस्कृताशीविधिवच्छुचिरन्तस्यथाबहिः ।
अलोलुपोजितस्त्रीकस्तद्गेहमपवर्जय ॥६३

नक्षत्र या ग्रह की पीड़ा या विविध उत्पातों के दिखायी देने पर जो उनकी शान्ति का उपाय नहीं करते, तुम उन मनुष्यों को घेरे रहोगे।५७। वृथा उपवास करने वाले, द्यूत और स्त्रीमें आसक्ति रखने वाले तुम्हारे ही उपकारी हैं, जो बिल्लीके समान अपने प्रयोजनमें लगे रहते हैं।५८। या जो ब्रह्मचर्य के बिना ही वेदपाठ करते हैं, मूर्ख होते हुए भी यज्ञ करतेहैं तथा तपोवन में गृहस्थ धर्म जैसा आचरण करते हैं, चंचल चित्त और असंयम पूर्वक अध्ययन ।।५९।। तथा अपने कर्म से भ्रष्ट होकर पारलौकिक सुख की इच्छा वाले ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों द्वारा तपोवन में किये जाने वाले कर्म ।।६०।। तथा इन कार्यों का जो फल है वह सभी तुम्हारे वश में हैं, तुम्हारी पुष्टि के लिये और भी प्रदान करता हूं ।।६१।। जो वैश्वदेव के अन्त में तुम्हारा नाम लेकर 'यह तुम्हारा है, ऐसा कहते हुए तुम्हें अर्जित बलि देते हैं।।६२।। परन्तु जो मनुष्य संस्कार युक्त पदार्थों का भोजन करते और बाहर भीतर से पवित्र तथा निर्लोभ हैं, जिन्हें स्त्रियाँ अपने वश में नहीं कर सकतीं, उनके घरों को तुम छोड़ दो ।।६३।।

पूज्यन्तेहव्यकव्याभ्यांदेवताःपितरस्तथा ।
जामतोऽतिथयश्चापितद्गेहं यक्षमवर्जय ।।६४
यत्रमैत्रीगृहेबालवृद्धयोषिन्नरेषुच ।
तथास्वजनवर्गेषुगृहं तच्चापिवर्जये ।।६५
योषितोऽभिमतायत्रनबहिर्गमनोत्सुकाः ।
लज्जान्विताःसदागेहं यक्षमतत्परिवर्जय ।।६६
वयःसम्बंधयोग्यानिशयनान्यशनानिच ।
यवगेहेत्वयायक्षमतद्वर्ज्यंवाचनन्मम ।।६७
यत्रकारुणिकानित्यंसाधुकर्मण्यवस्थिताः ।
समान्योपस्करं युक्तास्त्यजेथायक्षमतद्गृहम् ।।६८
यत्रासनस्थास्तिष्ठत्सुगुरुवृद्धद्विजातिषु ।
नतिष्ठन्तिगृहं तच्चवर्ज्ययक्षमत्वयासदा ।।६९

तरुगुल्मादिभद्वीरंमविद्धंयस्यवेश्मनः ।
ममभेदोनवापुंसस्तस्छेयोभत्रवनंते :७०

जिस घर में देवताऔर पितर सदा हव्य कव्य द्वारा तृप्त रहते हैं और जहाँ अतिथियों की पूजा है, उस घर का भी परित्याग कर दो ।६४। जिस घर में बालक, वृद्ध, युवक, युवती, और स्वजन आदि सदा मैत्री भाव से रहते हैं उस घर को भी छोड़ दो ।।६५।। जिस गृह की नारियाँ अनुरक्ता है तथा घर से बाहर जाने की इच्छा नहीं करती और सदा लज्जावती रहती हैं,वह घर भी तुम्हारे रहने योग्य नहीं ।।६६।।हे यक्ष्म ! जिस घर के लोग अपनी अवस्था और वैभव के अनुसार ही शयन या भोजन करते हों वह घर भी तुम्हारे लिए त्याज्य है ।।६७ ।जिस घर के मनुष्य कल्याण युक्त, सत्काय में तत्पर और सामान्य सामग्री से परिपूण हैं, वह भी तुम्हें त्याग देना चाहिये ।।६८।। जहाँ के मनुष्य गुरुवृद्धा, और ब्राह्मणों के आसन पर बैठ जाने परभी आसन ग्रहण नहीं करते उस घर को सदा के लिए छोड़ दो ।।६९।। जिस गृह का द्वार वृक्ष गुल्मादि के द्वारा अवरुद्ध न हो और जहाँ कोई किसी के प्रति मर्मभेदी वाक्यों का उच्चारण न करता हो. उस श्रेष्ठ गृह में भी तुम्हें न जाना चाहिये ।७०

देवतापितृभृत्यानामतिथिनांचवर्तनम् ।
यस्यावशिष्टेनान्नेपुंसस्तस्यगृहंत्यज ।।७१
सत्यावाक्यान्क्षमाशालानहिंस्रान्नानुतापिनः ।
पुरुषानीदृशान्यक्ष्मत्यजेथाश्चानसूयकान् ।।७२
भर्तृशुश्रूषणेयुक्तास्मत्स्त्रीसङ्गवर्जिताम् ।
कुटुम्बभर्तृशेषान्नपुष्टांचत्यजयोषितम् ।।७३
यजनाध्ययनाभ्यासदानासक्तमतिसदा ।
यजनाध्यापनादानकृतवृत्तिद्विजंत्यज ।।७४
दानाध्ययनयज्ञेषुसदोद्युक्तंचदुःसह ।
क्षत्रयंत्यजसच्छुल्कशस्त्राजीवात्तवेतनम् ।.७५

त्रिभिःपूर्वंगुणैर्युक्तंपाशुपाल्यवणिज्ययोः ।
कृषेश्चावाप्तवृत्तिचत्यतवैश्यमकल्मषम् ।७६
दानेज्याद्विजशुश्रूषातत्परंयक्ष्मसत्यज ।
शूद्रंचब्राह्मणादीनांशुश्रूषवृत्तिपोषकम् ।७७

जो पुरुष देव, पितर, मनुष्य और अतिथि को भोजन कराकर शेष अन्न का भोजन करता है, उसका घर भी तुम्हें त्याग देना चाहिए ।७१। हे यक्ष्म ! जो सत्यभाषी, क्षमावान्, अहिंसक, अनुतापहीन तथा असूयारहित हैं, उन मनुष्यों के यहाँ मत जाना ।७२। जो नारी सदैव पतिसेवा में तत्पर है और असती स्त्री के संग में नहीं रहती और कुटुम्ब तथा पति के अन्न से पुष्टि को प्राप्त होती है ऐसी स्त्री के पास कभी मत जाना । ३। जो ब्राह्मण यजन, अध्ययन, अभ्यास और दानादि के विषय में दत्तचित्त हैं तथा यज्ञ, अध्यापन और दान के प्रतिग्रह से जीविकोपार्जन करते हैं, उन ब्राह्मणों का परित्याग करो ।७४। जो क्षत्रिय सदा दान, अध्ययन और यज्ञ में तत्पर रहते हैं तथा शस्त्रजीविका से प्रणा रक्षक्ष करते हुए वेतन मात्र करते हैं, वे भी तुम्हारे द्वारा त्याज्य है ।७५। जो वैश्य पहिले कहे गये तीन गुणों से युक्त हैं, पशुपालन, व्यापार, और कृषि कर्म द्वारा अपनी जीविकोपार्जन करते हैं, उन निष्पाप वैश्यों का भी परित्याग करो ।७६। जो शूद्र, दान, यज्ञ और ब्राह्मण सेवा में तत्पर और ब्रह्मणादि की सेवा-वृत्ति से निर्वाह करते हैं, उन शूद्रों को भी त्याग दो ।७७।

श्रुतिस्मृत्यविरोधेनकृतवृत्तिर्गृहेगृही ।
यत्रयत्रातत्पत्नीचतस्यैवानुगतात्मिका ।७८
यत्रापुत्रोगुरोः पूजांदेवानांचतथापितुः ।
पत्नीचभर्तुः कुरुतेतत्रायक्ष्मोभयंकृतः ।७९
सदानुलिप्तंसन्ध्यासुगृहबम्बुसमुक्षितम् ।
कृतपुष्पबलियक्ष्मनत्वशक्नोषिवीक्षितुम् ।८०
भास्कतादृष्टाशय्यानिनित्याग्निसलिलानिच ।
सूर्यालोकदीपानिलक्ष्म्यागेहानिमाजनम् ।८१

यत्रोक्षाचन्दनवीणा आदर्शोमधुसर्पिषी ।
विषाज्यताम्रपात्राणितद्गृहंनतवाश्रयः ।।८२
यत्रकण्टकिनोवृक्षायत्रनिष्पावबल्लरी ।
भार्यापुनर्भूर्वल्मीकस्तद्यक्ष्मतवमन्दिरम् ।।८३
यस्मिन्गृहेनराःपंचस्त्रीत्रयंतावतीश्चगाः ।
अन्धकारेन्धनाग्निश्चतद्गृहंत्रसतिस्तव ।।८४

जो मनुष्य घर में रहकर श्रुति स्मृति सम्मत जीवन निर्वाह करतेहै और उनकी भार्या भी उन्हीं का अनुसरण करती हैं।।७ ।।जिस गृहमें पुत्र अपने देवता. पितर और गुरु की पूजा तथा स्त्रियाँ पतिसेवा करतीहैं,वहाँ अलक्ष्मी का भय किसप्रकार होसकता हैं ? ।।७९।।तीनों संध्याओंके समय जो घर लीपा जाय या जल छिड़ककर पवित्र किया जाय और जहाँ सुगंधित पुष्पोंद्वारा देवताओंको बलिदी जाय,तुम उस गृहको देखभी न सकोगे।८०। जिस घरकी शय्या को सूर्य न देखते हों अर्थात सूर्योदयके समय तक जहाँ कोई शयन न करता हो,तथा जो घर सूर्यके प्रकाश से प्रकाशित रहता हो और जिस घरमें अग्नि और जल विद्यमान रहते हों,वह घर लक्ष्मी का ही निवास स्थान ।।८१।। जिस घर मे चन्दन,वीणा, दर्पण मधु, घृत, विष और ताम्रपात्र विद्यमान हो वह घर तुम्हारा आश्रय स्थान कदापि नहींहो सकता ।।८२।। जिस घरमें काँटेयुक्त वृक्षः निष्पाबवल्लरी, दुबाराल गाहीहुई पत्नी और वल्मीक बाँबी) हो, उस घरको तुम अपना ही समझो।।८३।। जिस घर में पाँच पुरुष और तीन स्त्री तथा तीन गौ, अँधेरा, काष्ट और अग्नि हो, वही घर तुम्हारा निवास स्थान होगा ।।८४।।

एकच्छागंद्विबालेयंत्रिगवंपञ्चमाहिषम् ।
षडश्वंसप्तमातङ्गंगृहंयक्ष्माशुशोषय ।।८५
कुद्दालदात्रशिटकतद्वत्स्थाल्यादिभाजनम् ।
यत्रतत्रैवक्षिप्तानितवदुःप्रतिश्रयम् ।।८६
मुशलोलूखलेस्त्रीणामास्यातद्वदुदुम्बरे ।
अत्रस्करेमन्त्रणावपक्ष्मतदुपकृत्तव ।।८७

लभ्यन्तेयत्रधान्यानिपक्वानिश्मनितथा ।
तद्वच्छास्त्राणितत्रत्वयथेष्ठंचरदुःसह ॥८८
स्थालीपिधानेयत्राग्निर्दतादर्वीफलेरवा ।
गृहेतत्रह्यरिष्ठानामशेषाणांसमाश्रयः ॥८९
मानुषास्थिगृहेयत्रदिवारात्रमृतस्थितिः ।
यत्रक्ष्मतववासस्तथान्येषाँचरक्षसाम् ॥९०
अदत्त्वाव्रतेयेवैंबन्धोःपिडंतथोदकम् ।
सपिण्डान्सोदकांश्चैवतत्कालेतान्नरान्भज ॥९१

हे यक्ष्म ! जिस घर में एक बकरी दो स्त्री, तीन गो, पाँच भैंस, छः अश्व, सात हाथी हों, उस घर का शीघ्र ही शोषण करो ॥८५॥ जिस घर में कुदाल, दराँत पीढ़ा, थाली इत्यादि वस्तुएँ इधर-उधर बिखरी पड़ी रहती हों वहाँ के मनुष्य तुम्हें निवास देना चाहते हैं ॥८६॥ जिस घर में स्त्री मूसल या ओखली पर बैठकर या आँगन में गूलर के नीचे बैठकर घर के पीछे रहने वाली स्त्री से बातें करने में लगी रहती है, उसके वे कार्य तुम्हारा उपकार करने वाले हैं ॥८७॥ जिस घर में पक्के या कच्चे धानका अनादर और सत्शास्त्र का तिरस्कार होता है, उस घर में स्वेच्छा पूर्वक भ्रमण करो ॥८८॥ जिस घर में थाली, ढकना अथवा करछुली से स्त्री किसी को अग्नि देती हो वह घर सम्पूर्ण अरिष्ट का निवास स्थान है ॥८९॥ जिस घर में मृत पदार्थ या मनुष्य की हड्डी रात दिन विद्यमान रहे वहाँ सभी राक्षसों का निवास होगा ॥९०॥ जब मनुष्य बन्धु, सपिंड या समानोदक पुरुषों को पिण्ड या जल नहीं देते, तुम उस समय उनकी कामना करो ॥९१॥

यत्रमद्गमहापद्मोसुरभिर्मोदकाशिनी
बृषभरावतोयत्रकल्प्यंतेतद्गृहंत्यज ॥९२
अशस्त्रादेवतायत्रसशस्त्रश्चाहवंविना ।
कल्प्यन्तेमनुजेरच्यीस्तत्परित्यजमन्दिरम् ॥९३
पौरजानपदैर्यत्रप्राक्प्रसिद्धमहोत्सवाः ।
क्रियन्ते-पूर्ववद्गेहेनत्वंतत्रगृहेचर ॥९४

शूर्पवातघटाम्भोमिःस्नानंवस्त्राम्बुडेविप्रर्षः ।
पखाग्रसलिलैश्चैवलानाहिहृतलक्षणान् ॥९५
देशाचारान्समयात्ज्ञातिधर्मं जपंहोमंमङ्गलदेवतेष्टिम् ।
सम्यक्छौचंविधिवल्लोकवापान्पुंसस्त्वयाकुर्वतोमाऽस्तुसङ्गः । ९६
इत्युक्त्वादुःसहं ब्रह्मातत्रैवान्तरधीयत ।
चकारशासनसोऽपितयापंकजजन्मनः ॥९७

जिस घर में पद्म और महापद्म विद्यमान हैं, स्त्रियाँ सदा मोदक खाती हैं तथा जहाँ बैल और ऐरावतभी हैंतुम उस घरको छोड़ दो ।।९२।।जहाँ अशस्त्र देवता बिना युद्ध के ही सशस्त्र देवताके समान पूजे जाते हैं,तुमउस मन्दिर को भी छोड़दो।।९३। जिन घरों या पुरों में तथा जनपदों में सदा महोत्सव होते रहते हैं,वहा तुम कभी मत जाना ।९४। जो मनुष्य सूप की वायु कलश के जल, वस्त्र के निचोडे हुए जल तथा पादाग्र से स्पर्शजल से स्नान करते हैं उन हीनलक्षणों के पास जाओ ।।९ ।। जो मनुष्य देशाचर समय, जाति, धर्मजप,हवन, मङ्गल कार्य, देवेपूजन,तिधिवत् शौच अथवा सब लोकाचार का पालन करते हैं,उनसे तुम्हारा संग नहीं होसकता ।९६। मार्कण्डेयजी ने कहा—हे विद्रवर ! इसप्रकार दुःसहको आदेश देकरब्रह्माजी वहीं पर अन्तर्धान होगये और वह दुःसह भी उनकी आज्ञाको उसी प्रकार पालने लगा ।।९७।।

४३--दौःसहोत्पति

दुःसहस्वाभवद्भार्यानिर्मार्ष्टिर्नामनामतः ।
जाताकलेस्तुभार्यायामृतीचाण्डालदर्शनात् ॥१
तयोरपत्यान्यभवञ्जगव्द्यापीनिषोडश ।
अष्टौकुमाराःकन्याश्चतथाष्टावतिभीषणाः ॥२
दन्ताकृष्टिस्तथोक्तिश्चपरिवर्तस्तथावरः ।
अङ्गध्रुक्छकुनिश्चैवगण्डप्रान्तरतिस्तथा ॥३

गर्भहाशस्यहाचान्यः कुमारास्तनयास्तयोः ।
कन्याश्चान्यान्तथवाष्टौतासांनामानिमेश्रृणुः ।४
नियोजिकावप्रथमातथैवान्याविरोधिनी ।
स्वयंहाकराचैवभ्रामणीऋतुहारिका ।५
स्मृतिबीजहरेचान्येतयोः कन्येसुदारुणे ।
विद्वेषणयष्टमीनामकन्यालोकभयावहा ।६
एतासांकर्मवक्ष्यामिदोषप्रशमनंचयत् ।
अष्टानांचकुमाराणांश्रूयतांद्विजसत्तम ।७

मार्कण्डेयजी ने कहा--दुःसह की पत्नी निर्माष्टि थी, यम की पुत्री थीं जब यमपत्नी ऋतुमती हुई, उस समय उसने चाण्डाल को देखा, उस गर्भ से निर्माष्टि उत्पन्न हुई।१। फिर निर्माष्टि के गर्भ से दुःसह के द्वाराअत्यन्त भी हृण आक र वाली सोलह सन्तानें हुई, जिनमें आठ पुत्र,आठ कन्याएँ हुई ।२। दन्ताकृष्टि, तथोक्ति परिवर्त्त अङ्गधुक शकुनि, गंड, प्रांतरित।३। गर्भहा,और शस्यहा नामक आठपुत्रहुए,अब आठ कन्याओंकेनाम सुनो ।४। नियोजिका विरोधिनी, स्वयंहारकरी, भ्रामणी, ऋतुहारिका ।५।स्मृतिहर और बीजहरा यह दोनों अत्यन्त भयङ्कर हुईतथाआठवीं विद्वेषिणीथी,वह लोकों के लिए अत्यन्त भयावह थी ।६। हे द्विजोत्तम!अब उनआठ पुत्रों के कर्म और उनकी दोष-शक्ति का उपाय कहता हूँ, उसे सुनो ।७।

दन्ताकृष्टिः प्रसूतानांबालानांदशंनस्थितः ।
करोतिदंतसंघर्षचिकीर्षुर्दुःसहागमम् ।८
तस्योपशमनंकार्य्यंसुप्तस्यसितसर्षपैः ।
शयनस्योपरिक्षिप्तैर्मानुषैर्दशनोपरि ।९
सौवचलोषधोस्नात्तथासच्छास्त्रकीर्त्तनात् ।
उष्ट्रकण्टकगात्रास्थिक्षौमवस्त्रविफारणात् ।१०
तिष्ठत्यन्यकुमारस्तुतथास्त्वियसकृद्ब्रुवन् ।
शुभमशुभेनृणांयुङ्क्तेतथोक्तिस्तत्वनान्यथा ।११

तस्मादद्दुष्टं मङ्गल्यमुक्त्वायंपण्डितैःसदा ।
दुष्टेश्च तेतथोवोक्तेकोर्त्तं नोयोजनादनः ॥१९
चराचरागुरुर्व्रं ह्मायामस्यकुलदेवता ।
अन्यगर्भेपरान्गच्छन्सदैव परिवतयन् ॥१३
रतिमाप्नोतिवाक्यचविवक्षोरन्यदेवथत् ।
परिवर्त्तकसंज्ञोऽयतस्यापिसितसर्षपैः । १४

दन्ताकृष्टि उत्पन्न हुए वालक के दाँतों को किड़किड़ाता है और दुःसह भी दन्ताकृष्टि के आश्रय से वहाँ आ जाता है॥८॥इसकी शान्ति का उपाय कहते हैं—सोते हुए बालक के दांतों और शय्या पर सरसों डालें।९।अथवा औषधि-जलसे स्नान करावे,सत् शास्त्रोंका कीर्तन करावे तथा ऊंट या गेंडे की अस्थिका यन्त्र बनाकर बालकके कण्ठमें डाले अथवा रेशमी वस्त्रधारण करावे ॥१०॥दूसरा पुत्र तयोक्ति 'यही हो'कहता हुआ सब मनुष्योंके शुभ अशुभमें लगताहै,इसमें असत्य नहीं है॥११॥इसकी शान्ति के लिए श्रेष्ठत्व और मङ्गलका प्रकाश करतेहुए भगवान् जनार्दनका नाम-संकीर्तनकरे।१२। अथवा चराचर विश्वके गुरु श्रीब्रह्माजी का नाम-कीर्तन अथवा अपने कुल. देवता काही स्मनणकरेंपरिवर्त्तक नामक तृतीय पुतअन्य गर्भमें अपर गर्भ स्थापना॥१३॥और एक प्रकार के वचनों को अन्य प्रकार से कहने से प्रसन्न होता है, उसकी शान्ति के लिए भी श्वेत सरसों बिखेरनी चाहिए ॥१४।

रक्षोघ्नमन्त्रजप्यैश्चरक्षांकुर्वीततत्त्ववित् ।
अन्यश्चानिलवन्नृणातङ्गेषुस्फुरणादितम् ॥१५
शुभाशुभंसमाचष्टेकुशैस्तस्याङ्गताडनम् ।
काकादिपक्षिसंस्थोऽन्यःश्वादेरंगगतोऽपिवा ॥१६
शुभाशुचशकुनिकुमारोऽन्योब्रवीतिवै ।
तत्रापिदुष्टेव्यक्षिपःप्रारम्भत्यागएवच ॥१७
शुभेद्रुततरंकार्यमितिप्राहप्रजापतिः ।
गण्डान्तेषुस्थितश्चान्योमुहूर्तार्द्धं द्विजोत्तम् ॥१८

सर्वारंभान्कुमारोऽत्तिशमंतस्यनिशामयः ।
विप्रोक्त्याद्देवतास्तुत्यामूलोत्खातेनचद्विज ।१९
गोमूत्रसर्षपस्नानास्तृक्षग्रहपूजनैः ।
श्रवणश्चधर्मोपनिषत्करणैः शास्त्रदर्शनैः ।२०
अवज्ञताजन्मनश्चप्रशमयातिगण्डवान् ।
गर्भस्त्रीणांतथाऽन्यस्तुमललाशीसुदारुणः ।२१

अथवा ज्ञानीजन रक्षोघ्न मंत्र के जप से रक्षा करें, चौथा अंगधुक् नामक पुत्र मनुष्य के अंग में वायु के समान स्पंदन ।१५। और लोम-हर्षण करके शुभाशुभ बताता है, उसकी शान्ति के लिए शरीर में कुशा से आघात करे, पाँचवाँ पुत्र शकुनी काकादि पक्षी तथा श्वान या गीदड़ के देह में प्रविष्ट रहकर ।१६। मनुष्य के शुभ-अशुभ को व्यक्त करता है, यदि अशुभ लक्षण प्रकाशित हो तो सभी कार्य का आरम्भ छोड़ दे ।१७। और यदि शुभ लक्षण दिखायी पड़े तो कार्यारम्भ में अत्यन्त शीघ्रता के, छटवाँ पुत्र गण्डान्तरित आधे मुहूर्त गण्डन्त में निवास कर ।१८। सभी मंगलमय कार्य, अनिश्चता आदि को नष्ट कर देता हैं, उसके शमनार्थं ब्राह्मण का आशीर्वाद, देव स्तुति या मूलनक्षत्र की शान्ति ।१९। गोमूत्र और श्वेत सरसो से स्नान, नक्षत्र और ग्रह का पूजन, धर्मोपनिषद का श्रवण और शास्त्रों का दर्शनें ।२०। तथा जन्म का तिरस्कार करे इस गण्डदोष का शमन होता है, तथा सातवाँ गर्भहा नामक भयंकर पुत्र, स्त्रियों के गर्भस्थ कलल को नष्ट करता है ।२१।

तस्यरक्षासदाकार्यानित्यंशोचनिषेवणात ।
प्रसिद्धमन्त्रलिखनाच्छस्तमाल्यादिधारणात् ।२२
विशुद्धगेहावसनादनायासाच्चवैद्विज ।
तथैवशस्यहाचान्यः शस्यर्द्धिमुपहन्तियः ।२३
तस्यापिरक्षांकुर्वीतजीर्णोपानद्धिधारणात् ।
तथापसव्यगमनाच्चण्डालस्यप्रवेशानात् ।२४
बहिर्वलिप्रदानाच्चसोमाम्बुपरिकीर्तनात् ।
परदारपरद्रव्यहरणादिषुमानवान् ।२५

नियोजयतिचं वान्यान्कन्यासाचनियोजिका ।२७
नियोजयत्येनमितिनगच्छेत्तद्वशबुधः ।
परदारादिसंसर्गेचित्तमात्मानमेवच ।२८
नियोजयत्यत्रसामामितिप्राज्ञोविचिन्तयेत् ।
विरोध कुरुतेचान्यादम्पत्योः प्रीयमाणयोः ।२९
बन्धूनांसुहृदांसुहृदांमित्रोः सार्वणिकैश्चया ।
विरोधिनीसातद्रक्षांकुर्वीतबलिकर्मणा ।३०

उसके शमनार्थं सदैव पवित्र भावसे रहे, प्रसिद्ध मन्त्र लिखकर माल्यादि धारण पूर्वक ।२२। शुद्ध गृह में निवास करे तथा अयास को त्यागे, हे विप्र ! इसी प्रकार आठवाँ शस्यहा नामकपुत्र सम्पूर्ण शस्य नाश करता है ।२३। खेत में पुराना जता रखे और बाँई ओर खेत में जाकर चण्डाल का प्रवेश करावे ।२४। बर्हिर्वलि प्रदान तथा सोमाम्बु के पाठ से उसका शमन होता है, प्रथम पुत्री नियोजिका का मनुष्यों को परनारी गमन और पराये द्रव्य के हरण आदि में नियोजित करती है, इसके शमनार्थं पुण्य ग्रन्थों का पाठ और क्रोध लोभादि का त्याग करे। ।२४-२६। किसी के द्वारा दुर्वचन कहने पर भी क्रोधित न हो और नियोजिका के उपर्युक्त कर्म का चिन्तन करके उस असत् वृत्त से अपने को रोके, जो विरोधिनी नाम वाली द्वितीय पुत्री है, वह अत्यन्त प्रेम युक्त दम्पति में ।२७-२८-२९।तथा सुहृद बन्धु, पिता, माता. पुत्र आदि में विवाद उत्पन्न कराती है, उसके शमनार्थं बलि कर्म करे ।३०।

तथातिवादसहनाच्छास्थाचार निषेवणात् ।
धान्यंखलाद्गृहाद्गोष्ठात्पयः सर्पितथापरा ।३१
सहृद्धिमृद्धिमद्द्रव्यादपहन्तिचकन्यका ।
सास्वयहारिकेत्युक्तासदान्तर्धानतत्परा ।३२
महानसादर्द्ध सिद्धमन्नागारस्थितंतथा ।
परिविष्यमाणंचसदासार्द्ध भुङ्क्तेचभुञ्जता ।३३
उच्छेषणमनुष्याणांहरत्यन्नं चदुर्हरा ।
कर्मान्तागारशालाभ्यासिद्धयृद्धिहरतिद्विज ।३४

गोस्त्रीस्तनेभ्यश्चपय: क्षीरहारीसदैवसा ।
दध्नोघृतंतिलात्तैलसुरागारात्तथासुराम् ।३५

इस प्रकार सब प्रकार के अतिवाद को परित्याग कर शास्त्रानुसार पवित्र कर्मों को करे, और जो तीसरी खरिखान नाम की पुत्री है, वह घर के अन्न, गौ दूध, घी ।३१। तथा द्रव्यादि की हानि और समस्त ऋद्धि सिद्धि का हरण करती है और जिसका नाम स्वयंहारिणी है, वह सदा छिपे रूप में रहती है ।३२। तथा रसोई की वस्तुओं या अन्य वस्तुओं में प्रविष्ट होकर अन्न का संचय नहीं होने देती तथा खाने वालों के साथ स्वय भी खाती है ।३३। जिस घर में अन्न के ढेर में से जो चोरी होती है उस अन्न के चुराने वाली वही है, जिस घर में श्रेष्ठ कर्म नहीं होते उस घर की ऋद्धि-सिद्धि का वही हरण करती है ।३४। गौओं और स्त्रियों के स्तन से दूध, दही में से घी, तिल में से तेल और सुरा की भट्ठी में से सुरा को वही पीती है ।३५।

रागकुसुम्भकदीनांकार्पासात्सुत्रमेवच ।
सास्वयंहारिकानामहरत्यविरतं द्विज ।३६
कुर्याच्छिखण्डिनोद्वंन्द्वं रक्षार्थंकृत्रिमांस्त्रियम् ।
रक्षाश्चं वगृहेलेख्यावर्ज्याचोच्छिष्टतातथा ।३७
होमाग्निदेवताधूपभस्मनाचपरिक्रिया ।
कार्याक्षीरादिभाण्डानामेवतद्रक्षस्मृतम् ।३८
उद्वगंजनयत्यन्याएकस्थाननिवासिनः ।
पुरुषस्यतुषाप्रोक्ताभ्रामणीसातुकन्यका ।३९
तस्याथरक्षांकुर्वीतविक्षिप्तं: सितसर्षपैः ।
आसनेशयनेचोर्व्यांवत्रास्तेसतुमानवः ।४०
चिन्तयेच्चनरःपापामामेषादुष्टचेतना ।
भ्रामयत्यसकृज्जप्यभूवः सूक्तं समाधिना ।४१
स्त्रीणांपुष्पंहरत्यन्याप्रवृत्तं सातुकन्यका ।
तथाप्रवृत्तं साज्ञेयादुः सहाऋतुहारिका ।४२

कुसुम्भादि पुष्प से रंग तथा कपास से सूत्र को हरती है, इसलिए इसे स्वय-हारिका कहा गया है।३६। इसका शमन करने के लिए अपने घर में एक स्त्री और दो मोरों के चित्र बनावे, वे चित्र सदा व्यक्ति रहें, मिटें नहीं।३७। होम करे, देवताओं के लिए धूप दिखावे फिर उसी अग्नि की भस्म को दुग्धादि के पात्रों पर लगावे स्त्री अपने स्तनों पर मले. इससे सब दोषों की शान्ति होती है।३८। तथा भ्रामणी नामक चौथी कन्या एक स्थान पर रहने वाले मनुष्यों के हृदय में प्रविष्ट होकर उद्वेग उत्पन्न कराती है।३९। इसका शमन करन के लिये आसन, शय्या और पृथिवी में श्वेत सरसों बिखेरे, किसी पाप कर्म में चित्त के लगने पर उसी दुष्टात्मा की प्रेरणा समझकर-समाधि युक्त होकर भूमि सूक्त का जप करे।४१। पांचवी कन्या ऋतु-हारिका ऋतुमती स्त्रियों के रज का हरण करती है।४२।

कुर्वीततीर्थदेवौकश्चैत्यपर्वतसानुषु ।
नदीसंगमखातेषुस्नपनतत्प्रशान्तय ।४३
मन्त्रविद्भूततत्वज्ञः पर्वसूषसिचद्विज ।
तेषांतुजनकार्यंधूपवत्युपहारकैः ।
चिकित्साज्ञश्चवैवद्यः सप्रयुक्तैवरौषधैः ।४४
स्मृतिचापहरत्यान्याप्रवृत्तांमातुकन्यका ।
अशाप्रवृत्तासाज्ञेयानृणांसास्मृतिहारिका ।४५
विविक्तदेशसेवित्वात्तस्याश्चपशमोभवेत् ।
बीजापहारिणीचान्यास्त्रीपुंसोरतिभीषणा ।
मेध्यान्नभोजनैःस्नानैस्तस्याश्चोपशमोभवेत् ।४६
वारुणासादुराचारादारुणकुरुतेभयम् ।
तत्प्रशांत्यैप्रकुर्वीतद्विजानामर्चनंशुभम् ।४७
अष्टमीद्वेषणीनामकन्यालोकभयावहा ।
याकरोतिजनद्विष्टंनरनारीमथापिवा ।४८
मधुक्षीरघृताक्तांस्तुशान्त्यर्थंहोमयेत्तिलान् ।
कुवीतमित्रविन्दांचतथेष्टितत्प्रशान्तये ।

इसके शमनार्थ तत्वज्ञानी पंडित पर्वत की कन्दराओं और तीर्थों में मन्दर बनवावें तथा नदी के संगम स्थल पर स्नान करें।४३। मंत्रविद् इन सब कर्मों को प्रातःकाल करे तथा घृतादि से उपहार का पूजन और चतुर वैद्य से चिकित्सा करावे।४४। छटवीं कन्या स्मृति हारिका स्त्रियों और पुरुषों की स्मृति को हर लेती है।४५। इसके शमन के लिए श्रेष्ठ परिष्कृति और रमणीक स्थान का सेवन करे, सातवी पुत्री बीजाप हारिणी स्त्री-पुरुषों की रति को विनष्ट करती है, इसकी शांति के लिए पवित्र अन्न का भोजन और स्नान करे।४६। यह दुराचारिणी घोर भय को उत्पन्न करने वाली है, उसकी शान्ति के लिए ब्राह्मण-पूजन श्रेष्ठ कर्म हैं।४७। आठवीं पुत्री द्वेषिणी स्त्री-पुरुषों में द्वेष कराने वाली है। ।४८। इसका शमन करने के लिये मधु, दुग्ध, घृत और तिल की आहुति देकर मित्रविन्दा नामक यज्ञ करे।४९।

एतेषांतुकुमाराणांकन्यानांद्विजसत्तम् ।
अष्टत्रिंशदपत्यानितेषांनामानिमेश्रृणु ।५०
दन्ताकृष्टेभूत्कन्याविराजल्पाकलहातथा ।
अवज्ञानृतद्ष्टोक्तिविजल्पातत्प्रशान्तये ।५१
तामेवचिन्तयेत्प्राज्ञः प्रयतश्चगृहीभवेत् ।
कलहाकलहंगेकरोत्यविरतंनृणाम् ।५२
कुटुम्बनाशहेतेतुः सातत्प्रशान्तिनिशामय ।
दूर्वाकुरान्मधुघृतक्षीराक्तान्बलिकर्मणि ।५३
विक्षिपेज्जुहुयाच्चैवानलमित्रंचकीर्तयेत् ।
भूतानांमातृभिः सार्द्धंबालकानांतुशान्तये ।५४
विद्यानांतपसांचैवसयमस्ययमस्यच ।
कृष्यांवाणिज्यलाभेचशांतिकुर्वन्तुमेसदा ।५५
पूजिताश्चयथान्यायंतुष्टिगच्छन्तुसर्वशः ।
कूष्माण्डायातुधानाश्चयेचान्येगणसंज्ञिता ।५६

इन सब पुत्र-पुत्रियों की अड़तीस सतानें हुईं, उनके नाम बताता हूँ सुनो ।५०। दन्ताकृष्टि के विजल्पा और कलहा नाम की दो कन्याएँ हुई विजल्पा

अवज्ञा करने वाली तथा मिथ्या और दुष्ट भाषिणी है, उसके शमनार्थ ।५१। गृहस्थ को संयत चित्त होकर उसी का चिन्तन करना चाहिये और कलहा सदा घरों में कलह कराती है ।५२। तथा उनके कुटुम्ब का नाश कराने वाली है, इसकी शान्ति के लिए दूध के अकुर, मघ, दूध की बलि देकर ।५३। अग्नि में होम करे तथा सम्पूर्ण गृह मे जल छिड़के-मित्रविन्दा का जप करे और यश वर्णन तथा विनती सहित भूतों का पूजन करे, इससे बालकों की शान्ति हो जायगी ।५४। फिर कहे कि विद्या, तप, संयम, यम, कृषि और व्यापार में तुम लाभार्थ हमारी सहायता करो ।५५। तथा सभी कूष्माण्ड और शतुधान आदि गण है वे सब भी मेरे इस पूजन को स्वीकार कर संतुष्टि को प्राप्त हों ।

महादेवप्रसादेनमहेश्वरमतेनच ।
सर्वएतेनृनृणांनित्यंतुष्टिम शीघ्रजन्तुते ।५७
तुष्टासर्वंनिरस्यन्तुदुष्कृतंदुरनूष्ठितम् ।
महापातकजसर्वंयच्चान्यद्विघ्नकारणम् ।५८
तेषामेवप्रसादेनविघ्नानश्यन्तुसर्वशः ।
उद्वाहेषुचसर्वेषुवृद्धिकर्मसुचवहि ।५९
पुण्यानुष्टानयोगेषुगुरुदेवार्चनेषुच ।
जपयज्ञविधानेषुयात्रासुचचतुर्दश ।६०
शरीरारोग्यभोग्येयुसुखदानधनेषुच ।
वृद्धबालातुरेष्वेवशांतिकुर्वतुमेसदा ।६१
सोमाम्बुपौतधाम्भोभिः सविताचानिलानलौ ।
तथोक्तेः कलिजिह्वोऽभूत्पुत्रस्तालनिकेतनः ।६२
सयेषांरनासंस्थस्तानसाधून्विवादयेत् ।
परिवर्तसुतौद्वौत विरूपविकृतौद्विज ।६३
तौत वृक्षाद्रिपरिखाप्रकाप्राकारांभोधिसंश्रयौ ।
गुर्विण्याः परिवर्तंतौकुरुतः पादपादिषु ।६४

महादेव के प्रसाद और महेश्वर की अनुमति के अनुसार सब मनुष्यों पर शीघ्र प्रसन्न होकर नित्य ही रक्षा करो ।५७। तथा संतुष्ट होकर मेरे सब

पाप,दूषित कर्म तथा महापाप जनित सब कष्टों और विघ्न के कारणों के विनष्ट करो।५८। यदि विवाहादि शुभ कार्यों की वृद्धि में विघ्न उपस्थित हो तो वह सब भी आपके प्रसाद से नष्ट हो जाय।५९। पुण्य कार्य के अनुष्ठान, गुरु देवता के पूजन, जप, यज्ञ, कर्त्तव्य और चौदह यात्रा में। ।६०। शारीरिक आरोग्य, भोग, सुख, दान, धन के विषय में तथा वृद्ध, बालक और पीड़ित व्यक्ति के विषय में भी सदैव शान्ति की स्थापना करो।६१। सोम, वरुण, सूर्य, सागर, वायु, अग्नि आदि भी मेरी रक्षा करें करें तथोक्ति का कालजिह्व नामक तालवृक्ष में रहने वाला एक पुत्र है।६२: वह कालजिह्व जिस स्त्री की जिह्वा पर बैठ जाता है, उसके बालक को अत्यन्त पीड़ाप्रद होता है, परिवर्त्तक के दो पुत्र विरूप और विकृत नामक हुए।६३। वह वृक्ष के अग्रभाग में, खाई में, प्राचीर में निवास करके गर्भिणी का परिवर्तन किया करते हैं।६४

क्रोष्टुकेपरिवर्त स्याद्गर्भस्यान्योदरात्ततः।
नवृक्षचैवनंवाद्रिनप्राकारंमहोदधिम्।६५
परिखांवासमाक्रामुदवललागर्भधारिणी।
अङ्घ्र स्तनयलंभेपिशुनंनामतः।६६
सोऽस्थिमज्जागतः पुसांबलमत्यांजतात्मनाम्।
श्येनकाककपोतांश्चगृध्रोलूकांचवैसुतान्।६७
अवापशकुनिः पचगृहुस्तान्सुरासुराः।
श्येन जग्राहमृत्युश्चकाकं कालोगृहीतवान्।६८
उलूकंनिर्ऋतिश्चैवजग्राहातिभयावहम्।
गृध्रंव्याधिस्तशोऽथकपीतंचस्वययम्।६९
एतेषामेवचंवोक्ताभूताः पापोपादने।
तस्माच्छ्येनादयोयस्यनिलीये युःशिरस्यथ।७०
तेनात्मरक्षणायालंशांतिकुयर्याद्द्विजोत्तम।
गेहे प्रसूतिरेतेषांतद्भिन्नीडनिवेशनम।७१
नरस्तंबर्जयेद्गेहंकपोताक्रांतमस्तकम्।
श्येनांकपोतोगृध्रश्चकाकोलूकौगृहेद्विज।७२

प्रविष्टः कथयेदंत वसतांतत्रवेश्मनि ।

इ'दृक् परित्यजेद्गेगंशांतिकुर्याच्चपण्डितः ।७३

हे क्रोष्टुकि ! गर्भिणी स्त्री को वृक्षों में, कोठे पर, नदी तट पर न जाना चाहिए ।६५। तथा खाई में न जाय, अंगध्रुक के पिशुन नामक पुत्र हुआ ।६६। वह अज्ञान में अंधे हुए मनुष्यों की हड्डी और मज्जा में घुसकर बल का भक्षण करता है, श्वेन, काक, कपोत, गृध्र और उलूक ।६७। यह पांच पुत्र शकुनि के हुई, इनको सुर, असुर ने ग्रहण किया है, श्येन को मृत्यु ने, काक को काल ने ।६८। उलूक की नैऋति ने, गृध्र को व्याधि ने और कपोत को स्वयं यम ने ग्रहण किया ।६९। यह सभी पापों के उत्पन्न करने वाले हैं, इसलिए बाज इत्यादि के सर पर बैंठने से ७०। आत्म रक्षा के निमित्त शान्ति कर्म करे, जिस घर में यह घोंसला बनावें अथवा शिशु उत्पादन करें ।७१। उस घर का शो मनुष्य परित्याग कर दे, श्येन, कपोत, गृध्र, काक और उलूक ।७ । घर में प्रविष्ट होकर उस घर को रहने वाले के अन्त की सूचना देते हैं, इसलिए ज्ञानियों को ऐसे घर को छोड़कर शान्ति कर्म करना उचित है ।७३।

स्वप्नेऽपिहिकपोतस्यदर्शनंनप्रशस्यते ।

षडपत्यानिकथ्यन्तेगण्डप्रांतरतेस्तथा ७४

स्त्रीणांरजस्यवस्थानंतेषांकालांश्चमेश्रृणु ।

चत्वार्यहानिपूर्वाणितथवान्यत्त्रयोदशम् ।७५

एकादशत्तजेवान्यदपत्यंतस्यवैदिने :

द्विनाभिगमनेश्रदानेतथापरे ।७६

पर्व्वस्वथान्यत्तस्मात्तु वर्ज्यान्येतानिपण्डितैः ।

गर्भहन्तुः सुतोनिघ्नोमोहिनीचापिकन्यका ।७७

कबूतर का जन्म में देखना भी अमङ्गल जनक है, गण्ड प्रान्तरिक के जो छः पुत्र कहे गये ।७४। वह स्त्रियों के रज में रहते है उनका समय सुनो, पहिले चार दिन, तेरहवां दिन ।७५। ग्यारेहवा दिन, दिन का अन्त समय, श्राद्ध का दिन अथवा दान कर्म का दिन ।७६। और पर्व दिवस यह सब उनके रहने का समय समझो, इन सब दिनों का ज्ञानियों क

परित्याग करना चाहिए गर्भहन्ता के एक विघ्न नामक पुत्र और मोहिनो नामक एक कन्या उत्पन्न हुई ।

प्रविश्यगर्भं मर्त्येक्तोभुवत्वामोहयतेऽनरा ।
जायन्तेमोहनात्तस्याः सर्पमण्डूकक्कच्छपाः ।७८
सरीपृपाणिचान्यानिपुरीषमथावापुनः ।
षण्मासाद्गुर्विणीमाससमश्नुव.नामसयताम् ।७६
वृक्षच्छायाश्रयांरात्रावथवात्रिचतूष्पथे ।
श्मशानकटभूमिष्ठामुत्तरीयविवर्जिताम् ।८०
रुद्यनानांनिशीथेऽथआविशेत्तामिमौस्त्रियम् ।
शस्यहन्तुस्तथैवेकः क्षुद्रकोनामनामतः ।८१
सस्यर्द्धिससदाहन्तिलब्ध्वारध्र शृणुष्वतत् ।
अमगल्यदिनारम्भेसुतृप्तोवपतेचयः ८२
क्षेत्रेष्वनुप्रवेशवैंकरेत्यन्तीपसगिषु ।८३

यह कन्या गर्भ में प्रविष्ट होती है और विघ्न स्वच्छ गर्भ का आहार करता है. मोहिनी मोह को उत्पन्न करती है उसी मोह से सर्प, भेड़कछुए । ८। तथा विच्छू आदि जन्तु और पुरुष उत्पन्न होते हैं, गर्भवती छः महीने मांस भक्षण से, असंयम से ।७६। रात्रि में वृक्ष के नीचे, तिराहे या चौराहे पर जाने से अथवा श्मशान में जाने से या नग्न होने से ।८०। अथवा रात्रि के समय रोने से स्त्री में विघ्न प्रविष्ट होता, शस्यहन्ता के क्षुद्रक नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ । १। वह छिद्र मिलते ही धान्य कीं वृद्धि को रोक देता है, जो मनुष्य मंगल रहित दिवस में तृप्त हकर धान्य का बीजारोपण करता है उसके खेत में क्षुद्रक घुस जाता है ।८२-८३

अमंङ्गल्यादिनारंभ गलानांचवजंयेत् ।
(महभद्यंप्रयच्छंलियत्रवैंतत्प्रसंगिषु ।
तस्माकल्पः सुप्रशस्तेदिह्ऽभ्यच्यं निशाकरम् ।८४
कुर्यादारम्भमुप्तिचहृष्ठस्तुष्टः सहायवान् ।
नियोजिकेतियाकन्यादुःसहस्यमयोदिता ।८५

जातप्रचोदिकासंज्ञं तस्याः कन्याचतुष्टयम् ।
मत्तोन्मत्तप्रमत्तांस्तु नरान्नारीस्तु ताः सदा ।८६
समाविशन्तिनाशायचोदयन्तीहदारुणम् ।
अधर्मंधर्मरूपेणकामंचाकामरूपिणम् ।८७
अनर्थंचार्थरूपेणमोक्षंचामोक्षरूपिणम् ।
दुर्विनीतान्विनाशौचंदर्शयन्तिपृथङ् नरान् ।८८
अशश्याभिः प्रविष्टाभिः पुरुषार्थात्पृथङ् नराः ।
तासांप्रवेशश्चगृहेसन्ध्यु क्षसुह्यु दुम्बरे ।८९
धात्रे विधात्रे चवलियत्रकाले नदायते ।
भुञ्जतांपिवतांवापिसगिभिजंर्लविप्रुषः ।९०
नरनारीषुसंक्रान्तिस्तासामाश्वभिजायते ।
विरोधिन्यास्त्रयः पुत्राश्चोदकोग्राहकस्तथा ।९१

वह मंगलो को बाधा देकर अमंगल का आरम्भ करता है घोर भय प्रस्तुत करता हैं, इसकी शान्ति के लिये शुभ पवित्र दिन में चन्द्रमा का पूजन करके ।८४। प्रसन्न चित्त होकर कृषि कार्य का आरम्भ करे, दुःसह की जिस नियोजिका नाम वाली कन्या का पहिले वर्णन कर चुका हूं ।८५। उसके प्रचोदिका नाम की चार कन्याएँ हुईं, वे अत्यन्त मद मत्त यौवन सम्पन्न स्त्री पुरुषों में प्रवेश करके ।८६। उनको नष्ट करने के लिए बुरे रूप से प्रेरित करती हैं और धर्म और अधर्म तथा अकाम में काम को ।८७। अर्थ में अनर्थ को अमोक्ष में मोक्ष की प्रेरणा पूर्वक पृथक्-पृथक् भावों का दर्शन कराती और अत्यन्त दारुण रूप उनके विनाशार्थ प्रविष्ट होती है ।८८। पूर्वोक्त आठ कन्याओ द्वारा पुरुषार्थ हत हो कर पुरुष घूमते फिरते हैं, यह गृहों में स्थित गूलर में नक्षत्र के संधिकाल में प्रविष्ट होती है ।८९। जब धाता विधाता का पूजन नहीं किया जाता, उसी समय घर में घूमती है, साथियों सहित भोजन, जलपान या कुल्ला करने के समय ।९०। स्त्री पुरुषों को उनका संक्रमण होता है, विरोधिनी के तीन पुत्र उत्पन्न हुए एक का नाम चोदक, दूसरे का ग्राहक ।९१।

तमः प्रच्छादकश्चान्यास्तत्तस्वरूपंशृणुष्वमो ।
प्रदीपतैतलसंसर्गंदूषितेलघितेखले ।६२
मुसलोलूखले यत्रपादुकेवासनेस्त्रियः ।
शूर्पं दात्रादिकं यत्रपदाकृष्टं तथासनम् ।६३
यत्रो-लिप्तेनाभ्यर्च्यंविहारः क्रियतेगृहे ।
दर्वीमुखेनयत्राग्मिराहृतोऽन्यत्रनीयते ।६४
विराधिनीसुतास्तत्रविजृम्भन्तेप्रचोदिताः ।
एकोजिह्वागतः पुंसस्त्रीणांचालीकसत्यवान् ।६५
चोदकोनामसप्रोक्तः पैशुन्यं कुरुतेगृहे ।
अवधानगतण्चान्यःश्रवणस्थोऽतिदुमतिः ।६६
करोतिग्रहणतेषांवचसांग्राहकस्तुसः ।
आक्रम्यान्योमनोनृणांतमताच्छाद्यदुर्मतिः ।६७
क्रोधजनयतेयस्तुतः प्रच्छादकस्तुसः ।
स्वयंहर्थास्तत्चौयणजनितं तनयत्रयम् । ८

तीसरे तामाच्छादयक पुत्र का स्वरूप सुनो जहाँ मूसल या ओखली दीपक के तेल से दूषित की जाती अथवा उलांघो जाती है ।६२। अथवा जहां मूसल और ओखली स्त्रियों की रण पादुका अथवा आसन होता है जहाँ स्त्रियाँ पैरों से सूप दरान्ती, आसन आदि को हटाती हैं ।६३। लिपे हुए स्थान में जहाँ पूजन किये बिना ही बिहार किया जाता है, अथवा जहाँ कलछुली से अग्नि निकालकर दी जाती है ।६४। उन सभो स्थानों में विरोधिनी के पुत्र अपना विक्रम दिखाते हैं और जो स्त्रीपुरुषों की रसना पर बैठ कर झूठ सत्य कहलाता है । ५। उसे चोदक कहते है, वह कुटिलता तथा अन्य नीच कर्म कराने वाला है, अति दुर्मति कानों में रह कर ।६६। उन सब वाक्यो को ग्रहण करता है तथा तमाच्छादक मनुष्यों के मन पर अधिकार करके ।६७। तम से अच्छादित कर क्रोध को उत्पन्न करता , स्वयंहारी के तीन पुत्र उत्पन्न हुए ।

सर्वहार्यर्द्ध हरीचवीर्यहारीतथैवच ।
अनाचान्तगृहेष्वेतेमन्दाचापगृहेषच ।९९
अप्रक्षालितपादेषुप्रविशत्सुमहानसम् ।
खलंषुगोष्ठेषचवैदोहोयेषुगृहेषुत्रं ।१००
तेषुसर्वेयथान्याय विहरन्तिरमन्तिच ।
श्रामण्यास्तमयस्त्वेकः काकजघइतिस्मृतः ।१०१
तेनाविष्टेर्गृहेसर्वो नैवप्राप्नोतिनैमुने ।
भुञ्जन्योगायतेमैत्रे गायतेहसतेचया ।१०२
सन्ध्यामैथुनिनचैवनमाविशतिद्विज ।
कन्यात्रय प्रसूतासायाकन्याऋतुहारिणी ।१०३
एकाकुचपराकन्याअन्याव्यञ्जनहारिका ।
तृतीयातुसमाख्याताकन्यकाजातहारिणी ।१०४
यस्यानक्रियतेसवः सम्यग्वैवाहिकीविधिः ।
कालातोतोऽथवातस्याहस्त्येकाकुचद्वयम् ।१०५

सर्वाहारी अर्द्धाहारी और वीर्यहारी यह अपवित्र अथवा मन्दआचरण वाले घर में ।९९। बिना चरण धोये पाठशाला में घुसने वालों के घर या खलियान में विद्रोह उपस्थित करता है । १००। यह उन सभी स्थानों में विभिन्न रीति से बिहार करते हैं, श्रमणी के काकजङ्घ नामक पुत्र की उत्पत्ति हुई।१०१।यह जिस घर में घुस जाता है, उसमें कोई प्रसन्न नहीं रहता, जो मनुष्य भोजन के समय गाते और मित्रों से वार्तालाप, हास परिहास करते हैं ।१०२। अथवा जो सन्ध्या काल में मथुन करते, उन पर काकजङ्घ का आक्रमण होता है, ऋतुहारिणी के तीन कन्याएं उत्पन्न हुई ।१०३। प्रथम कन्या का नाम कुचहरा, द्वितीय का व्यञ्जनहारिका तथा तृतीय का जातहारिणी नाम हुआ ।१०४। जिस कन्या का विवाह सम्यक् विधि विधान से नहीं होता या विवाह की लग्न-व्यतीत होने पर होता है, उस कन्या के स्तनद्वय को वह कुचहरा हरण कर लेती है ।१०५।

सम्यक् श्राद्धमदत्वा च तथा नभ्यर्च्यं मातृकाः ।
विवाहितायाः कन्याया हरति व्यञ्जन तथा ।१ ६
अग्न्यम्बुशून्ये च तथा विधूपसूतिकागृहे ।
अदीपशस्त्रमुसले भूतिसषर्वजितः ।१०७
अनुप्रविश्य सा जातमहृन्यात्मसम्भवम् ।
क्षणप्रसविनी बालं तत्रैवोत्सृजते द्विज ।१०८
सा जातहारिणी नाम सुघोरा पिशिताशना ।
तस्मात्सरक्षणंक यं यत्नतः सूतिक गृहे ।१०९
स्मृतिं चाप्रयतानां च शून्यागारिनिषेवणात् ।
अपहन्ति सुतस्तस्याः प्रचण्डो नाम नामतः ।११०
पौत्रे भ्यस्तस्य सम्भूता लोकाः शतसहस्रशः ।
चण्डालयोनयश्चाष्टौ दण्डापाशातिभीषणाः ।१११
क्षुधाविष्टास्तोलीकास्ताश्चण्डालयोनयः ।
अभ्यधावन्त चान्योन्यमत्तु कामाः परस्परम् ।११२

श्राद्धादि कर्म और मातृका के अर्चन बिना जिस कन्या का विवाह किया जाता है, व्यञ्जनहारिका उसका हरणकर लेती है।१० ।सूतिकागृह में अग्नि, जल, धूप, दीपक, शस्त्र, मूशल, भस्म, सरसो आदि के न होने से ।१०६। जातहारिणी वहाँ प्रविष्ट होकर तत्काल उत्पन्न हुए बालको का हरण करती है और उनके स्थान पर अन्य बालक रख देती है ।१०८। इसलिये उस जातिहारिणी से सूतिकागृह में बालक की यत्न-पूर्वक रक्षा करनी चाहिए ।१०९। उसका प्रचण्ड नाम का पुत्र है जो निर्जन घर में रहने वाले असयत चित्त वाले मनुष्यों की स्मृति का हरण कर लेता है ।११०। उसके पौत्रों के द्वारा सो सहस्त्र लोकों की उत्पत्ति हुई, दण्ड और पाश को धारण करने वाली अत्यन्त भयकर चाण्डलों की आठ योनियाँ भी इसी के वंश से हुई हैं ।१११। जब तोली का और चाण्डाल जातियाँ क्षुधातुर होकर परस्पर के भक्षणार्थ दोड़ी ।११२।

प्रचण्डोवारयित्वातुयास्ताश्चण्डालयोनयः ।
समयेस्थापयामासयाद्दशेताद्दशश्शृणु ।११३
अद्यप्रभृतिलोकानामातासंयोहिदास्यति ।
दडतस्याहमतुलंपातयिष्येनसंशयः ।११४
चण्डालवोन्यावसथेलोकायाप्रसविष्यति ।
तस्याश्चसन्ततिः पूर्वासाचसद्यानशिष्यात ।११५
प्रसूतेकन्यकेद्वे तुस्त्रीपुंसोर्वीजहारिणी ।
वातरूषामरूपांचतस्याः प्रहरणतुते ।११६
वातरूपानिमेकान्तेसायस्मै क्षिपतेसुतम् ।
सपुमान्वावशुत्वंप्रयातिवनितापिवा । ११७
तथवगच्छतः सद्योनिर्वीजत्वमरूपया ।
अस्नाताज्ञीनरोयोऽशौतथागापिवियोगिन ।११८
विद्वेषिणातयाकन्याभृकुटीकुटिलानना ।
तस्यद्वौतनयौपुंसामप्रकारप्रकाशकौ ।११९

तब प्रचण्ड ने उन्हें निवारण किया और जिस समय में स्थापित किया, उसे सुनो ।११३। आज से जो पुरुष लोकों को स्थान देगा, उसे मैं घोर दुःख दूंगा ।११४। चाण्डाल के घर में या पराये घर में रहकर जो स्त्री सन्तान को जन्म देती है, वह लोक उसकी सब सन्तानों को नष्ट करने वाली होती है ।११५। स्त्री-पुरुषों के वीर्य को हरण करने वाली बीजापहारिणी के वातरूपा और अरूपा नाम की दो कन्याएं हुईं ।११६। उनमें वातरूपा सिंचन के समय शुक्र को जिसमें गिराती है, वह पुरुष या स्त्री वातशुक्रत्व के रोग से पीड़ित होते हैं ।११७। जो पुरुष बिना स्थान, बिना भोजन करे नारी समागम करता अथवा किसी अन्य योनि में भोग करता है, उसे अरूपा शीघ्र ही वीर्य रहित कर देती है ।११८। कुटिल मुख वाली, जिसकी भौंहें सदा तनी रहती हैं, उस विद्वेषिणी के दो पुत्र उत्पन्न हुए, वह सदा ही पुरुषों का अपकार करते रहते हैं ।११९।

निर्बीजत्वं नरायाति नारी वाशौचवर्जिता ।
पैशुन्याभिरतलोलमसज्जलनिषेषणम् ।१२०
पुरुषद्वेषिणं चेतौ नरमाक्रम्य तिष्ठतः ।
मात्राभ्रात्रातथामित्रैरभीष्टैःस्वजनैः परैः १२१
विद्विष्टोनाशमायाति पुरुषो धर्मतोऽर्थतः ।
एकस्तु स्वगुणांल्लोके प्रकाशयति पांगकृत् ।१२२
द्वितीयस्तु गुणान्मैत्रीलोकस्थानमपकर्षति ।
इत्येते दौःसहा सर्वैंथक्ष्मणः सन्ततावथः ।१२३

अपवित्र स्त्री पुरुष की निर्वीयत्व को प्राप्त होते हैं, विद्वेषिणी के दोनों पुत्र परनिन्दा मे लगे, चञ्चल, अशुद्ध एवं जलसेवी ।१२०। तथा पुरुष द्वेषी पुरुष में अवस्थित होते है, माता, भ्राता, मित्र, प्रियजन या आत्मीयजन के ।१२१। विद्वेषी होने पर धर्म और अर्थ को नष्ट कर देते हैं, इस प्रकार एक पापाचारी पुत्र ने अपने गुणों को प्रकाशित किया हुआ है ।१२२। दूसरा पुत्र लोको के गुणों और मैत्री भाव का आकर्षण करने में समर्थ है, इस प्रकार पाप का आचरण करने वाले दुःसह के गुणों ने सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त किया हुआ है ।१२३।

४४-रुद्रादिसृष्टि

इत्येषतामसः सर्गो ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
रुद्रसर्गंप्रवक्ष्यामितन्मेनिगदतः शृणु ।१
तनवश्चतथैवाष्टौपत्न्यः पुत्राश्चतेतथा ।
कल्पादावात्मनस्तुल्यप्रध्यायतः प्रभोः ।२
प्रादुरासीदधांकेऽस्यकुमारीनीललोहितः ।
रूरोदसुस्वसोऽथद्र॰ श्चद्विजसत्तम् ।३
किरोदिषीतितंब्रह्मारुद्रन्तं प्रत्युवाचह ।
नामदेहीतितसोऽथप्रत्युवाचजगत्पतिम् ।

रुद्रस्त्वं देवाम्नासिमारोदीर्धैर्य्यंमावह ।
एवमुक्तस्ततः सोऽथसप्तकृत्वोऽरुरोदह ।५
ततोऽन्यानिददौतस्मैंसप्तानामानिवं प्रभुः ।
स्थानानिचेंषामष्टनांपत्नीः पुत्रांश्चवैं विज ।६

मार्कण्डेयजी ने कहा—अव्यक्त जन्मा ब्रह्माजी की तामसी सृष्टि का यह वर्णन हुआ अब रुद्रसर्ग का विषय वर्णन करते हैं, श्रवण करो ।१। आठ पुत्र, उनकी पुत्रीं और सब पुत्र कल्प के आदि में आत्मतुल्य सुत का चिन्तन करने के कारण उसीं प्रकार के हुए ।२। हे द्विजवर ! उन आठ पुत्रों में जो एक नीललोहित वर्ण वाला पुत्र ब्रह्माजी की देह से उत्पन्न हुआ था वह उनकी गोदी में ही सुस्वर पूर्वक रोने लगा ।३। उसे रुदन करता हुआ देखकर ब्रह्माजी ने प्रश्न किया 'तू क्यों रोता है ?' तो उस बालक ने कहा 'हे जगत्पते ! मुझे नाम दीजिये ।४। ब्रह्माजी ने कहा—'तुम्हारा नाम रुद्र हुआ, अब तुम रुदन बन्द करके धैर्य धारण करो, ब्रह्माजी के ऐसा कहने पर भी वह बालक सात बार पुनः रोया ।५। हे द्विज ! तब उन्होंने उसे क्रमशः सात नाम और दिये, तदनन्तर इन आठों को आठ स्थान, पत्नी और पुत्र भी दिए ।६

भवं शर्वं तथेशानं तथापशुपतिप्रभुः ।
भीममुग्रं महादेवमुवाचसपितामहः ।७
चक्रे नामान्यथैतानिस्थानान्येषांचकारह ।
सूर्य्यो जलमहीवह्निर्व्वायुराकाशमेवच ।८
दीक्षितोब्रह्मणः सोमइत्येतास्तनवः क्रमात् ।
सुवर्चलातथैवोमाविकेशाचापरास्वधा ।९
स्वाहादिशस्तथादीक्षारोहिणीचयथाक्रमम् ।
सूर्य्यादीनांद्विजश्रेष्ठरुद्राद्यैर्नामभिः सहः १०
शनैश्चरस्ताशुक्रोलोहिताङ्गोमनोजवः ।
स्कन्दःसर्गोऽथसन्तानोबुधश्चचानुक्रमात्सुताः ।११
एवम्प्रकारोरुद्रोऽसौसती भार्य्यामविन्दत ।
दक्षकोपाच्चतत्याजसासतीस्वंकलवरम् ।१२

शंभोरवज्ञायत्रास्तेस्थातव्यनैवसूरिभिः ।
एतेचब्राह्मणाः सर्वेयेद्विषतोमहेश्वरम् ।
भवतुतेवेदबाह्याःपापोपहतचेतसः ।
पाखंडाचारनिरताःसर्वेनिरयगामिनः ।
कलौयुगेतुसंप्राप्तेदरिद्राःशूद्रजापकाः ।
हिमवद्दुहितासाभून्मेनानांद्विजसत्तमः ।
तस्याभ्रातातुमैनकः सखाम्भोधेरनुत्तमः ॥१३
उपयेमेपुनश्चैनामनन्यांभगवान्भवः ।
देवौधाताविधातारौभृगोःख्यातिरसूयत । १४

ब्रह्मा जी ने रुद्र भव, शर्व ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव ॥७॥ यह आठ नाम देकर आठों स्थान का निर्देश किया।सूर्य जलपृथिवी वह्नि वायु आकाश ॥८॥ दीक्षित ब्राह्मण और सोम तथा सुवर्चलाला उमा विकशी, स्वधा ।९। स्वाहा, दिक् दीक्षा और रोहिणी यह नाम उनकी भार्याओंके हुए अब रुद्रादि के नामों सहित उनके पुत्रों के नामोंका वर्णन करता हूंउसे सुनो ।१०। रुद्रादि के क्रमशः शनैश्चर, शुक्र, लोहितांङ्ग, मनो जव स्कन्द, सर्ग सन्तानऔर बुध यह आठ पुत्र हैं ।११॥ इन रुद्र ने पत्नी रूपसे सती को प्राप्त किया थाऔरदक्ष कोपके कारण सती ने अपने शरीर का परित्याग कर दिया था ॥ २॥(क्योंकि जहां शिवजीका तिरस्कारहो वहां न रहे,महेश्वर सेद्वेष करने वालेय ब्राह्मण पाप से नष्टचेता हों,वेदसे बहिर्मुख तथा पाखंडीओर नारकी हों,कलियुग केआने पर दरिद्र औरशूद्रों का जप करें)इसप्रकार शाप देकर वह मेनकाके गर्भ सेहिमवान् सुता बनी, उसका भाई मैनका सागर का सखाहै॥१३॥ उस पार्वती सेभगवान् भवने विवाह किया, भृगुजी की पत्नी ख्याति के विधाता नामक दो पुत्र हुए थे ॥१४॥

श्रियंचदेवदेवस्यपत्नीनारायणस्यया ।
आयातिनियतिश्चैवमेरोःकन्येमहात्मनः । ५

भार्येधातावितृाग्रोस्तेतयोर्जातोसुताशुभौ ।
प्राणैश्चवमृकण्डुश्चपितामममहायशाः ।१६
मनस्विन्यामह तस्मात्पुत्रोवेदशिरामम ।
धूम्रवत्यांसमभवत्प्राणस्यापिनिबोधमे ।१७
प्राणस्यद्युतिमान्पुत्रउत्पन्नस्तस्यचात्मजः ।
अजराश्चतयोपुत्रापौत्रःश्चवहवोऽभवम् ।१८
पुत्रोमरीचेःसंभूतिः पौर्णमासमसूयत ।
विरजापर्वतश्चैवतस्यपुत्रौमहात्मनः ।१९
तयोः पुत्रांस्तुः वक्ष्येहं वंशसंकीर्त्तनेद्विज ।
स्मृतिश्चाङ्गिरसःसत्नीप्रसूताकन्यकास्तथा ।२०
सिनीवालीकुहूश्चैवराकाचानुमतिस्था ।
अनसूयातथैवात्रेर्जज्ञपुत्रानकल्मषान् ।२१
सोमदुर्वाससचैवदत्तात्रेयंचयोगिनम् ।
प्रीत्यांपुलस्त्यभार्यायांदत्तोन्यस्तत्सुतोऽभवत् ।२२

लक्ष्मीजी भगवान् नारायणकी भार्या हुई और महात्मामेरुकी आयति नियति नाम की दो कन्याएं थी ।१५। वे दोनों धाता-विधाता की पत्नी हुईं इन दोनों के एक-एक पुत्र हुआ, धाता ने आयति के पुत्र का नाम प्राण और विधाता ने नियति के पुत्र का नाम मृकण्डु रखा, महायशस्वी मुझ मार्कण्डेयजी के यही पिता है।१६।मेरे पिता मृकण्डु का विवाह मनस्विनी से हुआ वही मेरी माता हैं, मैंने अपने पुत्रका नाम वेदशिरा रखा, प्राण की भार्या धूम्रवती थी, अब उसके पुत्रों का वर्णन करता हूं ।१७। धूम्रमवती के द्युतिमान और अराजक नामक दो पुत्र हुए, इनके अनेक पुत्रपौत्र हुए।१८। मरीचिकी पत्नी सम्भूति से पौणमास का जन्म हुआ, उसके विरजा और पर्वत नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए १९। हे द्विज ! इनके पुत्रों के वंश का वर्णन करता हूँ,अंगिरा-पत्नी स्मृतिने।२०।चार कन्याएं उत्पन्न कीं, उनका नाम सिनीवाली, कुहू, राका अनुमति था, अत्रि से अनसूया ने निष्पापा ।२१।सोम, दुर्वासा और दत्तात्रेय नामक तीन योगी

पुत्रों को उत्पन्न किया, पुलस्त्य-पत्नी प्रीति ने दत्त को जन्म दिया।२२।

पूर्वजन्मनिसोऽगस्त्यः स्मृतः स्वायम्भुवेऽन्तर।
कर्दमश्चार्ववीरश्चसहिष्णुश्चसुतत्रयम्।२३
क्षमातुसुषुवेभार्यापुलहस्यप्रजापतेः।
क्रतोस्तुसन्ततिभार्याबालखिल्यानसूयत।२४
षष्ठियानिसहस्राणिऋषीणामूर्द्ध्वरेतसाम्।
ऊर्जायान्तुवसिष्ठस्यसप्ताजयन्तवैसुताः।२५
रजोगात्रोर्ध्वबाहुश्चानघस्तथा।
सुतपाःशुक्लइत्येतेसर्वेसप्तर्षयः स्मृताः।२६
योगाविग्नरभीमानीब्रह्मणस्तनयोऽग्रजः।
तस्मात्स्वाहासुतांल्लेभेत्रीनुदारौजसोद्विज।२७

यही दत्त पूर्व जन्म में अगस्त्य नाम से प्रसिद्ध थे, प्रजापति पुलहकी पत्नी क्षमा के कर्दम, अर्ववीर और सहिष्णु नामक तीन पुत्र हुए ऋतु की पत्नी सन्नति ने।२३-२४। साठ हजार ऊर्ध्वरेता बाल्यखिल्यों की उत्पत्ति की वशिष्ठ के द्वारा ऊर्जा के प्रसव से सात पुत्रों की उत्पत्ति हुई।२५। यही सप्तर्षि रस, गात्र, ऊर्वबाहु, सबल, अनघ सुतपा और शुक्र नाम से प्रसिद्ध हुई।२६। हे द्विजोत्तम! ब्रह्माजी के ज्येष्ठ पुत्र अग्नि हुए, उनका विवाह स्वाहा के साथ हुआ था तथा उनके अत्यन्त प्रतापी और बली तीन पुत्र हुए।२७।

पावकंपवनंचैवशुचिचापिजलाशिनम्।
तेषांतुसन्तावन्येचत्वारिंशच्चपञ्चच।२८
कथ्यन्तेबहुशश्चतेपितापुत्रत्रयचयत्।
एवमेकोनपंचाद्वर्जयाःपरिकीर्तिताः।२९
पितरोब्रह्मणासृष्टायेव्याख्याता मयातव।
अग्निष्वात्तावर्हिषदोऽनग्नयःसाग्नश्चये।३०
तेभ्यःस्वधासुतेजज्ञेमेनांवैधारिणीं तथा।
तेउभेब्रह्मवादिन्यौयोगिन्योचाप्युभेद्विज।३१

पावक पवमान और शुचि, यह सदैव जल पीते रहते हैं, उनके तैंतालीस पुत्र हुए ॥२८॥ जो अन्य तीन पुत्र पिता पुत्र नाम से कहे हैं वह अग्नि के पौत्र हैं, अग्नि के यह उनचास पौत्र दुर्जय कहे जाते हैं ॥२९॥ पहिले मैंने इन्हीं कोपितरों के नाम से बताया था अग्निष्वाता, वर्हिषद अनग्नि और साग्नि ॥३०॥ स्वधा ने पितरों से मेना और वैधारिणी नाम की दो कन्याएँ प्राप्त कीं, यह दोनों ही परम ब्रह्मवादिनी और योगाभ्यास परायण हुईं ॥३१॥

४५—स्वायम्भुव मन्वन्तर कथन (१)

स्वायम्भूवंत्वयाख्यातमेतन्मन्वन्तरचयत् ।
तदहंभगवन्सम्यक्श्रोतुमिच्छामिकथ्यताम् ॥१
मन्वन्तरप्रमाणंचदेवादेवर्षयस्तथा ।
येचक्षितीशाभगवन्देवेन्द्रश्चैवयस्तथा ॥२
मन्वन्तराणांसंख्यातासाधिदाह्येकसप्ततिः ।
मानुषेणप्रमाणेनश्रृणुमन्वन्तरंचमें ॥३
त्रिंशत्कोटचस्तुसंख्याताःसहस्राणिचविंशतिः ।
सप्तषष्टिस्तथान्यानिनियुतानिचसंख्यया ॥४
मन्वन्तरप्रमाणचइत्येतत्साधिकांविना ।
अष्टौशतसहस्राणिदिव्ययासंख्ययास्मृतम् ॥५
द्विपंचाशत्तथान्यानिसहस्राण्यधिकानिच ।
स्वायम्भुवोमनुःपूर्वंमनुःस्वारोचिषस्तथा ॥६
औत्तमस्तामसश्चवरैवतश्चाक्षुषस्तथा ।
षडेतेमनवोऽतीतास्तथावैवस्वतोऽधुना ॥७

क्रौष्टुकि,बोले हेभगवान् ! आपने जिस स्वायंभुव मन्वन्तर काविषय कहा ,उसे भले प्रकार सुनना चाहता हूँ ।१। मन्वतर का प्रमाण देवता,देवर्षि राजा तथा देवेन्द्र के वृत्तान्त को विस्तार सहित कहिये।।२।

मार्कंडेयजी नेकहा—मन्वन्तर की संख्या कुछ अधिक इकहत्तर चतुर्युगी है, मैं इसे मानव-मान से कहता हूँ ॥३॥ एक मन्वन्तर में तीस करोड़ सड़सठ लाख बीस हजार मानवी वर्ष व्यतीत होते है ॥४॥ मन्वन्तर का यह प्रमाण आधिक्य रहित है, दिव्य आठ लाख ॥५॥ बावन हजार वर्ष एक मन्वन्तर में होते है प्रथम मनुस्वायंभुव, स्वारोचिष ॥३॥ औत्तम, तामस, रैवत, और चाक्षस इस प्रकार छः मनु व्यतीत हो चुके हैं, इस समय वैवस्त घेनु हैं ॥७॥

सावर्णाःपंचरोच्याश्चभौत्याश्चागामिनस्त्वमी ।
एतेषांविस्तरंभूयोमन्वंतरपरिग्रहे ॥८
वक्ष्येदेवानृषींश्चैवेन्द्राःपितरश्चये ।
उत्पत्तिसंग्रहंब्रह्मन्श्रूयतामस्यसंततिः ॥९
यच्चतेषामभूत्क्षेत्रंतत्पुत्राणांमहात्मनाम् ।
मनोस्वायम्भुवस्यासन्दशपुत्रास्तुतत्समाः ॥१०
यरियंपृथिवीसर्वांसप्तद्वीपासपर्वता ।
ससमुद्राऽऽकरवतीप्रतिवर्षंनिवेशिता ॥११
स्वायम्भुवेऽन्तरेपूर्वमाद्यीत्रेतापुगेतथा ।
प्रियव्रतस्यपुत्रैस्तैःपौत्रःस्वायम्भुवस्यच ॥१२
प्रियव्रतात्प्रजावत्यांवीरात्कन्याव्यजायत ।
कन्यासातुमहाभागाकर्दमस्यप्रजापतेः ॥१३
कन्येद्वेदशपुत्रांश्चसम्राट्कुक्षीचतेउभे ।
तयोर्वैभ्रातरःशूराःप्रजापतिसमादश ॥१४

पंचसावर्णि, रौच्य और भौत्य भविष्य में होंगे इन, सब का का पूरा वृत्तान्त मन्तवरों का वर्णन करने में कहूँगा हे॥८॥ विप्र ! मन्वन्तरों में जो जो देवता, ऋषि, इन्द्र, पितर, होते हैं, उन सबकी उत्पत्ति आदि का वर्णन उनकी सन्तति सहित करूँगा ॥९॥ उन महात्माओं के जो जो सन्तति हुई, उसे कहता हूँ, स्वामायंभव के दश पुत्र उन्हीं के उत्पन्न हुए ॥१०॥ उन्होंने इस सप्त द्वीप, पर्वत, समुद्र और खान से सम्पन्न पृथ्वी को वर्षों में विभाजित किया था ॥११॥ पहिले भी द्वापर मन्वन्तर में अर्थात त्रेता आरम्भ में स्वायंभुव के पौत्रों

अर्थात् प्रियव्रत के पुत्रों ने भी इसी प्रकार किया था।१२। प्रजापति कर्दम की प्रजावती की नाम अत्यन्त सौभाग्यवती कन्या के गर्भ से। १३। दश पुत्र और दो कन्याएं उत्पन्न हुईं, इन दोनों कन्याओं का नाम सम्राट और कुक्षि हुआ और उनके दशों भाई भी अत्यन्त शूर और प्रजापति के तुल्य थे।१४।

अग्नीध्रोमेधातिथिश्चवपुष्मांश्चतथापरः।
ज्योतिष्मान्द्युतिमान्भव्यस्सवनः सप्तएवते। १५
मेधाग्निबाहुमित्रास्तुत्रयोयोगपरायणाः।
जातिस्मरामहाभागानराज्यायमनोदधुः।
प्रियव्रतोभ्यषिचत्तान्सप्तसुपार्थिवान्।
द्वीतेषुतेनधर्मेणद्वीपांश्चवैनिबोधमे।१६
जम्बुद्वीपेतथाग्नीध्रंराजानंकृतवान्पिता।
प्लक्षद्वीपेश्वरंश्चापितेनमेधातिथिः कृतः।१७
शाल्मलेस्तुवपुष्मन्तंज्योतिष्मन्तंकुशाह्वये।
क्रौंचद्वीपेद्युतिमन्तंभव्यशाकाह्वनेश्वरम्।१८
पुष्पकराधिपतिंचापिसवनं कृतवान्सुतम्।
महावीतोधातकिश्चपुष्कराधिपने सुतौ।१९
द्विधाकृत्वातयोर्वर्षंपुष्करेसन्यवेशयत्।
भव्यस्यापुत्राः सप्तासन्नाम्तस्तान्निबोधमे।२०
जलदश्चकुमारश्चसुकुमारोमणीवकः।
कुशोत्तरोऽथमेधावीसप्तमस्तुमहाद्रुमः।२१

उन दशों के नाम अग्नीध्र, मेधातिथि, वपुष्मान्, ज्योतिष्मान्, द्युतिमान्, भव्य और शवन (ह सात) तथा सबसे छोटे मेधा, अग्निबाहु और मित्र हुए यह तीनों जन्म से ही योग परायण हुए और उन सातों का राजा प्रियव्रत ने सात द्वीपों का राज्य प्रदान किया, जहाँ यह धर्म पूर्वक राज्य करने लगे, अब उन द्वीपों के विषय में कहता हूँ।१६। अर्थात् राजा ने अग्नीध्र को जम्बू द्वीप का तथा मेधातिथि को प्लक्ष द्वीप का राज्य दिया।१७। वायुष्मान को शाल्मलि द्वीप, ज्योतिष्मान को कुश द्वीप, द्युतिमान को क्रौंचद्वीप और भव्य को शाकद्वीप का राजा बनाया।

।१८। और सवन को पुष्कर द्वीप दिया, इसी सवनके दोपुत्र उत्पन्न हुए, जिनका नाम मेधावी और धातकी हुआ ।१९। राजा सवन ने अपने दोनों पुत्रों के लिए पुष्कर द्वीप को दो भागों में विभक्ति कर दिया, शाक के राजा भव्य के सात पुत्र हुए, अब उनके नाम कहता हूँ ।२०। जो क्रमशः जलदकुमार सुकुमार, मनीवक, कुशोत्तर, मेधावी और महाद्रुम नाम के हुए ।२१।

तन्नामकानिवर्षाणिशाकद्वीपेचकारचः ।
तथाद्युतियतः सप्तपुत्रास्तांस्तुनिबोधमे ।२२
कुशलामनुगश्चोष्णः प्राकारश्चार्थकारकः ।
मुनिश्चचदुन्दुभिचेबसत्तमः परिकीर्तितः ।२३
तेषांस्वनामधेयानिक्रौंचद्वीपेतथाभवन् ।
ज्योतिष्मतकुशद्वीपेपुत्रनामाङ्कितानिवं ।२४
तत्रापिसप्तवर्षाणितेषांनामानिमेश्रृणुः
तस्यापिसप्तपुत्रास्तज्ञयास्तेपिमहौजसः ।
उद्भिदवणवंचैवसुरथंलम्बनंतथा ।२५
धृतिमत्प्राकरचैववकापिलंचापिसप्तमम् ।
वपुष्मतः सुताः सप्तशाल्मलेशस्वचावन् ।२६
श्वेतश्चहरितश्चैवजीमूतोरोहितस्तथा ।
वद्युतोमानसचैवकेतुमान्सप्तमस्तथा ।२७
तथैवशाल्मलेस्तेषांसमनामानिसप्तवैं ।
सप्तमेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीतेश्वरस्यवैं ।२८

उस राजा ने अपने शाकद्वीप को सात भागों में विभक्त करके सातो पुत्रोंमें बाट दिया, वह सात भागही सप्तवर्ष कहकर इन्हींके नामसेप्रख्यात हुए, इसी प्रकार क्रौंचद्वीपके राजा द्यूतिमान् के सातपुत्र उत्पन्न हुए, उनके भी नाम बताताहूं ।२२।वे क्रमशः कुशल, मनुग, उष्ण, आकार, अर्थकारक मुनिऔर दुंदुभि नामक हुए।२३।क्रौंचद्वीपको भी सातभागोंमें बाँटा गया, ज्योतिष्मान्ने सात पुत्रों के नामानुसार हीकुशद्वीप का विभाग किया।२४।

उनके नाम पर भी सात वर्ष, जिसके नाम सुनो उद्भिद, वैश्णव, सुरथ लम्बन ॥२५॥ धृतिमान् प्रभाकर और कपिल यह सात नाम हुए तथा शाल्मलि के राजा वपुष्मान के भी सात ही पुत्र हुए ॥२६॥ उनके नाम क्रमशः श्वेत- हरित, जीमूत, मानस वैद्युत् मानस और केतुमान ॥२७॥ उस द्वीप के भी सात भाग होकर इन्हीं केनामों पर सप्त वर्ष हुए तथा प्लक्ष द्वीप के राजा मेधातिथि के भी सात पुत्र हुए ॥२८॥

येषांनामाङ्कितैर्वर्षैःप्लक्षद्वीपस्तुसप्तधा ।
पूर्वंशाकभवंवर्षंशिशिर तुसुखोदयम् ॥२९
आनन्दचशिवचैवक्षेमकंचध्रुवंतथा ।
प्लक्षद्वीपादिभूतेषुशाकद्वीपान्तिकेषु वै ॥३०
ज्ञेयःपंचसुधर्मश्चवर्णाश्रमविभागजः ।
नित्यःस्वाभाविकश्चैवअहिंसाविधिवर्जितः ॥३१
(यानिकिंपुरुषाद्यानिवर्जयित्वाहिमाह्वयम् ।
सुखमायुश्चरूपचबलंधर्मश्चनित्यशः)
पंचस्वेतेषुवर्षेषुसर्वसाधारणस्मृतः ।
अग्नीध्रायपितापूर्वजम्बूद्वीपंददौद्विज ॥३२
तस्यपुत्राबभूवुर्हिप्रजापतिसमानव ।
ज्येष्ठोनाभिरितिख्यातस्तस्यकिंपुरुषोऽनुजः ॥३३
हरिवर्षस्तृतीयस्तुचतुर्थोऽभूदिलावृतः ।
वश्यश्चपंचमःपुत्रोहिरण्यःषष्ठउच्यते ॥३४
कुरुस्तुसप्तमस्तेषांभद्राश्वस्चाष्टमःस्मृतः ।
नवमःकेतुमालश्चतन्नाम्वनावर्षसंस्थिति ॥३५

उन्होंने भी प्लक्ष द्वीप को सात भागों में विभक्त किया, वह भीइनके नाम से वर्ष प्रसिद्ध हुए उनके नाम थे—शाकभव, शिशिर सुखोदय॥२९॥ आनन्द, शिव, क्षेमक और ध्रुव तथा प्लक्ष,शाल्मलि, कुश, क्रौंचऔरशाक इन पाँच द्वीपों में ॥३०॥ औरइनके विभागों में वर्णाश्रम धर्म सदा स्थित रहता है और स्वभाव से हीवहांहिंसानहीं होती ॥३१॥ हिमालय केअति-

रिक्त किम्पुरुषादि वर्ष में सुखपूर्णायु बल और धर्म सदैव स्थित रहता है हे विप्रवर ! इन पाँचों द्वीपों में सम्पूर्ण धर्म साधारण रूप से विद्यमान हैं, जिन आग्नीध्र को अपने पिता से जम्बूद्वीप मिला था ॥३२॥ उनके प्रजापति तुल्य नौ पुत्र उत्पन्न हुए थे, सबसे बड़ा नाभि, उससे दूसरा किम्पुरुष ॥३३॥ तीसरा हरि, चौथा इलावृत पाँचवाँ रम्य, छटवाँ हिरण्य ॥३४॥ सातवाँ कुरु, आटवाँ भद्र और नौवाँ केतुमाल हुआ, इन सबके नामों पर ही वर्ष बने ॥३५॥

यानिकिंपुरुषाद्यानिवर्जयित्वाहिमाह्वयम् ।
तेषांस्वभावतःसिद्धिःसुखप्रायाह्ययन्नतः ३६
विपर्ययोनतेष्वस्तिजरामृत्युभयनच ।
धर्माधर्मौनतेष्वास्तांनोत्तमाधममध्यमाः ॥३७
नवैचतुर्युगावस्थानाश्रमाऋतवोनच ।
आग्नीध्रसूनोर्नाभेस्तुऋषभो-भवत्सुतोद्विज ॥३८
ऋषभाद्भरतोजज्ञेवीर पुत्रशताद्वरः ।
सोऽभिषिच्यर्षभः पुत्रं महाप्राब्राज्यमास्थितः ॥३९
तपस्तेपेमहाभागःपुलहाश्रमसंश्रयः ।
हिमाह्वदक्षिणंवर्षं भरतायपितादद ॥४०
तस्मात्तु भारतं वर्षंतस्यनाम्नामहात्मनः ।
भरतस्याभवत्पुत्रःसुमतिर्नामधार्मिकः ॥ ४१
तस्मिन्राज्यंसमावेश्यभरतोऽपिवनं ययौ ।
एतेषांपुत्रपौत्रैस्तुसप्तद्वीपावसुन्धरा ॥४२
प्रियव्रतस्यतुत्रैस्तुभुक्ताःस्वायम्भुवेऽन्तरे ।
एषस्वायम्भुवःसर्गःकथितस्तेद्विजोत्तम ।
पूर्वमन्वन्तरेसम्यक्किमन्यत्कथयामिते ॥४३

हिमालय केअतिरिक्त जोकिम्पुरुष है,उनकोसिद्ध स्वभाव से हीनतया सुख बिना यत्न के ही उपलब्ध है॥३६॥ उनको विपर्यय अथवा वृद्धावस्था और मृत्युसे उत्पन्न होने वाला भय उपस्थितनहीं होता, वहाँधर्म,अधर्म श्रेष्ठ मध्यमा या निम्न रूप मेंविभाग।३७। और चारों युग कीभिन्नअवस्थानहीं

होती, ऋतु विभाग भी नहीं है, आग्नीध्र के पुत्र नाभि के ऋषभ नामक पुत्र हुआ ।३८। ऋषभ के पुत्र भरत हुए, ऋषभ ने अपने पुत्र भरत को राज्य देकर सन्यास ग्रहण कर लिया ।३९। इन महाभाग ने पुलहाश्रम में निवास पूर्वक तप किया था, हिम नामक दक्षिण वर्ष को उनके पिता ने भरत को दिया था ।४०। इस लिए उन्हीं के नाम पर भारतवर्ष हुआ है, भरत के एक पुत्र हुआ, जिसका नाम सुमति था ।४१। भरत ने भी सुमति को राज्य देकर बन गमन किया, इस प्रकार इनके पौत्रों तथा प्रियव्रत के पुत्रों ने स्वायंभुव मन्वतर में इस सप्तद्वीपा पृथिवी का निरान्तर भोग किया ।४२। पूर्व मन्वतर में यह स्वायंभुव सर्ग का सम्यक् वर्णन हुआ, अब और क्या कहूँ ? ।४३।

४६-जम्बूद्वीप वर्णन

कतिद्वीपाः समुद्रावापर्वतावाकतिद्विज ।
किंयन्तिचवर्षाणितेषनद्यश्चकामुने ।१
महाभूतप्रमाणंचलोकालोकतथैवच: ।
पर्य्यासपरिमाणवगतिचन्द्रार्कयोरपि ।२
एतत्प्रब्रूहिमेसर्वंविस्तरेणमहामुने ।
शतार्द्धकोटिविस्तारापृथिवीकृत्स्नशोद्विज ।
तस्या:सस्थानमखिलकथयामिश्रृणुष्वतत् ।४
येतेद्वीपामयाप्रोक्ताजम्बूद्वीपादयाद्विज ।
पुष्करान्तामहाभागश्रृण्वेषांविस्तरपुनः ।५
द्वीपात्तुद्विगुणाद्वीपोजम्बुः प्लक्षोऽथशाल्मलिः ।
कुश:क्रौंचस्तथाशाक:पुष्करद्वीपएवच ।६
लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिक्षीरजलाब्धिभिः ।
द्विगुणंद्विगुणैर्वृद्धयासवतः परिवेष्टिताः ।७
क्रौष्टुकी ने कहा—हे मुने! द्वीप, समुद्र, पर्वत, वर्ष और नदियाँ

कितनी?।१।महाभूत एवं लोकालोक का प्रमाण कितना है तथा चन्द्रमा और सूर्य के व्यास का परिमाण और गति का प्रचार क्या है?।२।हे महा-मुने ! विस्तार सहित इनका वर्णन करिये ।३। मार्कण्डेयजी ने कहा-यह सम्पूर्ण पृथिवी पचास करोड़ योजन विस्तार वाली है,उन सभीके स्थानोंका विषय वर्णन करता हूँ,उसे सुनो।४ हे महाभाग ! जम्बू इत्यादि जिन सप्त-द्वीपों का वर्णन किया है,उसका पुनः विस्तार सहित वर्णन करता हूँ।५। जम्बू, प्लक्ष शाल्मलि कुश,क्रौंच,शाक और पुष्कर यह सातों द्वीप क्रमशः एक से दूसरा विस्तार में दुगुना है ।६। लवण, इक्षु सुरा, घृत, दही, दूध और जल समुद्र के द्वारा दुगुने-दुगने भाव से बढ़ते हुए हैं ।७।

जम्बूद्वीपस्यसंस्थानं प्रवक्ष्येऽहं निबोधमे ।
लक्षमेकं योजनानांवृत्तोविस्तारदैर्ध्यंतः ।८
हिमवान्हेमकूटश्चनिषधोमेरुरेवच ।
नीलःश्वेतस्तथश्रृङ्गीसप्तवर्षपर्वताः ।९
द्विलक्षयोजनायासोमध्येतत्रमहाचलौ ।
तयोर्दक्षिणतोयातुयौतथोत्तरतोगिरौ ।१०
दशभिर्दशभिन्यूनैः सहस्रैस्तेपरःपरम् ।
द्विसाहस्राच्छ्रायाः सर्वेतावद्विस्तारिणश्चते ।११
समुद्रान्तः प्रविष्टाश्चषडस्मन्वर्ष पर्वताः ।
दक्षिणोत्तरतोनिम्नामध्येतुङ्गायथाक्षितिः ।१२
वेद्यर्द्धे दक्षिणेत्रीणित्रीणिवर्षाणिचोत्तरे ।
इलावृततयोर्मध्येचन्द्राद्धाकारवत्स्थितम् ।१३
ततःपूर्वेणभद्राश्वंकेतुमालंचपश्चिमे ।
इलावृतस्यमध्येतुमेरुःकनकपर्वतः ।१४

जम्बूद्वीप का आकार परिमाण बताता हूँ यह विस्तार, दीर्घता और व्यास में यह एक लाख योजन का है।८।उसके वर्ष पर्वत हिमवान्, हेमकूट, ऋषभ, मेरु, नील, श्वेत और शृङ्गी यह सात हैं ।९। मध्य में दो लाख योजन विस्तार वाले दो महान् पर्वत हैं, उनके दक्षिण और उत्तरमें दो-दो

पर्वत हैं।१०।वह परस्पर दस-दस हजार न्यून संख्यक है तथा अन्य पर्वत दो हजार योजन ऊंचे और इतने ही विस्तार वाले हैं।११। इसके मध्य समुद्र में स्थित छः वर्ष पर्वत हैं, यह भूमि उत्तर दक्षिण की ओर नीची और मध्य में ऊंची तथा विस्तृत है।१२।। उत्तर और दक्षिण में तीन-तीन वर्ष हैं, इन दोनों के मध्य इलावृत्त वर्ष अर्द्धचन्द्र के आकार में स्थित है ।।१३।। उसके पूर्व में भद्राश्व और पश्चिम में केतुमाल, है, इलावृत्त के मध्य में ही सुमेरु पर्वत है ।।१४।।

चतुराशीतिसाहस्रस्तस्मोच्छ्रायोमहागिरेः ।
प्रविष्टषोडशाधस्ताद्विस्तारःगुडशैवतु ।।१५
सरावसंस्थितत्वाच्चद्वात्रिंशन्मूर्धिनविस्तृतः ।
शुक्लोपीतोऽसितोरक्तःप्राच्यादिषुयथाक्रमम् ।।१६
विप्रोवैश्यस्तथाशूद्रःक्षत्रियश्चवस्वर्णतः ।
तस्योपरितथैवाष्टौपुर्योदिक्षुयथाक्रमम् ।।१७
तस्योपरिसभादिव्याःपूर्वादिशुक्रमेणतु ।
इन्द्रादिलोकपालानांतन्मध्येब्रह्मणःसभा ।
योजनानांसहस्राणिचतुर्दशसमुच्छ्रिता ।।१८
अयुतोच्छ्रयास्तस्याधस्तथाविष्कम्भपर्वतः ।
प्राच्यादिषुक्रमेणेवमन्दरोगन्धमादनः ।।१९
विपुलश्चसुपार्श्वश्चकेतुपादपशोभिताः ।
कदम्बोमन्दरेकेतुर्जम्बुर्वगन्धमादने ।।२०
विपुलेचतथाश्वत्थासुपार्श्वेचवटोमहान् ।
एकादशतायामायोजनानामिमेनगाः ।।२१

यह महापर्वत चौरासी सहस्र योजन ऊंचा है, सोलह हजार योजन धरती में घुसा हुआ और वहां से सोलह सहस्र योजन विस्तारवाला है।१५। इसकी शिखर बत्तीस योजन चौड़ी है, यह पूर्व की ओर श्वेत वर्ण का दक्षिण की ओर पीला, पश्चिम में नीला तथा उत्तर में लाल वर्णका है।१६। इसकी दिशाओं में पूर्वादि के क्रम से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं

॥७॥ उनके ऊपर उक्त दिशा क्रम से ही इन्द्रादि लोकपालों तथा मध्यमें ब्रह्माजीकी चोदसहस्रयोजन विस्तार वाली सभा सुशोभितहैं ॥१८॥इसके नीचे पूर्वादि दिशाओंमें दस सहस्र योजन ऊँचे चार विष्कम्भ पर्वतहैं,इनके नाम मन्दार, गंधामादन ।१९। विपुल और सुपार्श्व हैं इन चार पर्वतपोंर चार वृक्ष क्रमशः कदम्ब, जामुन ॥२०॥ पीपल और बरगद केतुके सतान स्थित है, वह पर्वत एकादश सहस्र योजन परिमाण के हैं ॥२१॥

जठरोदेवकूटश्चपूर्वस्यांदिशिपर्वतौ ।
आनीलनिषधायातौपरस्परनिरन्तरौ ॥२२
निषधःपारियात्रश्चमेरोःपार्श्वेतुपश्चिमे ।
यथापूर्व्वौतथाचैतावानोलनिषधायतौ ॥२३
कैलाशोहिमवांश्चैवदक्षिणनमहाचलौ ।
तुर्वपश्चायतावेतावर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥२४
श्रृगवाञ्जारुधिश्चैवतथेवोत्तरपर्वतौ ।
यथैवदक्षिणेतद्वदर्णवान्तर्व्यवस्थितौ ॥२५
मर्यादापर्वताह्येतेकथ्यन्तेऽष्टौद्विजोत्तम ।
हिमवद्धेमकूटादिपर्व्वतानांपरस्परम् ॥२६
नवयोजनसाहस्रंप्रादुदग्दक्षिणोत्तरम् ।
मेरोरिलावृतेतद्वदन्तरवैचतुर्दिशम् ॥२७

पूर्व में जठर और देवकूट पर्वत स्थितहैं:वह परस्पर नील में निषध विस्तृत हैं।२२॥ मेरु के पश्चिम पार्श्व में तिषध और परियात्र स्थित हैं, पूर्व दिशा के हीं समान यहभी नील मेनिशष तकविस्तार युक्तहैं।२३। दक्षिणमें कैलाशओरहिमवान् नामक महान् 'पर्वतहै यह पूर्व पश्चितमेंलम्बे होकर समुद्र में प्रवेश किये हुए हैं।२४।उत्तर मेंशृङ्गवात् ओपाजारुधि हैं यह भी दक्षिण दिशा के ही समान ही समुद्र तक विस्तार किये हुएहै ॥२६॥ हे विप्र श्रेष्ठ।आठों पर्वतों का नाम यहीहै। जो तुमम्हारेप्रतिकनेहैं तथा हिमवान् और हेमकूट आदि पर्वत परस्पर हैं।२८। नौ सहस्र योजन

तक विस्तृत हैं, यह सभी पर्वत मेरु के चारों ओर तथा इलावृत्त के मध्य में हैं।२७।

फलानियानिवै जम्बागन्धमादनपर्वते।
गजदेहप्रमाणानिपतन्तिगिरिमूर्द्धनि।२८
तेषांस्रात्रात्प्रभवतिख्याताजम्बूनदीतिवै।
यत्रजाम्बूनदंनामकसम्प्रजायते।२६
सापरिक्रम्यवैमेरुंजम्बूमूलपुनर्नदी।
विशातिद्विजशार्दूलपीयमानाजनैश्चतैः।३०
भद्राश्वेऽश्वशिराविष्णुर्भारतेकूर्मसंस्थितिः।
वराहःकेतुमालेचमत्स्यरूपस्तथोत्तरे।३१
तेषुनक्षत्रविन्यासात्रृषः समवस्थिताः।
चतुर्ष्वद्विजश्रेष्ठग्रहाभिभवपाठकाः।३२

गधमादन पर्वत से गजदेह जैसे जामुन के फल शिखर के नीचे गिरते हैं।२८। उनके रस से उत्पन्न होने वाली नदी जम्बुनदी कही जाती है, इसी नदी से जम्बूनद नामक स्वर्ण उत्पन्न हुआ है।२६। सुमेरु पर्वत की चारों ओर परिक्रमा करती हुई वह नदी उस जामुन के वृक्ष के नीचे प्रवाहमान है, वहाँ रहने वाले मनुष्य उसी का जल पीते हैं।३०। भद्राश्व में अश्वशिरा भारत में कूर्माकृति, विष्णुकेतु माल वराह और उत्तर में मत्स्य के स्वरूप में भगवान् नारायण प्रतिष्ठित है।३१। इन चारों पर्वतों में नक्षत्र और ऋषि स्थित हैं तथा नक्षत्रों का जाना आना रहता है और उन ग्रहों का श्रेष्ठ या निकृष्ट फल भी होता रहता है।

४७ जम्बूद्वीप के वन पर्वतादि

शैलेषुमन्दराद्येषुचतुर्ष्वपिद्विजोत्तम।
वनानियानिचत्वारिसरांसिचनिबोधमे।१

पूर्वे चैत्ररथं नामदक्षिणेनन्दनं वनम् ।
वैभ्राजपश्चिमेशैले सावित्रं चोत्तराचले २
अरुणोदं सरः पूर्वे मानसंदक्षिणे तथा ।
शीतोदं पश्चिमेमेरोर्महाभद्रं तथोत्तरे ।३
शीतातंश्चक्रमुंजश्चकुलीरोऽश्वश्चकङ्कवान् ।
मणिशैलोऽथवृषवान्महानीलीभवाचलः ।४
सुविन्दुर्मन्दरोवेणुस्तामसोनिषधस्तथा ।
देवशैलश्चपूर्वेणमन्दरस्यमहाचलः ।५
त्रिकूटःशिखराद्रिश्चकलिङ्गोऽथपतङ्गकः ।
रुचकःसानुमांश्च द्रिस्ताम्रकोऽथविशाखवान् ।६
श्वेतोदरः समूलश्चवसुधारश्चरत्नवान् ।
एकशृङ्गोमहाशैलोराजशैलः पिपाठकः ।७
पञ्चशैलोऽथकैलासोहिमवांश्चाचलोत्तमः ।
इत्येतेदक्षिणेपार्श्वेमेरोः प्रोक्तामहाचलाः ।८

मार्कण्डेयजी ने कहा--हे द्विजश्रेष्ठ! मन्दरादि पर्वतों में चार वनतथा सरोवर हैं, अब उनका वर्णन करता हूँ, सो सुनो।१।पूर्व में चैत्ररथ,दक्षिण में नन्दन, पश्चिम में वैभ्राज और उत्तर में सावित्र नामक वनमें स्थितहै।२। सुमेरु के पर्व में अरुणेद, दक्षिण में मानस, पश्चिम में शीतोद तथा उत्तर में महाभद्र नामक सरोवर हैं ।३।मंदप में पूर्व में शीतांत, चक्रमुंज कुलीर,सुककवान्, मणिशैल, वृषवान्, महानीली भवाचल।४।बिन्दु, मन्दर, वेणु, तामस, निषध और देवशैल नामक पर्वत स्थित है।५।त्रिकूट, शिखर कलिंग, पतंगक,रुचक,सानुमान्,माम्रक, विशाखवान् है।६।श्वेतोदर, समूल, वसुधार, रत्नवान्, एक शृङ्क,महाशैल,पिपाठक। । पंचशैल, कैलाश तथा हिमवान् यह सभी महापर्वत सुमेरु के दक्षिण ओर अवस्थित हैं ।८।

सुरक्षःशिशिराक्षश्चवेदूर्यः पिंगलस्तथा ।
पिंजरोऽथमहाभद्रःसुरसःकपिलोमधुः ।९

अञ्जन.कुक्कुटःकृष्णःपाण्डुरश्चाचलोत्तमः ।
सहस्रशिखरश्चाद्रिपारियात्रःसश्रृंगवान् ।।१०
पश्चिमेनतथामेरोर्विष्कम्भात्पश्चिमाद्बहिः ।
एतेऽचलाःसमाख्याताःश्रृणुष्वान्यांस्तथोत्तरान् ।।११
शंखकूटोऽथबृषभोहंसनाभस्तथाचलः ।
कपिलेन्द्रस्तथाशैलःसानुमान्नीलएवच ।।१२
स्वर्णश्रृङ्गःशातश्रृंगपुष्पकोमेघपर्वतः ।
विरजाक्षोवरापाद्रिर्मयूरोजारुधिस्तथा ।।१३
इत्येतेकथिताब्रह्मन्मेरोरुत्तरतोनगाः ।
एतेसांपर्वतानांतुद्रोण्योतीवमनोहराः ।।१४

कुराक्ष, शिशिराक्ष,वैदर्य, पिंगल, पिंजर, महाभद्र, सुरस, कपिल,मनु ।९। अंजन.कुक्कुट,कृष्ण, पाण्डुर,सहस्र, शिखर, पारियान्त्र औरश्रृङ्गवान् ।१०। यह सुमेरु और विष्कम्भ के पश्चिम और बहिर्भागमें अवस्थितहैअव उत्तर दिशा के पर्वतो के विषय में कहता हूं,उसेसुनो ।११। शंखकूट,वृषभ हंसनाभ कपिलेन्द्र, सानुमान्, नील, ।१२। स्वर्ण,श्रृङ्गी,शातश्रृङ्गी,पुष्पक मेघ पर्वत. विरजाक्ष, वराहाद्रि,मयूरऔर जाराधि।१३।हे विप्र! यह सभी पर्वत सुमेरु के उत्तर भाग में स्थित बताये गये हैं, इन पर्वतों की गुफाएं अत्यन्त रमणीक है ।।१४।।

वनरमलपानीयैःपरोभिरुपशोभिताः ।
तासुपुण्यकृताजन्ममनुष्याणांद्विजोत्तम ।।१५
एतेभौमाद्विजश्रेष्ठस्वर्गाःस्वर्गगुणाधिकाः ।
नतासुपुण्यपापानामपूर्वाणामुपार्जनम् ।।१६
पुण्योपभोगएवोक्तोदेवानामपितास्वपि ।
शीतान्ताद्येषुचैतेषुशलेषु द्विजसत्तम ।।१७
विद्याधराणांयक्षाणांकिन्नरोरगरक्षसाम् ।
देवानांचमहावासागन्धर्वाणांचशोभनाः ।।१८

सभाःपुर्योमनोज्ञाश्चसदैवोपवनैर्युता ।
सरांसिचमनोज्ञानिसर्वर्तुसुखानिलः ।।१६

नचैतेपुक्रमोबाधावमनस्यचकुत्रचित् ।
तदेतत्पार्थिवंपद्मंचतुष्पवंमयोदितम् ।।२०

भद्राश्चभारताद्यानिपत्राण्यस्यचतुर्दिशम् ।
भारतंनामयद्वर्षंदक्षिणेनमयोदितम् ।।२१

तत्कर्मभूमिर्नान्यत्रसंप्राप्ति·पुण्यपापयोः ।
एतत्प्रधानंविज्ञेयेयत्रसर्वंप्रतिष्ठितम् ।।२२

अस्मात्स्वर्गापवर्गौचमानुष्यनारकावपि ।
तिर्यक्त्वमथवाप्यन्यन्नराप्राप्नोवैद्विज ।।२३

यह सभी पर्वत वन तथा निर्मल जल से परिपूर्ण सरोवरों से सुशोभित हैं इस परम पुण्य स्थल में पुण्यात्मा मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं।१५। हे द्विजवर ! यह सब स्थान स्वर्ग से भी गुणवंत भौम स्वर्ग के नाम से प्रसिद्ध हैं, यहाँ अपूर्ण पाप अथवा पुण्य संचित नहीं होता ।१६।इन सभी शीतान्तादि पर्वतों का उपभोग हो सकता देवगणों के लिए भी पुण्य भोग स्वरूप हैं । १७ । यहाँ विद्याधर, यक्ष, किन्नर, उरग, राक्षस, देवता, गन्धर्व आदि का अत्यन्त सुशोभि निवास है।१८। यह भूमि अत्यन्त पुण्यरूपा, सुरम्य और देवोद्यान एवं मनोहर सरोवरों से युक्तहै, यहाँ की समीर सभी ऋतुओं में सुखदायी है।१६। यहाँ कहीं भी मनुष्य में विद्वेष भाव दिखायी नहीं देता, इसलिए इसे मैंने चतुष्पत्र पार्थिव पद्म कहा है।२०। भद्राश्व और भारत आदि इसके चारों ओर चार पत्ते हैं तथा जो दक्षिण दिशा में भारतवर्ष कहा है।२१। वह कर्मभूमि है, अन्य किसी स्थान में पाप-पुण्य की उपलब्धि नहीं है, सबके अवस्थान करने से ही भारतवर्ष को ही प्रधान माना गया है।२२।कर्मभूमि होनेके कारण ही इससे मनुष्यों को स्वर्ग, मोक्ष, मनुष्य योनि, नरक, खगयोनि अथवा अन्यान्य योनियों की प्राप्ति होती है।२३।

४८ गंगावतार

घराधरंजगद्योनेःपादंनारायणस्यच ।
ततःप्रवृत्तायादेवीगङ्गा त्रिपथगामिनी ।।१
साप्रविश्यसुधायोनिंसोममाधारसम्भसाम् ।
ततःसवर्द्धमानार्करश्मिसङ्गतिपाविनी ।।२
पपातमेरुपृष्ठेचसाचतेर्द्धातितोययो ।
मरुकूटतटान्तेभ्योनिपतन्तीविवर्तिता ।।३
विकीर्यमाणसलिलानिरालम्वस्पपातसा ।
मन्दराद्येषुपादेषूप्रविभक्तोदकासमम् ।।४
चतुर्ष्वपिपपाताम्बुविभिन्नाङ्घ्रिशिलोच्चया ।
पूर्वासीतेऽतिविख्यातायर्यौचैत्ररथंवनम् ।।५
तत्प्लावयित्वाचययौवरुणोदसरोवरम् ।
शीतान्तचगिरिंतस्मात्ततश्चान्यान्गिरीन्क्रमात् ।।६
गत्वाभुवंसमासाद्यभद्राश्वेजलधिंगता ।
तथैवालकनन्दाख्यादक्षिणगन्धमादने ।।७

मार्कण्डेयजी ने कहा—जगद्योनि नारायण के ध्रुवाधार पद से ही त्रिपथगामिनी भगवती गंगा की उत्पत्ति हुई है ।१। वह समस्त जल की आधार रूपिणी मुधायोनि चन्द्रमन्डल में प्रवेश करके वहाँ सम्बद्ध सूर्य-रश्मियों से संयुक्त होकर अत्यन्त पवित्र होकर ।२। सुमेरु पर गिरी है और वहाँ के सब कूट प्रान्त से गिरती हुई चार धाराओं में वहाँ से निकली है ।।३। इस प्रकार जलसे विस्तृत और आलम्ब से हित गंगा मन्दरादि पर्वत में विभाजित होकर समान भाव से निपतित हुई है । ४ । और पर्वत शिखाओं को काटती हुई बढ़ी, उनमें जो जल धारा पूर्व में वहती हुई चैत्ररथ वन की ओर गई है, उसे सीता कहते हैं । ५ । वह सीता नामक गङ्गा चैत्ररथ वन को जलयुक्त करती हुई वरणोद सरोवर में पहुंची है, वहाँ से शीतान्त पर्वत एवं अन्य पर्वतों का अतिक्रमण करती हुई ।६। पृथ्वी पर उतर कर भद्राश्व वर्ष मे होकर समुद्र तक

गई है तथा सुमेरु के दक्षिण ओर से जो गङ्गाजल गंधमादन पर्वत में निपतित हुआ हैं, उस धारा का नाम अलकनन्दा है । ।

मेरुपादेवनगत्वानन्दनंदेवतन्दनम् ।
मानसंचमहावेगात्प्लावयित्वासरोवरम् । ८
आसाद्यशैलराजानंरम्यंत्रिशिखरंगता ।
तस्माच्चपर्वतान्सर्वान्दक्षिणेयेक्रमोदिताः ।।९
तान्प्लावयित्वासंप्राप्तहिमवन्तंमहागिरिम् ।
दधारतत्रतांशम्भुर्नमुमोचवृषध्वजः ।।१०
भगीरथेनोपवासैःस्तुत्याचाराधितोविभुः ।
तत्रमुक्ताचसर्व्वेणसप्तधादक्षिणोदधिम् ।।११
प्रविवेशत्रिधाप्राच्यांप्लावयत्तीमहानदी ।
भगीरथरथस्यानुस्रोतसैकेनदक्षिणम् ।।१२
तथैवपश्चिमेपादेविपुलेतामहानदी ।
सुचक्षुरितिविख्यातावैभ्राजसावनंययो ।।१३
शीतोदंचसरस्तस्मात्प्लावयन्तीमहानदी ।
तस्मात्क्रमेणचाद्रीणांशिखरेवनिपत्यसा ।
सुचक्षःपर्वतंप्राप्तातत‍श्चत्रिशिखंगता ।।१४

अलकनन्दा ने सुमेरु के समीपवर्ती देवताओं को प्रसन्नताप्रद नन्दनथन में जाकर अत्यन्त वेग से मानस सरोवर को जल से परिपूर्ण किया है । ८ । इस मानस सरोवर को भर कर पर्वतराज के मरम्य शिखर स्थान से तथा वहाँ से सब पर्वतों का अतिक्रमण करती हुई ९ । और उन्हें जल से परिपूर्ण करती हुई हिमालय में निपतित हुई है' वहाँ भगवान् शङ्कर ने उस गङ्गा को धारण कर उन्हें किसी प्रकारभी नहीं छोड़ा ।१०। फिर जब महाराज भगीरथ ने भगवान् शिव की उपवास और स्तुति पूर्वक आराधना की तब उन्होंने गङ्गा को छोड़ा और वहां से छूटते ही गङ्गा सात धाराओं में विभक्त होकर दक्षिण समुद्र में प्रविष्ट हुई ।११। उनमें तीन भाग पूर्व की ओर प्लावित करती हुई समुद्र में गई और एक धारा भगीरथ के रथ के पीछे पीछे जाकर समुद्र में

जा मिली।१२। सुमेरु के पश्चिम में विपुलपाद के रूप से जो धारा निर्गत हुई उसका नाम सुचक्षु हुआ, उसने वैभ्राज पर्वत एवं वन को पवित्र करते हुए।१३। शीतोद सरोवर को प्लावित किया और वहाँ से सब पर्वतों के शिखरों पर और सुचक्षु पर्वत पर होकर त्रिशिखर पर्वत को प्राप्त हुई।१४।

केतुमालंसमासाद्यप्रविष्टादक्षिणोदधिम् ।।१५
(गत्वोत्तरांदिशगंगादिव्यासाचमहानदो ।
तस्माच्चऋषभादींश्चक्रमादुत्तरजान्नगान् ।।)
सुपार्श्वंतुतथैवाद्रिमेरुपार्दहसागता ।
भद्रसोमेतिविख्यातासाययौसवितुर्वनम् ।।१६
तत्पावयन्तीसंप्राप्तामहाभद्रंसरोवरम् ।
ततश्चशङ्खकूटंसाप्रयातावैमहानदी ।।१७
तस्माच्चवृषभादीन्साक्रमात्प्राप्यशिलोच्चयाम् ।
महार्णवमनुप्राप्ताप्लावयित्वोत्तरान्कुरून् ।।१८
एवमेषामयागंगाकथितातेद्विजर्षभ ।
जम्बूद्वीपनिवेशश्चवर्षाणिचयथातथम् ।।१९
वसन्तितेषुसर्वेषुप्रजाःकिंपुरुषादिषु ।
सुखप्रायानिरातङ्काःयूनतोत्कर्षवर्जिता ।।२०
नवस्वपिछवर्षेषसप्तसप्तकुलाचलाः ।
एकैकस्मिन्यथादेशेनद्मश्चाद्रिविनिःसृताः ।।२१

फिर केतुमाल वर्ष में प्रवेश करती हुई समुद्र में संयुक्त हुई है।१५। (फिर यह दिव्य महानदी उत्तार दिशामें होती हुई ऋषभादिक उत्तारपर्वतों को प्राप्त हुई)यह चतुर्थ धारा सुपार्श्व और मुमेरुसे सविता वनमें गई, वहाँ भद्र सोमाक नामसे प्रसिद्ध हुई, उस सविता वन को।१६। पावित्र करके उसने मताभद्र सरोवर को प्लावित किया,फिर शंखकूट पर्वत में गई।१७। वहाँसे वृषभादि पर्वतोंमें होकर उसने समस्त उत्तर कुरुदेशको पवित्र किया और फिर महासागर में जा मिली।१८। हे द्विजवर ! मैंने तुम्हारे प्रति गंगाजी का विषय कहा तथा जम्बूद्वीप के निवेशमें।१९। जिन किम्पुरुषादि

का वर्णन हुआ है, उनमें जो जीव रहते हैं, वह प्रायः सुखी, आतंक-रहित एवं न्यूनता-अधिकता से रहित हैं।२०। जिन नौ वर्षों का वर्णन हुआ है, उनमें सात-सात कुलाचल हैं और प्रत्येक देश में ही पर्वत तथा बहती नदियाँ अवस्थित है।२१।

यानिकिंपुरुषाद्यानिवर्षाण्यष्टौद्विजोत्तम ।
तेषूद्भिज्जानितोयानिनैवंवार्यंत्रभारते ॥२२
वार्क्षीस्वाभाविकीदेश्यातोयोत्थामानसीतथा ।
कर्मजाचनृणांसिद्धिर्वर्षेष्वेतेषुचाष्टसु ॥२३
कामप्रदेभ्योवक्षेभ्योवार्क्षीसिद्धिःस्वभावजा ।
स्वाभाविकीसमाख्यतातृप्तिदेश्याचदैशिकी ॥२४
अपांमौक्ष्म्याच्चतोयोत्थाद्धयानोपेताच्चमानसी ।
उपासनादिकार्यैत्तु कर्मजासाभ्युदाहृता ॥२५
नचंतेषुयुगावस्थानाधयोव्याधयोनच ।
पुण्यापुण्यसमारम्भनैत्रतेषुद्विजोत्तम ॥२६

हे द्विजवर ! किम्पुरुषादि जो आठ वर्ष हैं, उनमें जल उद्‌भिद मात्र है, क्योंकि इस भारत वर्ष में मेघ के जल की अधिकता है।२२। यह आठ वर्ष हैं, वहाँ वार्क्षी, स्वाभाविकी, देश्या, तोयोत्था, मानसी और कर्मजा इन छः प्रकारों की मानसी सिद्धि हैं। २३ । जिस कामनाके देने वाले वृक्षसे सिद्धि की उत्पत्ति होती है, वह वार्क्षी कहा गया है, स्वभाव वश उत्पन्न सिद्धि ही स्वाभाविकी है देश जात सिद्धि का नाम देश्या।२४। तथा जलकी सूक्ष्मता से जो सिद्धि होती है, उसे तोयोत्या कहते है, मानसी सिद्धि ज्ञान के द्वारा मन से उत्पन्न होती है तथा उपासनादि कर्म द्वारा उत्पन्न होने वाली सिद्धि को कर्मजा कहा गया है।२५। हे द्विजवर ! इन समस्त वर्षों में युगों का भेद, आधि व्याधि तथा पुण्य पाप कुछ नहीं होता था।२६।

४९—भारतवर्ष विभाग

भगवन्कथितंत्वेतज्जम्बूद्वीपंसमासतः ।
यदेतद्भवताप्रोक्तं कर्मनान्यत्रपुण्यदम् ॥१

पापायमहाभागवर्जयित्वातुभारतम् ।
इतःस्वर्गश्चमोक्षश्चमध्यश्चान्तश्चगम्यते ॥२

नखल्वन्यत्रमर्त्यानांभूमौकर्मविधीयते ।
तस्माद्विस्तरशोब्रह्मन्ममैतद्भारतंवद ॥३

येचास्यभेदायावन्तोयथावत्स्थितिरेवच ।
वर्षोऽयंद्विजशार्दूलयेचास्मिन्देशपर्वताः ॥४

भारतास्यास्यवर्षस्यनवभेदान्निबोधमे ।
समुद्रान्तरिताज्ञेयास्तेत्वगम्याःपरस्परम् ॥५

इन्द्रद्वीपःकशेरूमांस्ताम्रवर्णगभस्तिमान् ।
नागद्वीपस्तथासौम्योगान्धर्वोवारुमस्तथा ॥६

अयंतुतवमस्तेषांद्वीपःसागरसंवृतः ।
योजनानांसहस्रंवैद्वीपोऽयंदक्षिणोत्तरम् ॥७

क्रौष्टुकि बोले-हे भगवन् ! इस जम्बू द्वीप का आपने संक्षिप्त रूप से वर्णन किया और आपने कहा कि भारत वर्ष के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान में कोई । १ । पाप या पुण्य का कारण नहीं होता और इसी स्थान से स्वर्ग मोक्ष, मध्यदशा, अन्तकालीन दशा ।२। सब की प्राप्ति होती हैं, अन्य किसी भी स्थान में मनुष्य कर्म का अनुष्ठान नहीं करता, इसलिए इस भारतवर्ष का वर्णन ही विस्तृत रूप से करिये । ३ । इसमें जितने भेद हैं, भेदों का जितना परिमाण है, जितने प्रदेश और पर्वत हैं, उन सबको विस्तार पूर्वक बताइये । ४ । मार्कण्डेय ने कहा हे ब्रह्मन् ! भारत वर्ष के नौ भेद हैं, वे सभी समुद्र के द्वारा विभक्त तथा परस्पर में अगम्य हैं, उनके विषय में बताता हूँ ।५। इन्द्र द्वीप, कशेरुमान्, ताम्रवर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गान्धर्व,

वारुण ।६।तथा नौवाँ भारत है,यह भारत नामक द्वीप समुद्रसे घिरा हुआ है तथा दक्षिण में और उत्तर में हजार योजन परिमाण वाला है। ७।

पूर्वेकिरातायस्यान्तेपश्चिमेयवनास्तथा ।
ब्राह्मणाःक्षत्रियावैश्याःशूद्र चान्तःस्थिताद्विज ।।८
इज्याध्यायवणिज्याद्यैःकर्मभिःकृतपावनाः ।
तेषांसंव्यवहारश्चएभिःकर्मभिरिष्यते ।।९
स्वर्गापवर्गप्राप्तिश्चपुण्यंपापंचवैतदा ।
महेन्द्रोमलयःसह्यशुक्तिमानृक्षपर्वतः ।।१०
विन्ध्यश्चपारियात्रश्चसप्तैवात्रकुलाचलाः ।
तेषांसहस्रशश्चान्येभूधराहिसमीपगाः ।।११
विस्तारोच्छ्रयिणोरम्यात्रिपुलाश्चिथसानवः ।
कोलाहलःसवैभ्राजोमन्दरोर्ददुराचलः ।।१२
वातस्वनोवैद्युतश्चमैनाकास्वरसस्तथा ।
तुंगप्रस्थोनागगिरीरोचनःपाण्डुराचलाः ।।१३
पुष्पोगिरिर्दुर्जयन्तोरैववतोऽर्बुदएवच ।
ऋष्यमूकःसगोमन्तःकूटशैलःकृतस्मरः ।।१४
श्रीपर्वतश्चकोरश्चशतसोऽन्येचपर्वताः ।
तैर्विमिश्राजनपदाम्लेच्छाश्चार्याचभागशः ।।१५

इसके पूर्व में किरात और पश्चिममें यवन रहते हैं, इसके मध्य भाग में ब्राह्मण, क्षत्रिय,वैश्य और शूद्रो का निवास है ।८।यह यज्ञ, अध्ययन, वाणिज्य आदि अपने-अपने कर्मको करतेहैं तथा सब कर्मो से उनका भले प्रकार व्यवहार से।९।स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति और पाप-पुन्य आदि सब कर्मों की उपस्थिति रहती है, महेन्द्र, मलय, सह्य,शक्तिमान् ऋक्ष ।१०। विन्ध्य और परियात्र नामक सात कुलाचल इसमें विद्यमान हैं,इन सबकुल पर्वतोंके निकट ही हजार-हजार पर्वत हैं।११।जिनमें कोलाहल, वैभ्राज, मन्दर, दर्दुराचल ।१२।वातस्वन वैद्युतमैकना, स्वरस, तुङ्गप्रस्थ, नाग-गिरि,पान्डुराचल ।१३। पुष्प दुर्जयन्त,रैवतक, अर्बुद,ऋष्यमूक, गोमन्त,

कूठशैल, कृतस्पर ।१४। श्रीपर्वत और कौर पर्वत अत्यन्य ऊँचे, रमणीक, विपुल एवं विस्तार युक्त हैं, इनमें अन्य सैकड़ों जनपद हैं, इन पर्वतों से मिले हुए सभीं जनपद विभाग के अनुसार म्लेच्छ तथा आर्य कहे गये हैं ।१५।

तैंपीयन्तेसरिच्छ्रेष्ठायास्याःसम्यङ् निबोधमे ।
गङ्गासरस्वतीसिन्धुश्चन्द्रभागातथापरा ।।१६
यमुनाचशतद्रूश्चवितस्तेरावतीकुहूः ।
गोमतीधूतपापाचबाहुदाचदृषद्वती ।।१७
विपाशादेविकारंक्षु निश्चीरागण्डकीतथा ।
कौशिकीचापगाविप्रहिमवत्पादनिःसृताः ।।१८
वेदस्मृतिर्वेदवतीवृत्रघ्नीसिन्धुरेवच ।
वेणासानन्दनाचैत्रसदानारीमहीतथा ।।१९
पाराचर्मण्वतीनूपीविदिजावेत्रवत्यपि ।
क्षिप्राह्यवन्तीचतथापारियात्राश्रयास्मृताः ।।२०
शोणोमहानदश्चैवनर्मदासुरथाद्रिजा ।
मन्दाकिनीदशार्णांचचित्रकूटातथापरा ।।२१

उन जनपदों में रहने वाले मनुष्य जिन श्रेष्ठ नदियों का जल पीतेहैं, उन सब नदियों के नाम बताता हूँ, उनको जान लो गंगा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा ।१६। यमुना, शतद्रू वितस्ता, इरावती, कुहू, गोमती पुण्य सलिला बाहुदा दृषद्वती ।१७। विपाशा, देविका, ऋक्षु, निश्चीरा, गण्डकी और कौशिकी यह सभी नदियाँ हिमालय पर्वत सब पर्वतों से निसृत हुई हैं ।१८। तथा देवस्मृती, वेदवती, वृत्रघ्नी, सिन्धु, देवा, सान्दनी, सदानीरा, मही ।१९। पार, चर्मण्वती तापी, विदिशा वेत्रवती, शिवा, अवर्णी यह सब नदियाँ पारियात्र पर्वत से उद्भत हुई हैं ।२०। शोणा, महानंद और नर्मदा सुरथाद्रि से तथा मन्दाकिनी और दशार्णा यह दोनों चित्रकूट से निर्गत हुई है ।२१।

त्रित्रोत्पलासतमसाकरमोदपिशाचिका ।
तथान्यापिप्पलश्रोणिर्विपाशावञ्जुलानदी ।।२२

सुमेरुजाशुक्तिमतीसकुलीप्रिदिवाक्रमुः ।
ऋक्षपात्रसूतावैतथान्यावेगवाहिनी ।।२३
क्षिप्रापयोष्णीनिर्विन्ध्यातापीचनिषध्वाबती ।
वेण्यावैतरणीचैवसिनीवालीकुमुद्वती ।।२४
करतोयामहागौरोदुर्गाचान्तःशिवात्तथा ।
विन्ध्यपादप्रसूतास्तानद्यःपुण्यजलाःशुभाः ।।२५
गोदावरीभीमरथीकृष्णावेण्ययातथापरा ।
तुङ्गभद्रासुप्रयोगावह्याकावेर्यथापगा ।।२६
सह्यपादविनिष्क्रान्ताइत्येताःसरिदुत्तमाः ।
कृतमालाताम्रपर्णीपुष्पजासूत्पलावती ।।२७
मलयाद्रिपमुद्भूपानद्य शीतलास्त्विमाः ।
पितृसोमर्षिकुल्याचइक्षुकात्रिदिवाचया ।।२८

चित्रोत्पला तमसा, करमोदा, पिशाचिका, पिप्पलश्रोणि, विपासा, मंजुला ।२२। सुमेरुजा, शुक्तिमत, शकुली, सिदिवा, आक्रमु यह वेग से प्रवाहित होने वाली नदियाँ ऋक्ष पर्वत से निकली हैं ।२३। क्षिप्रा, पयोष्णी, निर्विन्ध्वा, तापी, निषधावती, वेणवा, वैतरणी, सितीवली, कुमुद्वती ।२४। करतोया, महागौरी, दुर्गा, अन्तक्षिरा यह शुभ प्रदायिनी एवं पुण्य जल वाली नदियाँ विन्ध्यपद से अवतीर्ण हुई हैं ।२५। गोदावरी, भीमरथा, कृष्णवेणा, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोग, वाह्या और कावेरी महानदी ।२६। इनका उद्भव भी विन्ध्य पर्वत से ही हुआ है तथा कृतमाला, ताम्रपर्णी और उत्पल वती यह नदियाँ पुष्प पर्वत से निकलतीहैं, ।२७। पितृकुल्या, इक्षुका और त्रि दिवा यह शीतल जल से युक्त नदियाँ मलयाद्रि से उद्भुत हुई हैं ।२८।

लांगूलिनीवंशकरामहेन्द्रप्रभवाःह्यभे ।
ऋषिकुल्याकुमारोचमंदगामन्दवाहिनी ।।२९
कुशापलाशिनीचैवशुचिमत्प्रभवाःस्मृताः ।
सर्वाःपुण्याःसरस्वत्य सर्वागंगाःसमुद्रगाः ।।३०

विश्वस्यमातरःसर्वाःसर्वपापहराःस्मृताः ।
अन्याःसहस्रशश्चोक्ताःक्षुद्रनद्योद्विजोत्तम् ।।३१
प्रावृट्कालवहाःकाश्चित्सर्वकालवहाश्चयाः ।
मत्स्याश्वकूटाःकुल्याश्चकुन्तलाःकाशिकोशलाः ।।३२
अर्बुदाश्चार्कलिंगाश्चमलकाश्चवृकैःसह ।
मध्यप्रदेश्याजनपदाःप्रायशोमीप्राकीर्त्तिताः ।।३३
सह्यस्यचोत्तरेयास्तुयत्रगोदावरीनदी ।
पृथिव्यामपिकृत्स्नायांपप्रदेशोमनोरमः ।।३४

लांगलिनी तथा वशकरा वह दो नदियाँ महेन्द्र पर्वत से निकली हैं, ऋषिकुल्या कुमारी, मन्दगा, मंदवाहिनी । २९ । कुशा, पलाशिनी इन नदियों का उद्‌गम शुक्तिमान् पर्वतसे हुआहै, वह जिन नदियों का वर्णन गया गया है, वह सभी परम पुण्य प्रदायिनी एवं अधिक जल से परिपूर्ण है, यह सभी गंगा और समुद्र में जाकर मिल गई हैं ।३०। हे द्विजवर ! यह सब नदियाँ विश्व की माता स्वरूपा एवं संपूर्ण पापोंका हरण करने वाली हैं, तथा इनके अतिरिक्त जो और भी हजारों छोटी-छोटी नदियाँ हैं ।३१। उनमें कोई वर्षाकाल में बहती हैं तथा किसी में सदैव जल रहा आता है, मत्स्य, अश्वकूट, कुल्य, कुण्डल, काशी, कोशल ।३२। अथर्व कलिंग आमलक और वृक् यह सभी जनपद प्रायः मध्य प्रदेश में अव-स्थित बताये गये हैं ।३३। सह्य पर्वत के उत्तर में जहाँ गोदावरी प्रवा-हमान है, वह स्थान सम्पूर्ण पृथिवी में ही अत्यन्त रमणीक है । ३४ ।

गोवर्द्धनपुरंरम्यंभार्गव्यसमहात्मनः ।
बाह्लीकावाटधानश्चआभीराःकालतोयकाः ।।३५
अपरान्ताश्चशूद्राश्चपह्लवश्चर्मखण्डिकाः ।
गान्धारांयवनाश्चैवसिन्धुसौवीरमद्रकाः ।।३६
शतद्रुजाःकलिङ्गाश्चपारदाहारभूषिकाः ।
माठरैवहुभद्राश्चकैकेयादशमालिकाः ।।३७

क्षत्रियोपनिवेशाश्चवैश्यशूद्रकुलानिच ।
काम्बोजादरदाश्चैववर्बराअंगलौकिका: ।।३८
चीनाश्चैवतुषाराश्चपह्लवाबाह्यतोदरा: ।
आत्रेयाश्चभरद्वाजा:पुष्कलाश्चकशेरुका: ।।३९
लम्पाका:शूलकाराश्चचुलिकजागुडै:सह ।
औषधाश्चानिमद्राश्चकिरातानांचजातय: ।।४०

वहाँ महात्मा भार्गवकी गोवर्द्धन नाम की सुरम्य नगरी है तथा बाह्लीक, वाटधान, आभीर और काल तोयक ।३५। यह अपरान्त देश कहा है, शूद्र,पह्लव, चर्म चण्डिका, गांधार,यवन,सिंधु,सौवीरमद्रका ।३६ शतद्रुज, लिंगपाद,हारभूषिक,माठर,बहुभद्र केकय तथा दशमलिका आदि ।३७। सभी देशों में क्षत्रिय,वैश्य और शूद्र रहते हैं,काम्बोज. दरद. अंग-लोकिक ।३८। चीन, तुषार, और बहुतमें उत्पन्न हुए मनुष्यों को बहिर्देशज कहा गयाहै आत्रेय, भारद्वाज. पुष्कलल तथा कशेरुका ।३९। लम्वाक.शूलकार. चुलिक जागुड, औषध और अनिभद्र आदि जातियों के मनुष्य किरात जाति के ही भेद स्वरूप हैं।४०।

तामसाहंसमार्गाश्चकाश्मीरास्तुगणास्तथा ।
शूलिका:कुहकाप्रचैवऊर्णादार्वास्तिथवच ।।४१
एतेदशह्युदीच्यास्तुप्राच्यान्देशान्निबोधमे ।
अभ्रारकामुद्गरकाअन्तर्गिरिबर्हिर्गिरा: ।।४२
तथाप्लवङ्गारङ्गेयामालदामलवर्त्तिका: ।
ब्रह्मोत्तरा:प्रविजयाभार्गगागेयमल्लका: ।।४३
प्राग्ज्योतिषाश्चमद्राश्चविदेहास्ताम्रलिप्तका: ।
मल्लामगधगोमेदा:प्राच्याजनपदा:स्मृता: ।।४४
अथापरेजनपदादक्षिक्षापदवासिन: ।
पाडयाश्चकेरलाश्चैवचोला:कुंत्यास्तथैवच ।।४५
शैलूषामूषिकाश्चैवकुमारावानवासका: ।
महाराष्ट्रमाहिषिका:कालिङ्गाश्चैवसर्वश: ।।४६

आभीराःसहवैशिक्याआटव्यः शवराश्चये ।
पुलिन्दाविन्ध्यमालेयावैदर्भांदण्डकैःसह ।।४७
पौरिकामौलिकाश्चैवअश्मकाभागवर्द्धनः ।
नैषिकाःकुन्तलाआन्ध्राउद्भिदावनदारकाः ।।४८
दाक्षिणात्यास्त्वमीदेशाअपरांस्तान्निवोधमे ।
सूर्यारकाः कालिवलादुर्गश्चामीकटैःसह ।।४९

तामस हंसमार्ग, काश्मीर, शूलिक, कुहिक, ऊर्ण और दर्व ।.१।यह स॰ देश उत्तर में हैं इनके पश्चात् अव पूर्व देशों का वर्णन सुनो अध्रारक, मुदकर, अन्तर्गिरि वहिर्गिर ।४२।प्रवङ्ग,रङ्गेय,मानद मानवृत्तिक, उत्तर व्रह्म, प्रविजय, भार्गव, ज्ञेयमल्लक।४३। प्राग्ज्योतिष, पद्र, विदेह, ताम्रलिप्तक, मल्ल, मगध तथा गोमन्त आदि सव जनपद पूर्व दिशा में है ।४४। अब दक्षिणके जनपदों का करता हूँ—पाण्डव, केरल, चोल, कुन्त्य ।४५। शैलूष मूषि, कुसुम, नामवासक, महाराष्ट्र, माहिषिक, कलिग ।४६। आभीर वैणिक, आढकी जहाँ शवर रहते हैं, पुलिन्द, विन्ध्यमालेय, वैदर्भ, दण्डक ।४७। पौरिक मौलिक अश्मक, भोगवर्द्धन, नैमिषिक, कुत्तल, अन्ध, उद्भिद और वनदारक ।४८। आदि सब देश दाक्षिणात्य कह कर प्रसिद्ध हैं, अव पश्चिम के देशों को कहता हूँ ।४९।

पुलिन्दाश्चसुमीनाश्चरूपपाःस्वापदैःसह ।
तथाकुरुमिनश्चैवसर्वेचैवकठाक्षराः ।।५०
(कारस्करालोहजंघावा जेयाराजभद्रकाः) ।
तोसलाःकोसलाश्चैवत्रैपुराविदिशस्तथा ।
(तुपारास्तुंबुराश्चैवसर्वे चैवकरस्कराः ।)
नासिक्यावाश्चयेचान्येयेचैवोत्तरनर्म्मदाः ।।५१
भीरुकच्छाःसमाहेयाःसहसारस्वतैरपि ।
काश्मीराश्वसुराष्ट्राश्चआवन्त्याश्चार्बुदैसह ।।५२
इत्येतेह्यपरान्ताश्चशृञ्चविन्ध्यनिवासिनः ।
सरजाश्चकरूपाश्चकेरलाश्चोत्कलैःसह ।।५३

उत्तमर्णादशार्णाश्चभोज्याःकिष्किन्धकैःसह ।
तुम्बरातुम्बलाश्चैवपटवीनैषधैःसह ॥५४
अन्नजास्तुष्टिकाराश्चवीरहोत्राह्यवन्तयः ।
एतेजनपदाःसर्वेविन्ध्यपृष्ठनिवासिनः ॥५५
अतोदेशान्प्रवक्ष्यामिपर्वताश्रयिणश्चये ।
नीराराहंसमार्गाश्चकुरवोशुर्गणाःखसाः॥५६
कुन्तप्रावरणश्चैवऊर्णादार्वाःसकृत्रकाः ।
त्रिगर्त्तागालवश्चवकिरातास्तामसैःसह ॥५७

सूर्यारक कालिवल, दुर्ग, आमीकट, पुलिन्द, सुमीन, रूपप, स्वापद्र तथा कुरुमिन आदि प्रदेशों को कठाक्षर ।५०। (कारस्कर, लोहजंघ, वाले राजभद्र तोशल, कोशल, त्रिपुर, विदिशा (तुषार और तुबुर यह सब कारस्कर कहे हैं) या नासिक्शाव कहे गये हैं, उत्तर नर्मदा ।५१। भीरुकच्छ माहेय, सारस्वत, काश्मीर, सुराष्ट्र,आरम्भ और अर्बुद आदि सब देश पाश्चात्य कह कर प्रसिद्ध हैं ।५२। अब इनके उपरान्त विन्ध्यय-वासी देशों का वर्णन सुनो, सरज, करूष,केरल, उत्कल ।५३। उत्तामर्ण, दशार्ण, भोज्व, किष्किधक, तुम्बरु, तुम्बुल, पट्टु नैषध । २४ । अन्नज, तुष्टिकार, वीरहोत्र और अवन्ति यह सभी जनपद विंघ्य पर्वत के पृष्ठ में स्थित हैं ।५५। अब जो देश पर्वत के आश्रम में स्थित हैं, उनका वर्णन करता हूँ नीहार, हंसमार्ग, कुरु, गुर्गण, खस । ५६ । कुन्त, प्रावरण, ऊर्ण, दर्वा, कृत्रक, त्रिगर्त्त, गालव, किराव और तामस यह सब पर्वतीय देश कहे जाते हैं । ५७ ।

कृतत्रेतादिकश्चतुर्युगकृतांविधिः ।
एतत्तुभारतंवर्षंचतुःसंस्थानसंस्थितम् ॥५८
दक्षिणापरतोह्यपूर्वेणचमहोदधिः ।
हिमवातुत्तरेणास्यकामुंशस्ययथागुणः ॥५९
तदेतद्भारतंवर्षंसर्वबीजंद्वजोत्तम ।
ब्रह्मत्वममरेशत्वंदेवत्वंमर्त्यतातथा ॥६०

मृगापश्वप्सरोयोनिस्तद्वत्सर्वेमरीसृपा ।
स्थावराणांचसर्वेपामितोब्रह्मन्शुभाशुभैः ॥६१
प्रयांतिकर्मभूर्ब्रह्मन्नायंलोकेषुविद्यते ।
दैवानामपिविप्रर्षेसदाएषमनोरथः ॥६२
अपिमानुष्यमाप्यामादेवत्वात्प्रच्युताःक्षितौ ।
मनुष्यःकुरुतेतत्तु यन्नशक्यंसुरासुरैः ॥६३
तत्कर्मनिगडग्रस्तैःस्वकर्मख्मापनोत्मुकैः ।
नकिंचित्क्रियतेकससुखलेशोपबृंहितैः ॥६४

तथा इसी भारतवर्षमें सतयुगादि चारों युगों की विधि रहती है तथा यर चार संस्थान के रूप में अवस्थित है ।५८ इसे पूर्व-दक्षिण. और पश्चिम में धनुषाकारसे महासागर घेरे हुए हैं तथा उत्तरमे हिमालथ पर्वत घनुष के गुण के समान स्थित है।५९। हे विप्रवर! यह वह भारतवर्ष है,जो सभी का बीज स्वरूप हैं, इसमें ब्रह्मत्व, इन्द्रत्व, देवत्व तथा मनुष्यत्व इन सभी की विद्यमानता हैं ।६०। इसी से मृग, पशु आदि और अप्सराएँ उत्पन्न हुई हैं, यहीं वृश्चिक आदि उत्पन्न होते हैं,स्थावर जंगमादि जितने भी पदार्थ हैं,वह सभी शुभाशुभ कर्म के फलस्वरूप हैं।६१। हे ब्रह्मर्षे ! सभी लोकों में यह भारतवर्ष ही एकमात्र कर्मभूमि है,इसकी देवता भी सदैव इच्छा किया करते हैं ।६२। वे चाहते हैं कि यदि कभी देवत्व से भ्रष्ट हों तो पृथिवी के मध्य में स्थित इस भारतवर्षमें ही मनुष्य योनिग्रहण करें, क्योंकि जिस कार्यके करने में मनुष्य समर्थ है, उस कार्य को देवता या असुर कदापि नहीं कर सकते ।६३। देखो, कर्म-रूपी बेढ़ियों में जकड़े हुए यह मनुष्य किंचित् सुख के मोह में बड़ कर प्रसिद्धि की अभिलाषा करते हुए कर्म से विमुख रहते हैं ।६४।

५० — कूर्मसंस्थान

भगवन्कथितं सम्यग्भवताभारतं मम ।
नदीपर्व्वतेप्रदेशायेचतत्रवसन्तिवै ॥१

किन्तुकूर्मस्त्वयापर्वं भारतेभगवान्हरिः।
कथितस्यस्यसंस्थानंश्रोतुमिच्छाम्यशेषतः।।२
कथससंस्थितोदेवःकूर्मरूपीजनार्दनः।
शुभाशुभमनुष्याणांव्यज्यतेचततःकथम्।
यथामुखयथापादास्तस्यत्वंब्रूह्यशेषतः।।३
प्राङ्मुखीमगवान्देवःकूर्मरूपीव्यवस्थितः।
आक्रम्यभारतंवर्षनवभेदमिदं द्विजः।।४
नवधासंस्थितेन्यस्यनक्षत्राणिसमन्ततः।
विषयाश्चद्विजश्रेष्ठयेसम्यक्तान्निबोधमे।।५
वेदिमद्रारिमाण्डव्याःशाल्वानीपास्तथाशकाः।
उज्जिहानास्तथात्रत्सघोषसंख्यास्तथाखशाः।।६
मध्येसारस्वतामत्स्याःशूपसेनाःसमाथुराः।
धर्म्मारण्याज्योतिषिकागौरग्रीवागुडाश्मकाः।।७

क्रौष्टुकि ने कहा—हे भगवन ! आपने भारतवर्ष के विषय में मुझे सम्यक् प्रकारेण वताया तथा उसमें नदी, पर्वत, प्रदेश आदि जोहैं उनका भी सब वर्णन किया।१। परन्तु आपने भारतवर्ष में भगवान् हरि के कूर्म रूप से निवास करने की वात कही थी, सो उनकी स्थिति किस प्रकार है यह सुनना चाहता हूँ।२। उन कूर्म रूप से किस प्रकार स्थिति की और उनने द्वारा मनुष्यों का शुभाशुभ किस प्रकार प्रकट हुआ था ? हे प्रभो ! उनके मुख और चरणोंका प्रकार आदि सब सम्यक् प्रकार से कहिए।३। मार्कण्डेयजी ने कहा—हे द्विज। वही नारायण भगवान कूर्म रूप धारण करके इस नौ खण्डोंमें विभक्त भारतवर्ष में आकर पूर्व मुख से निवास करते हैं।४। सभी नक्षत्र और सम्पूर्ण विषय भी नौ भागों में बँटकर उनके चारो ओर रहते हैं अव तुम उसका विवरण सम्यक् प्रकार से श्रवण करो।५। वेद मन्त्र माण्डव्य, शाल्व, नीप, शक, उज्जिहान, घोष, संख्य, खस।६। सारस्वत, मत्स्य, शूरसेन, माथुर, धर्मारण्य, ज्यो,तिषिक, गौरग्रीव गुड़ाश्मक।७।

वैदेहका सपांचलाः संकेताःकङ्कमारुताः ।
कालकोटिसपाषण्डाःपारियात्रनिवासिनः ।।८
कापिंजलाःकुरोर्बाह्यास्तथैवोदुम्बुराजनाः ।
गजाह्वयाश्चकूर्मस्यजनामध्यनिवासिनः ।।६
कृत्तकारोहिणीसौम्याएतेषामध्यवासिनाम् ।
नक्षत्रत्रितयविप्रशुभाप्रभविपादकम् ।।१०
वृषध्वजोऽञ्जनश्चैवजम्ब्वाख्योमानवाचलः ।
शूर्पकर्णोव्याघ्रमुखोमुर्वरःकर्वटाशनः ।।११
तथाचन्द्रेश्वराश्चैवखशाश्चमगेधास्तथा ।
शिवयोमैथिलाःशुभ्रास्तथावनदन्तुराः ।।१२
प्राग्ज्योतिषाःसलौहित्याःसमुद्राःपुरुषादकाः ।
पूर्णोत्कटोभद्रगौरस्तथोदयगिरिर्द्विज ।।१३
काशयोमेखलामुष्टास्ताम्रलिप्तैकपादपाः ।
वर्द्धमानाःकोसलाश्चमुखकर्मस्यसंस्थिताः ।।१४

वैदेहक, पांचाल, सकेत, कंक, मारुत, कालकोटि, पानेण्ड, पारियात्र के निवासी ।८। कापिंजल, प्राह्यकुरु, उदुम्बर, पौर गजाह्व यह सभी देश कूर्म के मध्य स्थल में स्थित हैं।६।कृत्तिका, रोहिणी और मृगशिर यह तीन नक्षत्र मध्य में रहने वाले उन मनुष्यों का शुभाशुभ प्रकट करते हैं ।१०। वृषध्वज, अंजन, जद्वुनामक मानवाचल, शूर्पकर्ण, व्याघ्रमुख, कर्कटाशन ।११। चन्द्रेश्वर, खस, मगध, शिव, मैथिल, शुभ, वदन और दन्तुर ।१२। सभी पर्वत. प्राग्ज्योतिष. लौहित्य. सामुद्र. पुरुषादक. पूर्णोत्कट, भद्रगौर उदयाचल, ।१३। काशय, मेखल, मुष्ट, ताम्रलिप्त, एक पादप, वर्द्धमान और कोसल यह सभी कूर्म भगवान् के मुख में अवस्थित है ।१४।

रौद्रंपुनर्वसुपुष्योनक्षत्रत्रितायंमुखे ।
पादेताद्दक्षिणेदेशाःक्रौष्टुकेबदतःश्रृणु ।।१५
कलिङ्गवंगजठराःकोशलामूषिकास्तथा ।
चेदयश्चोर्द्धकर्णाश्चमत्स्यांध्राविन्ध्यवासिनः ।।१६

विदर्भानारिकेलाश्चधर्मद्वोषास्तथैलिकाः ।
व्याघ्रग्रीवामहाग्रीवास्त्रैपुराःस्मश्रुधारिणः ।।१७
कष्किन्ध्या .हैमकूटाश्चनिषधाःकटकस्थलाः ।
दशार्णांहारिकाकग्नानिषधा काकुलालकाः ।।१८
तथैवपर्णशबराःपादेवैपूर्वदक्षिणे ।
आश्लेषर्क्षं तथाःपैत्र्यफाल्गुन्यःप्रथमास्तथा ।।१९
नक्षत्रत्रितयंपादमाश्रतपूर्वदक्षिणम् ।
लंकाकालजिनाश्चंवशलिकानिकटास्तथा ।।२०
महेन्द्रमलयाद्रोचदर्दुरेचवसन्तिये ।
कर्कोटकवनेयेभृगुकच्छाःसकोङ्कणाः ।।२०

तीव नक्षत्र आर्द्रा, पुनर्वसु औरपुष्य भी मुखमें ही हैंअब उनकेदक्षिण पद में स्थित देशों का वर्णन करता हूँ ।१५। कलिंग, वंग. जठर, कोशल, मूषिक चेदि ऊर्ध्वकर्ण और मत्स्यादि जितने भी देश विन्ध्य पर्वत के समीपस्थ हैं ।१६। तथा विदर्भ, नारिकेल, धर्मद्वीप, ऐलिक, व्याघ्रग्रीव महाग्रीव, त्रैपुर, श्मश्रुधारी ।१७। कैष्किन्ध, हैमकूट निषध, कटक स्थल, दशार्ण हारिक नग्न, काकुलालक ।१८। तथा पर्णशवर आदि सब देश और आश्लेषा, मघा और पूर्वा फाल्गुनी नक्षत्र ।१९। उनके पूर्व दक्षिण पाद में स्थित हैं, लंका, कालाजिन, शैलिक, निकट ।२०। महेन्द्र, मलय, और दर्दुर पर्वतों में स्थित जनपद तथा कर्कटक वनमें बसे हुए सब देश ,भृगुकच्छ, कोंकण ।२१।

सर्वाश्चवतथाभीरावेण्यास्तीरनिवासिनः ।
अवन्तयोदासपुरास्तथैवाकारिणोजनाः ।।२२
महाष्ट्राःसकर्णाठागोनर्दाश्चित्रकूटकाः ।
चोलाःकौलगिराश्चंवक्रौंचद्वीपजटाधराः ।।२३
कावेरीऋष्यमुकस्थानासिक्याश्चंवयेजनाः ।
शंखशुक्त्यादिवैदूर्यशैलप्रान्तचराश्चये ।।२४
तथावारिचराःकोलाचर्मपट्टनिवासिनः ।
गणबाह्याःपराकृष्णाद्वीपवासेनिवासिनः ।।२५

सूर्यांद्रौकुमुद्रदौचतेवसन्तितथाजनाः ।
रौद्रस्वनाःसपिशिकास्तथायेकर्मनायकाः ॥२६
दक्षिणाःकौरुषायेचऋषिकास्तापसाश्रमाः ।
ऋषभाःसिंहलाश्चैवतथाकांचीनिवासिनः ॥२७
त्रिलंगाःकुञ्जरदरीकच्छवासाश्चयेजनाः :
ताम्रपर्णीतथाकुक्षिरितिकूर्मस्यमंदक्षिणः ॥२८

आभीर, वेण्य नदी के किनारे के सब अवन्ति, दासपुर, आक-रिणी ।२१। महाराष्ट्र, कर्णाट्र, गोकर्ट, चित्रकूट, चोल, कोलगिरी, क्रौंच द्वीप, जटाधर ।२२। कावेरी तथा ऋष्यमूक के सब प्रदेश शंखशुक्ति आदि वैदूर्य शैल तथा उनके निकटस्थ ।२४। वरिचर कोल चमपदु तथा गणबाह्य और कृष्ण दीप में रहने वाले मनुष्य ।२५। सूर्यांद्र और कुमुदाद इन पर्वतों के निवासी तथा रौद्र स्वर वाले, पिशिक और कर्मनायक ।२८। दक्षिण कोरुष, ऋषिक, ताप साश्रम, ऋषभ, सिंहल और कांची में निवास करने वाले त्रिलंग, कुजंर, दरी कच्छप में रहने वाले मनुष्य एव ताम्रपर्णी यह सभी कूर्म के दक्षिण पार्श्व में स्थित हैं ।२८।

फाल्गुन्यश्चोत्तरा हस्तश्चित्राचर्क्षत्रयंद्विज ।
कूर्मस्यदक्षिणेकुक्षौबाह्यपादस्तथापदम् ॥२९
काम्बोजाःरह्लवाश्चवतथैववडवामुखाः ।
वथाचसिन्धुसोवीराःसानर्त्तावनितामुखाः ॥३०
द्रावणा.सार्गिगाःशूद्राःकर्णप्राधेयबर्बराः ।
किरातीःपारदाःपाण्डयास्तथापारशवाःकलाः ॥३१
धूर्त्तकाहेमगिरिकाःसिन्धुकालकवैरताः ।
सौराष्ट्रादरदाश्चैवद्राविडाश्चमहार्णवाः ॥३२
एतेजनपदाःपादेस्थितावैदक्षिणेऽपरे ।
स्वात्योविशाखामैत्रंचनक्षत्रत्रयमेवच ॥३३
मणिमेघक्षुराद्रिश्चखंजयोऽस्तगिरिस्तथा ।
अपरान्तिकानोहयान्तिकाविप्रशस्तकाः ॥३४

कोंकणाः पञ्चनदनावमनाह्यवरास्तथा ।
तारक्षुराह्यंगतकाःशर्कराःशाल्मपेश्मकाः ।।३५
गुरुश्वरःभाल्गुनकावेणुमत्यांचयेजनाः ।
तथाफल्गुलुकाघोराग्रुरुहाश्चलास्तथा ।।३६
एकेक्षणावाजिकेशादीर्घग्रीवाःसचूलिकाः ।
अश्वकेशास्तथापूच्छेजनाःकूर्मस्यसंस्थिताः ।।३७

उत्तरा फाल्गुनी, हस्त और चित्रा यह तीन नक्षत्र कूर्म के दक्षिण पार्श्व में ही हैं तथा ब्राह्मपाद ।२ । कान्बोज, पह्लव, बडवामुख, सिन्धु, सौवीर, आनर्त्त, बनितामुख ।३०। द्रावण सार्गिग, शूद्र, कर्ण, प्रांयघेय, बर्बर, किरात पारद पाराशव, कल ।६८। धूर्त्तक, हैमागिरिक, सिन्धुकालक वैरत, सौराष्ट्र दरद महार्णव ।३२। यह समस्त जलपद कूर्म के दक्षिण पद में रहते हैं और स्वात, विशाखा और अनुराधा यह तीनों नक्षत्र इनमें निवास करने वालों व शुभाशुभ को व्यक्त करते रहते हैं ।३६। नणिमेघ, शुराद्रि, खजब, अस्ताचल, अपारन्तिक, हैहय, शान्तिक, विप्रराशानक ।६४। कोंकण, पंचनद, वमन, अवर, तारक्षुर, अंगतक, शर्कर, शाल्मल ।६५। गुरुस्वर फाल्गुनक, वेणुमस्य, फाल्गुलुक, घोर, गुरुह कल तथा ।३६। एक नेत्र वाले वाजिकेशा, दीर्घ कंठ सचूलिक तथा अश्वकेश इन सब देशों के निवासी कूर्म की पूँछ में स्थित हैं ।२८।

ऐन्द्रंमूलंतथाषाढानक्षत्रत्रमेवच ।
माण्डव्याश्चंडखाराश्चअश्वकालनदास्तथा।।३८
कुशात्तालडहाश्चैवस्त्रिबाह्यबालिकास्तथा ।
नृसिंहवेणुमत्यांचबलावस्थास्तथापरे ।।३९
धर्मवद्धास्तथोलूकाउरुकर्मस्थिताजनाः
(तथाफल्गुलकाचोराघुरलाहेमतारकाः ।
एकेक्षणावाजिकोशदीग पादास्तथैवच ।
वामेपरेजनाःपादेस्थिताःकूर्मस्यभागुरे ।।४०

आषाढाश्रवणेचैवधनिष्ठायत्रसंस्थिता ।
कैलासोहिमवाश्चैवधनुष्मान्वसुमांस्तथा ।।४१
क्रौंचाःकुरुवकाःश्चैवक्षुद्रवीणाश्चयेजनाः ।
रसालयाःसकैकेयाभोगप्रस्धाःसयामुनाः ।।४२

ज्येष्ठ, मूल और पूर्वाषाढा यह तीनों नक्षत्र भी कूर्म की पूँछ में ही रहते हैं, माण्डव्य, चण्डखार, अश्वयकालनद एवं ।३८। कुशात्त, लडह, स्त्री-बाह्य, बालिका, नृसिंह, वेणुमती बलावस्था ।:६। धर्मबद्ध, उलूक ऊरुकर्म के निवासी मनुष्य तथा भल्लुलका, घोर, घुरल, हेमतारक, एके-क्षण, वाजिकोश और दीर्घग्राद) यह सभी देश कूर्म के वामपद में अव-स्थित हैं ।४०। तथा उत्तराषाढा, श्रावण और धनिष्ठा यह तीन नक्षत्र में वामपद में स्थित हैं, कैलास, हिमालय धनुष्मान्, वसुमान् ।।४१।। क्रौंच, कुरुबक, क्षुद्रवीण, रसालय, कैकेय, भोगप्रस्थ, यामुन ।४२।

अन्तर्द्वीपास्त्रिगर्त्तांश्चघग्नीज्याःसार्दनाजनाः ।
तथैवाश्वमुखाःप्राप्तश्चिबिड़ाःकेशधारिणः ।।४३
दासेरकावाटधानाःशवधानास्तथैवच ।
पुष्कलाधमकैरातास्तथातक्षशिलाक्षयाः ।।४४
अम्बष्टामालवामद्रावेणुकाःसवदन्तिकाः ।
पिगलागानकलहाहूणाःकोहडकास्तथा ।।४५
माण्डव्याभूतियुवकाःशातकाहेमतारकाः ।
यशोमत्यासगान्धाराःखवसागरराशयः ।।४६
यौधेयादासमेयाश्चराजन्याःस्यामडास्तथा ।
क्षेमधूर्त्ताश्चकूर्मस्यवामकुक्षिमुपाश्रिताः ।।४७
वारुणंचात्रनक्षत्रतद्वत्प्रोष्ठपदाद्वयम् ।
येनकिन्नरपाज्यंचहैशुपालंसकोचकम् ।।४८
काश्मीरकंतथाराष्ट्रमभिसारजनस्तथा ।
दरदास्त्वंगणाश्चवकुलटावनकाष्ट्रकाः ।।४९

सौरिष्ठाब्रह्मपुरकास्तथैवतनबाह्यकाः ।
किरातकौशिकानन्दजनाःपह्लवलोलनाः ॥ ०

अन्तर्द्वीप, त्रिगर्त, अग्नीज्य, अर्दन, अश्वमुख प्राप्त, चिविड, केशधारी ।४३। दासेरक, वाटाधान, शवधान, पुष्कल, अधम कैरात, तक्षशिला ।४४। अम्बष्ठा, मालव, मद्र, वेदणुक, वन्तिक, पिंगाल, मानकलह, हूण कोहल, ।४५। माण्डव्य, भूतियुवक, हेमातारक यशोवत्य, गांधान, स्वरस, गर, राशि ।४६। यौधेय, दासमेय, राजन्य, श्यामक, क्षेमधूर्त्त यह सभी जनपद कर्म के वाम पार्श्व में स्थित हैं ।४७। शतभिषा, पूर्वभाद्रपद और उत्तरभाद्रपद यह तीनों नक्षत्र वहाँ का शुभाशुभ फल व्यक्त करते हैं, किन्नर राज्य पशुपाल, कीचक ।४८। काश्मीर, अभिसारजन, दरद, त्वागण, कुलट, वनराष्ट्र ।४९। सैरिष्ट, ब्रह्मपुर, वनवाह्यक, किरात, कौशिकानन्द पह्लव, लोलन ।५०।

दार्वादामरकाश्चैवकुरटाश्चान्नदारकाः ।
एकपादा खशाघोषा 'स्वर्गभौमानवद्यकाः ॥५१
तथासयवनाहिंगाश्चीरप्रावरणाश्चये ।
त्रिनेत्राःपौरवाश्चैवगन्धर्वाश्चद्विजोत्तम ॥५२
पुर्वोत्तररंतुकूर्मस्यपःदमेतेसमाश्रिताः ।
रेवत्यश्चाश्विवैवत्य याम्य चर्क्षमितित्रयम् । ५३
तत्रपादेसमाख्यातंपाकायमुनिसत्तम ।
देशेष्वेतेषु चैतानिनक्षत्राण्यपिवैद्विज ॥२४
एतत्पीडाअमीदेशाःपीडयन्तेयेक्रमोदिताः ।
यान्तिचाभ्युदयविग्रग्रहं :सम्यद्ववस्थितः ॥५५
यस्यक्षंस्यपतिर्योवैग्रहस्तद्भावतोभयम् ।
तद्देशस्यमुनिश्रेष्ठतदुत्कषशुभागमः ॥५६

दार्वाद, मरक कुरट, अन्न, दारक एकपाद, खस, घोष, स्वर्गभौम, अनवद्यक ।५१। तथा यवन, हिंग, चीर प्रावरण, त्रिनेत्र,पौरव और गंधर्व ।५२। यह सभी देश कूर्म के पूर्वोत्तरमें स्थितहै, रेवती,अश्विनी औरभरणी यह तीन नक्षत्र उक्त देशोंका शुभाशुभ सूचित करते है।५३।हे मुनिश्रेष्ठ !

जो वर्णन मैंने आपसे कहा है, उसी के अनुसार उतने ही पर्वत उतने ही नत्रक्ष, उतने ही त्रेश देश और उतने ही मनुष्य हैं ।४५। हे ब्रह्मन् ! उक्त देशों में उक्त नक्षत्रों के कुपित होने से ही मनुष्यों को पीड़ा उत्पन्न होती है तथा जब वह श्रेष्ठ ग्रह से मिलते हैं, तब मनुष्यों में सुख होता है ।५५। हे मुनिवर ! जिस नक्षत्र का जो अधिपति है उसके कोप से उस देश के प्राणियों को दुख या भय होता है तथा वही जब श्रेष्ठ स्थान में होता है तब शुभप्रद होता है ।५६।

प्रत्येकं देशसामान्यं नक्षत्रग्रहसम्भवम् ।
भयलोकस्यभवतिशोभनवाद्विजोत्तम ।।५७
स्वक्षैरशोभनैर्जन्तोःसामान्यमितिभीतिदम् ।
ग्रहैर्भवतिषीडोत्थमल्पायासमशोभनम् ।।५८
तथैवशोभनःपाकोदुःस्थितैश्चतथाग्रहैः ।
अल्पोपकाराय नृणांविशङ्कंरुदितोबुधैः ।।५९
द्रव्येत्गोष्ठेऽथत्येषुहृत्सुतनयेषु वा ।
भार्यायांचग्रहे दुःस्थेभयंपुण्यवतांनृणाम् ।।६०
आत्मन्यथाल्पपुण्यानांसर्वत्रैवातिपापिनाम् ।
नंकत्रापिह्यपापानांभयमस्तिकदाचन ।।६१
दिग्देशजनसामान्यंनृपसामान्यमात्मजम् ।
नक्षत्रग्रहसामान्यं नरोभुङ्क्ते शुभाशुभम् ।।६२
परस्पराभिरुक्षाच्चग्रहदौस्थ्येनजायते ।
एतेभ्यएवविप्रेन्द्रशुभहानिस्तथाशुभैः ।।६३

हे द्विजवर ! प्रत्येक देश में ही वहाँ के मनुष्य के लिए नक्षत्र अथवा ग्रह के द्वारा भय अथवा सुख की प्राप्ति होती है ।५७।सभी मनुष्यको सब देशों में अपने-अपने नक्षत्र के कोप से भय अथवा दुःख की प्राप्ति होती है ।५८। ग्रह के वक्र होने पर जिस भय की प्राप्तिहोती हैं,वह भय दूर करने के लिए मनुष्यों को जप, दान का उपदेश किया गया है ।५९।ग्रह केकुपित होने से पुण्यात्मा मनुष्य भी द्रव्य, गोष्ठ, भृत्य, सुहृद पुत्र, पत्नी आदि के सहित पीड़ित होते हैं ।६०। अल्पपुण्य वाले मनुष्यों को शरीर पीड़ा और

पापियों को ग्रह पीड़ा होती है, परन्तु पुण्यात्माओं कोतो अथार्थमें कोई भय प्राप्त नहीं होता ।६१। दिशा, देश, जनसाधारण, राजा से सुख, पुत्र सुख तथा दुःख आदि की प्राप्ति सबकुछ ग्रहकी अनुकूलता या प्रतिकूलतासेहोता है ।६२। हे विप्रेन्द्र ग्रह स्वस्थ रहें तो मनुष्य सुखी रहते हैं और ग्रह को अस्वस्था से अशुभ फल को प्राप्ति होती हैं ।६३।

यदेतत्कूर्मसंस्थानं नक्षत्रेषु मयोदितम् ।
एतत्तु देशसामान्यशुभंमुभमेवच ।।६४
तस्माद्विज्ञायदेशर्क्षं ग्रहपीडांतथात्मन ।
कुर्वीतशान्तिमेधावीलोकवादांश्चसत्तम ।।६५
आकाशाद्देवतानांचदैत्यादीनांदौहृदाः ।
पृथ्व्यांपतन्तितेलोकेलोकवादाइतिश्रुताः ।।६६
हांतथैवबुधःकुर्याल्लोकवादान्नहापयेत् ।
तेषान्तत्करणान्णांयुक्तोदुष्टागमक्षयः ।।६७
प्रयातानांमनुष्याणांग्रहर्थोत्थान्यशेषतः ।
एषकूर्मोमयाख्यातोभारतेभगवान्विभुः ।।६८

नक्षत्रों सहित कूर्म भगवान के संस्थान का यह वर्णन सब देशों में शुभाशुभ प्रदान करने वाला है ।६४। इसलिए बुद्धिमानों को उचित है कि नक्षत्र और ग्रह सेप्राप्त पीड़ाकोजानकर उसके शमन करते का उपाय करे ।६५। आकाश में सुर-असुर का जो शत्रु-स्वर्ग से पतित होता है वहीलोक वाद दानो को शान्त करे क्योंकि इन्हीं के पतित होनेसे शुभ-अशुभकीप्राप्ति होती हैं ।६७। ग्रहों के कारण पवित्र पुरुषो को भी शुभ-अशुभ फल की प्राप्ति होती है, इस प्रकार भारतवर्ष में यह कूर्म भगवान् प्रतिष्ठित रहते हैं, जिनके विषय में तुम्हारे प्रति कहा है ।६८।

नारायणोह्यचिन्त्यात्मायत्रसर्वप्रतिष्ठितम् ।
अत्रदेवाः स्थिताःसर्वेप्रतिनक्षत्र संश्रयाः ।।६९
तथामध्येहुतवहःपृथ्वीसोमश्चवैद्विज ।
मेषादयस्त्रयोमध्यमुखेद्वौमिथुनादिकौ ।७०

प्राग्दक्षिण तथापादेक्र्कसिंहौव्यवस्थितौ ।
सिंहकन्यातुलाश्चैवकुक्षौराशित्रयंथितम् ॥७१
तुलाथवृश्चिकश्चोभौपादेदक्षिणपश्चिमे ।
पृष्टेचवृश्चिकेनंवसहधन्वीव्यवस्थितः ॥७२
वायव्येचास्यवैपादेधनुर्गाहादिकत्रयम् ।
कुम्भमीनौतथैवास्यउत्तरांकुक्षिमाश्रितौ ॥७३
मीनमेषौद्विजक्षेष्ठपादेपूर्वोत्तरेस्थितो ।
कूर्मदेशास्तथक्षाणिदेवेष्वेतेषुवैद्विज ॥७४
राशयश्चतथक्षेषु ग्रहराशिष्ववस्थिताः ।
तस्माद्ग्रहक्षपीडासुदेशपीडांविनिर्दिशेत् ॥७५
तत्रस्नत्वाप्रकुर्वीतदानहोमादिकंविधिम् ।
सएषवंष्णवःपादोब्रह्मन्मध्येग्रहरयय: ॥७६

यह कूर्म भगवान् अचिन्त्यात्मा हैं, इनमें ही सम्पूर्ण देवताओं और नक्षत्रों के अधिष्ठाता स्थित हैं ।६९। उनके मध्य में अग्नि, पृथ्वी एवं चन्द्रमा स्थित है, मेष आदि तीन राशियों उनके मध्य में ही हैं तथा मिथुनादि दो राशियां मुख अवस्थित हैं ।७०। कर्कट और सिंह राशि उनके पूर्व दक्षिण पद में निवास करती है, सिंह, कन्या और तुला यह तीनों राशि उनकी कुक्षि स्थित हैं ।७ । तुला और वृश्चिक राशि दक्षिण पश्चिम चरण में विद्यमान हैं तथा वृश्चिक और धनु राशि उनके पृष्ठ भाग में हैं ।७२। धनु तीन राशियां वायव्य पद में और कुम्भ मीन उनकी उत्तर कुक्षि में अस्थित हैं ।७ । हे द्विजवर ! मीन मेष पूर्वोत्तर में स्थित है, इस कूर्म में देश तथा देश में नक्षत्र ।७४। नक्षत्र में राशि और ग्रह तथा ग्रह में राशि अवस्थित हैं, इसलिये ग्रह और क्षत्र के पीड़ित होने पर देश में ही पीड़ा उपस्थित समझनी चाहिये ।४५। देश में पीड़ा आदि के उपस्थित होने पर स्नान, दान हवन आदि सब नियमों को करे तथा जो विष्णु के पद रूपी यह ब्रह्माजी ग्रहों के मध्य में अवस्थित हैं ।

श्री मार्कंडेय पुराण (प्रथम खण्ड) समाप्त।।

पुराणों का वृहद् प्रकाशन

सरल हिन्दी अनुवाद सहित

१—शिव पुराण	२ खण्ड	...	[illegible]
२—विष्णु पुराण	२ खण्ड	...	[illegible]
३—मार्कण्डेय पुराण	२ खण्ड	...	[illegible]
४—अग्नि पुराण	२ खण्ड	...	[illegible]
५—गरुड़ पुराण	२ खण्ड	...	[illegible]
६—हरिवंश पुराण	२ खण्ड	...	[illegible]
७—देवी भागवत पुराण	२ खण्ड	...	[illegible]
८—भविष्य पुराण	२ खण्ड	...	२०)
९—लिंग पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१०—पद्म पुराण	२ खण्ड	...	२१)
११—वामन पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१२—कूर्म पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१३—ब्रह्मवैवर्त पुराण	२ खण्ड		२०)
१४—मत्स्य पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१५—स्कन्द पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१६—ब्रह्म पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१७—नारद पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१८—कालिका पुराण	२ खण्ड	...	२०)
१९—वाराह पुराण	२ खण्ड	...	२०)
२०—कल्कि पुराण		...	५)७५
२१—सूर्य पुराण		...	१०)
२२—महाभारत (भाषा)		...	८)
२३—श्रीमद्भागवत सप्ताह कथा		...	१४)

प्रकाशक : संस्कृति संस्थान, ख्वाजा कुतुब, वेदनगर
बरेली-२४३००१ (उ० प्र०)